नये समाज की खोज

अनुक्रम

1. नये समाज की खोज का आधार: नया मनुष्य...2
2. नये समाज का जन्मः सुख की नींव पर...18
3. जीवन-क्रांति का प्रारंभः भय के साक्षात्कार से..........................36
4. अंतस की बदलाहट ही एकमात्र बदलाहट...51
5. जीवन-मूल्य और संघर्ष..69
6. शून्य की दिशा...104
7. नये समाज का आधार--भय नहीं, प्रेम..121
8. मैं पूंजीवाद के समर्थन में हूं...139
9. अध्यात्म की आधारशिला है भौतिकवाद..157 10...जिंदगी निरंतर चुनाव है
.... 176
11..विश्व-शांति के तीन उपाय
.... 190
12...समाज और सत्य
.... 204
13...आध्यात्मिक क्रांति के दो सूत्र
.... 217
14..सत्य को बोलने का साहस
.... 231
15...निर्विचार अनुभव ही सनातन हो सकता है
.... 239
16...जीवन एक समग्रता है
.... 265
17..सफलता नहीं--सुफलता
.... 284
18..नये परिवार का आधार: विवाह नहीं, प्रेम
.... 297

नये समाज की खोज
पहला प्रवचन

नये समाज की खोज का आधार: नया मनुष्य

मेरे प्रिय आत्मन्!
"नये समाज की खोज" नयी खोज नहीं है, शायद इससे ज्यादा कोई पुरानी खोज न होगी। जब से आदमी है तब से नये की खोज कर रहा है। लेकिन हर बार खोजा जाता है नया, और जो मिलता है वह पुराना ही सिद्ध होता है। क्रांति होती है, परिवर्तन होता है, लेकिन फिर जो निकलता है वह पुराना ही निकलता है। शायद इससे बड़ा कोई आश्चर्यजनक, इससे बड़ी कोई अदभुत घटना नहीं है कि मनुष्य की अब तक की सारी क्रांतियां असफल हो गई हैं। समाज पुराना का पुराना है। सब तरह के उपाय किए गए हैं, और समाज नया नहीं हो पाता। समाज क्यों पुराना का पुराना रह जाता है? नये समाज की खोज पूरी क्यों नहीं हो पाती?
इस संबंध में पहली बात मैं आपसे यह कहना चाहूंगा कि एक बहुत गहरी भूल होती रही है इसलिए नया समाज नहीं जन्म सका। और वह भूल यह होती रही है कि समाज को बदलने की कोशिश चलती है, आदमी को बिना बदले हुए। और समाज सिर्फ एक झूठ है; समाज सिर्फ एक शब्द है। समाज को कहीं ढूंढने जाइएगा तो मिलेगा नहीं। जहां भी मिलता है आदमी मिलता है, समाज कहीं नहीं मिलता! जहां भी जाइए व्यक्ति मिलता है, समाज कहीं नहीं मिलता!
समाज को खोजा ही नहीं जा सकता, नया करना तो बहुत मुश्किल है। मिल जाता
तो नया भी कर सकते थे। समाज मिलता ही नहीं; जब मिलता है तब व्यक्ति मिलता है। और परिवर्तन के लिए जो चेष्टा चलती है वह समाज के परिवर्तन के लिए चेष्टा चलती है। इसलिए समाज नहीं बदल पाता है। और फिर समाज मिल भी जाए तो बदलेगा कौन? यदि व्यक्ति बिना बदला हुआ है तो समाज को बदलेगा कौन?
बहुत बार क्रांति होती है। फिर क्रांति के बाद पुराने आदमी के हाथ में समाज चला जाता है। गुलामी को तोड़ने की हजारों साल से कोशिश चल रही है। पुरानी गुलामी टूटती मालूम पड़ती है, टूट भी नहीं पाती कि फिर नयी शक्ल में पुरानी गुलामी खड़ी हो जाती है। गुलाम बनाने वाले बदल जाते हैं और गुलाम बनाने वालों के चेहरों के रंग बदल जाते हैं, गुलाम बनाने वालों के कपड़े और झंडे बदल जाते हैं--गुलामी अपनी जगह कायम रहती है। क्योंकि आदमी का दिमाग गुलाम है, उसे बिना बदले दुनिया में कभी गुलामी नहीं टूट सकती।
अंग्रेज की गुलामी टूट सकती है, मुसलमान की गुलामी टूट सकती है, हिंदू
की गुलामी टूट सकती है, लेकिन गुलामी नहीं टूट सकती; गुलामी नयी शक्लों में फिर खड़ी हो जाती है। पुरानी की पुरानी गुलामी फिर सिंहासन पर बैठ जाती है।
हां, इतना फर्क पड़ता है कि पुरानी गुलामी से हम ऊब गए होते हैं, नयी गुलामी से ऊबने में फिर थोड़ा वक्त लगता है। फिर इसको भी बदलने की इच्छा होने लगती है। जैसे कोई आदमी मरघट ले जाता है लाश को, अरथी को। एक कंधा दुखने लगता है तो अरथी को दूसरे कंधे पर रख लेता है। थोड़ी देर राहत मिलती है। फिर दूसरा कंधा दुखने लगता है। अरथी वही है, बोझ वही है, कंधे बदलने से कुछ भी नहीं हो सकता।
गुलामियां बदलती रही हैं, गुलामी नहीं मिटी; क्योंकि आदमी का दिमाग गुलाम है। और हम समाज की गुलामी मिटाने की कोशिश करते हैं और आदमी का गुलाम दिमाग नयी गुलामियां पैदा कर लेता है। एक मंदिर गिराओ, और दूसरा मंदिर उठना शुरू हो जाता है। एक मूर्ति मिटाओ, और दूसरी मूर्ति बननी शुरू हो जाती है। एक गुरु से छुटकारा लो, दूसरा गुरु मौजूद हो जाता है। आदमी का दिमाग गुलाम है, वह नयी-नयी गुलामियां खोज लेता है। वे पुरानी गुलामियां ही हैं जो नये फैशन में और नये लेबल लगा कर उपस्थित हो जाती हैं।
सब तरह की कोशिश की जा चुकी है, लेकिन सब तरह की कोशिश असफल हो जाती है। क्योंकि बदलेगा कौन? कोशिश कौन करेगा?
फ्रांस में क्रांति हुई, बड़ी क्रांति थी, लेकिन क्रांति के बाद पता चला कि कुछ भी नहीं हुआ। रूस में क्रांति हुई, बड़ी क्रांति थी, लेकिन क्रांति के बाद पता चला कि.जार फिर नयी शक्ल में स्टैलिन के नाम से

सिंहासन पर बैठ गया है। फिर वही सब पुराना शुरू हो गया। इधर हिंदुस्तान में क्रांति हुई, लेकिन फिर कुछ भी नहीं हुआ। फिर हमें समझ में आया कि सफेद चमड़ी बदल गई, काली चमड़ी बैठ गई, लेकिन गुलामी जारी है। अभी हम सोच रहे हैं कि समाजवाद आ जाए, अब हम बड़े शोरगुल में लग गए हैं कि समाजवाद आ जाए।
नहीं आएगा। क्योंकि जो आदमी समाजवाद लाने वाले हैं वे आदमी वही हैं।
उन आदमियों में कोई फर्क नहीं है। फिर एक धोखा होगा, फिर कुछ दिन के लिए हम अरथी का कंधा बदल लेंगे। फिर थोड़े दिन सोचेंगे कि अब सब ठीक हो जाएगा, अब सब ठीक हो जाएगा। फिर ऊब जाएंगे और फिर कहेंगे कि फिर कुछ बदलाहट चाहिए। कुछ भी ठीक नहीं हो रहा है।
आदमी नहीं बदलता है तो समाज नहीं बदल सकता है। समाज को बदलने की बात इसीलिए असफल हो जाती है कि मनुष्य को, व्यक्ति को बदलने की कीमिया, केमिस्ट्री नहीं खोजी जा सकी है। मैं व्यक्ति को बदलने से शुरू करना चाहता हूं। नये समाज की खोज में नये मनुष्य की खोज पहला सूत्र है। समाज नहीं, महत्वपूर्ण है मनुष्य।
लेकिन समाज शब्द से बड़ा धोखा पैदा होता है, ऐसा लगता है कि समाज भी कोई है।
यहां हम इतने लोग बैठे हैं, एक समाज बैठा है। एक-एक आदमी इस समाज से निकल कर चला जाए। दरवाजे पर हम पहरेदारों को खड़ा कर दें कि जब समाज निकले तो तुम पकड़ लेना। और जब एक-एक व्यक्ति निकलेगा तो पहरेदार सोचेंगेः एक-एक आदमी जा रहा है, समाज निकलेगा तो पकड़ लेंगे। फिर यह स्थान खाली हो जाएगा और पहरेदार खड़े रहेंगे, समाज कभी पकड़ में नहीं आएगा।
समाज है नहीं सिवाय एक शब्द के। समाज एक जोड़ है, एक शब्द है; असलियत नहीं है। असलियत व्यक्ति है, सच्चाई व्यक्ति की है। विज्ञान तो इस बात को समझ गया, लेकिन अभी समाज-शास्त्री नहीं समझ पाए हैं।
विज्ञान कहता है कि पत्थर का कोई अस्तित्व नहीं है, एटम का अस्तित्व है, अणु का अस्तित्व है। वे कहते हैं, मैटर, पदार्थ झूठी चीज है; असली में तो भीतर जो अणु है वह सत्य है। अणुओं के जोड़ का नाम पदार्थ है। पदार्थ कुछ भी नहीं है; अणुओं को हटा लो, पदार्थ विदा हो जाएगा। पदार्थ एक समाज है, अणुओं की एक भीड़ है; सच्चाई अणु की है।
समाज भी व्यक्तियों की एक भीड़ है, समूह है; सच्चाई व्यक्ति की है। और क्रांति सदा समाज की चाही जाती है, और समाज कहीं भी नहीं है, व्यक्ति है। व्यक्ति की क्रांति चाहनी होगी। व्यक्ति, नये व्यक्ति की तलाश करनी होगी। नये व्यक्ति की तलाश करनी हो तो पुराने व्यक्ति को ठीक से पहचान लेना जरूरी है। क्योंकि पुराने को मिटाना पड़ेगा; तो ही नये का जन्म हो सकता है। पुराने व्यक्ति की क्या खूबियां हैं, वे हमें पहचान लेनी चाहिए। तो शायद हम नये व्यक्ति को जन्म देने में समर्थ हो जाएं। और सच्चाई तो यह है कि अगर कोई भी व्यक्ति ठीक से पहचान ले कि पुराना आदमी क्या है, तो वह एक क्षण को भी पुराना आदमी रहने को राजी नहीं रहेगा। यह स्मरण भर आ जाए कि पुराना आदमी यह हूं मैं, तो नये आदमी का प्रारंभ हो जाए। यह प्रारंभ ऐसे ही हो जाता है जैसे सपने में याद आ जाए कि मैं सपना देख रहा हूं, बात खत्म हो गई; सपना खत्म हो गया, जागना शुरू हो गया।
सपने में कभी याद नहीं आती कि मैं सपना देख रहा हूं। और अगर याद आ जाए
तो समझना कि सपना टूट चुका है। अगर मेरी समझ में आ जाए कि मेरे भीतर पुराना आदमी कौन है, तो नये आदमी की शुरुआत हो गई। क्योंकि जिसे यह समझ में आएगा कि पुराना आदमी यह रहा--वह नया आदमी है। पुराने आदमी को तो समझ में ही नहीं आ सकता कि नया-पुराना क्या है।
एक-एक व्यक्ति को अपने भीतर खोज करनी जरूरी है कि पुराना आदमी क्या है? पुराने आदमी की ईंटें क्या हैं? उसका भवन कैसे निर्मित हुआ?
कुछ थोड़े से सूत्र आज कहना चाहूंगा, फिर रोज हम उनकी बात करेंगे।
पुराने आदमी के बुनियादी आधारों में एक आधार है और वह यह है कि आज तक आदमी जीया नहीं है, आदर्शों में जीने की उसने कोशिश की है। पुराना आदमी आदर्श की बुनियाद पर खड़ा है। और जब तक आदमी को आदर्श पकड़े रहेगा तब तक आदमी नया नहीं हो सकता।

आदर्श का मतलब है कि "आदमी जो है" उसे जानने की उसे चिंता नहीं है, "आदमी को जो होना चाहिए" उसे जानने की उसे बहुत चिंता है। यह जानने की चिंता नहीं है कि जिस पृथ्वी पर हम रह रहे हैं वहां रहने का क्या अर्थ है। इस बात की चिंता ज्यादा है कि स्वर्ग में जब हम रहेंगे तो वहां रहने का क्या अर्थ है। जिस पत्नी को मैं प्रेम कर रहा हूं उसे प्रेम करना क्या है, इसे जानने की कोई जरूरत नहीं; परमात्मा को प्रेम कैसे करना चाहिए, इसे जानने की जरूरत है। आदर्शवादी आकाश में जीता है, पृथ्वी पर नहीं। और जिंदगी पृथ्वी पर है, आकाश में नहीं।
अगर किसी वृक्ष को यह भ्रम पैदा हो जाए कि अपनी जड़ों को आकाश में फैलाना चाहिए, जमीन से हट जाना चाहिए... बड़ का वृक्ष कुछ इस तरह की कोशिश करता है, लेकिन फिर भी जमीन से जड़ों को अलग नहीं कर लेता। और वे जो जड़ें लटकती हैं, वे फाल्स, झूठी होती हैं, दिखाऊ होती हैं। असली जड़ें तो जमीन में ही होती हैं। अगर किसी वृक्ष को यह भ्रम पैदा हो जाए कि जड़ें आकाश में फैलानी चाहिए, तो वह वृक्ष मर जाएगा। जड़ें जमीन में ही फैलती हैं।
आदमी एक ऐसा वृक्ष है जिसने आदर्श के आकाश में जड़ें फैलाने की कोशिश
की है। पुराना आदमी इसीलिए मरा हुआ आदमी है। उसमें फूल नहीं खिलते, उसमें पत्ते नहीं आते। आदर्श में नहीं जीया जा सकता, जीया जा सकता है यथार्थ में, वह जो है, तथ्य में।
जैसे उदाहरण के लिए--मेरे भीतर हिंसा है, तो मैं अहिंसा में जीने की कोशिश में लग सकता हूं। मैं हिंसक रहूंगा और अहिंसा में जीने की कोशिश चलेगी। और मेरी पूरी जिंदगी हिंसा से भरी रहेगी, क्योंकि यथार्थ मेरा हिंसा है। और अहिंसा मेरी कल्पना रहेगी, मेरी आंखें अहिंसा में अटकी रहेंगी और मेरी जिंदगी हिंसा में अटकी रहेगी। बल्कि हिंसक होने में मुझे सुविधा मिल जाएगी। क्योंकि मैं अपने मन को कहता रहूंगाः घबराओ मत, जल्दी ही अहिंसक हो जाएंगे। जब तक नहीं हो गए हैं तब तक कोई बात नहीं, लेकिन जल्दी ही अहिंसक हो जाएंगे। कल अहिंसक हो जाएंगे। कल अहिंसक होने की आशा आज हिंसक होने की सुविधा बनेगी। कल की आशा आज की सुविधा बन जाएगी। आज जो मैं हूं, वह मुझे होने की सुविधा मिल जाएगी। मैं कहूंगा, घबराओ मत--अपने से कहूंगा, घबराओ मत--कल अहिंसक हो जाएंगे।
कल कभी नहीं आता, जब आता है आज आता है, और आज मैं हिंसा में जीऊंगा। मेरी जड़ें हिंसा में फैली रहेंगी और मेरी कामना की जड़ें आकाश में फैली रहेंगी--अहिंसा के आकाश में।
हमारा देश अहिंसक कहा जाता है। और एक-एक आदमी को अगर हम थोड़ा सा, जरा
सा चमड़ी उघाड़ कर देखें तो भीतर हिंसक आदमी मिल जाएगा। अहिंसक वस्त्रों के भीतर बड़ा पुराना हिंसक छिपा हुआ बैठा है--स्किन डीप। वह स्किन डीप भी नहीं है, चमड़ी भी बहुत मोटी है, जरा सा ऊपर से खरोंच दो, भीतर से हिंसा बाहर निकलने लगेगी। और हजारों साल से हम अहिंसा की बातें कर रहे हैं। एक-दो दिन की बात नहीं है यह, हजारों साल से हम "अहिंसा परम धर्म है," इसकी बात कर रहे हैं। और अहिंसा, हजारों साल से जो अहिंसा के आदर्श को लेकर चल रहे हैं वे अहिंसक हो पाए हैं?
नहीं; वे जी रहे हैं हिंसा में। उनके जीने में हिंसा में कोई फर्क नहीं पड़ता।
हजारों साल से हम प्रेम की बातें कर रहे हैं। सारी दुनिया के धर्म प्रेम सिखाते हैं, और सारी दुनिया के धर्म मिल कर प्रेम की हत्या करते हैं। सारी दुनिया के धर्म कहते हैंः प्रेम करो, प्रेम करो। और इस पर भी झगड़ा हो जाता है कि कौन ज्यादा प्रेम करता है! और इस पर ही तलवारें चल जाती हैं कि किसका प्रेम असली है!
आश्चर्यजनक है बात! जब सारे धर्म दुनिया के कहते हैं कि प्रेम करो तो फिर धर्म लड़ते क्यों हैं?
नहीं; प्रेम करो, यह आदर्श है; और लड़ना यथार्थ है। लड़ेंगे आज, कल प्रेम करेंगे। फिर प्रेम की रक्षा के लिए भी लड़ना पड़ता है, अहिंसा की रक्षा के लिए भी तलवार उठानी पड़ती है। अहिंसा की रक्षा भी तलवार से ही करनी पड़ती है।

आदर्श में आदमी सिर्फ अपने को डिसीव कर रहा है, सिर्फ अपने को धोखा दे रहा है, सच्चाई से बचने का और सच्चाई को झुठलाने का उपाय खोज रहा है। सच्चाई को देखना नहीं चाहता तो आदर्श में आंखें गड़ा लेता है, आकाश की तरफ देखने लगता है। जमीन बहुत गंदी है, आकाश बहुत साफ-सुथरा है, वह आकाश को देख कर चलने लगता है। वह कहता है, जमीन को हम देखेंगे ही नहीं। जमीन बुरी है, देखें क्यों? लेकिन चलना जमीन पर पड़ता है। और अगर जमीन में कांटे हैं और गंदगी है, तो पैरों में कांटे भी छिदेंगे और गंदगी श्वासों में जाएगी और प्राणों में भीतर घुसेगी। आकाश की तरफ देखने से आदमी स्वच्छ नहीं हो सकता। पृथ्वी की तरफ देखना पड़ेगा।
हजारों साल से आदर्शों ने आदमी को भटकाया हुआ है। और आदर्शों से बड़ी सुविधा मिल जाती है। आदर्श कहते हैंः हर आदमी के भीतर भगवान है। और हर आदमी बड़ा प्रसन्न हो जाता है कि हम सबके भीतर भगवान है। और वह यह भूल ही जाता है कि थोड़ा अपनी शक्ल को आईने में तो देखें--वहां भगवान है? वह रोज सुबह किताब खोल कर पढ़ लेता है कि हर आदमी के भीतर भगवान है। जब वह यह पढ़ता है तब वह यह पक्का मान लेता है कि दूसरे के भीतर चाहे हो या न हो, मेरे भीतर तो है ही।
मैं एक गांव में था। वहां कानजी स्वामी आए हुए थे। उस गांव के जितने पापी थे, सब मुझे वहां उनके सामने बैठे हुए दिखाई पड़े। और वे बड़े प्रसन्न हो रहे थे।
वे किस बात से प्रसन्न हो रहे थे? मैंने पता लगवाया कि बात क्या है? गांव भर के पापी एक तरफ क्यों भागे चले जाते हैं? बात क्या है? और वे सब बैठ कर कानजी को इतने आनंद से क्यों सुनते हैं?
कानजी उन्हें समझा रहे हैं कि आत्मा पाप करती ही नहीं। वे पापी बड़े प्रसन्न हो रहे हैं। स्वामी जी ठीक कह रहे हैं आप, वे सिर हिला रहे हैं। कानजी उनसे पूछ रहे हैं, समझ में आया? वे सब पापी कह रहे हैं, बिल्कुल समझ में आया, गुरुजी।
वे उठ कर फिर पाप करेंगे। वे अभी जहां से आए हैं, पाप करके आ रहे हैं। लेकिन अब उन्हें एक आदर्श बड़ी राहत दे रहा है कि आत्मा तो पाप करती ही नहीं। इस सिद्धांत को वे मान लेंगे। यह आदर्श बड़ा प्रीतिकर है। पापी के लिए इससे सुंदर आदर्श कुछ भी नहीं हो सकता। क्योंकि पापी का जो बोझ था, उसके प्राणों पर जो भार था, वह अलग हो गया। उसे पापी होने में सुविधा मिल गई। अब वह ठीक से पापी हो सकता है। क्योंकि आत्मा पाप करती ही नहीं है। जब आत्मा पाप ही नहीं करती है तो फिर पाप करने में हर्ज क्या है?
दस हजार वर्षों में हमने आदमी को आदर्श दिए, आदमियत नहीं। और आदर्श धोखा सिद्ध हुए। कोई भी आदर्श आदमी को उसकी असलियत बताने में सहयोगी नहीं हुआ, उसकी असलियत छुपाने में सहयोगी हुआ। जब कि जरूरत है यह कि आदमी अपनी असलियत को पूरी तरह देख पाए--अगर वह नंगा है तो नंगा, अगर गंदा है तो गंदा, और अगर पापी है तो पापी। मैं जैसा हूं, मुझे अपने को पूरी तरह जान लेना जरूरी है। क्योंकि मजे की बात यह है कि अगर मैं पूरी तरह यह जान लूं कि मैं कैसा हूं, तो मैं एक दिन भी फिर वैसा नहीं रह सकता, मुझे बदलना ही पड़ेगा। अगर मुझे दिखाई पड़ जाए कि मेरे घर में आग लगी है, तो मैं आपसे पूछने आऊंगा कि मैं बाहर निकलूं या न निकलूं? मुझे अगर दिखाई पड़ जाए कि मेरे घर में चारों तरफ आग लगी है, तो मैं किसी शास्त्र में खोजने जाऊंगा कि जब मकान में आग लग जाए तो निकलने की विधि क्या है?
नहीं; जब मुझे दिखाई पड़ जाएगा कि मेरे घर में चारों तरफ आग लगी है, तो दिखाई पड़ने के बाद मुझे पता भी नहीं चलेगा कि मैं बाहर कब हो गया हूं। मैं बाहर हो जाऊंगा। लेकिन मेरे घर में आग लगी है और मैं कह रहा हूं कि चारों तरफ फूल खिले हैं, आदर्शों के फूल। और साधु-संत समझा रहे हैं कि अमृत की वर्षा हो रही है। ये लपटें नहीं हैं, यह भगवान का प्रसाद बरस रहा है। तो फिर मैं अपने घर में बिल्कुल आराम से बैठा हूं।
हम सब नहीं बदल पाते हैं, क्योंकि हम अपनी असलियत को ही नहीं पहचान पाते हैं, हम कभी अपने भीतर ही नहीं झांक पाते हैं कि मैं हूं कौन! लेकिन जब भी हम सवाल पूछते हैं कि मैं हूं कौन? तो हमें पुराने उत्तर याद आ जाते हैं कि अहं ब्रह्मास्मि! मैं ब्रह्म हूं, मैं आत्मा हूं, मैं शुद्ध-बुद्ध

परमात्मा हूं। ये सब आदर्श हमें सुनाई पड़ते हैं, हमारे कानों में गूंजने लगते हैं। और तब जो मैं हूं वह भूल जाता है और जो मैं नहीं हूं वह हमें मालूम पड़ने लगता है। आदर्शों ने मनुष्य को नहीं बदलने दिया।
और मजे की बात यह है कि सब आदर्श यह कहते हैं कि हम मनुष्य को बदलने के लिए ही आए हैं, हम मनुष्य को बदलना चाहते हैं। सब आदर्शों का दावा यही है कि हम मनुष्य को बदलना चाहते हैं। और मैं आपसे कहना चाहता हूं, कोई आदर्श मनुष्य को बदल नहीं सका। यथार्थ बदलेगा, आदर्श नहीं।
नहीं; मैं जो हूं, मुझे जानना पड़ेगा। दुखद, पीड़ा से भरा हुआ नरक हूं, तो जानना पड़ेगा। पहचानना पड़ेगा कि मैं कौन हूं। और अगर मैं ठीक से पहचान लूं कि मैं कौन हूं और बीच में आदर्शों की बातें मुझे भटकावा न दें, तो मैं एक भी दिन वही नहीं रह सकता हूं जो मैं था। मैं वैसे ही छलांग लगा जाऊंगा जैसे आग लग जाए तो आदमी मकान के बाहर हो जाता है और सांप सामने आ जाए तो हम छलांग लगा कर रास्ते से नीचे उतर जाते हैं। कौन अपनी जिंदगी को गंवाना चाहता है! लेकिन हम आदर्शों के कारण अपने सत्य को नहीं जान पाते हैं। मनुष्य का सत्य बहुत दुखद है। न मालूम कौन लोग थे जिन्होंने कहा कि नरक जमीन के नीचे है। उतनी दूर नरक नहीं है। जरा गर्दन मुड़ाइए और अपने भीतर देखिए--नरक वहां मौजूद है। नरक इतने दूर नहीं है जितना बताया गया है। नरक बिल्कुल पास है, हम सब नरक में खड़े हैं।
पहली बात आपसे मैं यह कहना चाहता हूं, नये समाज की खोज करनी हो तो नये मनुष्य को खोजना पड़े। और पुराने मनुष्य की क्या बुनियादी भूल थी? पुराने मनुष्य की बुनियादी भूल थीः वह जीता था यथार्थ में, आंखें गड़ाता था आदर्श में; होता था कल्पनाओं में। लेकिन कल्पनाओं में सिर्फ मन हो सकता है, होना तो पड़ता है हमें यथार्थ में। और जिंदगी के यथार्थ कुछ और हैं; और जिंदगी के सत्य बहुत कुरूप हैं, बहुत अग्ली हैं, और बहुत विष भरे हैं, और बहुत नारकीय हैं। इन्हें जानने के लिए जरूरी है कि आदर्श से हमारा मन छुटकारा पा जाए। नहीं, कोई आदर्श नहीं है; यथार्थ है। और यथार्थ को जो जानता है उसकी जिंदगी में एक परिवर्तन होना शुरू होता है। अगर मैं अपनी हिंसा को पूरी तरह पहचान लूं तो मैं हिंसक नहीं हो सकता हूं, असंभव हो जाएगा। और अगर मैं हिंसा न पहचानूं तो मैं अहिंसक होने की कोशिश कर सकता हूं, रहूंगा हिंसक। और यह भी हो सकता है कि मैं अहिंसक हो भी जाऊं, तो मेरी अहिंसा भी बहुत गहरे में हिंसा ही होगी और मैं अहिंसा से भी हिंसा का काम लेने लगूंगा।
अहिंसक आदमी भी हिंसा का काम कर सकता है। वह भी दूसरे को सता सकता है, दबा सकता है, परेशान कर सकता है। वह भी दूसरे की गर्दन पर मुट्ठियां बांध सकता है। और सच तो यह है कि हिंसक आदमी को थोड़ा डर भी लगता है दूसरे की गर्दन दबाने में कि कहीं हिंसा न हो जाए। अहिंसक को बिल्कुल डर नहीं लगता। उसे डर लगने का कोई कारण ही नहीं है।
इसलिए अगर बुरा काम करना हो तो हमेशा अच्छे लेबल लगा कर करना चाहिए। बुरा काम करने में अच्छा लेबल बहुत सहयोगी होता है। बुरा लेबल थोड़ी तकलीफ देता है। अगर मुझे यह पक्का हो कि मैं आपकी गर्दन दबा रहा हूं यह हिंसा है, तो मेरा मन भी कचोटेगा, मेरे प्राण भी कहेंगे कि मैं यह क्या कर रहा हूं! लेकिन अगर मैं आपके भले के लिए आपकी गर्दन दबा रहा हूं, तब फिर कोई सवाल नहीं है। आपके मंगल के लिए दबा रहा हूं, आपके कल्याण के लिए दबा रहा हूं, आपकी आत्मा को ऊंचा उठाने के लिए दबा रहा हूं, तब फिर कोई सवाल नहीं है। दुनिया के सारे गुरु आदमी की गर्दन दबा रहे हैं, लेकिन उसके ही कल्याण
के लिए दबा रहे हैं। तब फिर दबाने का जो दंश है वह विदा हो जाता है।
अगर हिंसक आदमी अहिंसक होने को किसी तरह अपने ऊपर थोप ले, तो वह नये ढंग से हिंसा करने लगेगा, अहिंसक ढंग से हिंसा करने लगेगा। और सबसे बड़ा खतरा यह है कि अगर वह दूसरों के साथ हिंसा करने से अपने को रोक ही ले, तो अपने साथ हिंसा शुरू कर देगा। और अपने साथ जब कोई हिंसा करता है तो हमें कोई एतराज नहीं होता, बल्कि हमें बड़ी खुशी होती है, हम बड़े प्रसन्न होते हैं। हम कहते हैं--बड़ी तपश्चर्या है, बड़ा त्याग है।
एक आदमी अगर सिर के बल धूप में खड़ा हो जाए तो फिर हमें नमस्कार करनी ही पड़ती है। और अगर एक आदमी उपवास करने लगे तो हमें उसके पैर छूने पड़ते हैं। और एक आदमी अगर कांटों की शय्या पर लेट जाए तो हमें फिर तो उसके लिए मंदिर

बनाना पड़ता है, उसकी पूजा का इंतजाम करना पड़ता है। अगर आदमी अपने को सताने लगे तो हम सब उसे आदर देने के लिए तैयार हैं।
लेकिन हमें पता नहीं, सताना बराबर है--चाहे किसी और को सताओ, चाहे अपने
को सताओ। और ध्यान रहे, दूसरे को सताओ तो दूसरा बचने का उपाय भी कर सकता है, अपने को सताओ तो बचाने का उपाय भी करने वाला कोई नहीं है। बचने वाला भी कोई नहीं बचता, भाग भी नहीं सकता कोई, सुरक्षा भी नहीं कर सकता।
जो आदमी भीतर से हिंसक है और ऊपर से अहिंसा ओढ़ लेगा, वह सेल्फ-टार्चर में, आत्म-हिंसा में संलग्न हो जाएगा। उसे हम तपश्चर्या कहते रहे हैं, त्याग कहते रहे हैं। हमें भी मजा आता है। दूसरे को सताने में हमें मजा आता है। और जब कोई आदमी खुद ही, हमें भी मेहनत नहीं देता, खुद अपने को सताने लगता है तो हमें और मजा आता है। इसलिए त्यागी की पूजा होती है। त्यागी की पूजा हमारे सताने की प्रवृत्ति का हिस्सा है। हम टार्चर करना चाहते हैं। हम किसी आदमी को परेशान करने में रस लेना चाहते हैं। फिर वह आदमी तो बहुत ही कृपालु है जो खुद ही, हमें भी मेहनत नहीं देता, और अपने को सताने का इंतजाम करता है। वह बड़ा दर्शनीय हो जाता है, उसके हमें दर्शन करने पड़ते हैं।
समाज दो तरह के हिंसकों से भरा हुआ है। एक तो वे लोग हैं जो दूसरे को सताने में रस लेते हैं, वे भी बीमार हैं। और एक वे लोग हैं जो खुद को सताने में रस लेते हैं, वे भी बीमार हैं। परपीड़क भी हैं और स्वपीड़क भी हैं। मैसोचिस्ट भी हैं और सैडिस्ट भी। जो दूसरे को सता रहे हैं उन्हें तो कानून भी पकड़ लेता है, लेकिन जो अपने को सता रहे हैं उन्हें पकड़ने वाला कोई कानून भी नहीं है।
हिंसा अगर भीतर है तो अहिंसा के आदर्श इतना ही कर सकते हैं कि हिंसा
को अहिंसक शक्लें दे सकते हैं। लेकिन आदमी बदलता नहीं, आदमी वही का वही रह जाता है। बदलने का ढोंग हो जाता है।
अगर नये मनुष्य को पैदा करना है तो पुराने मनुष्य की आदर्शवादिता को चीर-फाड़ कर फेंक देना पड़ेगा और नंगे आदमी को देखना पड़ेगा जैसा वह है। नहीं, कोई आदर्श नहीं थोपना है, मनुष्य को कुछ भी होने की कोशिश नहीं करनी है, मनुष्य जो है उसी को जान लेना है। अगर वह क्रोध है तो क्रोध, अगर वह घृणा है तो घृणा, हिंसा है तो हिंसा, वह जो भी है, काम है, वासना है, जो भी है, लोभ है, मोह है, जो भी है, उसे जान लेना है, उसे पहचान लेना है।
मैं एक नगर में था और एक संन्यासी वहां लोगों को समझा रहे थे। वे लोगों को समझा रहे थे कि तुम लोभ छोड़ दो तो तुम्हें स्वर्ग भी मिल सकता है। मैंने उन संन्यासी से कहा कि आप बड़े आश्चर्य की बात कह रहे हैं! आप लोगों को लोभ दे रहे हैं कि अगर स्वर्ग चाहिए हो तो लोभ छोड़ दो। आप उनको लोभ ही सिखा रहे हैं। उनसे कह रहे हैं कि लोभ छोड़ दो अगर स्वर्ग चाहिए हो। लोभ का मतलब क्या होता है? लोभ सदा कुछ छोड़ने को तैयार रहता है--कुछ मिलना चाहिए छोड़ने के लिए सदा तैयार रहता है।
एक आदमी दिन भर सब तरह के दुख झेल रहा है। सो नहीं रहा है, चिंताएं झेल रहा है, क्योंकि उसे धन चाहिए। उसे हम कहते हैं लोभी।
एक दूसरा आदमी धन छोड़ रहा है, क्योंकि उसे स्वर्ग चाहिए। उसे हम कहते हैं त्यागी।
दोनों में कोई फर्क नहीं है। सब लोभी कुछ न कुछ छोड़ने को तैयार हैं, उन्हें कुछ मिलना चाहिए। लेकिन जो स्वर्ग के लिए धन छोड़ रहा है उसे अगर आज पता चल जाए कि अब कानून बदल गया, अब धन छोड़ने से स्वर्ग नहीं मिलता, फिर वह धन छोड़ेगा?
हिंदुस्तान से एक फकीर चीन गया था, कोई अठारह सौ वर्ष होते हैं। बोधिधर्म नाम का एक फकीर चीन गया था। उसके पहले बहुत से बौद्ध भिक्षु चीन गए थे। उन्होंने जाकर चीन के सम्राटों को, बड़े धनपतियों को सिखाया था कि अगर मोक्ष चाहिए, स्वर्ग चाहिए, इतना दान करो, इतना दान करो।
संन्यासी सदा से दान की बात समझाता रहा है, क्योंकि उसके बिना संन्यासी जिंदा नहीं रह सकता। संन्यासी सुबह से शाम तक दान के गुणगान करता है, क्योंकि दान उसकी जिंदगी का आधार है। और पुण्य के लोभी दान करने

के लिए तैयार हो जाते हैं, क्योंकि लोभियों के लिए और बड़े लोभ की आकांक्षा बड़ी प्रेरक हो जाती है।
जो भिक्षु गए थे उन्होंने लोगों को समझाया था कि दान करो, दान करो। सम्राट था वू चीन का, तो उसने भी करोड़ों रुपये दान किए। फिर यह बोधिधर्म आया तो खबर फैली कि एक बहुत बड़ा संन्यासी आता है, तो सम्राट वू उसका स्वागत करने गया। उसने चरण छुए। तो बोधिधर्म ने पूछा, पैर क्यों छूते हो?
ऐसा साधारणतः कोई संन्यासी पूछता नहीं, पैर आगे बढ़ा देता है। पैर क्यों छूते हो, यह पूछने की जरूरत ही नहीं होती। हम न छुएं तो जरूर संन्यासी की आंखें कहती हैं--पैर क्यों नहीं छूते हो? शायद ऊपर से न कहता हो, लेकिन आंखें कह देंगी, गेस्चर कह देगा, चेहरा कह देगा--अभी तक पैर नहीं छुए!
बोधिधर्म ने कहा कि पैर क्यों छूते हो?
उस सम्राट ने कहा, मैंने सुना है कि पैर छूने से बड़ा पुण्य होता है।
वह बोधिधर्म खूब हंसने लगा और उसने कहा, पैर भी छूने में लोभ न छोड़ोगे! बड़ी कृपा की मेरे ऊपर कि तुमने मेरे पैर छुए। और तुम्हें पुण्य मिल जाएगा, तो मेरा क्या होगा--बोधिधर्म ने कहा--जब पैर छूने वाले को पुण्य हो गया तो जिसने छुलाया उसको पाप लग जाएगा। मैं नाहक नरक जाने को तैयार नहीं हूं। अपना पैर छूना वापस लो!
सम्राट वू बहुत हैरान हो गया। उसने कहा, आप आदमी कैसे हैं! मैंने बहुत भिक्षु देखे, सभी पैर छुलाने में बड़े प्रसन्न होते हैं। वे भी प्रसन्न होते हैं, हम भी प्रसन्न होते हैं।
फिर उस सम्राट वू ने सोचाः इससे पूछ लेना चाहिए। उसने कहा, मैंने करोड़ों रुपये दान किए हैं, विहार बनवाए, मंदिर बनवाए, लाखों भिक्षुओं को भोजन देता हूं, शास्त्र छपवाए, इस सबसे क्या होगा? उस बोधिधर्म ने कहा, कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं होगा। सम्राट वू ने कहा, आप आदमी ठीक नहीं मालूम पड़ते। सभी भिक्षु कहते हैं--बहुत कुछ होगा। बोधिधर्म ने कहा, अगर भिक्षु न कहें, तो मूढ़मति, तुझसे वे यह सब करवा भी न पाएंगे। वे तुझसे करवा लेते हैं। तू लोभी है। अब तुझे संसार छूटने के करीब आने लगा, बूढ़ा होने लगा, तो अब तू स्वर्ग में भी सम्राट बनने की इच्छा से भरा हुआ है। इधर के महल छूट रहे हैं, तू वहां भी महल बना लेना चाहता है। तेरे लोभ का शोषण चल रहा है। ये भिक्षु तेरे लोभ का शोषण कर रहे हैं। कुछ भी नहीं होगा तेरे मंदिर बनवाने से और तेरे ग्रंथ छपवाने से और तेरे भिक्षुओं को दान करने से। उसने कहा, लेकिन मैं इतना लोभ छोड़ रहा हूं, इतना धन छोड़ रहा हूं। कुछ भी न होगा?
कौन उसे समझाए कि तू लोभ भी लोभ के लिए ही छोड़ रहा है। तब छोड़ना कुछ भी नहीं है, छूट कुछ भी नहीं रहा है।
जो मनुष्य हमने आज तक निर्मित किया था, वह हिंसक है, अहिंसक होने की कोशिश कर रहा है। लोभी है, निर्लोभी होने की कोशिश कर रहा है। कामी है, अकामी होने की कोशिश कर रहा है।
लेकिन सोचें थोड़ा, हिंसक अहिंसक कैसे हो सकता है? और अगर हिंसक, हिंसक रहते हुए अहिंसक होने की कोशिश करेगा, तो हिंसा ही तो कोशिश करेगी! और हिंसा और मजबूत होगी और अहिंसा की शक्ल में खड़ी हो जाएगी। और लोभी अगर अलोभी होने की कोशिश करेगा, तो लोभी ही तो कोशिश करेगा। और लोभी बिना लोभ के कोशिश ही नहीं कर सकता। और लोभ छोड़ेगा भी तो भी लोभ के लिए ही! वह नये लोभ निर्मित करेगा।
इसका मतलब क्या है? इसका क्या यह मतलब है कि कोई रास्ता नहीं, हिंसक अहिंसक नहीं हो सकता? मैं यह नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि हिंसक अहिंसक होने की कोशिश से अहिंसक नहीं हो सकता। हिंसक अगर अपनी हिंसा को पूरी तरह जान ले और पहचान ले और अपनी हिंसा के साथ जीने लगे, तो शायद हिंसा से छलांग लगा जाए और बाहर निकल जाए। क्योंकि ध्यान रहे, हिंसा दूसरे को बाद में दुख देती है, पहले अपने को दुख दे जाती है। क्रोध दूसरे को तो बाद में सताता है, पहले अपने को सता जाता है।
अगर मैं आप पर क्रोध करूं तो पहले तो मुझे क्रोध तैयार करना पड़े। पहले
तो मुझे क्रोध के फीवर में, बुखार में घुलना पड़े। क्रोध आसमान से एकदम

नहीं उतरता, भीतर फैक्ट्री पूरी जब तैयार करती है क्रोध को तब मैं आप पर कर पाता हूं। आप पर क्रोध करने के लिए घंटों पहले मुझे मेहनत करनी पड़ती है, मुझे तैयारी करनी पड़ती है, तब मैं आप पर क्रोध कर पाता हूं। और फिर भी हो सकता है कि अगर आप बुद्धिमान हों तो मेरा क्रोध आपको जरा भी दुख न पहुंचा पाए, लेकिन मैं तो दुखी हो ही जाऊंगा।
दूसरे के क्रोध से हम बच सकते हैं, लेकिन वह खुद कैसे बचेगा? दूसरे की हिंसा, हो सकता है हमें बिल्कुल न छू पाए, लेकिन वह खुद कैसे बचेगा? असल में जो दूसरे को जहर देने जाता है, उसे पहले जहर पी लेना पड़ता है। इसके बिना जहर दिया नहीं जा सकता।
तो अगर हम अपनी हिंसा को पूरी तरह पहचान पाएं... और वह हम तभी पहचान पाएंगे जब अहिंसा परमो धर्मः का सिद्धांत और आदर्श हमारी खोपड़ी में न घूमता हो। नहीं तो वह हमें बचा लेगा, वह हमें हिंसा से बचा लेगा, वह हमसे कहेगा--कहां की बातों में पड़े हो, अहिंसक होने की कोशिश करो! पानी छान कर पीयो!
और ध्यान रहे, कोई आदमी अगर पानी छान कर पीए तो उससे जरा सावधान हो जाना, क्योंकि वह आदमी को बिना छाने पी सकता है। उससे थोड़ा बच कर रहना! क्योंकि वह आदमी बड़ी सस्ती अहिंसा की खोज कर रहा है, पानी छान कर पीने से अहिंसक हो रहा है। और अपने भीतर की सारी हिंसा से सोच रहा कि बच गया मैं; पानी छान कर पीने लगा हूं।
मेरे पास अहिंसक आते हैं। वे कहते हैं, हम पानी छान कर पीते हैं, हम रात भोजन नहीं करते, हम अहिंसक हैं।
इतनी सस्ती अहिंसा अगर होती तब तो बहुत दुनिया बदल गई होती, हमने नये समाज को जन्म दे दिया होता। अहिंसा इतनी सस्ती नहीं है। क्योंकि हिंसा बहुत गहरी है, पानी छान कर पीने से नहीं मिटने वाली है; रात भोजन करने न करने से नहीं मिटने वाली है। ये धोखे हैं जो हम अपनी हिंसा को छिपाने के लिए कर रहे हैं। और फिर हमको ख्याल हो जाएगा कि हम अहिंसक हो गए हैं, फिर तो बात ही खत्म हो गई। घर में आग लगी रहेगी और हम समझेंगे कि फूल बरस रहे हैं; नहीं, ये आग की लपटें नहीं, टेसू के फूल खिले हैं।
अहिंसा के आदर्श से छुटकारा चाहिए। अगर कभी जिंदगी में अहिंसा का फूल खिलाना हो तो अहिंसा के आदर्श की बिल्कुल जरूरत नहीं है। ध्यान रहे, अहिंसा हिंसा के विरोध में नहीं है, अहिंसा हिंसा का अभाव है, एब्सेंस है, विरोधी नहीं है। ऐसा नहीं है कि हिंसा के खिलाफ आप अहिंसक हो जाएंगे। ऐसा है कि जिस दिन आप हिंसा से छलांग लगा कर बाहर हो जाएंगे, उस दिन जो शेष रह जाएगा वह अहिंसा होगी। अहिंसा आदर्श की तरह नहीं पाई जा सकती; अहिंसा तो हिंसा से छलांग लगा कर पाई जाती है।
नहीं, ऐसा नहीं है कि मेरे घर के बाहर फूल खिले हैं, उनको पाने के लिए मैं घर के बाहर निकल जाऊंगा। नहीं निकल सकता! मेरे घर में सोना है, चांदी है, हीरे-जवाहरात हैं। उनको पकड़े बैठा हूं तो बाहर कैसे जाऊं? मैं बाहर जाऊंगा तो हीरे-जवाहरात का क्या होगा? मेरे पत्थरों का क्या होगा?
नहीं, जिस दिन मुझे ये हीरे-जवाहरात जहर मालूम पड़ेंगे और मैं घर से छलांग लगा कर बाहर कूद पडूंगा और कहूंगा कि अब इस घर के भीतर जीना एक क्षण भी संभव नहीं रहा, उस क्षण मैं बाहर देखूंगा कि सूरज खिला है, फूल खिले हैं। वे मुझे मिल जाएंगे।
अहिंसा प्रतीक्षा कर रही है आपकी, आप हिंसा के घर से छलांग लगाएं।
लेकिन आप कहते हैंः रहेंगे इसी घर में, अहिंसा साध लेंगे। कौन जाए बाहर! यहीं साध लेंगे, इसी घर में साध लेंगे, हिंसक रहते-रहते अहिंसा भी साध लेंगे--ग्रेजुअल। सब आदर्श मनुष्य को यह भ्रम देते हैं कि जिंदगी में क्रमिक परिवर्तन हो सकता है।
क्रमिक परिवर्तन जिंदगी में कभी भी नहीं होता। सब आदर्श यह कहते हैं
कि धीरे-धीरे हिंसा को छोड़ो, धीरे-धीरे अहिंसक हो जाओ। मैं आपसे कहना चाहता हूंः इस क्रमिक विकास के ख्याल ने ही नये मनुष्य को पैदा नहीं होने दिया। नया मनुष्य एक छलांग है, जंप। नया मनुष्य पुराने मनुष्य का धीरे- धीरे नया होना नहीं है। नया मनुष्य पुराने मनुष्य की खोल के बाहर छलांग है। वह पुराने मनुष्य का रूपांतरण नहीं है, कि पुराना मनुष्य धीरे-धीरे

कोशिश करके नया हो गया। अगर पुराना मनुष्य कोशिश करके नया होगा तो पुराना ही रहेगा--मॉडीफाइड, थोड़ा-बहुत बदल जाएगा, रंग-रोगन कर लेगा, कपड़े बदल लेगा, मकान को ठोंक टीम-टाम कर लेगा--रहेगा पुराना ही।
नया मनुष्य एक छलांग है। और छलांग ग्रेजुअल नहीं होती, क्रमिक नहीं होती। कोई हिंसक धीरे-धीरे अहिंसक नहीं हो सकता; और कोई लोभी धीरे-धीरे अलोभी नहीं हो सकता; और कोई क्रोधी धीरे-धीरे अक्रोधी नहीं हो सकता; कोई अशांत व्यक्ति धीरे-धीरे शांत नहीं हो सकता।
असल में करना कुछ और है और हम कुछ और करते रहे हैं। करना यह नहीं है कि मैं शांत होने की तलाश करूं, करना यह है कि मैं अपनी अशांति को खोजूं कि मैं कितना अशांत हूं। हम छिपाए हुए हैं, हम अपनी अशांति खुद से भी छिपाए हुए हैं। डर लगता है कि अपनी ही अशांति कहीं पूरी पता चल जाए तो भी बड़ी मुश्किल हो जाए। हम उसे छिपाए हुए हैं। हम दूसरों के सामने ही झूठे चेहरे नहीं बनाए हैं, अपने सामने भी हमने झूठे चेहरे बना लिए हैं। हम अपने भीतर देखते ही नहीं कि वहां कितनी आग है, कितना जहर है। हम डरते भी हैं कि कहीं वह दिखाई पड़ जाए तो और मुश्किल न हो जाए। हमारी हालत ऐसी ही है जैसे किसी बड़े खाई-खंदक के ऊपर आपको खड़ा कर दिया जाए और आप डर के मारे आंखें बंद कर लें कि कहीं खंदक दिखाई न पड़ जाए। लेकिन ध्यान रहे, बंद आंखों में गिरने की संभावना ज्यादा है, खुली आंखों में बचने की संभावना ज्यादा है।
आंख खोल कर देखना ही पड़ेगा कि भीतर मेरे क्या है? हिंसा है?
है! झूठ कहते हैं लोग कि भीतर ब्रह्म बैठा हुआ है। झूठ कहते हैं लोग कि भीतर मोक्ष बैठा हुआ है। भीतर पूरा नरक है। हां, उस नरक से छलांग लग जाए तो जहां आप पहुंच जाएंगे वहां मोक्ष है। उस नरक से छलांग लग जाए तो जहां आप पहुंच जाएंगे वहां अमृत है। लेकिन वहां से छलांग तब लगेगी जब दिखाई पड़ जाए कि चारों तरफ जहर है, इसमें खड़े होने की जगह नहीं है, यह जगह खड़े होने के योग्य नहीं है, यहां एक क्षण नहीं जीया जा सकता--जिस दिन इतनी इंटेनसिटी से, इतनी तीव्रता से लगता है, उसी दिन छलांग लग जाती है।
आदर्श छलांग नहीं लगने देते, क्रमिक विकास का ख्याल छलांग नहीं लगने देता। इसलिए पुराना आदमी पुराना ही बना रहता है। मॉडीफाइड होता चला जाता है। उसी को हम थोड़े हेर-फेर कर लेते हैं। कुछ फर्क नहीं हुआ है, आदमी वहीं के वहीं है जहां दस हजार साल पहले था। सड़कें बदल गई हैं, मकान बदल गए हैं, कपड़े बदल गए हैं, लेकिन और कुछ भी नहीं बदला है, आदमी वही का वही है। महावीर हार गए, बुद्ध हार गए, जीसस, कृष्ण, सब हार गए, कुछ फर्क नहीं हुआ है, आदमी वहीं के वहीं है। एक बुनियादी भूल हुई जा रही है इसलिए उन सबको हारना पड़ा। और आगे भी कृष्ण हारेंगे, आगे भी जीसस हारेंगे, आगे भी बुद्ध और महावीर की हार निश्चित है, अगर वह भूल हमारे ख्याल में नहीं आ जाती।
और वह भूल, पहला सूत्र--आदर्श।
उस भूल का दूसरा सूत्र--आदमी जिंदगी को बड़ी गंभीरता से लेता रहा है, बहुत सीरियसली।
कृष्णमूर्ति लोगों से कहते हैं बहुत गंभीर होने के लिए, टु बी सीरियस; एकदम गंभीर होना चाहिए; तो ही सत्य मिल सकता है। जितने ज्यादा गंभीर होओगे उतने ही जल्दी सत्य मिल सकता है।
और मैं आपसे कहना चाहता हूंः गंभीरता रोग है। जो गंभीर होगा उसकी छाती पर पत्थर भर रख जाएंगे, सत्य नहीं मिलेगा। और जो गंभीर होगा उसके सिर पर बोझ रख जाएगा, सत्य नहीं मिलेगा। असल में गंभीर होना मरने की तरकीब हो सकती है, जिंदगी को जानने की नहीं। जिंदगी को तो वे जान पाते हैं जो जिंदगी को खेल की तरह लेते हैं, गंभीर नहीं। जस्ट ए प्ले, एक खेल, इससे ज्यादा नहीं। लेकिन हम तो बहुत अजीब लोग हैं! हम तो खेल तक को गंभीरता से लेते हैं।
मैं एक घर में अभी मेहमान था। रात लौटा तो घर के बच्चे मोनोपॉली खेल रहे थे, व्यापार खेल रहे थे। बच्चे हैं, बूढ़े भी व्यापार खेलते हैं, तो बच्चे खेलते हों तो हर्ज क्या है। मैं जब पहुंचा तो बड़ा तेज तनाव था वहां, किसी ने किसी का स्टेशन चालबाजी से ले लिया था।

अब बड़े-बड़े ले रहे हैं स्टेशन चालबाजियों से तो छोटों की क्या! बड़ा तनाव था, बड़ा झगड़ा था, एक-दूसरे पर लांछन लगाया जा रहा था, बच्चे बड़े नाराज थे।
मैं जब वहां पहुंचा तो मुझे देख कर वे थोड़े सहम गए, फिर कोई हंसा, फिर दूसरा हंसने लगा। मैंने कहा, बात क्या है? तुम बड़े क्रोध में थे, तुम बड़े नाराज थे, तुम हंसने क्यों लगे? उन्होंने कहा कि आप आए तो हमें ख्याल आया कि अरे, खेल में और इतने परेशान हुए जा रहे हैं! फिर उन्होंने वे सब स्टेशनें उलटा दीं और वह सब हिसाब-किताब, मकान और वह सब गिर गए और उन्होंने सब बंद करके जल्दी से डब्बा बंद कर दिया। मैंने उनसे कहा, इतनी जल्दी? तुम इतने नाराज थे, इतने परेशान थे, इतना धोखाधड़ी का इल्जाम लगा रहे थे। ऐसा लग रहा था कि कोई भारी झगड़ा हो गया है। उन्होंने कहा, नहीं, कुछ भी नहीं, हम बस खेल रहे थे।
बुद्ध ने कहा हैः एक सांझ कुछ बच्चे नदी की रेत पर खेल रहे हैं और घर बना रहे हैं। फिर किसी का--रेत का घर है, गिरने में देर कितनी लगती है--किसी का पैर लग जाता है तो किसी का घर गिर जाता है। फिर वे एक-दूसरे की गर्दन दबाते हैं, लड़ते हैं, चिल्लाते हैं, मारते हैं। और हर अपने घर की रक्षा करता है और कहता है--जरा सावधान निकलना! मेरे घर को मत गिरा देना! और वे सब अपना घर बना रहे हैं और बड़े गंभीर हैं। और एक-दूसरे से बड़ा घर बना रहे हैं, क्योंकि दूसरे से छोटा घर रह जाए तो दिल को बड़ा दुख होता है। हालांकि रेत के घर बना रहे हैं। सभी घर रेत के हैं, चाहे कितनी ही सीमेंट मिलाओ तब भी रेत के हैं, और सीमेंट भी रेत ही है। पर वे रेत के घर बना रहे हैं, खेल रहे हैं, झगड़ रहे हैं।
फिर सांझ हो गई। और बुद्ध कहते थे कि मैं उस रास्ते से निकल रहा था। फिर उनकी मां ने आवाज लगाई कि बेटो, अब घर लौट आओ, सूरज ढलने के करीब हो गया। फिर वे सब हंसते हुए लौटने लगे। बुद्ध उनके पास खड़े थे। फिर वे बच्चे जिन्होंने घर बनाए थे, अपने ही घरों को लात मार कर गिरा दिए, कूदे-फांदे और लौटने लगे।
बुद्ध ने उनसे पूछा, यह क्या करते हो? जिन घरों के लिए लड़ते थे उनको ही लात मार कर चल देते हो! तो उन बच्चों ने कहा, मां की आवाज आ गई, और सांझ हो गई, और खेल खत्म हुआ।
सांझ तो हमारी भी आती है, खेल हमारा भी खत्म होता है, मां की आवाज हमें
भी सुनाई पड़ती है। लेकिन नहीं, गंभीरता नहीं जाती; गंभीरता अटकी रह जाती है। खेल नहीं मालूम होता, मरते-मरते दम तक खेल नहीं मालूम पड़ता है। जिंदगी एक खेल है। और अब तक मनुष्यता के ऊपर एक पत्थर बैठ गया है छाती
पर जो कह रहा हैः जिंदगी एक गंभीरता है। बड़ी गंभीरता से जीना। एक-एक कदम सम्हाल कर रखना। यह कोई खेल नहीं है। यह जिंदगी है, तलवार की धार है, बड़े सम्हल कर चलना। नहीं तो भटक जाओगे, नहीं तो गिर जाओगे। इन सारे उपदेशकों ने मिल कर मनुष्य को इतना गंभीर कर दिया है, इतना उदास, इतना भारी कि उसकी उड़ने की क्षमता ही खो गई, उसके पंख ही कट गए। और जिंदगी में अगर पंख कट जाएं, उड़ने की क्षमता कट जाए और अगर जिंदगी को खेल की तरह लेने की हिम्मत छूट जाए, तो फिर नये आदमी का जन्म नहीं हो सकता।
क्या आपको पता है बूढ़े और बच्चे में फर्क क्या होता है?
बच्चा नया होता है, बूढ़ा पुराना हो गया होता है। और बूढ़ा इसलिए पुराना
हो गया होता है कि जितना गंभीर होता जाता है, खेल को जितनी गंभीरता से लेने लगता है, उतना बूढ़ा होता चला जाता है। बच्चे जिंदगी को भी खेल लेते हैं और बूढ़े खेल को भी जिंदगी लेने लगते हैं। छोटे बच्चों में जो ताजगी है, जो नयापन है, वह खो क्यों जाता है? वह ताजगी कहां चली जाती है?
कभी आपने ख्याल किया--पता नहीं किया हो, न किया हो--बच्चे कोई भी कुरूप नहीं होते। छोटे सभी बच्चे सुंदर क्यों मालूम पड़ते हैं? फिर बड़े होकर इतने सुंदर लोग दिखाई नहीं पड़ते। क्या हो जाता है? बच्चे सभी सुंदर मालूम पड़ते हैं, फिर सभी ये बच्चे बड़े होते-होते फिर सभी सुंदर क्यों नहीं रह जाते? फिर ये सब कहां खो जाते हैं? इतने सुंदर बच्चे पैदा होते हैं, इतने सुंदर बूढ़े क्यों नहीं दिखाई पड़ते? क्या हो जाता है?

गंभीरता सौंदर्य को नष्ट कर देती है। गंभीरता पत्थर की खरोंचें डाल देती है चेहरे पर। गंभीरता घाव बना देती है। जिंदगी फिर एक फूल नहीं रह जाती, एक कांटा हो जाती है।
नये आदमी को पैदा करना हो तो आदमी की गंभीरता छीन लेनी पड़ेगी। और अगर बुद्ध की मूर्ति न हंसती हो, तो नयी मूर्ति ढालनी पड़ेगी जिसमें बुद्ध हंसते हुए हों। और अगर जीसस उदास मालूम पड़ते हों, तो नये चित्रकार खोजने पड़ेंगे और कहना पड़ेगा, बदलो ये चित्र! हंसता हुआ जीसस चाहिए।
आदमी को अब तक हंसता हुआ धर्म नहीं मिल सका। हंसता हुआ, नाचता हुआ धर्म नहीं मिल सका। उदास, गंभीर, बूढ़ा। उसने आदमी को बूढ़ा कर दिया, उदास कर दिया, गंभीर कर दिया। आदमी एक कब्र बन गया--उदासी की कब्र, जिसमें सब बंद है। जिसमें कभी बांसुरी नहीं बजती और कभी गीत नहीं फूटता। और हम बचपन से जो बूढ़े, उदास, जो पहले से कब्रों में बंद हो गए हैं, वे छोटे बच्चों पर बड़े नाराज होते हैं। वे उनको जल्दी से कहते हैं, जल्दी-जल्दी अपनी-अपनी कब्रें खोज लो और उसमें बंद हो जाओ। शोरगुल मत करो, हंसो मत, जोर से मत बोलो, नाचो मत, कूदो मत--बंद हो जाओ, अपनी-अपनी कब्रें खोज लो। जैसे जिंदगी सिर्फ कब्र खोजने का एक लंबा उपक्रम है, जिसने कब्र पा ली वह धन्य है। हम बच्चों को डांट रहे हैं। हम बच्चों को, इसके पहले कि उनकी जिंदगी की किरण फूटे, उनको मार डालेंगे।
अगर नये आदमी को पैदा होना है तो हमें ध्यान रखना पड़ेगा कि आदमी से उदासी छीन लेने की जरूरत है। गंभीरता की कोई भी जरूरत नहीं है।
लेकिन हमारे सब महात्मा गंभीर होते हैं। असल में रोती हुई शक्ल लेकर पैदा होना महात्मा होने के लिए बिल्कुल जरूरी क्वालीफिकेशन है। वह योग्यता है। अगर वह न हो, तो आप और कुछ भी हो जाएं, आप महात्मा नहीं हो सकते।
हंसता हुआ महात्मा हो सकता है आदमी? प्रसन्न, आनंदित, नाचता हुआ? नहीं-नहीं, ऐसा आदमी महात्मा नहीं हो सकता। ऐसे आदमी का महात्मा होना बहुत मुश्किल है। क्योंकि हम सब जो दुखी लोग हैं, हम उदासी की पूजा करते हैं, सफरिंग की पूजा करते हैं। जितना उदास चेहरा हो उतना हमें गंभीर और गहरा मालूम पड़ता है।
ध्यान रहे, उदास चेहरा गंभीर नहीं होता, सिर्फ उथला होता है। मरा हुआ होता है, बासा होता है, जिंदा नहीं होता। जिंदगी के संबंध में सूत्र बड़े अदभुत हैं। जिंदगी जितनी गहरी होती है उतने ताजे झरने उसमें फूटते रहते हैं। जिंदगी जितनी गहरी होती है उतनी दूर से जड़ें नयी सुवास ले आती हैं। जिंदगी जितनी गहरी और आनंदित और प्रसन्न होती है, वह उतनी ही चारों तरफ, उतनी ही सब ओर कृतार्थता को, धन्यता को अनुभव करने लगती है।
धार्मिक आदमी का एक ही लक्षण है कि वह इतना आनंदित हो कि अपने आनंद के कारण परमात्मा को धन्यवाद दे सके।
उदास आदमी परमात्मा को धन्यवाद नहीं दे सकता, सिर्फ शिकायत कर सकता है। और अगर हमारे महात्माओं को कभी परमात्मा मिल जाता हो--जैसा कि होता नहीं, हो भी नहीं सकता, क्योंकि ऐसे उदास महात्माओं से परमात्मा भी भागता रहता होगा, बचता रहता होगा--अगर कहीं इनको मिल जाता होगा तो ये पकड़ कर फौरन अपनी शिकायतों की पूरी कहानी उससे कहते होंगे। और परमात्मा अगर इन्हें हंसता मालूम होता होगा तो इन्हें बड़ी पीड़ा होती होगी कि कैसा यह परमात्मा है जो हंस रहा है!
मैं छोटा था तो मेरे गांव में रामलीला होती थी। उस रामलीला में राम बड़े गंभीर होकर बड़े काम करते थे। उसमें रावण होता था, और उसमें सारी कहानी चलती थी। मैं पहली दफा जब रामलीला देखता था तो मुझे सबसे ज्यादा ख्याल यह आता था कि ये सब पीछे से आते हैं स्टेज पर, फिर पीछे चले जाते हैं, पता नहीं पीछे क्या करते हैं? पीछे क्या होता है? स्टेज के पीछे क्या होता है?
तो मैंने दो-चार बार अपने बड़े लोगों से पूछा, स्टेज के पीछे क्या होता है?
उन्होंने कहा, स्टेज के पीछे की फिकर छोड़ो, तुम सामने देखो। तुम्हें स्टेज के पीछे से क्या मतलब है? हम रामलीला देखने आए, हमें स्टेज के पीछे से क्या मतलब है?

फिर मैंने देखा कि वे जवाब न देंगे। असल में उन्हें भी स्टेज के पीछे
का पता न होगा। स्टेज के पीछे का किसको पता है? स्टेज के पीछे का किसी को पता नहीं कि पीछे क्या होता है। राम जहां से आते हैं, रावण जहां से आते हैं, वहां का किसको पता है? पीछे क्या होता है, किसी को पता नहीं। तो फिर मैंने सोचा--इनकी फिकर छोड़ो। बड़े-बूढ़ों की कब तक फिकर करेंगे! नहीं तो हम भी बड़े- बूढ़े हो जाएंगे और छोटे बच्चों को समझाने लगेंगे कि तुम्हें क्या मतलब है स्टेज के पीछे से! तुम स्टेज के सामने देखो, जहां हम देखने आए हैं।
मैंने उनका साथ छोड़ा और भाग कर मैं पीछे गया और मैंने जाकर पर्दा उठा
कर अंदर झांक कर देखा। मैं दंग रह गया! फिर उस दिन से मैंने रामलीला नहीं देखी। उस दिन से बात ही खत्म हो गई। मैंने वहां देखा कि रामचंद्र जी सिगरेट पी रहे हैं और रावण जो हैं वह सिगरेट जला रहे हैं। तो फिर मैं घर लौट आया और मैंने सोचा कि जब इस रामलीला के पर्दे के पीछे ऐसा हो रहा है तो असली रामलीला के पर्दे के पीछे भी कौन जानता है!
यह सब गंभीरता, यह सब पर्दे के बाहर है। जिंदगी पीछे कुछ और है। अगर परमात्मा कहीं भी है तो मैं सोच भी नहीं पाता कि वह उदास होगा। और अगर परमात्मा भी उदास होगा तो फिर हंसेगा कौन? मैं सोच भी नहीं पाता कि परमात्मा भी गंभीर होगा। अगर वह गंभीर होता तो इस संसार का कभी का उसने अंत कर दिया होता। क्योंकि सब महात्मा इसका अंत करने के लिए बड़े आतुर हैं। वे कहते हैं, आवागमन से छुटकारा मांगो। सारे महात्माओं की एक ही शिकायत है कि संसार क्यों बनाया भगवान! बहुत मुसीबत तुमने की। किसी तरह इसको मिटाओ, किसी तरह हमको वापस बुलाओ, हम नहीं चाहते यह। सारे महात्मा एक ही खोज में लगे हैं कि यह संसार कैसे मिट जाए!
तो निश्चित ही परमात्मा उदास नहीं हो सकता। वह अभी खेल से थका भी नहीं है। वह खेल को जारी रखे है। वह रोज नया खेल बनाए चला जा रहा है। वह खेलने में बड़ा रसलीन मालूम होता है। और ऊबता भी नहीं है; ऊबता भी नहीं है।
एक बूढ़े चित्रकार से मैं मिलने गया था। वे बूढ़े हो गए हैं। और मैंने उनसे कहा, अब आप चित्र नहीं बना रहे हैं? उन्होंने कहा, अब मैं ऊब गया। बहुत चित्र मैंने बनाए, थक गया, अब क्या बनाऊं बार-बार! आदमी बनाए, वृक्ष बनाए, नदी-पहाड़ बनाए, अब मैं थक गया। मैंने कहा कि तुम बड़े जल्दी थक गए। और भगवान कितने दिन से वृक्ष बना रहा है, आदमी बना रहा है, नदी-पहाड़ बना रहा है, अभी तक नहीं थका! अदभुत है उसकी क्षमता! थकता ही नहीं। उदास होता तो कभी का थक गया होता, बोरडम हो गई होती, ऊब गया होता। कहता--बंद करो सब अब, अब नहीं चलाना इसे। लेकिन जिंदगी में उसे रस है और जिंदगी को सृजन करने की उसकी क्षमता अनंत है।
नहीं, परमात्मा उदास नहीं है, आदमी उदास है। और आदमी उदास है गंभीरता
के कारण। जिंदगी को उसने एक काम बना लिया है, एक खेल नहीं। हम हर चीज को काम में बदलने में इतने कुशल हैं कि हम खेल को भी काम में बदल लेते हैं।
अभी मैं एक घर में मेहमान था। शाम को पांच बजे तो वे अपना बल्ला उठा कर खेलने जा रहे थे। तो उनकी पत्नी ने कहा, अब आज न जाइए। मैं तो बाथरूम में था, मैंने सुना। उनकी पत्नी ने कहा, आज न जाइए। उन्होंने कहा कि यह कैसे हो सकता है! मेरा रोज खेलने जाने का समय हो गया!
खेलने जा रहे हैं, उसमें भी रोज का समय हो गया। वह भी एक रूटीन है। उन्होंने कहा, घबरा मत, मैं अभी जल्दी आता हूं। लेकिन जाना तो पड़ेगा ही।
आदमी पूजा को भी काम बना लेता है। अगर उसे जल्दी अदालत जाना है, तो घंटी जरा जोर से हिला कर जल्दी हिला देगा। वह भी एक काम है। जिंदगी में हमने सब काम बना लिए हैं। प्रेम भी एक काम है। पति रोज अपनी पत्नी से प्रेम की कुछ बातें कह लेता है, जो कहनी चाहिए वह कह देता है। पत्नी भी सुन लेती है जो सुननी चाहिए। और दोनों जानते हैं कि सिर्फ काम पूरा हो रहा है, यहां कहीं कुछ और नहीं हो रहा। बाप बेटे का सिर सहला देता है और बेटा भी अच्छे से जानता है कि यह सिर्फ काम है जो सुबह बाप रोज करता है। लेकिन यह दफ्तर से जाने के पहले की रूटीन है।
हमने पूरी जिंदगी को काम बना लिया है। जिंदगी में कहीं भी कोई खेल नहीं है। अगर बेटा अपनी मां के पैर दबा रहा है तो भी वह कहता है कि यह मेरा

उत्तरदायित्व है, मेरी रिस्पांसबिलिटी है। मेरी मां है इसलिए मैं पैर दबा रहा हूं। मां के पैर दबाना भी एक काम है। पूरी जिंदगी काम है। आदमी ने सारी जिंदगी को गंभीरता से लिया है। गंभीरता ने खेल को काम बना दिया। और अगर हम इससे उलटा ले सकें तो फिर काम भी खेल हो जाता है।
कबीर कपड़ा बुनते ही रहे। जिंदगी बदल गई; क्रांति हो गई; कपड़ा बुनते ही रहे। लोगों ने कहा, अब कपड़ा बुनना बंद कर दें, अब आपको काम की कोई जरूरत नहीं। कबीर ने कहा, अब मैं काम कर ही नहीं रहा; अब मैं खेल खेल रहा हूं। उन्होंने कहा, लेकिन कपड़ा तो आप बुन ही रहे हैं! उन्होंने कहा, सब बदल गया। पहले काम था--कपड़ा बुनना काम था--अब खेल है।
और लोगों ने देखा कि वे ठीक ही कहते थे। पहले भी वे कपड़ा बुनते थे, तो उदास इस कोने से उस कोने तक कपड़ा बुनते रहते थे। अब भी कपड़ा बुनते थे, लेकिन अब नाचते थे। पहले वे कपड़ा बना कर बाजार में बेचने जाते थे--उदास, पत्थर के बोझ से दबे हुए, भारी। अब भी वे जाते थे, लेकिन बगल में कपड़े दबाए हैं और भागते चले जा रहे हैं। और कोई पूछता कि कहां जा रहे हो? तो वे कहते कि राम आ गए होंगे बाजार में, उनका कपड़ा मैंने तैयार किया, उनको देने जाता हूं। और बाजार में खड़े होकर... अब ग्राहक नहीं रहे थे, अब सब राम हो गए थे। अब वे लोगों से, ग्राहक से मोल-तोल होता, तो वे कहते, राम, ज्यादा मत ठहरा। तुझे पता नहीं कि कितना नाच कर इसको बुना, कितनी मुश्किल पड़ी! ग्राहक चौंक कर देखता कि यह आदमी क्या कह रहा है? तो वे हंसने लगते। वे कहते कि ठीक ही कह रहा हूं राम! अब मेरे लिए कोई ग्राहक नहीं सिवाय उसके, वही ग्राहक है। हम हैं बेचने वाले और वह है खरीदने वाला। और अब हम अपने को भी बेचने के लिए तैयार हैं, जब उसकी मर्जी हो खरीद ले। तब... तब वह भी खेल हो गया।
जिंदगी खेल हो जानी चाहिए। धार्मिक आदमी के लिए जिंदगी एक खेल है और अधार्मिक आदमी के लिए खेल भी एक काम है। जिन्होंने यह सोचा कि जिंदगी को हम जितना गंभीर कर देंगे उतना आदमी अच्छा हो जाएगा, उन्होंने बड़ी बुनियादी भूल की है। गंभीर आदमी अच्छा आदमी नहीं हो सकता। अच्छा आदमी गंभीर नहीं हो सकता। गंभीरता रोग है, बीमारी है।
तो दूसरा सूत्र आपसे कहना चाहता हूं नये मनुष्य के जन्म के लिए और वह
यह है कि जिंदगी को एक लीला, एक खेल--जिंदगी को एक गंभीरता मत बना लेना। कितना ही बड़ा मकान बनाना, लेकिन जानना कि यह रेत का ही मकान है; सांझ हो जाएगी, गिरा कर चले जाएंगे। और कितना ही बड़ा काम करना, जानना कि सब रेत का खेल है और गिर जाएगा। और ऐसा मैं कहूं इसलिए नहीं, ऐसा जिंदगी को ठीक से देखेंगे तो आपको दिखाई पड़ जाएगा। कौन से मकान टिकते हैं? और क्या बचता है? मैं अभी एक गांव में मेहमान था। उस गांव में आज से नौ सौ साल पहले सत्रह लाख की आबादी थी। आज उसकी आबादी केवल नौ सौ है। गांव के मोटर स्टैंड पर जो तख्ती लगी है उस पर कुछ नौ सौ तीस या नौ सौ तैंतीस आबादी लिखी है। उस गांव की आज से नौ सौ साल पहले सत्रह लाख की आबादी थी। आज भी उस गांव में इतने-इतने बड़े खंडहर हैं धर्मशालाओं के जिनमें दस हजार आदमी इकट्ठे ठहर सकें। इतनी-इतनी बड़ी मस्जिदें हैं जिनमें दस हजार लोग इकट्ठी नमाज पढ़ सकें। इतने-इतने बड़े मंदिर हैं, मीलों तक फैले हुए खंडहर हैं।
मेरे साथ कुछ मित्र मेहमान थे। मैं तीन दिन तक वहां था। मैंने सोचा कि जरूर उनमें से कोई मुझसे कुछ कहेगा। लेकिन उनमें से किसी ने कुछ न कहा। उनमें से एक को भी यह ख्याल न आया कि ये सत्रह लाख लोग जहां रहते थे वहां आज सिर्फ मरघट है। और जिन लोगों ने बड़े-बड़े मकान बनाए थे वे सिर्फ अब खंडहर हैं।
नहीं, उन्होंने यह नहीं कहा। बल्कि उनमें से मेरे एक मित्र थे जो मुझसे कहने लगे कि मैंने मकान का एक नक्शा बनाया है, वह जरा आप देख लें, आप पसंद कर लें, एक मकान बनाना है। वह बगल में सत्रह लाख लोगों के मकान गिरे हैं! मैंने उनसे कहा, चलो जरा बाहर बैठ कर देखें, बाहर खुली हवा है। मैं उन्हें बाहर ले आया। लेकिन आदमी कैसा अंधा है! वे नक्शा फैला कर बैठ गए हैं। चारों तरफ खंडहर थे और वे कहने लगे, कैसा बनाना है, कैसा बनाएं, मजबूत कैसा बने! मैंने उनसे कहा, थोड़ा चारों तरफ तो देखो! उन्होंने कहा कि बहुत अच्छी सांझ है, आप जल्दी से नक्शा तो देख लें! नहीं तो रात उतरी जाती है, अंधेरा हुआ जाता है।

आदमी का अंधापन अदभुत है। खंडहर नहीं दिखाई पड़ते; मरघट नहीं दिखाई पड़ते; चारों तरफ बिछी हुई लाशें नहीं दिखाई पड़तीं। जिस जमीन पर भी हम बैठे हैं, वहीं कोई मरा है। ऐसा जमीन का हिस्सा नहीं जहां कोई मरा न हो, ऐसा जमीन का कोई हिस्सा नहीं जहां कोई दफनाया न गया हो। जहां आप सोते हैं, नीचे कोई और भी सोता है। वह बिल्कुल सदा के लिए सो गया है। लेकिन आप उसकी तरफ ध्यान नहीं देते।
जिंदगी को अगर हम गौर से देखेंगे तो खेल से ज्यादा क्या है? हां, यह हो सकता है कि बच्चों का खेल सुबह से शाम तक चला, हमारा खेल जन्म से मरने तक चलेगा। यह हो सकता है कि उनका खेल चार-छह घंटे में पूरा हो गया, हमारा खेल पचास-साठ-सत्तर साल लेगा।
एक छोटी सी कहानी, और आज की बात मैं पूरी करूंगा। और सूत्रों पर कल आपसे बात करनी है। मैंने सुना है कि एक जिज्ञासु एक प्रश्न बहुत से लोगों से पूछता फिरा कि इस जिंदगी का राज क्या है? लेकिन कोई बता न सका। वह पूछता रहा, पूछता रहा, पूछता रहा, कोई न बता सका। उसने शास्त्र पढ़े, वह गुरुओं को खोजा, लेकिन कहीं उत्तर न मिला और उसने अपना भी कोई उत्तर न बनाया। तब भगवान को उस पर दया आ गई और एक दिन वे उसके सामने खड़े हो गए और उन्होंने कहा, तू पूछ! तुझे पूछना क्या है?
अगर वह किसी गुरु की मान लेता तो फिर भगवान को आने की जरूरत न पड़ती। अगर वह किसी शास्त्र की मान लेता तो फिर भगवान की क्या जरूरत थी। अगर वह अपना ही कोई ईजाद कर लेता उत्तर तो भी भगवान की कोई जरूरत न थी। लेकिन वह आदमी अदभुत था! उसने किसी का न माना, उसे कुछ भी न जंचा, वह पूछता ही चला गया, पूछता ही चला गया। फिर पूछने को भी कोई न बचा, तब आखिर भगवान खड़ा हो गया। उसने कहा, तुझे पूछना था, तू पूछ ले!
उस आदमी ने कहा, मुझे ज्यादा कुछ नहीं पूछना, मुझे यह पूछना है--जिंदगी
का राज क्या है?
दोपहर की तेज और धूप बरसती थी। भगवान ने उससे कहा कि जिंदगी का राज थोड़ी देर से बता दूंगा, अभी तो मुझे बहुत प्यास लगी। देखता नहीं, कितनी जोर की धूप है। तू जरा एक गिलास पानी कहीं से ले आ।
वह युवा खोजी पानी लेने गया। वह गांव के भीतर गया। उसने जाकर एक द्वार
पर दस्तक दी। दोपहर थी, सन्नाटा था, सारे लोग सोए थे। एक सुंदर युवती ने द्वार खोला, उसका पिता बाहर था। वह युवक आया था कि पानी ले लेना है, लेकिन एक नयी प्यास जग गई। और दूसरे की प्यास से अपने को क्या मतलब! वह जो सामने सुंदर युवती खड़ी थी उसने एक नयी प्यास जगा दी। उस युवती ने पूछा, आप कैसे आए? उसने कहा, तुम्हारे लिए आया हूं। तुम्हारे लिए भटक रहा हूं। तुम्हें खोजता था। उसने कहा, आप मेरे लिए आए हैं? मुझे तो आप पहचानते भी नहीं! उसने कहा, पहचानता तो नहीं था, लेकिन किसी अनजाने कोने में मन में तुम्हारी ही तलाश थी। बस अब तुम मिल जाओ तो सब मिल जाए, अन्यथा सब खो गया। तब तक पिता लौट आया, युवक तो सुंदर था, युवा था, उसने शादी कर दी। वे दोनों रहने लगे। वह भगवान प्यासा खड़ा होगा धूप में, उसकी खबर भूल गई। जब अपनी प्यास जग जाए तो दूसरे की प्यास की खबर किसको रह जाती है!
फिर उनके बच्चे हो गए। फिर बच्चे बड़े हो गए। फिर शादी-विवाह हो गया बच्चों का। फिर बच्चों के भी बच्चे हो गए। फिर वह आदमी बिल्कुल बूढ़ा हो गया, वह मरने के करीब हो गया। तब गांव में जोर की बाढ़ आ गई। वर्षा आई और गांव की नदी पर पूर चढ़ा और चढ़ता ही चला गया और पूर नीचे न उतरा, सारा गांव डूबने लगा। वह अपनी पत्नी को, अपने बच्चों को, अपने बेटों को, अपनी बहुओं को, सबको--किस-किस को बचाए; बड़ी जोर का बहाव है, घर डूबा जाता है--वह सबको पकड़ कर बचा कर चलता है। बूढ़ा आदमी है, ताकत भी कम हो गई है। एक को बचाता है, दूसरा छूट जाता है। एक बच्चे को पकड़ता है तो लड़की छूट जाती है, लड़की को बचाने जाता है तो पत्नी छूट जाती है। आखिर में सब छूट जाते हैं, सबको बचाने की कोशिश में सब छूट जाते हैं। सबको बचाने की कोशिश में सिर्फ एक बच रहता है जिसको उसे बचाने का ख्याल ही न था। वह खुद ही बच रहता है। रोता है, चिल्लाता है, छाती पीटता है, बेहोश होकर जाकर किनारे पर गिर पड़ता है।
फिर उसे ख्याल आता है--कोई उसके सिर पर हाथ रख कर हिला रहा है और कह रहा है, उठो! आंख खोली है, वह भगवान खड़ा है, कहता है, कितनी देर लगा दी! हम

प्यासे ही बैठे हुए हैं, पानी नहीं लाए? वह आदमी कहता है, पानी! अभी इतनी बाढ़ थी, इतना पानी ही पानी था, वह कहां है? वह कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता। वह आदमी कहता है, यह हुआ क्या? कितने जमाने बीत गए! सत्तर साल होते होंगे जब मैं गया था छोड़ कर आपको। बूढ़ा हो गया, मरने के करीब हूं। मेरे बच्चे थे, पत्नी थी, बेटे थे, वे सब कहां हैं? बाढ़ थी, वह सब कहां है? वह भगवान कहता है, मुझे क्या पता? मैं प्यासा बैठा हूं। देखते नहीं सूरज, दोपहरी तेज है। पानी कहां है? पानी नहीं लाए!
वह जिज्ञासु पैरों पर सिर रख देता है और कहता है, राज मैं समझ गया, जिंदगी का राज मैं समझ गया, अब बताने की और कोशिश न करें।
जिंदगी एक खेल है और एक खेल जो सपने में खेला गया है। इसमें इतने गंभीर होने की जरूरत नहीं।
इस संबंध में जो भी प्रश्न हों वे सांझ। सुबह के जो प्रश्न हों वे सुबह।
आदमी नया चाहिए, तो नये समाज का जन्म हो सकता है। सारी क्रांतियां असफल गईं, क्योंकि क्रांतियों ने समाज पर ध्यान दिया, मनुष्य पर नहीं। वही क्रांति सफल हो सकती है जो मनुष्य को केंद्र में ले और मनुष्य के पुराने मन को तोड़ कर नया कर सके।
नया मनुष्य नये समाज की खोज का आधार है।
मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नये समाज की खोज
दूसरा प्रवचन

नये समाज का जन्मः सुख की नींव पर

मेरे प्रिय आत्मन्!
"नये समाज की खोज," इस संबंध में तीसरे सूत्र के बाबत पहले कुछ कहूंगा। पीछे आपके प्रश्नों के उत्तर दूंगा।
आज तक मनुष्य-जाति क्षणिक का विरोध करती रही है और शाश्वत को आमंत्रण देती रही है, क्षुद्र का विरोध करती रही है और विराट को पुकारती रही है। और जीवन का आश्चर्य यह है कि जो विराट है वह क्षुद्र में मौजूद है और जो शाश्वत है वह क्षणिक में निवास करता है। क्षणिक के विरोध ने क्षणिक को भी नष्ट कर दिया है और शाश्वत को भी निकट नहीं आने दिया है।
अमेजान नदी का नाम आपने सुना होगा, दुनिया की सबसे बड़ी नदी है, सबसे ज्यादा जलराशि है। लेकिन जहां से अमेजान निकलती है अगर वहां आप खड़े हो जाएं तो विश्वास न आएगा कि इस जगह से अमेजान निकलती होगी! जहां से अमेजान निकलती है वहां एक-एक बूंद पानी टपकता है पहाड़ी से। और एक-एक बूंद भी सतत नहीं टपकता। एक बूंद गिरती है, फिर बीस सेकेंड लगते हैं दूसरी बूंद के गिरने में। बीस सेकेंड के फासले पर फिर दूसरी बूंद गिरती है।
इस जरा सी खंदक में टपकते इस पानी को देख कर कोई सोच भी नहीं सकता कि विराट अमेजान का यह मूल स्रोत है। और कोई बुद्धिमान पहुंच जाए तो कहेगा-- बंद करो यह पानी का टपकना! इससे कहीं सागर बना है! लेकिन सब सागर बूंद-बूंद से बनते हैं।
लेकिन पुराने आदमी ने एक धारणा बना ली थी--और धारणा तर्कयुक्त मालूम पड़ती थी--कि अगर शाश्वत को, स्थायी को खोजना है, तो क्षणिक को छोड़ दो। क्षणिक सुख की दुश्मनी, ताकि हमें वह मिल सके जो शाश्वत है। क्षणिक खो गया, शाश्वत मिला नहीं, और मनुष्य की जिंदगी निरंतर दुख बन गई।
नये मनुष्य का सुख क्षणिक, क्षुद्रतम में भी विराट के, शाश्वत के दर्शन से शुरू हो सकता है। शाश्वत सुख नहीं है, सुख तो सब क्षणिक है। लेकिन जो क्षणिक सुख को जीने की कला सीख जाता है वह शाश्वत सुख में प्रवेश पा जाता है। जो प्रतिपल सुख में जीने की कला सीख जाता है वह धीरे-धीरे सुख की धारा और संगीत में बहने लगता है।
लेकिन हमने जो तर्क ईजाद किया था उसने हमें दुख में डुबा दिया है। एक-
एक चीज की निंदा कर डाली। सब इंद्रियों की निंदा कर दी। शरीर की निंदा की, भोजन की, वस्त्रों की, प्रेम की, मित्रता की, परिवार की, सबकी निंदा की। उस सबकी निंदा के बाद रूखा-सूखा आदमी शेष रह गया, जिसकी जिंदगी में कभी भी आनंद की कोई वर्षा नहीं होती। और इस आदमी को हमने नींव बनाया था समाज की। इस समाज और यह नींव एक ऐसी दुनिया बना दिए जो दुख से भरी है, जिसमें सुख की कोई खबर नहीं है।
आज तक का समाज दुख से भरा हुआ समाज है, उसकी ईंट ही दुख की है, उसकी बुनियाद ही दुख की है। और जब दुखी समाज होगा तो समाज में हिंसा होगी, क्योंकि दुखी आदमी हिंसा करेगा। और जब समाज दुखी होगा और जीवन दुखी होगा तो आदमी क्रोधी होगा, दुखी आदमी क्रोध करेगा। और जब जिंदगी उदास होगी, दुखी होगी, तो युद्ध होंगे, संघर्ष होंगे, घृणा होगी। दुख सब चीज का मूल उदगम है।
यदि नये समाज को जन्म देना हो तो दुख की ईंटों को हटा कर सुख की ईंटें रखनी जरूरी हैं। और वे ईंटें तभी रखी जा सकती हैं जब हम जीवन के सब सुखों को सहज स्वीकार कर लें और सब सुखों को सहज निमंत्रण दे सकें।
निश्चित ही, बूंद-बूंद सुख आते हैं; इकट्ठा सुख नहीं बरसता है। इकट्ठा पानी भी नहीं बरसता है; बूंद-बूंद सब बरस रहा है। उस बूंद-बूंद को स्वीकार कर लेना पड़ेगा। क्षण ही हमारे हाथ में आता है। एक क्षण से ज्यादा किसी के हाथ में नहीं है। उस क्षण में ही जीना है, उस क्षण में ही सुख को पूरा का पूरा पी लेना है। उस क्षण को खाली रिक्त जो छोड़ देगा और प्रतीक्षा करेगा

कि शाश्वत को पाएंगे हम--क्षण भी छूट जाएगा, शाश्वत भी नहीं मिलेगा। क्षण को पीने की कला, सुख-सृजन की कला है।
और हम सब क्षण-विरोधी हैं।
मैं एक संन्यासी के साथ एक बगीचे से गुजरता था। सुबह थी, और गुलाब के फूल खिल गए थे, और अभी उनकी पंखुड़ियों पर ओस की बूंदें चमकती थीं। मैंने उन संन्यासी को कहा, देखते हैं, फूल बहुत सुंदर हैं। उन्होंने कहा, क्या सौंदर्य है! अभी देर नहीं, थोड़ी देर में सब कुम्हला जाएंगी पंखुड़ियां और गिर जाएंगी। हम तो उस सौंदर्य के खोजी हैं जो कभी न मुरझाए।
उनकी लालसा तो बड़ी है। कभी न मुरझाने वाले फूल मिल सकते हैं--पत्थर के बनाने पड़ें! वैसे पत्थर के भी मुरझा जाएंगे। कभी न मुरझाने वाला सौंदर्य कहां है? कभी न मुरझाने वाला सुख कहां है? कभी न मुरझाने वाला प्रेम कहां है?
इस जगत में तो जो भी खिलता है सुबह वह शाम मुरझा जाता है। लेकिन हमने इसे इनकार कर दिया, हम इस फूल को न देखेंगे, हम उस फूल की तलाश में हैं जो कभी न मुरझाता हो। वह फूल कहीं भी नहीं है और इस फूल से हमने पीठ फेर ली। हमारी जिंदगी से फूल विदा हो गए, खुशी विदा हो गई, सौंदर्य विदा हो गया। और जब जिंदगी से खुशी और सौंदर्य और फूल विदा हो जाएं, तो ध्यान रखें, कांटे ही शेष रह जाते हैं, दुख ही शेष रह जाते हैं, आंसू ही शेष रह जाते हैं। आदमी सुखी हो सकता है अगर वह प्रतिपल, जो उसे मिल रहा है, उसे पूरे अनुग्रह से और पूरे आनंद से आलिंगन कर ले। सांझ फूल मुरझाएगा, अभी तो फूल जिंदा है! सांझ की चिंता अभी से क्या? जब तक फूल जिंदा है तब तक उसके सौंदर्य को जीया जा सकता है। और जिस व्यक्ति ने जिंदा फूल के सौंदर्य को जी लिया, वह जब फूल मुरझाता है और गिरता है, तब वह दिन भर के सौंदर्य से इतना भर जाता है कि फूल की संध्या और गिरती हुई पंखुड़ियां भी फिर उसे सुंदर मालूम पड़ती हैं। आंख में सौंदर्य भर जाए तो पंखुड़ियों का गिरना पंखुड़ियों के खिलने से कम सुंदर नहीं है। और आंख में सौंदर्य भर जाए तो बचपन से ज्यादा सौंदर्य बुढ़ापे का है।
रवींद्रनाथ कहते थे कि जैसे पर्वत के शिखरों पर शुद्ध बर्फ जम जाती है, हिमालय पर हिम-शिखर जम जाते हैं, ऐसे ही जब कोई व्यक्ति सच में ही जीवन के सारे आनंदों को आत्मसात करके बूढ़ा होता है तो उसके शुभ्र बालों में भी जीवन भर का सौंदर्य हिम-शिखर की भांति दिखाई पड़ने लगता है।
लेकिन जीवन भर दुख से गुजरता हो तो सांझ भी कुरूप हो जाती है। सांझ कुरूप हो ही जाएगी, वह जिंदगी भर का जोड़ है।
मैं समझ पाता हूं कि अगर एक नया मनुष्य पैदा करना है--जो कि नये समाज
के लिए जरूरी है--तो हमें क्षण में सुख लेने की क्षमता और क्षण में सुख लेने का आदर और अनुग्रह और ग्रेटीट्यूड पैदा करना पड़ेगा। हमें यह कहना बंद कर देना पड़ेगा कि सांझ फूल मुरझा जाएगा। सांझ तो सब मुरझा जाएंगे। सांझ तो आएगी, लेकिन सांझ का अपना सौंदर्य है, सुबह का अपना सौंदर्य है और सुबह के सौंदर्य को सांझ के सौंदर्य से तुलना करने की भी कोई जरूरत नहीं है। जिंदगी का अपना सौंदर्य है, मृत्यु का अपना सौंदर्य है। दीये के जलने का अपना सौंदर्य है, दीये के बुझ जाने का अपना सौंदर्य है। चांद की रात ही सुंदर नहीं होती, अंधेरी अमावस की रात का भी अपना सौंदर्य है। और जो देखने में समर्थ हो जाता है वह सब चीजों से सौंदर्य और सब चीजों से सुख पाना शुरू कर देता है।
लेकिन यह क्यों भूल हो गई कि आदमी इतना उदास और दुखी क्यों हमने निर्मित किया?
यह भूल इसलिए हो गई कि हम शरीर के शत्रु हैं। सारी मनुष्यता अब तक शरीर की दुश्मन रही है। इंद्रियों के दुश्मन हैं। और इंद्रियां द्वार हैं जीवन के। इंद्रियों की दुश्मनी की जरूरत नहीं है। इंद्रियों की गुलामी न हो, इतना ही काफी है। इंद्रियों की मालकियत बहुत है। लेकिन इंद्रियों की मालकियत के लिए इंद्रियों से दुश्मनी करने की कोई जरूरत नहीं है।
सच तो यह है कि जिसके हम दुश्मन हो जाएं उसके हम मालिक कभी भी नहीं हो पाते। मालिक तो हम सिर्फ उसी के हो पाते हैं जिसे हम प्रेम करते हैं।

इंद्रियों और शरीर की दुश्मनी के कारण एक द्वैत आदमी में हमने पैदा किया है। हमने बताया है कि शरीर कुछ और, इंद्रियां कुछ और, तुम कुछ और; और तुम्हारे और शरीर के बीच सतत दुश्मनी है, लड़ाई है। अब हम अपने ही द्वार-दरवाजों से लड़ रहे हैं। जैसे कोई आदमी एक घर में रहता हो, और अपनी खिड़कियों का दुश्मन हो जाए, अपने दरवाजों का दुश्मन हो जाए, और खिड़कियों और अपने बीच दुश्मनी मान ले। तो जो खिड़कियां खुलती हैं आकाश की तरफ, वह उनसे फिर कभी झांकेगा नहीं।
उन्हीं खिड़कियों में सूरज भी उगेगा, उन्हें खिड़कियों में कभी कोई पक्षी बैठ कर गीत गाएगा, उन्हीं खिड़कियों में कभी सांझ होगी, उन्हीं खिड़कियों में कभी चांद आकर झांकेगा। लेकिन वह आदमी जो अपनी खिड़कियों का दुश्मन हो गया, वह कैसे उन खिड़कियों से झांकेगा? वह द्वार बंद कर देगा। वे ही द्वार बंद कर देगा जिनसे ताजी हवाएं भीतर आएंगी, गंदी हवाएं बाहर जाएंगी, वह उन द्वारों को बंद कर देगा, खिड़कियों का दुश्मन हो जाएगा। उसका घर उसकी कब्र हो जाएगी।
हमने अपने शरीर को अपनी कब्र बना दिया है। हमारा शरीर हमारा घर नहीं
रह गया। पिछले पांच-सात हजार वर्षों के ज्ञात इतिहास में आदमी ने अपने ही शरीर से लड़ने के सिवाय कुछ भी नहीं किया है।
शरीर को द्वार बनाना है। आंख अदभुत खिड़की है, कान भी अदभुत खिड़कियां हैं, उनसे दुश्मनी लेने, इंद्रियों से दुश्मनी लेने की बात ही नासमझी की बात है। इससे ज्यादा आत्मघाती, सुसाइडल कोई बात नहीं हो सकती कि हम अपनी इंद्रियों के दुश्मन हो जाएं। लेकिन हमें इतनी बार यह बात कही गई है कि हम धीरे-धीरे, धीरे-धीरे इस बात को स्वीकार ही कर लिए हैं। अगर कोई कहे ऐंद्रिक-सुख, तो हम कहेंगेः गया-गुजरा आदमी है, इंद्रियों के सुख ले रहा है!
इंद्रियां तो सिर्फ खिड़कियां हैं। सुख तो सब परमात्मा का है--चाहे एक फूल से आता हो, चाहे हवा के झोंके से आता हो, चाहे चांद से आता हो, चाहे समुद्र की लहर से आता हो, चाहे किन्हीं दो सुंदर आंखों से आता हो, चाहे किसी सुंदर शरीर से आता हो--जहां से भी आता है, सुख तो सब परमात्मा का है। लेकिन हमारे पास द्वार तो इंद्रियों के हैं। इन द्वारों का उपयोग या इन द्वारों की दुश्मनी?
अगर इनकी दुश्मनी की तो हम बंद हो जाएंगे अपने भीतर, मर जाएंगे भीतर,
सड़ जाएंगे भीतर। आदमी मर गया और सड़ गया, वह सब तरफ से डरा हुआ है, उसने सब खिड़की-द्वार बंद कर लिए हैं।
सूरदास ने आंखें फोड़ ली थीं अपनी। वे बड़े प्रतिनिधि आदमी थे, जिसको रिप्रेजेंटेटिव माइंड कहें। उन्होंने अपनी आंखें इसलिए फोड़ ली थीं कि आंखों से सुंदर स्त्रियां दिखाई पड़ जाती थीं। कहीं सुंदर स्त्रियां आकर्षित न कर लें, तो उन्होंने अपनी आंखें फोड़ ली थीं। सूरदास हमारे प्रतिनिधि हैं। हम सबने भी आंखें फोड़ ली हैं, कान फोड़ लिए हैं, सब इंद्रियां तोड़ ली हैं। हमने नहीं तोड़ ली हैं, लेकिन हमने सब झुका लिए हैं, सब इंद्रियों के दरवाजे बंद कर लिए हैं। सब तरफ से हम डर गए हैं, भयभीत हो गए हैं कि इंद्रियां कहीं वहां न ले जाएं जहां... कहीं गड्ढे में न गिरा दें।
आंखें गड्ढे में नहीं गिरातीं, अंधा भर गिर सकता है गड्ढे में। आंखें
तो बताती हैं कि यह गड्ढा है और यह रास्ता है। और आंखें अगर कहती हैं कि सुंदर है चेहरा, तो आंखें यह नहीं कहती हैं कि जाकर इस चेहरे को अपने घर में बंद कर लो। आंखें तो सिर्फ खबर देती हैं कि यह रहा फूल, यह रहा कांटा। आंखें फोड़ने से क्या होगा? और अगर कोई आंखें फोड़ ले तो क्या आप सोचते हैं कि उसके मन में वासनाएं नहीं उठेंगी?
वासनाएं बहुत अलग बात हैं। इंद्रियों से वासनाओं का क्या लेना-देना है! वासनाएं मन की हैं, इंद्रियां तो सिर्फ खबरें देती हैं। इंद्रियां तो सिर्फ रिसेप्टिव हैं, वे तो ग्राहक हैं, वे तो चारों तरफ जो है उसकी खबर ले आती हैं। इंद्रियां कुछ भी नहीं कहतीं कि क्या करो, करने की बात तो मन की है। मन को बदलना है, वह तो बात दूसरी है। इंद्रियों को तोड़ने में आदमी लगा है। इंद्रियों को तोड़ने से कुछ फर्क नहीं पड़ता। आंखें फोड़ लें तो सुंदर

स्त्रियां भीतर अंधी आंखों में भी मौजूद हो जाएंगी। रात सपने में मौजूद हो जाती हैं, आंखें खुली होने की कोई बहुत जरूरत नहीं है।
मैंने सुना है, एक फकीर एक नदी के किनारे से पार होता था। एक बूढ़ा फकीर उसके साथ था, वे दोनों नदी पार करने के करीब थे। बूढ़ा फकीर आगे था। एक युवती ने उस बूढ़े फकीर से कहा कि मैं बहुत डर गई हूं, नदी बहुत गहरी है, मुझे उस पार जाना है, मुझे उस पार पहुंचा दो। उस बूढ़े फकीर को एक दफे ख्याल आया कि अच्छा! लेकिन जैसे ही उसे ख्याल आया अच्छा--यह मन में ही उसने कहा था--जैसे ही उसे ख्याल आया कि लड़की का हाथ पकड़ कर नदी पार करा दूं, उसके सारे मन में विष घुल गया। बीस साल से उसने स्त्री को नहीं छुआ था। जैसे ही ख्याल आया कि हाथ पकड़ कर नदी पार करवा दूं, वैसे ही उसके मन में सारी वासना जग गई। उसने अपने को झिड़का कि मैंने कैसे पाप की बात सोची! उसने सिर नीचे झुका लिया। उस लड़की ने बहुत कहा, आप उत्तर नहीं देते हैं? फिर उसने उत्तर भी नहीं दिया। क्योंकि बोलना भी खतरनाक है, वाणी भी कान में चली जाए उसके और मन में रस घुल जाए! तो फिर वह आंख बंद करके, आंख झुका कर नदी पार हो गया तेजी से।
नदी तो पार हो रहा है, लेकिन मन उसका इसी पार रह गया। तभी उसे ख्याल आया कि उसका एक युवा साथी भी पीछे आ रहा है, कहीं वह भी इसी गलती में न पड़ जाए। उस पार पहुंच कर उसने लौट कर देखा। हालांकि वह अपने साथी को देख रहा था, लेकिन बहुत गहरे में उसका मन उस लड़की को ही देख रहा था। वह लड़की को देखने का बहाना खोज रहा था।
लेकिन जब उसने पीछे लौट कर देखा तो बहुत घबरा गया। वह युवा साथी उस लड़की को कंधे पर बिठा कर नदी पार करवा रहा था। तब तो आग लग गई। आग दोहरी थी। बहुत गहरे में तो यह आग लगी कि मैं चूक गया; मैं भी कंधे पर बिठा सकता था-- बहुत गहरे में।
सभी संन्यासियों के बहुत गहरे में वैसी आग पकड़ती है। इसलिए तो वे गृहस्थों पर बहुत नाराज रहते हैं कि जिनको तुम कंधों पर बिठाए हो, हम नहीं बिठा पाए। इसलिए तो वे गृहस्थों को नरक भेजने के लिए दिन-रात घोषणाएं करते रहते हैं। वे बदला ले रहे हैं कि तुम यहां स्वर्ग में हो, तो हमको कम से कम मरने के बाद स्वर्ग में होने दो।
वह उसकी प्रतिक्रिया है। भीतर तो उसके मन में यह हुआ है, लेकिन तत्काल--आदमी कितना डिसेप्टिव, कितना वंचक है--भीतर तो मन में यह हुआ कि यह उसे कंधे पर बिठाए है, मैं भी बिठा सकता था; पता नहीं कौन सा आनंद इसे उपलब्ध हो रहा होगा! लेकिन तत्काल बात बदल गई और जैसे ही वह युवक करीब आया, क्रोध भर गया उसकी आंखों में और उपदेश आ गया। युवक ने लड़की को उतार दिया। फिर वे दोनों चल पड़े आश्रम की तरफ।
दो मील चलने के बाद, सीढ़ियां जब चढ़ते थे आश्रम की, तब उस बूढ़े ने लौट कर कहा कि यह ठीक नहीं हुआ, यह पाप है! तुमने उस लड़की को कंधे पर क्यों बिठाया? मैं, गुरु से जाकर मुझे कहना पड़ेगा, संन्यासी के जीवन का उल्लंघन हुआ है, स्त्री को छूने की मनाही है। छूने की मनाही है और तुमने कंधे पर बिठाया? उस युवक ने चौंक कर सुना! उसने कहा, क्या कह रहे हैं आप! मैं उस लड़की को पीछे उतार भी आया, आप अभी भी कंधे पर लिए हुए हैं? बड़ी देर हो गई, काफी समय बीत गया, दो मील का रास्ता पार हो गया!
उस युवक ने ठीक कहा। मन इंद्रियां नहीं है और मन बड़ी और बात है। आंखें
तो सिर्फ खबर देती हैं, मन उपयोग कर रहा है। शरीर तो केवल खबर लाता है, मन उपयोग कर रहा है। फिर मन कैसा उपयोग करता है, यह सवाल है। हम खबरें नहीं रोकना चाहते। हम खबरें रोक दें, इससे कोई फर्क न पड़ेगा। मन भीतर ही जाल बुनने लगेगा। मन भीतर ही कथाएं गढ़ने लगेगा। कितनी कहानियां मन गढ़ता है, कितने रूप बनाता है, कितनी वासनाओं को जगाता है, कितने सपने देखता है! नहीं, इंद्रियों से लड़ाई करके भूल हो गई है। और ध्यान रहे, इंद्रियों
से जो लड़ेगा उसकी सब इंद्रियां कमजोर हो जाएंगी। और जितनी इंद्रियां कमजोर हो जाएंगी उतना ही मन रोगग्रस्त हो जाएगा।
यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जितना स्वस्थ आदमी हो उतनी कम वासना होती है, जितना अस्वस्थ आदमी हो उतनी ही वासना बढ़ जाती है। ख्याल शायद उलटा हो,

ख्याल उलटा रहा है। साधु-संन्यासी सोचते हैं कि शरीर को भोजन मत दो, कपड़े मत दो, शरीर को गलाओ, शरीर स्वस्थ न रहे, तो शायद वासना पर विजय हो जाएगी। वासना पर विजय न होगी। जितना शरीर कमजोर होगा, जितनी शक्ति क्षीण होगी, मन उतना प्रबल हो जाएगा। कभी आपने ख्याल किया है कि बीमारी के दिनों में वासना तीव्र हो जाती है। बुखार में, कभी कुछ दिन बुखार में भूखे पड़े रहे हों, खाना न खाया हो, वासना तीव्र हो जाती है। कभी आपने ख्याल किया है कि जितना शरीर थकता है उतनी वासना तीव्र हो जाती है।
दुनिया भर में अमीर लोगों को बच्चे गोद लेना पड़ते हैं, मजदूरों को बच्चे गोद नहीं लेने पड़ते हैं। दिन भर थक जाते हैं, थक कर वासना तीव्र हो जाती है। गरीब आदमी ज्यादा बच्चे पैदा करते हैं, अमीर आदमी बच्चा पैदा करने में मुश्किल में पड़ जाता है।
शरीर जितना थक जाता है उतनी वासना तीव्र हो जाती है, शरीर जितना कमजोर
हो जाता है उतनी वासना तीव्र हो जाती है। जितना स्वस्थ आदमी होगा उतनी वासना कम होगी। और जितना स्वस्थ आदमी होगा उतना उसके पास बल होगा। जितना बल होगा, उतना मन को दिशाएं दी जा सकती हैं, रूपांतरण किया जा सकता है, ट्रांसफार्मेशन किया जा सकता है।
लेकिन क्षीणता और कमजोरी से कई बार धोखा पैदा हो जाता है। अत्यंत कमजोरी, इतनी कमजोरी हो कि हम कुछ भी न कर सकते हों, तो ऐसा लगता है कि जिंदगी बदल गई है।
तो इंद्रियों को कमजोर करने की एक लंबी यात्रा चल रही है हजारों साल से। उसके परिणाम बहुत घातक हुए हैं, उसके परिणाम इतने घातक हुए हैं कि हिसाब लगाना आज बहुत मुश्किल है, किसको जिम्मेवार ठहराएं? उसमें सब हमारे साधु-संत और महात्मा जिम्मेवार ठहरते हैं। आदमी की सारी इंद्रियां कमजोर हो गई हैं। और जब इंद्रियां कमजोर हो गई हैं तो जीवन से इंद्रियों के द्वार से जो रस आते थे वे भी सब कमजोर हो गए हैं। जीवन से जो रस उसे मिलते थे, जो खबरें मिलती थीं, वे भी कमजोर हो गईं।
क्या आपको पता है, जब आप देखते हैं एक सड़क पर वृक्षों को, तो आपको सिर्फ हरे वृक्ष दिखाई पड़ते हैं। एक चित्रकार भी देखता है, आपके ही जैसी आंखें हैं, लेकिन उसकी आंखें हरे रंग में भी हजार शेड देखती हैं। हरा रंग भी हजार प्रकार का हरा रंग होता है। आप भी सुनते हैं कानों से, लेकिन जब एक वीणावादक सुनता है तो बात कुछ और होती है। बहुत बारीक और बहुत सूक्ष्म स्वरों के भेद भी उसकी पकड़ में आते हैं, वे हमारे कान की पकड़ में नहीं आते। और जब कोई व्यक्ति जो प्रेम करना जानता है किसी का हाथ हाथ में लेता है तो उसका हाथ भी कुछ कहता है। हमारे हाथ कुछ भी नहीं कहते। हम अगर किसी का हाथ भी हाथ में लें तो कुछ भी हाथ में नहीं आता, थोड़ी देर में पता चलता है कि पसीना आ गया। हाथ कोई खबर नहीं लाते हैं, न ले जाते हैं। हाथ बदतर हो गए हैं, वे बोथले हो गए हैं, उनकी संवेदनशीलता, सेंसिटिविटी मर गई है।
हमारा शरीर भी बहुत कम कुछ अनुभव कर पाता है। हजारों साल का विरोध है, हजारों साल का सप्रेशन है। सब इंद्रियां क्षीण हो गई हैं, सब शरीर क्षीण हो गया है, सब अनुभव करने की हमारी संवेदनशीलता कम हो गई है। न हम पूरा सुनते हैं, न हम पूरा स्वाद लेते हैं, न हम पूरी तरह देखते हैं, न हम पूरी तरह श्वास लेते हैं, न हम पूरी तरह जीते हैं, सब अधूरा हो गया है। अधूरा आदमी जैसे फांसी पर लटका हो; चारों तरफ से सब अधूरा है। और समझाने वाले हमें कहते हैं, भोजन करते समय स्वाद मत लेना, अस्वाद व्रत का पालन करना। वे कहते हैं, अस्वाद व्रत से भोजन करना।
अस्वाद व्रत से जो भोजन करेगा--स्वाद से जो परमात्मा आता था वह उसके पास फिर कभी नहीं आएगा। अगर अस्वाद व्रत से भोजन करना है तो फिर असौंदर्य व्रत से आंखों से देखना भी पड़ेगा। हालांकि अभी तक महात्माओं ने उसको विकसित नहीं किया है--असौंदर्य व्रत! आंख से ऐसे देखना कि सुंदर न दिखाई पड़े! क्योंकि जैसे स्वाद जीभ का रस है वैसे ही सौंदर्य आंख का रस है। फिर सुगंध मत लेना, फूल के पास जाओ--असुगंध व्रत का पालन करना। किसी को गले लगाओ तो अप्रेम व्रत का पालन करना। हड्डियां ही लगें, और कुछ न लग पाए, भीतर का कुछ भी न छू सके।

ये इन सारे व्रतों ने, इन सारे नियमों ने आदमी को सब तरफ से सिकोड़ दिया। उसके फैलाव बंद हो गए। आदमी एक फैलाव न रहा, एक संकोच हो गया। यह संकोच बहुत दुखदायी है, यह संकोच बहुत ही उदास करने वाला है, यह संकोच बहुत ही घातक है।
इस घातक व्यक्तित्व को तोड़ना पड़ेगा, इस घातक व्यक्तित्व को विदा करना पड़ेगा। जिंदगी को उसके सारे रूपों में स्वीकार करना पड़ेगा और जिंदगी के सारे रसों को, और सारे सौंदर्यों को, और सारे संगीत को, और सारी सुगंधों को, और सारे स्वादों को लेना पड़ेगा। तब व्यक्तित्व में नृत्य का और संगीत का जन्म होता है। और तब सब चीजें परमात्मा की खबर लाती हैं।
बड़े मजे की बात यह है, इंद्रियां सिर्फ पदार्थ की ही खबर नहीं लातीं;
वह तो इंद्रियां कमजोर हैं इसलिए पदार्थ की खबर लाती हैं; अगर इंद्रियां बहुत गहरे से देख सकें तो परमात्मा की खबर ले आती हैं। अगर मेरी आंखें सच में देख सकें सौंदर्य को तो सौंदर्य फिर चमड़ी का और शरीर का नहीं रह जाता, आंखें जितना गहरा देखती हैं उतना ही सौंदर्य आत्मा का होने लगता है। और जब आंखें पूरी तरह गहरा देखती हैं तो पत्थर नहीं रह जाता, भीतर से परमात्मा झांकने लगता है।
लेकिन हम इंद्रिय-विरोधी हैं, तो हमें पत्थर ही दिखाई पड़ता है, परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। अगर परमात्मा को देखना है तो इतना गहरा देखना पड़ेगा, गहरे से गहरा, कि कुछ देखने को पीछे शेष न रह जाए। कभी हमने सोचा ही नहीं। आपने कभी रास्ते के किनारे पड़े हुए पत्थर को हाथ में उठा कर स्पर्श किया है? कभी नदी के किनारे बैठ कर रेत को हाथ में लेकर दो क्षण विश्राम से उसको स्पर्श किया है? नहीं किया है। कभी नदी के पानी को चुल्लू में भर कर दो क्षण आंख बंद करके उसे समझने की कोशिश की है? कभी किसी वृक्ष की पीड़ को छाती से लगा कर थोड़ी देर विश्राम किया है? वृक्ष भी कुछ कहता है? नहीं कहता है। चारों तरफ इतना विराट फैला हुआ है, यह चारों तरफ सब तरफ मौजूद है वही! लेकिन हम तो आदमी का हाथ भी हाथ में लेने से भयभीत हो गए हैं। वृक्ष का हाथ कोई लेगा तो हम उसे पागल कहेंगे। अगर कोई वृक्ष को गले से लगाए हुए मिल जाएगा तो हम कहेंगे--दिमाग खराब हो गया। लेकिन वही आदमी अगर एक मंदिर में थाली लेकर घुमा रहा होगा, पूजा कर रहा होगा, तो हम कहेंगे--धार्मिक हो गया। और जिंदा परमात्मा चारों तरफ मौजूद है उससे वह कभी नहीं मिलता। उसने अपने परमात्मा बनाए हुए हैं। अपने ही हाथ से गढ़ कर बना लिए हैं। अपने ही गढ़े हुए परमात्माओं के सामने वह हाथ जोड़ कर खड़ा हुआ है। और उसकी सारी इंद्रियां असमर्थ हो गई हैं, वह कुछ भी अनुभव करने में समर्थ नहीं रह गया है, उसने सारी ग्राहकता खो दी है, संवेदनशीलता खो दी है।
धार्मिक जीवन की बुनियाद है--संवेदनशीलता, सेंसिटिविटी। कौन कितना संवेदनशील है!
मैंने सुना है, एक फकीर के द्वार पर एक विचारक मिलने गया था। उसने जोर
से दरवाजा खोला। किसी क्रोध में होगा। जब हम भी क्रोध में होते हैं तो जोर से दरवाजा खोलते हैं। जूते जोर से पटके। किसी नाराजगी में होगा। लोग अपनी कलम तक को गाली दे देते हैं। उसने जूते को भी गाली दे दी होगी। पटका जोर से जूता। भीतर गया और उस फकीर को नमस्कार किया। उस फकीर ने कहा, मैं तुम्हारा नमस्कार स्वीकार न करूंगा। पहले जाकर दरवाजे से क्षमा मांग आओ। और जूते से माफी मांगो। उस आदमी ने कहा, आप क्या कह रहे हैं? मैं और जूते से माफी मांगूं! क्या मुझे आपने पागल समझा है?
उस फकीर ने कहा, मैं तो नहीं समझा था, लेकिन तुमने जो किया है उससे समझ में आया कि तुम पागल हो। अगर जूते पर क्रोध कर सकते हो तो क्षमा क्यों नहीं मांग सकते? और अगर जूते पर क्रोध करते वक्त पागल नहीं थे तो क्षमा मांगते वक्त पागल कैसे हो जाओगे? दरवाजा तुमने कैसे खोला था, जैसे किसी दुश्मन को धक्का दे रहे होओ। माफी मांगो, अन्यथा मकान के बाहर हो जाओ!
वह आदमी उससे कुछ पूछने आया था। उसने कहा कि बड़ी दूर से आया हूं!
उसने कहा, कितने ही दूर से आए होओ, दरवाजा बहुत दूर नहीं है, चार कदम और
चल लो, माफी मांग आओ! उस आदमी को बड़ी बेचैनी अनुभव हुई। आप होते तो आपको भी होती बेचैनी अनुभव। लेकिन वापस लौटना पड़ा। वह फकीर जिद्दी था। उसने कहा, हम कुछ कहेंगे ही नहीं! क्योंकि हम ऐसे मरे हुए आदमी से कुछ भी न कहेंगे,

जिसको समझ में नहीं आता कि वह जूते और दरवाजे के साथ दुर्व्यवहार करके आया है। हम बात ही न करेंगे तुमसे। जाना पड़ा, बहुत दूर से चल कर आया था। तो गया, जाकर दरवाजे से माफी मांगी।
फिर उस आदमी ने लिखा है कि पहले तो मैंने माफी मांगी तो मुझे लगा कि यह मैं क्या कर रहा हूं? लेकिन जिंदगी में यह मैंने कभी नहीं किया था, मैंने किसी आदमी से भी माफी नहीं मांगी थी; मैं माफी मांगना जानता ही नहीं था, मुझे पता ही नहीं था कि माफी भी इतनी शांति ला सकती है। और मैंने जब जूते की तरफ हाथ जोड़ कर सिर झुकाया--मैंने कभी किसी के पैर में सिर नहीं झुकाया था; और अपने ही जूते के सामने सिर झुकाएंगे, यह तो कभी सोचा भी न था--लेकिन जब मैंने सिर झुकाया तो मेरे सिर से जैसे कोई बड़ा बोझ उतर गया। बहुत बड़े आश्चर्य की बात यह हुई कि या तो वह फकीर पागल था या मैं पागल था, या पता नहीं उस दिन क्या हुआ, जब मैंने जूते से माफी मांगी तो मैंने पाया कि जूता और हो गया, बदल गया। और जब मैंने दरवाजे से हाथ से छूकर क्षमा मांगी कि माफ कर दो, भूल हो गई, नाराजगी में था, तो मुझे लगा कि दरवाजा कुछ और हो गया है, दरवाजा वही नहीं है।
हो भी नहीं सकता! हम क्या हैं, वही हमारे चारों तरफ का जीवन हो जाता है।
लेकिन हमने सब तरफ से अपने को सिकोड़ लिया है, तो हमारे चारों तरफ की संवेदनशीलता नष्ट हो गई है। क्षणिक-क्षणिक सुख लेना पड़ेगा इंद्रिय का भी। इंद्रिय से कोई दुश्मनी का कारण नहीं है। और जो इंद्रिय का सुख न ले पाएगा वह आत्मा का सुख तो लेगा ही कैसे? इंद्रिय तो बड़ा छोटा सा प्रारंभ है सुख का। जो उतना सा छोटा सुख नहीं ले सकता वह आत्मा का सुख लेगा? जिसे अभी भोजन का स्वाद नहीं आता, जिसे अभी फूल में सुगंध नहीं आती, उसे आत्मा का स्वाद और आत्मा की सुगंध आएगी? नहीं आ सकती है!
उमर खय्याम एक दिन सुबह बैठ कर शराब पी रहा था। उमर खय्याम दुनिया के बहुत थोड़े से उन लोगों में से है जिसने हमारी जिंदगी पर बड़े व्यंग्य कसे हैं। सब कहानियां हैं, पता नहीं वह पी रहा था कि नहीं पी रहा था। तो कहानी यह है कि वह अपने दरवाजे पर बैठ कर सुबह-सुबह शराब पी रहा था। गांव का मौलवी निकला, और जैसे कि मौलवी होते हैं, जैसे कि पंडित होते हैं, मौलवी ने बहुत घृणा और क्रोध से उमर खय्याम को देखा, निंदा के भाव से, और कहा कि नरक जाएगा!
उमर खय्याम ने कहा, जब जाऊंगा तब देख लूंगा; लेकिन आप अभी भी नरक में हैं। आएं, काफी है पीने के लिए, थोड़ा पी लें, थोड़ा शांति से बैठें।
उस आदमी ने कहा, क्या कहते हो मुझसे? तुम मौलवी से पीने को कहते हो?
उसने चारों तरफ देखा कि कोई यह न देख ले कि वह उमर खय्याम से बात कर रहा है। नहीं तो पता चल जाए कि उमर खय्याम से बात कर रहा है तो पता नहीं क्या बात कर रहा है।
उसने कहा, तुझे पागल मालूम नहीं है, खय्याम, छोड़ दे शराब! इस जिंदगी में कोई सुख न ले! शराब तो प्रतीक है इस जिंदगी में सुख का। कुछ सुख न ले इस जिंदगी में! तुझे पता नहीं है कि जो इस जिंदगी में सब सुख छोड़ देंगे, परमात्मा ने उन्हें स्वर्ग में सब सुख देने का इंतजाम किया हुआ है। वहां, वहां शराब के चश्मे बह रहे हैं बहिश्त में।
बहिश्त में शराब के चश्मे से मौलवी की जीभ में लार आ गई हो तो आश्चर्य नहीं। क्योंकि जो यहां छोड़ता है वह वहां पाने के लिए बड़ा आतुर रहता है। उमर खय्याम ने कहा, तुम्हारा परमात्मा बड़ा अजीब है! कहता है, यहां सुख
मत लो और वहां हम ज्यादा सुख देंगे अगर यहां सुख छोड़ते हो। कैसा परमात्मा है! कैसा तर्क!
फिर उसने कहा कि होगा, मुझे पता नहीं तुम्हारे झरनों का। मुझे तो यह
जो कुल्हड़ में सुख मिल रहा है, मैं इसको लेता हूं, जब झरना होगा तब देखेंगे।
फिर उसने चलते वक्त कहा, मौलवी, एक बात ख्याल रखना--हमारी तो आदत रहेगी कुल्हड़ से सुख लेने की तो हम शायद झरने में भी थोड़ा-बहुत सुख ले लेंगे, अगर कभी कोई झरना हुआ। लेकिन तुम्हारी तो कोई आदत ही न होगी, कुल्हड़ से भी

तुमने कभी न लिया, झरने से तुम कैसे लोगे? और तुम कुल्हड़ को इतनी निंदा से देख रहे हो, झरने के तो तुम बिल्कुल दुश्मन हो जाओगे।
उमर ठीक कहता है। जिंदगी में क्षण-क्षण के कुल्हड़ में सुख आता है। जिंदगी में सब इंद्रियों के द्वार से सुख आपको खटखटाता है। लेकिन उसे इनकार कर देते हैं हम। हम उसे अस्वीकार कर देते हैं। हम अकड़ कर भीतर बैठ जाते हैं कि नहीं, हम यह सुख न लेंगे। इंद्रियों का सुख तो बुरा है, पाप है। कोई सुख बुरा नहीं है, कोई सुख पाप नहीं है, सिर्फ दुख पाप है। क्यों मैं यह कहता हूं कि दुख पाप है? यह इसलिए कहता हूं कि जो दुख को अंगीकार कर लेता है वह दूसरों को दुख देने का आधार बन जाता है। अगर मैं दुखी हूं तो मैं दुख दूंगा, क्योंकि मैं वही दे सकता हूं जो मेरे पास है। और मैं अगर सुखी हूं तो मैं सुख दूंगा, क्योंकि मैं वही दे सकता हूं जो मेरे पास है। हम उसी को तो बांटते हैं जो हमारे पास है।
आदमी एक-दूसरे को दुख दे रहा है, क्योंकि हर आदमी दुखी है। दुखी आदमी दुख ही दे सकता है। समझाना फिजूल है दुखी आदमी को कि तुम दुख मत दो, वह दुख देगा ही! उसके पास दुख ही है! वह करेगा भी क्या, वह जब भी बांटेगा दुख बांटेगा। हो सकता है वह भी सोचता हो कि मैं सुख बांट रहा हूं, हो सकता है वह यह मानता भी हो कि मैं सुख दे रहा हूं। हो सकता है बेटा सोचता हो, मैं अपनी मां को सुख दे रहा हूं। लेकिन मां को दुख मिल रहा है। हो सकता है पति सोचता हो, मैं अपनी पत्नी को सुख दे रहा हूं। लेकिन पत्नी को दुख मिल रहा है। पत्नी सोचती है, मैं अपने पति की कितनी सेवा कर रही हूं, कितना सुख दे रही हूं। और पति की जान संकट में पड़ी हुई है। हम देते हुए मालूम पड़ते हैं सुख, लेकिन पहुंचता है दुख। क्योंकि दुख के सिवाय हमारे पास कुछ भी नहीं है। दुखी होने के अतिरिक्त और कोई पाप नहीं है। क्योंकि फिर दुखी होने से
और सारे पाप निकलेंगे, और सब तरफ दुख फैलता चला जाएगा। सुखी होने से बड़ा कोई पुण्य नहीं है। क्योंकि जो सुखी है उससे सुख की किरणें चारों तरफ बहनी शुरू हो जाती हैं। उसकी जिंदगी में चारों तरफ सुख के स्वर फैलने शुरू हो जाते हैं। अगर समाज को कभी भी दुख के जाल से मुक्त करना है तो हमें एक-एक व्यक्ति को वे आधार देने पड़ेंगे जो उसे भीतर से सुखी कर सकें, जो उसे भीतर से आनंदित कर सकें।
लेकिन हमने सिखाया है कि आनंद, आनंद इस पृथ्वी पर नहीं है। आनंद है मोक्ष में, आनंद है मरने के बाद। आनंद सदा मरने के बाद है। और दुख? दुख जीने के इस तरफ है और आनंद मरने के बाद है। तो जिंदगी में तो सिर्फ दुखी होना है। हमारी पुरानी सारी बातें यह समझा रही हैं लोगों को। वे उनसे कह रही हैं कि जिंदगी के साथ ऐसे व्यवहार करो जैसे किसी मुसाफिरखाने में, रेलवे के वेटिंगरूम में ठहरे हो। रेलवे का वेटिंगरूम देखा है हमारा? उसी में लोग बैठे हैं, थूक रहे हैं, वहीं वे नाक साफ कर रहे हैं, वहीं वे पान गिरा रहे हैं, वहीं वे मूंगफली के छिलके फेंक रहे हैं। और अगर उनसे कहो कि यह क्या कर रहे हो? तो वे कहते हैं, यह वेटिंगरूम है, यह विश्रामालय है। यहां कोई जिंदगी भर बैठे रहना है? अभी हमारी गाड़ी आएगी और हम चले जाएंगे। दूसरा भी यही कर रहा है, तीसरा भी यही कर रहा है। हजारों साल से जिंदगी को लोग सराय बता रहे हैं कि यह सराय है। इसके साथ सराय का व्यवहार करो, यहां कोई रहना थोड़े ही है। अभी गाड़ी आएगी और हम चले जाएंगे। तो फिर जब सराय के साथ हजारों साल ऐसा दुर्व्यवहार होगा, तो वहां जिंदगी गंदी हो जाएगी, कुरूप हो जाएगी।
नहीं, चाहे एक दिन के लिए भी हम ठहरे हैं, तो भी जहां हम ठहरे हैं वह घर
हो गया; चाहे एक क्षण के लिए हम ठहरे हों, तो भी जहां हम ठहरे हैं वह घर हो गया। सवाल उसके घर होने में नहीं है, सवाल हमारे ठहरने की वृत्ति में है। सवाल हमारे उस जगह एक क्षण भी हम रहे तो क्या फर्क है?
ब्लावट्स्की थी, वह हिंदुस्तान आई थी, तो वह गाड़ियों में सफर करती तो हमेशा खिड़की के पास बैठती। कई बार ऐसा हुआ कि खिड़की के पास जगह न मिलती तो वह यात्रियों से कहती, मुझे खिड़की के पास बैठ जाने दें। तो वे कहते कि क्या बात है? तो वह कहती, मुझे खिड़की से कुछ बाहर फेंकते रहना है। लोग हैरान होकर बैठ जाने देते। और वह एक झोला रखे रहती और कुछ बाहर फेंकती रहती। लोग उससे पूछते, यह क्या फेंक रही हो? तो वह कहती, मौसमी फूल के बीज हैं।

ट्रेन से, चलती हुई ट्रेन से मौसमी फूल के बीज फेंक रही है तो वह पागल औरत होनी चाहिए। लोग कहते, दिमाग खराब हो गया! यह कोई अपना घर है! चलती हुई ट्रेन से फूल के बीज किसलिए फेंक रही हो? और फिर तुम्हें दुबारा इस रास्ते से गुजरना है? तो वह कहती, शायद दुबारा इस रास्ते से गुजरना न हो। क्योंकि जिंदगी में एक ही रास्ते से दुबारा गुजरना कब होगा! शायद गुजरना न हो। तो लोग कहते, तुम पागल हो? फिर किसलिए फूल के बीज फेंक रही हो? वह कहती, वर्षा आने के करीब है, फूल खिल जाएंगे। पर वे लोग कहते, तुम तो देखने को न रहोगी! वह कहती, इससे क्या फर्क पड़ता है, कोई इस रास्ते से ट्रेन पर गुजरता रहेगा और फूल खिलता हुआ देखता रहेगा। मैं यह सोच कर भी बहुत आनंद से भर जाती हूं कि जब दुबारा इस रास्ते से कोई गुजरेगा तो फूल होंगे, सुगंध होगी। मैं शायद न भी गुजरूं। लेकिन जिस जगह से मैं थोड़ी देर को भी गुजरी वह मेरा घर हो गया। क्षण भर को, ट्रेन से! वह मेरा घर हो गया, वहां मैंने थोड़े से फूल गिरा दिए।
यह जिंदगी सुंदर हो सकती है, लेकिन इस जिंदगी के साथ घर का व्यवहार करना पड़ेगा। एक क्षण को ही सही, जहां हम हैं, वहां सुख, वहां संगीत, वहां आनंद की धुन बज जानी चाहिए। तो शायद मरने के बाद भी हम जहां होंगे तो हम इतना सुख साथ ले जाएंगे, वही सुख तो हमारा स्वर्ग बन सकेगा। लेकिन जिस आदमी ने इस पृथ्वी को नरक बनाने में सहयोग दिया है, ध्यान रहे, उसके लिए कोई स्वर्ग नहीं हो सकता। अगर कहीं हो, तो भी नहीं हो सकता। और यह भी ध्यान रहे कि अगर वह स्वर्ग में भी पहुंच जाएगा, तो बहुत जल्दी नरक बना लेगा, वह वहां स्वर्ग बचने नहीं देगा। कैसे बचने देगा!
मैंने सुना है कि एक बहुत अदभुत आदमी था--बर्क। वह स्वर्ग नहीं मानता था, नरक नहीं मानता था, परमात्मा नहीं मानता था, आत्मा नहीं मानता था। वह कहता था, और कोई जिंदगी नहीं, बस इतना ही काफी है। लेकिन बर्क बहुत अच्छा आदमी था।
एक पादरी लंदन में भाषण कर रहा था। और भाषण में उसने कहा कि जो लोग परमात्मा को मानते हैं और अच्छी जिंदगी जीते हैं, वे स्वर्ग जाएंगे। एक आदमी ने खड़े होकर कहा कि आप बर्क के संबंध में जानते होंगे। बर्क अच्छा आदमी है, लेकिन परमात्मा को नहीं मानता। वह कहां जाएगा? वह पादरी मुश्किल में पड़ गया। क्योंकि उस पादरी ने कहा कि अगर वह यह--वह जानता है कि बर्क बहुत ही अच्छा आदमी है--अगर वह यह कहता है कि बर्क जैसा अच्छा आदमी भी नरक जाएगा, तो लोग क्या कहेंगे, इतना अच्छा आदमी और नरक! तब तो अच्छे होने का कोई मतलब न रहा। और अगर वह यह कहे कि बर्क स्वर्ग जाएगा, तो लोग कहेंगे, वह परमात्मा को नहीं मानता, आत्मा को नहीं मानता। तो परमात्मा-आत्मा को बिना माने भी कोई स्वर्ग जा सकता है!
तो उस पादरी ने कहा, माफ करो, तुमने मुझे झंझट में डाल दिया। मैं सात दिन बाद उत्तर दूंगा, सात दिन मुझे सोचने का समय चाहिए। उन लोगों ने कहा, आप इतने समझदार आदमी, आपको सात दिन चाहिए? उस पादरी ने कहा, अगर बर्क जैसा आदमी भगवान के सामने भी होगा तो उसको भी सात दिन लग जाएंगे सोचने-समझने में। यह आदमी तो इतना प्यारा है कि इसको होना तो चाहिए स्वर्ग में, लेकिन यह ईश्वर वगैरह को तो मानता नहीं, आत्मा को तो मानता नहीं, धर्म को मानता नहीं, स्वर्ग को भी मानता नहीं, इसको भेजना कहां है? मुझे सात दिन का वक्त दो, मैं कमजोर आदमी हूं।
सात दिन उसने बहुत सोचा, बहुत किताबें पलटीं, लेकिन कहीं उत्तर न मिला। क्या उत्तर मिले! वह घबरा गया। वह सातवें दिन चर्च का वक्त आ गया। वह चर्च पहुंच गया घंटा भर पहले कि वहीं हाथ जोड़ कर भगवान के सामने प्रार्थना करके और पूछ लूं कि क्या इरादे हैं, तुम्हीं बोल दो कि बर्क को कहां भेजें? हमने कभी सोचा भी न था कि हम पर यह जिम्मा आएगा, बर्क को भेजने का। बर्क को भेजना कहां है? यह जाएगा कहां?
जल्दी आ गया था घंटे भर, जाकर छत पर बैठ कर आंख बंद करके सोचने लगा, भगवान से पूछने लगा, पूछने लगा... । कोई उत्तर तो नहीं आया, लेकिन नींद लग गई। नींद में उसने एक सपना देखा। और सपने में उसने देखा कि वह ट्रेन में बैठा है। उसने पूछा कि यह ट्रेन कहां जा रही है? तो लोगों ने कहा, यह ट्रेन स्वर्ग की तरफ जा रही है। उसने कहा, यह भला हुआ। हम जरा पता लगा लें।

क्योंकि पहले बर्क जैसे कुछ लोग और मर चुके हैं। सॉक्रेटीज मर चुका, वह ईश्वर को नहीं मानता। बुद्ध मर चुके, वे ईश्वर और आत्मा को नहीं मानते। महावीर मर चुके, वे ईश्वर को नहीं मानते। ये लोग कहां हैं? तो उसने कहा, बहुत ही अच्छा हुआ। यह ट्रेन बड़ी ठीक जगह जा रही है। हम वहीं पता लगा लें। स्वर्ग जाकर देखा तो बड़ा हैरान हो गया। सोचा था स्वर्ग बहुत सुंदर होगा। लेकिन स्वर्ग बड़ा उजाड़ था। रास्ते ऊबड़-खाबड़ थे, जैसे कभी उनकी मरम्मत न हुई हो। वृक्षों पर फूल न थे। सब तरफ उदासी थी। कोई मिलता भी था तो ऐसा मरा-मराया दिखाई पड़ता था। उसने पूछा, यह स्वर्ग है? उन्होंने कहा, हां, यह स्वर्ग है। तो उसने पूछा, सुकरात है यहां? बुद्ध हैं यहां? महावीर हैं यहां? उन्होंने कहा कि नहीं भई, इनके नाम कभी यहां नहीं सुने गए। ये लोग यहां नहीं हैं। पर उसने कहा कि इतना उदास लग रहा है यह--इतना उदास, मरा हुआ!
वह भागा हुआ स्टेशन आया और उसने कहा कि नरक जाने की कोई गाड़ी मिल सकेगी? गाड़ी तैयार थी, वह नरक की गाड़ी में बैठ गया। उसने कहा, नरक में और पता लगा लें, क्योंकि दो ही तो जगह हैं। जैसे-जैसे नरक के पास पहुंचने लगा, तो बड़ी सुगंध की हवाएं बहने लगीं। वह बड़ा हैरान हुआ कि यह तो उलटा हुआ जा रहा है। कोई तख्ती तो नहीं बदल गई! कुछ गड़बड़ तो नहीं हो गई! कहीं गलत ट्रेन में तो नहीं बैठ गए! कोई टिकट तो गड़बड़ नहीं ले ली! यह हो क्या रहा है? जब वह नरक के पास पहुंचा तो वहां तो लहलहाते हुए बगीचे थे और बहुत फूल खिले थे, और बहुत सुगंध थी, और कहीं वीणा बज रही थी, कहीं लोग नाच रहे थे। उसने कहा, सब गड़बड़ हुआ जा रहा है, यह मामला क्या है!
वह उतर कर नीचे गया। उसने पूछा, यह बात क्या है? यह नरक है? यह तो आंखों
पर भरोसा नहीं आता। अभी हम स्वर्ग देख कर आ रहे हैं, वह नरक जैसा मालूम पड़ता था। यह नरक, यह स्वर्ग जैसा मालूम पड़ रहा है। तो जिस आदमी से उसने पूछा था उसने कहा कि हां, यह पहले नरक ही था।
उसने कहा, अब क्या हो गया? अब नहीं है नरक?
उन्होंने कहा, तख्ती तो अब भी नरक की लगी है। लेकिन जब से वे बुद्ध, महावीर और सुकरात इधर आ गए हैं, तब से सब स्वर्ग हो गया है। और जब से वे तुम्हारे पादरी, पुरोहित और पंडित मर-मर कर स्वर्ग पहुंच रहे हैं, उन्होंने सब गड़बड़ कर दिया है। तख्ती पुरानी लगी हैं, लेकिन सब मामला बदल गया है। क्योंकि, उस आदमी ने कहा कि अब नियम बदल गया है। पहले यह नियम था कि अच्छा आदमी स्वर्ग जाता है। अब यह नियम नहीं है। अब नियम यह है कि अच्छा आदमी जहां जाता है वहां स्वर्ग हो जाता है। पहले नियम था कि बुरा आदमी नरक जाता है। अब नियम यह है कि बुरा आदमी जहां जाता है वहीं नरक हो जाता है। अब नियम बदल गए हैं। तुम, दिखता है, पुरानी किताबें पढ़ते थे।
उस पादरी की घबराहट में नींद खुल गई। घंटा बज रहा था नीचे, वक्त हो गया है। अब वह बहुत घबरा गया। और वह नीचे आया और उसने कहा कि भाई, मैं बहुत मुश्किल में पड़ गया हूं। अब मैं कुछ भी नहीं कहना चाहता। अब मैं इसके संबंध में कुछ कहना ही नहीं चाहता हूं। लोगों ने कहा, वह पिछले उत्तर का क्या हुआ? उसने कहा, उसी उत्तर ने मुझे दिक्कत में डाल दिया है। अब मैं भी सोच रहा हूं कि स्वर्ग जाना कि नरक? जाना कहां है?
हम यहां जिस तरह की जिंदगी जीते हैं, आगे जो जिंदगी है हम उसके आधार यहीं रखते हैं, इसी पृथ्वी पर, इस पृथ्वी के विरोध में नहीं। अगर आत्मा की कोई जिंदगी है तो उसके आधार हम रखते हैं शरीर की जिंदगी में, शरीर के विरोध में नहीं। अगर अतींद्रिय कोई आनंद हैं तो उनके भी आधार हम रखते हैं इंद्रियों के आनंदों में, उसके विपरीत नहीं। जिंदगी विरोध नहीं, जिंदगी एक हार्मनी है। यहां किसी चीज में कोई विरोध नहीं है। न शरीर और आत्मा में विरोध है, न पदार्थ और परमात्मा में विरोध है। यहां किसी चीज में विरोध नहीं है, जिंदगी एक इकट्ठी चीज है।
लेकिन मनुष्य ने अब तक विरोध मान रखा था।
तीसरे सूत्र में मैं आपसे कहना चाहता हूंः क्षण, इंद्रिय, जीवन के सहज-सरल सुखों का विरोध नहीं। उन्हें सहज स्वीकार कर लेना। ताकि जीवन में इतना सुख भर जाए कि दुख देने की क्षमता नष्ट हो जाए। वह अपने से हो जाती है, वह अपने से समाप्त हो जाती है।

और अगर एक बात हो जाए इस पृथ्वी पर कि आदमी दूसरे को दुख देने में उत्सुक न रह जाए तो नये समाज के जन्म होने में देर लग सकती है?
नये समाज का मतलब क्या है? नये समाज की खोज का अर्थ क्या है?
नये समाज की खोज का अर्थ हैः ऐसा समाज जहां कोई किसी के दुख के लिए उत्सुक नहीं है; जहां प्रत्येक प्रत्येक के सुख के लिए आतुर है। यह हो सकता है।
और सूत्रों के संबंध में कल बात करूंगा। एक-दो छोटे प्रश्नों के उत्तर दे देने उचित हैं।

एक मित्र ने पूछा है--कल मैंने कहा, कोई आदर्श स्वीकार न करें, तो उन्होंने पूछा है--हिंसा, पाप या झूठ, किसी भी चीज की खोज करना भी तो एक आदर्श हो सकता है।

नहीं, तथ्य को जानना आदर्श नहीं है। तथ्य को जानना तथ्य है।
मेरे पैर में कांटा गड़ा है। इस बात को जानना कि मेरे पैर में कांटा गड़ा है सिर्फ एक तथ्य की खोज है, एक सत्य का बोध है। लेकिन पैर में कांटा गड़ा है और मैं एक किताब पढ़ रहा हूं कि ऐसे रास्ते पर चलना चाहिए जहां कभी पैर में कांटा न गड़े--यह आदर्शों की दुनिया में जीना है। और पैर में कांटा गड़ा है इसीलिए यह किताब पढ़ रहा हूं, ताकि यह पैर का कांटा भूल जाए। हम ऐसे रास्ते का सपना देखें जिस पर कांटे नहीं होते हैं।
आदर्श का अर्थ हैः जो नहीं है और होना चाहिए--दैट व्हिच शुड बी--जो होना चाहिए।
तथ्य का अर्थ हैः जो है--दैट व्हिच इ.ज--जो है।
घृणा है, क्रोध है, दुख है, हिंसा है। अहिंसा आदर्श है, अक्रोध आदर्श है। वे हैं नहीं। वे अगर होते तो कोई जरूरत ही न थी उनके संबंध में बात करने की। हिंसा तो तथ्य है, अहिंसा आदर्श है। और मैं यही कल आपसे कहा कि अगर हिंसा को भुलाना हो तो अहिंसा का आदर्श बहुत अच्छा है। फिर भूल सकती है हिंसा; लेकिन मिटेगी नहीं। और अगर हिंसा मिटानी हो तो अहिंसा की बात ही करने की जरूरत नहीं, हिंसा को पूरा पहचानना पड़ेगा।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि हिंसा को पहचानें कैसे?

उलटी ही बात पूछ रहे हैं। क्या हिंसा को पहचानते नहीं हैं? क्या जब नौकर की तरफ आप देखते हैं तो आपकी आंख वही होती है? जब आप मालिक की तरफ देखते हैं तब आंख वही होती है?
जब आप मालिक की तरफ देखते हैं तब आपकी जो पूंछ है ही नहीं वह हिलती रहती है, जो है ही नहीं वह हिलती है पूंछ। जब आप नौकर की तरफ देखते हैं तो आपकी उसकी पूंछ पर नजर लगी रहती है--जो है ही नहीं--कि हिल रही है कि नहीं हिल रही। हिंसा है, दोनों हिंसाएं हैं। एक में आप दूसरे पर हिंसा कर रहे हैं, एक में आप दूसरे की हिंसा सह रहे हैं। दोनों हिंसाएं हैं।
जब एक पति पत्नी से कहता है कि पति परमात्मा है, तब उसे देखना चाहिए-- हिंसा हो रही है कि नहीं हो रही है। हिंसा हो गई है। प्रेम में भी, प्रेम में भी डॉमिनेशन और प्रेम में भी मालकियत? तो फिर जिंदगी में कोई बचेगा ऐसा जहां मालकियत न हो! जहां सिर्फ मित्रता काफी हो!
लेकिन पति समझा रहे हैं हजारों साल से कि पति परमात्मा है। पति ही समझा रहे हैं! हिंसा है वहां।
ब्राह्मण शूद्र से कह रहा है--पैर छुओ! हिंसा है वहां।
गुरु शिष्य से कह रहा है--आदर करो! हिंसा है वहां।
आदर अपने आप हो जाए, बात अलग। लेकिन जब कोई कह रहा है--करो! करना पड़ेगा!
तब हिंसा शुरू हो गई। जब बाप अपने बेटे को कह रहा है कि मेरी मान, क्योंकि मैं तेरा बाप हूं! हिंसा शुरू हो गई। हिंसा कुछ किसी की छाती में छुरा भोंकने की बात नहीं है। हम बहुत तरह के छुरे भोंक रहे हैं जो दिखाई नहीं पड़ते। और असली छुरे उतने खतरनाक नहीं हैं, क्योंकि असली छुरे निकाले जा सकते हैं, बचाव किया जा सकता है। अदृश्य छुरे, जो दिखाई नहीं पड़ते, वे गपे

रह जाते हैं, खपे रह जाते हैं, निकल भी नहीं सकते, किसी पुलिस थाने में रिपोर्ट भी नहीं करा सकते, कोई आपरेशन भी नहीं कर सकता, कोई सर्जरी भी नहीं हो सकती, किसी अदालत में मुकदमा भी नहीं चल सकता। किस बाप पर कौन बेटा मुकदमा चलाए?
लेकिन फिर हिंसा के फल आते हैं। जब तक बेटा कमजोर है तब तक बाप दबा लेता है। फिर नाव बदल जाती है। बेटा जवान होता है, ताकतवर हो जाता है, बाप बूढ़ा हो जाता है, कमजोर होता है, फिर बेटा दबाने लगता है। जब बेटा बुढ़ापे में दबाता है तब बाप कहता है कि बहुत बुरी बात हो रही है। लेकिन उसे पता नहीं कि दबाए का बदला लिया जा रहा है, हिंसा लौट रही है। सब बूढ़े बाप दबाए जाएंगे, क्योंकि सब छोटे बच्चे दबाए जा रहे हैं।
पत्नी को पति एक तरह से हिंसा करेगा, पत्नी दूसरी तरह से हिंसा करेगी। हिंसाओं के ढंग बदलेंगे, लेकिन हिंसा हिंसा ही पैदा करती है। अगर पति कहेगा परमात्मा मानो, तो वह कहेगी मानते हैं परमात्मा, लेकिन तुम बगल की पड़ोस में स्त्री की तरफ देख कैसे रहे थे, कैसे परमात्मा हो? तुम्हारे परमात्मा होने पर शक होता है। सिगरेट कैसे पी रहे थे? और आज शिवरात्रि है, तुम मंदिर क्यों नहीं गए हो? तो पत्नी के अपने दबाने के ढंग होंगे। वह उस ढंग से दबाएगी। वह तुमको बताएगी कि परमात्मा हो नहीं। शास्त्र में लिखा है, हो नहीं।
हमारी हिंसा सूक्ष्म है। वह हमारे सारे अंतर्संबंधों में छिपी है।
आप मुझसे पूछते हैं, जानें कैसे?
अपने सारे व्यवहार के प्रति सजग होना पड़ेगा। सुबह उठने से लेकर सांझ सोने तक अपने एक-एक गेस्चर, अपनी एक-एक मुद्रा पर भी ध्यान रखना पड़ेगा कि कहां-कहां हिंसा है। जब रास्ते पर आप चलते हो, कोई भी नहीं है रास्ते पर तब आप दूसरे आदमी होते हो--खाली रास्ते पर। और रास्ते पर दो आदमी निकल आए, आप फौरन बदल जाते हो। उस वक्त पहचानना जरूरी है कि मेरे भीतर कौन सी चीज बदल गई? आप अकड़ गए, टाई ठीक कर ली, टोपी दुरुस्त कर ली।
आप बाथरूम में एक तरह के आदमी होते हो, बैठकखाने में दूसरी तरह के आदमी होते हो। बैठकखाने में अकड़ कर बैठ गए हैं, बाथरूम में ढीले, रिलैक्स थे। बाथरूम में आदमी भला आदमी होता है, बैठकखाने में खराब हो जाता है। बाथरूम में ही छोड़ आते हैं उस आदमी को आप। कपड़े-वपड़े पहन कर आते हैं, बिल्कुल दूसरे आदमी हो जाते हैं।
अपने जीवन की प्रत्येक स्थिति में जांच जारी रखनी पड़ेगी, होश रखना पड़ेगा, अलर्ट रहना पड़ेगा--मैं क्या कर रहा हूं? क्या कह रहा हूं? कैसे देख रहा हूं? कैसे उठ रहा हूं? मेरे उठने में, मेरे देखने में, मेरे कहने में कहीं मेरी हिंसा तो नहीं है? कोई दूसरे का सवाल नहीं है, मुझे अपनी ही देखनी पड़ेगी। और अगर मुझे दिखाई पड़नी शुरू हो जाए तो बहुत आश्चर्य होगा कि चौबीस घंटे हिंसा चल रही है। ऐसा नहीं है कि आप कभी-कभी हिंसा कर रहे हैं, चौबीस घंटे हिंसा चल रही है। और जब यह पूरी तरफ से दिखाई पड़ने लगेगी, उठते- बैठते, सोते-जागते, जूता पहनते, दरवाजा खोलते, बात करते, चुप रहते, जब चारों तरफ आपको दिखाई पड़ेगी--हिंसा है, हिंसा है, हिंसा है! तो जैसे घर में आग की लपटें लग जाएं ऐसा आपको चारों तरफ दिखाई पड़ने लगेगा। और आपको दिखाई पड़ेगा--ये लपटें दूसरे को तो कभी-कभी छूती हैं, मैं तो चौबीस घंटे इनके भीतर जल रहा हूं।
आप अचानक छलांग लगा कर बाहर हो जाएंगे। पूछने नहीं जाएंगे किसी से कि हिंसा के बाहर कैसे होना? किसी से पूछने नहीं जाएंगे कि अहिंसा का आदर्श कैसे साधूं? सिर्फ हिंसक, जो अपनी हिंसा बचाना चाहते हैं, अहिंसा के आदर्श साधते हैं। लेकिन जो अपनी हिंसा को देख लेते हैं, तत्काल बाहर हो जाते हैं। फिर देर नहीं लगती, देर का कोई कारण नहीं है। क्योंकि हिंसा इतनी दुखदायी है कि उतने दुख में कोई भी नहीं जीना चाहेगा। वह तो हमें पता ही नहीं है इसलिए। हमें पता ही नहीं है। और कई बार ऐसा होता है कि हमें पता ही नहीं चलता।
मैंने सुना है, एक बार अमेरिका में एक आदमी के साथ ऐसा हुआ कि उस आदमी
को चक्कर आने लगे, उसका सिर घूमने लगा। उसे जमीन में सब चीजें चक्कर-चक्कर खाती दिखाई पड़ें, खड़ा हो तो पैर कंपें। उसने बड़े-बड़े चिकित्सकों से सलाह

ली, बड़े डाक्टरों से मिला। अमेरिका में डाक्टरों की क्या कमी! चिकित्सकों की क्या कमी! हजारों तरह की दवाइयां लगीं, हजारों तरह के इंजेक्शन दिए गए। खून, हड्डी, सबके एक्सरे और सब जांचें हो गईं। लेकिन उस आदमी को कोई बीमारी न थी, बीमारी होती तो ठीक हो जाता। अब बीमारी न थी तो दवाइयों ने और मुश्किल खड़ी कर दी।
आखिर चिकित्सक घबरा गए और चिकित्सक उससे बचने लगे। पहले तो चिकित्सक मरीजों को खोजते हैं, असली मरीज मिल जाए तो फिर चिकित्सक बचते हैं कि कहीं यह मरीज रास्ते में न पड़ जाए। चिकित्सक हाथ जोड़ने लगे, वे कहते कि और बड़ा एक्सपर्ट है, तुम उसके पास चले जाओ। पर वह आदमी ठीक होता न दिखाई पड़ा। जो सबसे बड़ा एक्सपर्ट था, विशेषज्ञ था, उसके पास गया।
उसने कहा कि भई, जहां तक मैं समझता हूं, तुम्हारी बीमारी का अभी कोई इलाज नहीं, क्योंकि तुम्हारी बीमारी ही नहीं पहचानी जा सकी है। जो बीमारी पहचानी जाए उसका इलाज हो सकता है, लेकिन तुम्हारी बीमारी ही नहीं पकड़ में आई। तो मैं समझता हूं कि इस बीमारी में तुम ज्यादा दिन जिंदा नहीं रहोगे, छह महीने से ज्यादा तुम जिंदा नहीं रह सकते, छह महीने में मर जाओगे। और यह भी पक्का है कि छह महीने में तुम्हारी बीमारी का इलाज अभी खोजा नहीं जा सकता, क्योंकि अभी तो यह बीमारी ही नहीं खोजी गई। तो तुम मरने की तैयारी कर लो। छह महीने बाद तुम मर जाओगे। और अब हम पर कृपा करो, हमें दूसरा काम करने दो। तुम बच नहीं सकते।
उस आदमी ने रास्ते में सोचा कि जब बच ही नहीं सकते तो झंझट छोड़ो। उसने सोचाः छह महीने कुल बचना है तो अब मौज से रह लो, अब क्या फायदा! तो फौरन दर्जी के पास गया और उसने कहा कि छह महीने जिंदा रहना है, दो सौ ड्रेस चाहिए, रोज नयी ड्रेस पहनूंगा। अब क्या फायदा है बार-बार बासी ड्रेस पहनने का! वह तो बहुत दिन जिंदा रहने का ख्याल था इसलिए। तो जितना कीमती से कीमती कपड़ा हो, खरीद लिया जाए। और जितनी अच्छी से अच्छी ड्रेस बनती हो, बना ली जाए।
उस दर्जी ने कहा, बड़ी कृपा, आपका नाप ले लूं। उसने नाप लिया, उसने गला नापा। उसने अपने असिस्टेंट को कहा कि लिखो सोलह। उस आदमी ने कहा, गलत! मैं हमेशा चौदह का गला पहनता हूं। उस दर्जी ने कहा, अगर चौदह का गला पहनोगे तो सिर में चक्कर आएगा, दुनिया घूमती हुई मालूम पड़ेगी। उस आदमी ने कहा, क्या कहते हो! उसने उसका गला देखा, वह चौदह का कालर पहने हुए था, गर्दन कसी थी। उस दर्जी ने कहा कि चक्कर आएगा, मैं कहे देता हूं। उसने कहा, तुम कहे क्या देते हो, चक्कर आ ही रहा है। तो कुल मामला इतना ही है! उसने पहला काम किया कि वह कालर फाड़ कर कपड़ा नीचे फेंक दिया। उसने कहा, मरे जा रहे हैं, इलाज करवा-करवा कर मरे जा रहे हैं।
लेकिन अब गले का कालर, कोई एक्सपर्ट बीमारी का पकड़े भी तो कैसे पकड़े!
वह आदमी जिंदा रहा बहुत वर्षों तक, लेकिन चक्कर अब खतम हो गए उसके। क्योंकि गला कसा था जिस चीज से उसका एक दफा ख्याल आ गया तो वह टूट गया। हमारा गला कहां कसा है, गुरुओं से पूछ रहे हैं। और जिन गुरुओं से पूछ रहे हैं वे खुद ही चौदह नंबर का कालर पहने हुए हैं, उनके खुद के गले फंसे हुए हैं।
अब मैं इधर बहुत हैरान हूं। मेरे पास बड़े साधु-संन्यासी कभी मिलने आते हैं, तो एकांत में उनका गला फंसा हुआ है। वे एकांत में मुझसे पूछते हैं, शांति का उपाय बताइए। और वे सबको शांति का उपाय जिंदगी भर से बता रहे हैं। मैं पूछता हूं कि फिर तुम लोगों को क्या बता रहे हो? तुम खुद ही कहते हो शांति का उपाय बताइए।
बड़े से बड़ा मुनि मिलता है, वह कहता है, ध्यान कैसे करें?
तो तुम क्या कर रहे हो इतने दिन से? तुम मुनि कैसे हो गए? मुनि का मतलब होता है जो मौन को उपलब्ध हो गया। अब ये मुनि हो गए, वे पूछते हैं कि ध्यान कैसे करें? मौन कैसे सधे? शांति कैसे मिले?
साधु पूछता है कि मन बड़ा बेचैन है! और वह सबको समझा रहा है। उसे भी पता नहीं है कि बेचैनी साधु होने से ठीक नहीं होगी। बेचैनी बेचैनी को पहचानने से ठीक होगी कि कहां है बेचैनी, किस जगह है, कहां गला फंसा है?

हिंसा में गला फंसा है तो हिंसा को पहचानो, उसकी फिक्र करो। क्रोध में गला फंसा है तो क्रोध की फिक्र करो। चिंता है तो चिंता को खोजो। और खोजने के लिए क्या करना पड़ेगा?
सिवाय इसके कुछ भी करने की जरूरत नहीं है कि आप थोड़ा होशपूर्वक जीने लगें। कल सुबह उठें, थोड़ा होशपूर्वक उठें। और देखें कल सुबह से कि कब क्या होता है मन में, कैसे हिंसा पकड़ती है, कैसे घृणा पकड़ती है, कैसे क्रोध पकड़ता है। एक आदमी सामने दिखाई पड़ता है और आप फौरन--कि यह आदमी ने कल मुझे गाली दी थी--और भीतर जहर हिंसा का खड़ा हो गया।
अब जिस आदमी ने कल गाली दी थी वह आदमी कल जा चुका, यह आदमी वह थोड़े ही है। चौबीस घंटे में गंगा का बहुत पानी बह जाता है। यह आदमी भी चौबीस घंटे में बह चुका बहुत। अब आप तैयार हो गए कि कहीं यह गाली न दे। और उस आदमी ने देखा कि यह आदमी फिर अकड़ कर बैठा है, शायद कल की तैयारी कर रहा है। क्योंकि वह भी तो कल में ही जी रहा है, वह भी अकड़ कर आ गया। अब तैयारी शुरू हो गई, अब हिंसा शुरू होती है।
वह रूस और अमेरिका की हिंसा इस तरह की ही है। हिंदुस्तान-पाकिस्तान
की हिंसा इस तरह की ही है। इधर दिखा कि कुछ मिलिट्री के जवान कवायद कर रहे हैं, तो उधर घबराहट हो गई। इधर दिखा कि बंदूक तैयार हो रही है, तो उधर उन्होंने बंदूक तैयारी की। उन्होंने बंदूक तैयार की, तो हम और बड़ी बंदूक ले आए। फिर भय फैलता चला जाता है।
एक-एक आदमी अपनी हिंसा को नहीं देख पाता। अपनी हिंसा को न देखने की वजह से हिंसक व्यवहार करता है। पड़ोस का आदमी डर कर हिंसक व्यवहार करता है। चारों तरफ हिंसक व्यवहार होता चला जाता है। और हम सब हिंसा में डूबे खड़े रह जाते हैं।
नहीं, किसी पड़ोसी की तरफ देखने की जरूरत नहीं है। मेरी हिंसा मुझे देखने की जरूरत है कि उसे मैं पहचान लूं। और यह मेरी समझ है कि अगर आप पहचान गए तो आप हिंसा में एक क्षण नहीं जी सकते, आप बाहर हो जाएंगे। कोई मनुष्य नहीं जी सकता। जी सकता है, सिर्फ एक ही शर्त है कि वह पहचाने न, देखे न, कहीं और लगा रहे। लगे रहने की तरकीबें हैं हमारी। हमने बहुत तरकीबें ईजाद की हैं। उनमें सबसे बड़ी तरकीब आदर्श की है।
आदर्श हमारी बड़ी ही कनिंग और चालाकी की तरकीब है। आदर्श हमको यह मजा
दे देता है कि हम कहते हैं कि थोड़ी-बहुत हिंसा है, ठीक है, लेकिन कल ठीक कर लेंगे। हम अभी किताब पढ़ेंगे, अहिंसा-दर्शन पढ़ेंगे, अहिंसा का शास्त्र पढ़ेंगे। उसमें हम पढ़ कर देखेंगे कि अहिंसक कैसे हुआ जाए। पानी छान कर पीएंगे, रात खाना नहीं खाएंगे, मंदिर रोज जाएंगे नियमित--अहिंसा को हम ले आएंगे। तो अभी आज हिंसा है, कोई हर्जा नहीं, आज सह लेंगे, कल तो अहिंसा आ जाएगी।
लेकिन चौबीस घंटे हिंसा सहेंगे, चौबीस घंटे में हिंसा और मजबूत होगी; क्योंकि चौबीस घंटे में हिंसा ने और भी यात्रा कर ली। कल फिर आज की तरह आएगा, आदर्श फिर कल चला जाएगा। आदर्श सदा कल में होते हैं और तथ्य सदा आज होते हैं। इसलिए जिसे जिंदगी को बदलना है उसे तथ्य का दर्शन करना पड़ेगा और जिसे जिंदगी को नहीं बदलना है, बदलने से बचना है, वह आदर्श बना कर बैठे, इससे ज्यादा रामबाण औषधि नहीं है। आदर्श बना लें और बैठ जाएं। आदर्श कल पर छूटता चला जाता है, छूटता चला जाता है।
मैंने सुना है, एक आदमी को यह ख्याल आ गया कि मैं सारी दुनिया में जो
भी श्रेष्ठतम ग्रंथ हैं वे इकट्ठे कर लूं। किसी गुरु ने उसको बताया कि जब तक तुम्हें ज्ञान न हो तब तक परमात्मा न मिलेगा। उसने कहा, ज्ञान कैसे हो? उसने कहा, शास्त्र से होगा।
तो उसने कहा कि पहले शास्त्र इकट्ठे कर लें। उसने सारे शास्त्र इकट्ठे कर लिए। लेकिन शास्त्र इकट्ठे करने में जिंदगी बीत गई। सारी दुनिया में, उसने कहा, एकाध शास्त्र भी रह जाए और कुछ ज्ञान वंचित रह जाए, इसलिए पहले सब शास्त्र इकट्ठे कर लूं। ज्ञान कल कर लेंगे, पहले शास्त्र इकट्ठे कर लूं। उसने सारे शास्त्र इकट्ठे कर लिए। इकट्ठे करते-करते उसकी जिंदगी तो अज्ञान में बीत गई।

शास्त्र इकट्ठे करने वालों की जिंदगी अज्ञान में ही बीतती है। क्योंकि ज्ञान तो अभी हो सकता है और शास्त्र तो कल पढ़ेंगे, परसों पढ़ेंगे, फिर समझेंगे, फिर साधेंगे, तब होगा।
सत्तर साल का हो गया। शास्त्र तो इकट्ठे हो गए, लेकिन जिंदगी हाथ से निकल गई, बिस्तर पर लग गया। चिकित्सकों ने कहा, बचने की ज्यादा उम्मीद नहीं। उसने कहा, मुश्किल हो गई, मैंने शास्त्र इकट्ठे किए, पढूंगा कब? तो उसने कहा, कुछ ऐसा करो कि मेरे शास्त्र इकट्ठे करने की मेहनत बेकार न चली जाए। कुछ पंडितों को बुलाओ जो संक्षिप्त कर दें, क्योंकि इतने शास्त्र अब तो पढ़े नहीं जा सकते; वक्त जा चुका है।
दस बड़े पंडित बुलाए गए। फिर वही भूल। पहले शास्त्र इकट्ठे करने की भूल की, अब पंडित इकट्ठे करने की भूल की। और उसको ख्याल नहीं आया कि पंडित इकट्ठे हुए। दस पंडित! एक पंडित हो तो कुछ काम भी हो जाए; दस पंडित हों तो काम हो ही न सके कुछ। क्योंकि दस पंडित दस बातें करें, शास्त्र का संक्षिप्त करें तो दस प्रकार से करें और उनमें विवाद भारी हो जाए। वह आदमी कहे कि मैं मरने के करीब हूं, तुम जल्दी संक्षिप्त करो! लेकिन वहां दस पंडित, वहां जल्दी कैसे हो, वहां तो और देर होने लगी। वह आदमी बहुत घबरा गया। उसने कहा कि और पंडित बुलाओ, इन दस से काम नहीं होता। क्योंकि मैं मरने के करीब हूं।
और पचास पंडित बुला लिए, सौ पंडित बुला लिए। जितने पंडित बढ़ते गए उतना
ही उस आदमी को लोग भूलते गए, वह अपनी खाट पर पड़ा रहा और पंडित अपने विवाद में पड़े रहे। वह बार-बार चिल्ला कर कहता था कि भाइयो, मैं बिल्कुल मरने के करीब हूं, तुम जल्दी संक्षिप्त करो! लेकिन उसकी आवाज ही नहीं सुनाई पड़ती थी। जहां सौ पंडित हों वहां किसी की आवाज कैसे सुनाई पड़ सकती है! कुछ आवाज नहीं सुनाई पड़ती थी।
आखिर उसने अपने चिकित्सकों को कहा कि क्या मैं मर जाऊंगा? ये पंडित तो विवाद में लगे हैं, शास्त्र संक्षिप्त होते ही नहीं!
किसी तरह उन्होंने संक्षिप्त किया। जब वे संक्षिप्त करके लाए तब भी कोई पचास ग्रंथ थे, संक्षिप्त जब उन्होंने किया। उस आदमी ने कहा, तुम पागल हो! लेकिन तब वह कोई अस्सी साल का हो चुका था, उसकी आंखें जवाब दे गई थीं। उसने कहा, अब मैं पढ़ भी नहीं सकता, अब तो तुम मुझे पढ़ कर सुना दो। उन्होंने कहा, पचास ग्रंथ हैं। पूरे हो पाएं न हो पाएं। तो उसने कहा, और संक्षिप्त करो, इतना संक्षिप्त करो कि तुम मुझे पढ़ कर सुना दो।
उन्होंने फिर संक्षिप्त किया, फिर पांच साल लग गए। जब वे गए तब वे एक छोटी सी किताब में सब संक्षिप्त करके ले गए, लेकिन उस आदमी का होश चला गया, सांस तो चल रही थी। चिकित्सकों ने कहा, भई, बहुत देर करके आए। अब वह सुन भी नहीं सकता, उसका होश भी नहीं है। अब तो तुम ऐसा करो कि एक ही नाम उसके कान में जोर से कह दो, शायद सुन ले।
पंडित विवाद करने लगे कि कौन सा नाम कहा जाए--राम कहें, कि अल्लाह कहें, कि बुद्ध कहें, कि महावीर कहें, कि जय जिनेंद्र कहें, कि क्या कहें क्या न कहें! ओम कहें कि आमीन कहें! वे बहुत विवाद में पड़ गए। चिकित्सकों ने कहा, वह मर रहा है, जल्दी कहो! उन्होंने कहा, पहले तय हो जाए तभी हम कुछ कह सकते हैं।
वे तय करते रहे, वह आदमी मर गया। जब वे तय कर पाए तब तक वह मर चुका था। उन्होंने कहा, हमने तय तो कर लिया, वह आदमी कहां है? उन्होंने कहा, उसकी अरथी जा चुकी है।
आदर्शों में, कल में जीने वाला आदमी ऐसे ही नष्ट होता है।
नहीं, जो करना है वह अभी और आज और यहीं। कल पर छोड़ना खतरनाक है, क्योंकि कल है नहीं, जो है वह आज है, अभी है और यहीं है। जो भी करना है। अगर हिंसा को पहचानना है तो अभी पहचान लें, कल के लिए छोड़ना खतरनाक है। क्योंकि हो सकता है कल आप न हों। कल आप होंगे, यह पक्का है? कल का कुछ भी पक्का नहीं है। तो कल के लिए सोचना कि कल अहिंसक हो जाएंगे--गलत है, खतरनाक है। अभी!
लेकिन अभी अहिंसक कैसे होंगे? अभी तो हिंसा ही जानी जा सकती है। यद्यपि जो हिंसा को जान ले वह इसी क्षण अहिंसक हो सकता है। जिसने भी हिंसा

को जान लिया वह अहिंसक हो गया। और जिसने क्रोध को जान लिया, घृणा को जान लिया, वह प्रेम को उपलब्ध हुआ। और जिसने अपने अज्ञान को पहचान लिया वह तत्काल ज्ञान के मंदिर में प्रविष्ट हो जाता है।

अंतिम प्रश्न, एक मित्र ने पूछा है कि आपकी बातें तो ऐसी हैं कि इससे कहीं अनीति न फैल जाए!

जैसे कि अनीति कुछ कम फैली हुई है और मेरी बातों से फैल जाएगी। हालतें
तो ये हैं कि अब फैलाने की कितनी ही कोशिश करो, तो भी जितनी फैली है उससे ज्यादा करना बहुत मुश्किल है। अनीति, वे कह रहे हैं, कहीं फैल न जाए। शायद वे सोचते होंगे कि नीति फैली हुई है। तो उन्होंने पूछा है कि आपकी बात से कहीं अनीति न फैल जाए!
यह डर हमें सदा सताता है। और यह बड़ा मजेदार है, मजेदार डर है। क्योंकि अनीति फैली हुई है। अगर नीति ही फैली हुई होती तब तो कोई जरूरत न थी। वह तो दस हजार साल की मेहनत से भी नीति नहीं फैली है, अनीति ही फैली हुई है। और अब हम डरते भी हैं कि कहीं अनीति न फैल जाए। यह हमारा डर ऐसा ही है जैसे भिखमंगा डर कर बैठा हो पुलिस थाने के पास कि हमारी कहीं चोरी न हो जाए। आपकी चोरी काहे की हो जाएगी? आप मजे से घूमिए! आपको पुलिस थाने की कोई जरूरत नहीं है। आप बिल्कुल सुरक्षित हैं, आपकी असुरक्षा ही नहीं है। अनीति इतनी है मनुष्य के पास और अनीति क्या सोचते हैं आप? कोई नयी अनीति सोच सकते हैं? क्या नयी अनीति सोच सकते हैं? दस हजार साल में सिर्फ अनीति के सिवाय क्या फैला है? और ऐसा नहीं है कि आज ही अनीति फैल रही है। अगर आप थोड़े हिम्मतवर हों तो बहुत घबरा जाएंगे... । लेकिन हम घबराहट की वजह से देखते भी नहीं, तो हम मन में ही सोचते रहते हैं कि बड़ी नीति है, सब ठीक है। जब कि सब गलत है।
अगर आप अपने पुराने ऋषि-मुनियों की कथाएं पढ़ें तो बड़ा मुश्किल हो जाए
कि इनको ऋषि-मुनि कहें कि न कहें। क्योंकि शायद एकाध ऋषि-मुनि हो जो किसी की स्त्री न ले भागे, जो कहीं व्यभिचार न करे, मुश्किल है खोजना। अगर आप अपने पुराने देवताओं को देखें तो बहुत घबरा जाएं। ब्रह्मा ने अपनी लड़की को पैदा किया और उसी पर मोहित हो गए और उसी से संसार पैदा हुआ।
अब इन ब्रह्मा की पूजा चल रही है। अब अनीति मैं फैला रहा हूं कि ब्रह्मा जी फैला रहे हैं! वे अभी भी पूजे जा रहे हैं। और अब तक किसी ने नहीं कहा कि इस बात को तो इनकार करो! इस बात को तो बिल्कुल बरदाश्त नहीं करना चाहिए। इसने अपनी लड़की के साथ बलात्कार किया है!
इंद्र देवता के हाथ जोड़े जा रहे हैं। उनका कुल काम इतना रहा जिंदगी में कि कहीं कोई सुंदर स्त्री हो तो उसको भ्रष्ट करो। उनके हाथ जोड़े जा रहे हैं। अब भी यज्ञ-हवन हो रहे हैं। उनमें इंद्र देवता से प्रार्थना की जा रही है कि हे वर्षा करो!
वे वर्षा करेंगे? इन सब देवी-देवताओं की अगर पूरी कहानियां पढ़ें... जिनको आप प्रातः-स्मरणीय पांच कन्याएं कहते हैं, उनमें एक भी कन्या नहीं है। एक भी कन्या नहीं है उनमें। और सब विवाह होने के पहले बच्चे सबको पैदा हुए। लेकिन वे देवी-देवताओं से पैदा हुए हैं। आश्चर्यजनक है!
युधिष्ठिर को धर्मराज कहते हैं। जुआ खेल रहे हैं धर्मराज! और अभी जो जुआ खेल रहे हैं उनको सजा दे रहे हैं और पुराने धर्मराज जुआ खेल रहे हैं। और अनीति फैल जाएगी मेरी बातों से! और जुआरियों को धर्मराज कह रहे हैं! अपनी औरत को दांव पर लगा रहे हैं। औरत को भी दांव पर लगाने में कोई शर्म नहीं है और धर्मराज भी हैं, उसमें कोई कठिनाई भी नहीं है, दोनों बातें एक साथ चल सकती हैं।
क्या? किस-किस बात को आप कह रहे हैं कि... नीति है कहां? दस हजार साल से--जब से मनुष्य का इतिहास ज्ञात है--आदमी अनीति में ही जी रहा है। सब तरह की अनीति चल रही है। अब इसको बदलने का सवाल है। और यह बदलेगी तब जब कि हमारी नीति की दृष्टि ही बदले, जब हमारा नैतिक दृष्टिकोण ही बदले। वह नैतिक दृष्टिकोण बदलने के लिए ही मैं कह रहा हूं। जो मैं कह रहा हूं वह इसीलिए कह रहा हूं कि यह अगर हमें समझ में आ जाए कि हमने जो मनुष्य का

ढांचा तैयार किया था, जो पैटर्न बनाया था, वह गलत सिद्ध हुआ। हमने मनुष्य को जिस तरह से नैतिक बनाने की कोशिश की थी वह भ्रांत सिद्ध हुई। वह सफल नहीं हुई, वह असफल हो गई। अब हमें कुछ मनुष्य के लिए और तरह से सोचना पड़ेगा। और ध्यान रहे, नीति थोपी नहीं जा सकती, नीति विकसित होती है। नीति थोपी नहीं जा सकती, नीति विकसित होती है।
हम नीति को थोपते रहे हैं। झूठ बोलने वाले आदमी को समझा रहे हैं--सच बोलो! हिंसक को समझा रहे हैं--अहिंसक हो जाओ! वही जो मैंने अभी कहा, हम आदर्श थोप-थोप कर आदमी को ठीक करने की कोशिश कर रहे हैं। आदमी ठीक नहीं होता।
हमें आदर्श हटा देना पड़े, आदमी जैसा है उसे जानना पड़े, पहचानना पड़े।
और उस पहचान, उस ज्ञान से जो क्रांति आए, वह क्रांति शायद जगत में नीति का विस्फोट, एक्सप्लोजन हो जाए।
अब तक नीति नहीं रही है। कभी-कभी कोई एकाध आदमी नैतिक पैदा हो जाता है। अरबों-खरबों लोगों में कभी कोई एकाध आदमी नैतिक हो जाता है। इससे कुछ हल है? करोड़ पौधे हम लगाएं, एक पौधे पर फूल आ जाएं, तो यह कोई माली की प्रशंसा है? कभी कोई एक बुद्ध पैदा हो जाए, कभी कोई एक कृष्ण पैदा हो जाए, कभी कोई एक क्राइस्ट पैदा हो जाए, इससे क्या फर्क पड़ता है! जिनको अंगुलियों पर गिना जा सके, उनसे क्या फर्क पड़ने वाला है!
नहीं, आदमी के साथ कहीं कोई बुनियादी भूल हो रही है। हमने जो व्यवस्था
दी है, वह व्यवस्था ही शायद आदमी को नैतिक नहीं होने दे रही है। और एक छोटी सी बात आपके ख्याल में दे दूं--हमारी समस्त नैतिक धारणाएं सप्रेसिव हैं, दमन करने वाली हैं। इसलिए जिसका हम दमन करते हैं उसका ही विस्फोट होता रहता है। और जीवन दमन से नहीं बदलता, जीवन ज्ञान से बदलता है।
इस संबंध में कल आपसे बात करूंगा।
मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नये समाज की खोज
तीसरा प्रवचन

जीवन-क्रांति का प्रारंभः भय के साक्षात्कार से

मेरे प्रिय आत्मन्!
"नये समाज की खोज", इस संबंध में तीन सूत्रों पर मैंने बात की है। आज चौथे सूत्र पर बात करूंगा और पीछे कुछ प्रश्नों के उत्तर।
मनुष्य का मन आज तक भय के ऊपर निर्मित किया गया है। सारी संस्कृति, सारा धर्म, जीवन के सारे मूल्य भय के ऊपर खड़े हुए हैं। जिसे हम भगवान कहते हैं, वह भी भगवान नहीं है, वह भी हमारे भय का ही भवन है। है कहीं कोई भगवान, लेकिन उसे पाने के लिए भय रास्ता नहीं है। उसे पाना हो तो भय से मुक्त हो जाना जरूरी है।
भय जीवन में जहर का असर करता है, विषाक्त कर देता है सब। लेकिन अब तक आदमी को डरा कर ही हमने ठीक करने की कोशिश की थी। आदमी तो ठीक नहीं हुआ, सिर्फ डर गया है।
मैंने सुना है, एक फकीर के पास एक औरत अपने बेटे को लेकर गई थी। उसने
उस फकीर को कहा कि यह मेरा बेटा मेरी कुछ सुनता नहीं है, इसे आप थोड़ा डरा दें कि मेरी सुनने लगे। और यह आज्ञा का उल्लंघन करता है और छोटी-छोटी बातों में तर्क-वितर्क करता है। आप थोड़ा भयभीत कर दें ताकि यह ठीक हो जाए। वह फकीर बहुत अदभुत आदमी था। जैसे ही उसने यह सुना, वह छलांग लगा कर खड़ा हो गया और जोर से उसने हाथ हिलाए, सिर हिलाया, जोर से चीख मारी। बेटा तो घबरा कर भाग गया। मां घबरा कर बेहोश हो गई। और जब मां बेहोश हो गई तो घबरा कर फकीर भी भाग गया। थोड़ी देर बाद जब मां होश में आई, तो फकीर वापस लौट कर अपने तख्त पर बैठ गया। फिर थोड़ी देर बाद पीछे से बेटा लौटा।
उसकी मां ने कहा कि यह आपने क्या किया? लड़का तब भी थर-थर कांप रहा था। फकीर की भी सांस चढ़ गई थी। स्त्री का भी चेहरा बिल्कुल फीका हो गया था, जैसे खून चला गया हो। इतना डराने को न कहा था, उस स्त्री ने कहा। उस फकीर ने कहा, जब डराना शुरू होता है तो कहां रुकें, यह भी तो तय करना मुश्किल है। तो उस स्त्री ने कहा, बेटे को डराने को कहा था, मुझे तो डराने को नहीं। फकीर ने कहा, मैं तो बेटे को ही डरा रहा था, तू डर गई। और तू ही नहीं डर गई, जब तू बेहोश हुई तो मैं खुद ही डर कर भाग गया। उस फकीर ने कहा, जब भय आता है तो कौन डरेगा और कौन बचेगा, कहना बहुत मुश्किल है।
हजारों साल से आदमी को डरा कर ठीक करने की कोशिश चल रही है। उसमें सब
डर गए हैं। उसमें वे डर गए हैं, जिन्हें डराने का आयोजन किया था। वे भी डर गए हैं, जिन्होंने डराए जाने के लिए आग्रह किया था। वे भी डर गए हैं, जिन्होंने डरने की व्यवस्था की थी। सब डर गए हैं। ऐसा नहीं है कि साधारण आदमी डर गया है। जिन्हें हम बहुत बड़े-बड़े लोग कहते हैं, वे भी डरे हुए लोग हैं। हां, डर के रूप थोड़े-बहुत भिन्न होंगे। जिनको हम बहुत निर्भीक और बहुत अभय लोग कहते हैं, वे भी डरे हुए लोग हैं, उनके डर की दिशा भर बदल जाती है।
बहुत संतों ने कहा है, किसी से मत डरना सिवाय परमात्मा को छोड़ कर।
लेकिन डर अगर परमात्मा का है तो भी डर है। और ध्यान रहे, किसी से भी डरना, सांप से डरना, बिच्छू से डरना उतना बुरा नहीं है, बुद्धिमानीपूर्वक है। लेकिन ईश्वर से डरना तो अत्यंत मूढ़तापूर्ण है। क्योंकि जिससे हम भयभीत हो जाते हैं उससे हमारा संबंध असंभव हो जाता है। भय कभी संबंध नहीं बनने देता। संबंध तो बनाता है प्रेम! और जहां भय है वहां प्रेम की कोई संभावना नहीं। जहां भय है वहां घृणा हो सकती है। अगर मैं आपसे डर जाऊं तो मैं आपको प्रेम नहीं कर सकता, सिर्फ घृणा कर सकता हूं। हां, प्रेम दिखा सकता हूं, लेकिन भीतर मेरे घृणा होगी।
इस दुनिया को नास्तिक बनाने में उन लोगों का हाथ है जिन्होंने कहा-- ईश्वर से डरो! क्योंकि ईश्वर से डर का अंतिम परिणाम ईश्वर के प्रति घृणा का भाव है। और अंततः फिर जब घृणा बहुत बढ़ जाए तो आदमी इनकार कर देगा कि

नहीं है ऐसा कोई ईश्वर! जिससे चौबीस घंटे डरना पड़े, उस ईश्वर को इनकार करना ही पड़ेगा।
आदमी ने धीरे-धीरे ईश्वर को इनकार किया। वह उसके इनकार के पीछे कारण ईश्वर नहीं है। ईश्वर की क्या गलती है कि कोई उसे इनकार करे! नहीं, उसका कारण ईश्वर के साथ जुड़ा हुआ भय है। हमने भय की ही प्रतिमा बना ली है और भगवान नाम दे दिया है। सारा धर्म डरा रहा है। नरक का भय दिया हुआ है, स्वर्ग के प्रलोभन दिए हुए हैं। पाप का दंड है, पुण्य के पुरस्कार हैं। और ध्यान रहे, पुरस्कार भय का ही रूप है। एक आदमी को हम कहते हैं, गलती करोगे तो नरक में सड़ोगे। यह भी एक डर है। और यह भी एक डर है कि अगर ठीक न किया तो स्वर्ग चूक जाएगा। यह भी एक डर है। स्वर्ग है, नरक है; पाप है, पुण्य है; और सब आदमियों को डरा दिया है।
तो आत्मा सिकुड़ गई भय के कारण। आदमी कदम नहीं उठा पाता, जी नहीं पाता। क्योंकि भय इतना है कि जीए कैसे? और ऐसा नहीं है कि डराने वाले न डर गए हों। वे भी डर गए हैं। डर संक्रामक है। अगर मैं आपको डराऊं, तो बहुत ज्यादा देर नहीं लगेगी जब कि मैं खुद भी डर जाऊंगा। क्योंकि जब आप सब में भय संक्रामक हो जाएगा तो मैं बच कर कहां जाऊंगा? वह भय मुझे भी पकड़ लेगा। साधु-संन्यासी सब डरे हुए हैं।
अभी एक युवक मेरे पास आया और वह बिल्कुल थर-थर कांप रहा था। तीस साल उसकी उम्र होगी। वह बिल्कुल थर-थर कांप रहा था। मैंने पूछा, क्या हुआ? उसने कहा कि मैं सोनगढ़ गया था। कानजी को सुनने गया था। वहां मैंने यह सुना कि अगर यह जन्म चूक गया मनुष्य का तो चौरासी कोटि योनियों में भटकना पड़ेगा। तीन महीने वहां रहा हूं। और मुझे बचपन से कनखजूरा से डर लगता है। तो मैं आपसे यह पूछने आया हूं कि कहीं मर कर कनखजूरा तो नहीं होना पड़ेगा? तीन महीने निरंतर सुबह से शाम तक अगर यही सुनना पड़े कि मनुष्य जन्म बहुत दुर्लभ है, बड़ी मुश्किल से मिला है। और अगर जरा चूक गए तो चौरासी कोटि योनियों की भटकन है, फिर कहीं दुबारा मनुष्य जन्म मिलेगा। तो किसी संवेदनशील व्यक्ति के मन में भय घुस जा सकता है, घबराहट बैठ जा सकती है। यूरोप में ईसाइयों के दो संप्रदाय थे। एक संप्रदाय का नाम था शेकर।
वह संप्रदाय धीरे-धीरे खतम हो गया। एक दूसरे संप्रदाय का नाम था क्वेकर। वह अभी भी जिंदा है। शेकर का और क्वेकर का मतलब यह था कि उनके गुरु जब प्रवचन देते थे, तो जो गुरु प्रवचन देते वक्त, सुनने वाले शेक करने लगते थे, कंपने लगते थे, इतना घबरा देते थे उनको नरक से--वह संप्रदाय शेकर था। और क्वेकर उससे भी बड़ा था। बड़ा यह कि जैसे कि भूकंप आ गया हो, इतना किसी को घबरा दें, अर्थक्वेक हो गया हो, तो क्वेकर। वह इतना कंप जाए आदमी। वेशली जब बोलता था, तो हाल में स्त्रियां बेहोश हो जाती थीं। इतना घबरा देता था। नरक के इतने स्पष्ट चित्र खींचता था।
और कुछ दिनों तक मंदिर-मस्जिदों में टंगे हुए थे चित्र, चर्चों में खुदे हुए थे--नरक में आग की लपटें और कढ़ाहे और उनमें जलते हुए लोग। और जब इनका चित्र ठीक से खींचा जाए और जब पूरे समाज में एक धारा बहती हो, तो एक साधारण, कमजोर आदमी को घबरा देना कोई कठिन है!
लेकिन सोचा यह गया था कि इसी डर से हम आदमी को नैतिक बना लेंगे, धार्मिक बना लेंगे, अच्छा बना लेंगे। आदमी अच्छा नहीं बना, धार्मिक नहीं बना, नैतिक नहीं बना, सिर्फ भयभीत हो गया। और भय स्वयं बड़े से बड़ा अधर्म है। भय से बड़ा कोई भी अधर्म नहीं है। सारे मनुष्य की चेतना भय से भर गई है। उसकी वजह से पंगु हो गई, क्रिपिल्ड हो गई, लकवा लग गया, सब पैरालाइज्ड हो गया। आदमी का मस्तिष्क, बुद्धि, सब कुंठित हो गई। पुराना मनुष्य भय पर खड़ा है।
अगर नये मनुष्य को जन्म देना हो तो भय के सब जाल तोड़ देने पड़ेंगे। और समझना पड़ेगा कि सब भय घातक हैं।
इसका यह मतलब नहीं है कि बस हार्न बजा रही हो और आप निर्भय होकर सामने खड़े हो जाएं। मैं यह नहीं कह रहा हूं। वह भय बिल्कुल ही विवेकयुक्त है। भय नहीं है, बुद्धिमानी है। लेकिन एक आदमी सोच रहा है कि चौरासी कोटि योनियों में भटकना पड़ेगा। यह भय मानसिक है, काल्पनिक है, सिर्फ व्यवस्थागत है, किन्हीं लोगों का सिखाया हुआ है।

कितने नरक हैं? कोई गुरु कहता है, सात नरक हैं। कोई गुरु कहता है, तीन नरक हैं। कोई गुरु कहता है, एक नरक है। मक्खली गोशाल था महावीर के समय। वह कहता था, इन गुरुओं को कुछ भी पता नहीं; ये अभी आगे गहराई तक नहीं गए। सात सौ नरक हैं!
और एक के बाद एक नरकों के भय हैं, एक से एक खतरनाक नरक हैं। और आदमी को
सब तरह से डराने का इंतजाम किया है। सोचा यह था कि भय से हम आदमी को अच्छा बना लेंगे। आज भी यही सोचा जाता है। आज भी बाप बेटे को डराता है, सोचता है अच्छा बना लेंगे। आज भी सरकार जनता को डराती है, सोचती है अच्छा बना लेंगे। आज भी हम चोर को डराते हैं कि हम अच्छा बना लेंगे।
लेकिन डर से क्या अच्छा हुआ? चोर कम हुए? बेईमानी कम हुई?
कारागृह रोज बढ़ते जाते हैं, चोर रोज बढ़ते जाते हैं। कोई कमी नहीं हुई, अदालतों ने कोई फर्क नहीं लाया, पुलिस से कोई अंतर नहीं पड़ता, कानून कुछ डरा नहीं पाता। भगवान थक गया, स्वर्ग-नरक सब थक गए; आदमी रोज बिगड़ता ही चला गया।
इस सत्य को ठीक से समझ लेना जरूरी है कि भय से आदमी नहीं बदला जा सका।
और भयभीत और हो गया, यह और मुसीबत हो गई। यह भयभीत आदमी और भी मुश्किल की बात हो गया। क्योंकि भय खुद ही एक बहुत बड़ी अनैतिकता है।
भय से मुक्त होना जरूरी है। मानसिक, साइकोलाजिकल फियर्स, वे भय जो हमारे मन में हमको पकड़े रहते हैं। अभी एक व्यक्ति दोपहर में आज मेरे पास आए। उन्होंने कहा, मरने के बाद क्या होगा?
अब मरने के बाद का जिस आदमी को विचार उठने लगे कि मरने के बाद क्या होगा, वह आदमी एक अर्थों में मर चुका है। उस आदमी के हाथ से जिंदगी निकल गई। अगर जिंदा है आदमी, अभी जिंदा है, तो वह अभी जीएगा। और कहेगा, जब मौत आएगी तब मौत को देख लेंगे, अभी तो मौत आई नहीं।
सुकरात मर रहा था, उसके मित्र रो रहे थे। उसने कहा, रोओ मत। उसके मित्रों ने कहा, हम कैसे न रोएं, मौत द्वार पर खड़ी है! थोड़ी देर बाद आपको जहर दे दिया जाएगा। आप घबरा नहीं रहे हैं?
सुकरात ने कहा कि मेरे सामने दो ही विकल्प हैं। या तो मैं मर ही जाऊंगा बिल्कुल। और अगर बिल्कुल ही मर गया, जैसा कि नास्तिक कहते हैं, अगर बिल्कुल ही मर गया तो डरने की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि डरने वाला न बचेगा। और या फिर जैसा कि आस्तिक कहते हैं कि आत्मा नहीं मरेगी, मैं नहीं मरूंगा, शरीर ही मरेगा। अगर शरीर ही मरेगा और सुकरात मैं बच ही जाऊंगा, तब तो डर की कोई जरूरत ही नहीं। बहरहाल, सुकरात ने कहा, दो में से एक ही कोई बात हो सकती है। इसलिए डर की कोई भी जरूरत नहीं। या तो बच ही जाऊंगा या मर ही जाऊंगा। बच जाऊंगा, तब डर की कोई जरूरत नहीं है। और मर ही जाऊंगा, तब तो डर की बिल्कुल ही जरूरत नहीं है। क्योंकि डरने वाला ही नहीं बचेगा, डराएगा कौन? डरेंगे कैसे?
सुकरात बुद्धिमानी की बात कह रहा है। वह यह कह रहा है कि मृत्यु के बाद क्या है, यह मर कर देख लेना, बचो तो देख लेना। न बचो तो देखने का कोई सवाल ही नहीं है।
लेकिन आदमी जिंदा है और वह पूछ रहा है कि मरने के बाद क्या होगा?
इस पूछने वाले आदमी के भीतर जिंदगी राख हो गई है। यह पूछने वाला आदमी
अब मरने की तैयारी कर रहा है, जीने की नहीं। यह पूछने वाला आदमी किसी न किसी गहरे अर्थों में रुग्ण हो गया है।
सिग्मंड फ्रायड ने अपनी एक किताब में एक छोटा सा वाक्य लिखा है जो सभी धार्मिक लोगों को ठीक से समझ लेना चाहिए। सिग्मंड फ्रायड ने लिखा है कि जब भी कोई आदमी धर्मगुरुओं के पास पूछने जाता है कि मृत्यु क्या है? पुनर्जन्म क्या है? आगे क्या है? तो समझ लेना चाहिए कि इस आदमी को मानसिक रूप से रुग्णता आ गई।
यह बात ठीक है। यह बात इसलिए ठीक है कि जब तक हम स्वस्थ हैं तब तक हम बीमारी के संबंध में पूछने नहीं जाते। और अगर कोई स्वस्थ आदमी डाक्टर के पास चला जाए और कहे कि जरा जांच कर लें, कोई बीमारी तो नहीं हो गई है! तो समझना कि बीमारी से भी बड़ी बीमारी हो गई है। अब डाक्टर इसका इलाज भी नहीं कर पाएगा।

जब हम आनंद में होते हैं तो हम कभी नहीं पूछते, कभी नहीं पूछते कि जीवन क्यों है। लेकिन जब हम दुख में होते हैं तो हम पूछना शुरू कर देते हैं कि जीवन क्यों है? जीवन का अर्थ क्या है? जब आप आनंद में होते हैं तब आप यह नहीं पूछते कि आनंद का प्रयोजन क्या है। लेकिन जब दुख में होते हैं तब जरूर पूछते हैं कि दुख का क्या प्रयोजन है? जीवन में दुख क्यों है? क्यों, भविष्य के क्यों, जीवन के चरम अर्थ के संबंध में पूछे गए क्यों, रुग्ण चित्त की खबर देते हैं।
भय--बहुत तरह के भय--जो मानसिक हैं, हमें चारों तरफ से दबाए हुए हैं। उन्हें हमें पहचान लेना पड़ेगा। उन्हें हम बिना पहचाने छोड़ भी न सकेंगे। जिस भय को हम पहचान लेंगे वह छूट जाएगा। क्योंकि अगर दिखाई पड़ जाए कि यह भय बिल्कुल ही व्यर्थ है, इस भय का कोई भी अर्थ नहीं, तो उसके रहने का कोई कारण नहीं रह जाता।
लेकिन हमने क्या किया है? हम पहचान नहीं पाते, हम नये-नये नाम दे देते हैं। और नाम हमारे धोखे के हैं। हम इतनी ज्यादा चालाकी में जीए हैं हजारों वर्षों में कि उस चालाकी ने बहुत अजीब हालत कर दी है। उसने चीजों पर ठीक-ठीक नाम नहीं रहने दिए। हर डब्बे पर नाम बदल दिया है। अंदर कुछ और है, ऊपर नाम कुछ और है। इसलिए खोज भी बहुत मुश्किल हो गई है कि कौन सी चीज कहां है। अब एक आदमी को हम कहते हैं--यह बहुत अच्छा आदमी है। और सौ अच्छे आदमियों में से अट्ठानबे अच्छे आदमी अच्छे नहीं होते, सिर्फ भीरु होते हैं, सिर्फ डरे हुए लोग होते हैं और डर की वजह से अच्छे मालूम होते हैं। लेकिन हम कहेंगे कि मैं बहुत अच्छा आदमी हूं, मैं कभी चोरी नहीं करता। लेकिन अगर मैं थोड़ी जांच-पड़ताल करूं तो पता चलेगा कि चोरी तो मैं भी करना चाहता हूं, लेकिन भय मुझे रोक लेता है। तब मैं अच्छा आदमी नहीं हूं, भयभीत आदमी हूं। लेकिन हम लेबल बदल देंगे। हमें पता ही नहीं चलता।
एक आदमी कहता है, मैं बिल्कुल ईमानदार आदमी हूं। उसे थोड़ी जांच-पड़ताल करनी चाहिए कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि वह बेईमान है और भयभीत है। बेईमान धन भय, बस ईमानदार आदमी हो गया।
लेकिन यह ईमानदार की परिभाषा हुई? अगर कल उसे पता चल जाए कि एक दिन के लिए सब कानून उठा लिए गए और सब पुलिसवालों को छुट्टी दे दी गई और एक दिन के लिए कोई अदालत नहीं है। तब उस आदमी को देखें। वह जो ईमानदार था उसकी सारी ईमानदारी चली गई। वह अब ईमानदार नहीं है। अच्छा आदमी इसीलिए कमजोर है। अक्सर ऐसा होता है कि अच्छा आदमी कमजोरी की वजह से अच्छा आदमी होता है। और इससे उलटा भी होता है कि बुरा आदमी अक्सर ताकत की वजह से बुरा हो जाता है। क्योंकि उसे अच्छाई की दुनिया में ताकत दिखाने का मौका नहीं मिलता। वहां सब तरह के कमजोर लोगों की भीड़ इकट्ठी होती है, उसे वहां कोई ताकत दिखाने का मौका नहीं होता, ताकतवर आदमी बुरा हो जाता है।
घर में दो बच्चे अगर हों और एक बच्चा बिल्कुल गोबर-गणेश हो, तो मां-बाप कहेंगे--बहुत अच्छा है, आज्ञाकारी है। और बच्चा अगर थोड़ा शक्तिशाली हो, बुद्धिमान हो, तो कहेंगे--बिल्कुल बिगड़ता जा रहा है, आज्ञा का उल्लंघन करता है, हम जो कहते हैं मानता नहीं। लेकिन समझना जरूरी है कि गोबर-गणेश होना अच्छा होना नहीं है। हालांकि गोबर-गणेश होने से आज्ञाकारी हो जाता है आदमी।
हमने लेबल बदल कर लगाए हुए हैं। इसलिए जहां भय है वहां भी हम पकड़ नहीं पाते कि यह भय है। जहां हिंसा है, हिंसा पकड़ में नहीं आती। जहां घृणा है, घृणा पकड़ में नहीं आती। जहां प्रेम नहीं है, वहां पकड़ में नहीं आता। सब तरफ धोखा हो गया है। आदमी ने अपने भीतर की जो व्यवस्था की है, उसमें सब जगह गलत नाम लगा दिए हैं।
मुझे एक घटना याद आती है। एक संन्यासी एक गांव में प्रवचन करता था। थोड़े से लोग, बूढ़ी स्त्रियां, बूढ़े आदमी और उनके साथ छोटे बच्चे सुनने आते थे। जब वह बोल रहा था, एक छोटे बच्चे ने अपनी मां से जोर से कहा कि मां, मुझे पेशाब लगी है! तो और स्त्रियां हंसने लगीं, संन्यासी को भी बुरा लगा। संन्यासी ने उस स्त्री को अपने पास बुला कर कहा कि बेटे को थोड़ा समझा दो! अगर ऐसा कभी हो तो कुछ और कह दिया करे, ताकि तुम समझ जाओ, लेकिन बाकी लोग न समझ पाएं। तो उसने कहा, क्या कहें? तो उस संन्यासी ने कहा कि उसको समझा दो

कि जब पेशाब लगे तो कह दिए कि मां, मुझे गाना गाना है। इसमें किसी को पता भी नहीं चलेगा। कोड-लैंग्वेज बना लो, तुम समझ जाओगी। और ये इस तरह की बातें हैं कि यह बच्चा है, इसका क्या किया जा सकता है। उसकी मां को भी बात समझ में आ गई। उसने जाकर बेटे को समझा दिया। दो-चार दिन बेटे ने भूल की, फिर वह समझ गया।
साल भर बाद संन्यासी उस स्त्री के घर में मेहमान हुआ। कहीं शादी थी, स्त्री शादी में गई और अपने बेटे को संन्यासी के पास सुला गई कि आप सुला रखना, मैं लौट कर आती हूं। कोई ग्यारह बजे उस बेटे ने संन्यासी को हिलाया और उसने कहा, स्वामी जी, गाना गाना है! स्वामी जी ने कहा, दिन भर का थका- मांदा, मुझे गाना नहीं सुनना; तू सो जा, आधी रात को गाना नहीं गाया जाता। उस लड़के ने कहा कि नहीं, बहुत जोर से गाना है। स्वामी ने कहा, अपने मन को थोड़ा सम्हालो, इच्छा पर काबू रखो, सुबह गा लेना। उस लड़के ने कहा, सुबह फिर से गाएंगे, लेकिन अभी तो गाना ही है। स्वामी ने कहा, बड़ी मुसीबत है, मुझे नींद आ रही है, तुझे गाना गाना है। उसने कहा कि बिल्कुल मुझे गाना है। फिर भी स्वामी ने कहा कि थोड़ा... सुबह गा लेना भई! अभी तुम सो जाओ, मैं दिन भर का थका यात्रा से आया हूं, अभी मुझे सोने दो। तो उस लड़के ने कहा कि आप सोइए, लेकिन मुझे गाना गाने से क्यों रोकते हैं? स्वामी ने कहा, अगर तू गाना गाएगा तो मैं सोऊंगा कैसे? शांत होकर सो जा चुपचाप!
लड़का थोड़ा डर गया, थोड़ी देर चुप रहा। फिर उसने धीरे से कहा कि नहीं, स्वामी जी, शांत नहीं हुआ जाता, गाना गाना ही पड़ेगा। तो स्वामी ने कहा, ज्यादा जोर से मत बोल, कान में धीरे-धीरे गा दे।
सारी जिंदगी अस्तव्यस्त है, क्योंकि नाम बदले हुए हैं। पहचान में नहीं आता कि कहां क्या रखा हुआ है। मन के भीतर, अपने मन के भीतर जो हमने लेबल बदले हुए हैं, अपने को भी धोखा देने के लिए, दूसरों को भी धोखा देने के लिए। इसलिए आदमी एक पहेली हो गया है। आदमी पहेली है नहीं, आदमी एक सीधी किताब है; आदमी बिल्कुल साफ सुथरी-किताब है। लेकिन वह बिल्कुल पहेली हो गई, क्योंकि हमने जिस चीज को जो कहना है वह कहना बंद कर दिया है, हम कुछ और कहते हैं, हम कुछ बात ही और कहते हैं। कहने में अच्छी लगती होगी, लेकिन तथ्यों को झुठला जाती है। तो सब फैक्ट जो है वह फिक्शन हो गया है।
इसलिए अगर आप अपने भीतर जाएंगे तो आप ठीक से न पहचान पाएंगे कि मैं कब भयभीत हूं। क्योंकि भय को आप कुछ और कहते होंगे, आपकी अपनी कोड-लैंग्वेज है, हर आदमी की अपनी है।
अब एक आदमी मंदिर में हाथ जोड़ कर, घुटने टेक कर भगवान के सामने खड़ा है।
वह कहेगा, मैं प्रार्थना कर रहा हूं। घुटने टेकने का प्रार्थना से क्या संबंध हो सकता है?
घुटने टेकना भय है, प्रार्थना का कोई संबंध नहीं है। घुटने टेकने से प्रार्थना का क्या संबंध है?
एक आदमी पत्थर की मूर्ति में सिर रखे हुए पड़ा है।
किसी मूर्ति के पैर पर सिर रख कर पड़े रहने में कौन सी प्रार्थना है? नहीं, भय है। और वह बहुत पुराना भय का प्रतीक है। पुराने सम्राट, पुराने सेनापति लोगों को पैर में झुकने के लिए मजबूर करते थे। उस मजबूरी के कई कारण थे। पहला कारण तो यह था कि जो आदमी पैर में झुकता था वह आदमी नीचे पड़ जाता था और नीचे पड़ते वक्त सम्राट या सेनापति ठीक से देख लेता था कि वह कोई खतरनाक आदमी नहीं है, छुरा नहीं छिपाए हुए है, बंदूक नहीं रखे हुए है, तलवार नहीं दबाए हुए है। तो हर आदमी को--आदमी सीधा खड़ा रहे तो पक्का पता नहीं चलता कि वह क्या छिपाए हुए है--उसके झुकाने का इंतजाम किया गया था। वह एक मिलिट्री सीक्रेट था बहुत पुराने दिनों में कि हर आदमी को झुकाओ, राजा के सामने झुकाओ, ताकि झुकने से फौरन पता चल जाए कि कोई तलवार या कोई ऐसी चीज तो नहीं छिपा रखी है जो कि उस राजा को खतरा कर दे। इसलिए दोनों हाथ उठाओ।
अगर आपने हिटलर के कनसनट्रेशन कैंप की तस्वीरें देखी हों--नहीं देखी हों तो देखनी चाहिए--अगर तस्वीरें देखी हों तो देख कर आप हैरान हो जाएंगे! सब कैदियों को नंगा कर दिया जाता जब वे कनसनट्रेशन कैंप में ले जाए जाते और सबको दोनों हाथ ऊपर उठा कर जाना पड़ता। छोटा सा बच्चा भी जाएगा तो दोनों

हाथ ऊपर उठा कर जाना पड़ता। ताकि दिखाई पड़ जाए कि हाथ खाली हैं, कोई तलवार, कोई बंदूक हाथ में नहीं है, कोई उपद्रव नहीं, कोई बम गोला नहीं है।
तो राजाओं के सामने, सेनापतियों के सामने, लुटेरों के सामने, हत्यारों के सामने आदमी जब जाता तो उसे दूर से ही हाथ जोड़ कर--ताकि उसके दोनों हाथ खाली हैं, यह साफ पता चल जाए--उसको जाना पड़ता। लौटते वक्त उसको उलटा ही लौटना पड़ता था। ताकि आंख राजा के सामने रहे, वह लौट कर कुछ गड़बड़ न कर सके, पीठ पीछे रहे। तो उसको लौट कर उलटा ही लौटना पड़ता।
ये सब भय के इंतजाम थे। इन भय के इंतजामों का उपयोग आदमी भगवान के मंदिर के सामने भी कर रहा है। वह प्रार्थना नहीं है, वह सिर्फ भयभीत है, वह सिर्फ डरा हुआ है। लेकिन भय को अगर हम प्रार्थना कहें तो फिर खतम हो गई बात। वह चिल्ला रहा है कि मैं पतित हूं, तुम पावन हो! मैं दीन हूं, तुम महान हो! यह सब, यह सारा का सारा जो वह कह रहा है, ये उसके भीतर जो भय के कीड़े सरक रहे हैं उनकी आवाजें हैं। लेकिन इसको वह प्रार्थना कह रहा है। लेबल बदल दिया, कोड लैंग्वेज शुरू हो गई। अब कभी पता नहीं चलेगा कि यह आदमी क्या कर रहा है। घुटने पर टिका हुआ आदमी, पैरों में गिरा हुआ आदमी, छाती पीटता हुआ आदमी, कराहता-चिल्लाता हुआ आदमी भय का सबूत है। लेकिन भय का नाम प्रार्थना है। और किसी शब्दकोश में नहीं लिखा हुआ है कि भय का मतलब प्रार्थना है, प्रार्थना का मतलब भय है। इसलिए जब आप खोजने जाएंगे, आप न खोज पाएंगे कि मैं डर रहा हूं।
मेरे एक मित्र हैं, मेरे साथ घूमने जाते थे। नये-नये मेरे साथ घूमने जाने लगे थे। सुबह मैं निकलता, वे भी पड़ोस में रहते थे, मेरे साथ हो लेते। जो भी मंदिर दिखता, वे हाथ से नमस्कार करते जाते। कोई मड़िया दिखती, हाथ जोड़ते। कोई पीपल का झाड़ आ जाता, हाथ जोड़ते। मैंने कहा, यह तुम क्या करते रहते हो? उन्होंने कहा कि पीपल देव रहते हैं इसमें, उधर हनुमान जी रहते हैं, उधर वे रहते हैं। तो मैंने कहा कि वे रहते होंगे, तुम क्यों परेशान हो? उन्होंने कहा कि आप क्या बात करते हैं! हनुमान जी के मंदिर से बिना हाथ जोड़े निकल जाएं? अगर वे नाराज हो जाएं! नहीं-नहीं, यह ठीक नहीं है।
मैंने उन्हें बहुत समझाया। समझने से उनकी बुद्धि को तो समझ में आ गया, लेकिन भय तो बुद्धि से भी गहरा है। उस भय को समझ में नहीं आया। तो अब वे बड़े मुझसे बचने लगे, वे सुबह मेरे साथ घूमने न जाएं। मैं उनकी तलाश करने लगा। मैं रोज उनके दरवाजे पर पांच बजे खड़ा हो जाता कि चलिए! और वे बड़े डरते हुए निकलते। वे जितने हनुमान जी से डरते थे उससे ज्यादा मुझसे डरने लगे। कभी कहते कि तबियत खराब है, कभी कुछ कहते। लेकिन मैं कहता कि मैं बैठा हूं, आप तैयार हो लें, ऐसी क्या बात है।
उनको लेकर मैं एक दिन निकला। और वे मुझसे कह चुके थे कि यह बात भय की है, हाथ जोड़ने में कोई सार नहीं; पीपल क्या बिगाड़ लेगा! तो पीपल के पास से निकल गए, सौ कदम निकल गए, अब उनका भय बढ़ता गया। सौ कदम के बाद उन्होंने कहा कि माफ करिए, अब मैं दोहरे डर में पड़ गया; एक आपका डर सता रहा है, एक वह पीपल को मैं बिना नमस्कार किए चला आया। मुझे क्षमा करिए, मैं जाकर हाथ जोड़ आऊं। नहीं तो मेरा दिन भर खराब हो जाएगा, मुझे यही लगा रहेगा कि आज जिंदगी में पहली दफा पीपल को बिना हाथ जोड़े निकल गया, पता नहीं पीपल का देवता नाराज हो जाए!
लेकिन वह समझता यही है कि वह आदमी धार्मिक है। और गांव के आस-पास के लोग भी समझते हैं कि यह आदमी बड़ा धार्मिक है। लेकिन वह आदमी भयभीत है। चीजों को ठीक-ठीक नाम से जानना जरूरी है, नहीं तो आत्म-विश्लेषण कभी
भी नहीं हो पाता। कभी नहीं हो पाता।
एक पति अपने घर लौटता है और आते से ही पत्नी से कहने लगता है कि तुझसे ज्यादा सुंदर कोई स्त्री नहीं है, तुझे मैं इतना प्रेम करता हूं, तेरे बिना एक दिन जी नहीं सकता।
अगर उसके भीतर वह गौर करे तो यह प्रेम नहीं है, भय है। वह रास्ते से तैयारी करके आ रहा है--आज क्या-क्या कहना है। घर तक तैयारी करता चला आ रहा है। क्योंकि पत्नी पता नहीं टूट पड़े, आते से ही पूछे--इतनी देर कहां लगाई? तो उसके पहले ही वह अपनी बातें शुरू कर देता है, इसके पहले कि वह कुछ कहे अपनी बात शुरू कर देता है। लेकिन इसको वह कहेगा प्रेम है। जिस दिन पति कोई

अपराध कर ले पत्नी के प्रति उस दिन बाजार से साड़ी खरीद लाएगा। पत्नी भी समझेगी कि प्रेम है यह। लेकिन जिस दिन पति साड़ी लाए उस दिन थोड़ा सचेत हो जाना चाहिए, कुछ मामला गड़बड़ है। वह कुछ भयभीत है, वह कुछ डरा हुआ है, वह इंतजाम कर रहा है, वह रिश्वत दे रहा है।
ऐसा नहीं है कि हम आफिसरों को और सरकारी मिनिस्टरों को ही रिश्वत दे रहे हैं। बाप बेटे को रिश्वत दे रहा है, बेटे बाप को रिश्वत दे रहे हैं। चौबीस घंटे रिश्वत चल रही है। बाप घर आता है, चाकलेट खरीद ला रहा है। वह रिश्वत है। लेकिन वह देख नहीं रहा, वह कहेगा यह कि मैं अपने बेटे को बहुत प्रेम करता हूं। हालांकि वह बेटे को सिर्फ चुप करना चाहता है कि बकवास बंद करो, मुझे अखबार पढ़ने दो, यह चाकलेट लो, तुम जाओ बाहर।
मैं आपसे यह कह रहा हूं कि जिंदगी में जो जो है, उसे हमें वैसा ही देख लेना बहुत जरूरी है, अन्यथा हम कभी भी अपनी जिंदगी में कोई रूपांतरण नहीं ला सकेंगे। क्या है, उसे वैसा देख लेना चाहिए। नहीं है प्रेम तो जानना चाहिए कि नहीं है प्रेम। उचित है, कह दो कि नहीं है कोई प्रेम, मेरा मन बिल्कुल सूखा रेगिस्तान है, इसमें कोई प्रेम नहीं उठता। यह ज्यादा प्रेमपूर्ण होगा, यह ज्यादा करुणापूर्ण होगा। पत्नी भी समझ सकेगी इस बात को।
लेकिन पत्नी भी धोखा देगी, पति भी धोखा देगा, बेटा भी धोखा देगा, मां
भी धोखा देगी, सब धोखा दिए चले जाएंगे और कोई भी नहीं ठीक से चीजों को पकड़ेगा।
मेरी समझ यह है कि अगर किसी आदमी को यह समझ में आ जाए कि मैं एक सूखा रेगिस्तान हूं, मेरे भीतर प्रेम का कोई झरना नहीं है, तो बहुत दिन नहीं हैं, उस आदमी में प्रेम का झरना फूट सकता है। लेकिन यह पता ही न चले, सूखा रेगिस्तान समझता रहे कि मैं एक हरा-भरा झरना हूं, तो फिर बहुत मुश्किल है, फिर कभी कुछ पता नहीं चलेगा।
भय को पहचानना जरूरी है उसके समस्त रूपों में। उसके सारे रूपों में, सारी वंचनाओं में, सारे डिसेप्शंस में उसको पहचानना जरूरी है कि वह कहां- कहां खड़ा है। गीता को लात लग गई है, अब आप सिर झुका कर हाथ जोड़ रहे हैं। भय है कुछ! किताब को लगी हुई लात न कोई अर्थ रखती है, न किताब को लगाया गया सिर कोई अर्थ रखता है। किताब बस सिर्फ किताब है। लेकिन मन भयभीत है, मन भयभीत है। अगर पुट्ठा उलट कर देखें और नीचे देखें कि अरे, गीता नहीं है! ऊपर का कवर गीता का है, अंदर फिल्मी मैगजीन रखी है। फिर आप निश्चिंत अकड़ से चलने लगेंगे कि कोई बात नहीं।
और अक्सर ऐसा होता है कि घरों में गीता के कवर के भीतर जो किताबें रखी हैं, वे गीता नहीं हैं, अक्सर यह होता है। क्योंकि गीता कौन पढ़ना चाहता है! जो पढ़ना चाहता है उसे कोई पढ़ने नहीं देता। तो गीता का कवर काम देता है। गीता का कवर, भीतर कुछ और है। उसको पढ़ रहे हैं आनंद से। अगर किसी को गीता बहुत आनंदित पढ़ते देखें तो थोड़ा पास चले जाना, इतना आनंदित हो रहा है, कवर के भीतर कुछ और होने का डर है।
मैंने सुना है, एक शब्दकोश बेचने वाला एक एजेंट एक घर के सामने गया है
और उसने उसकी गृहिणी को कहा है कि मैं यह डिक्शनरी बेचता हूं, बहुत अच्छी है, आप खरीद लें। उस गृहिणी ने कहा, हमारे पास डिक्शनरी है--बचाव के लिए-- कोई हमें जरूरत नहीं है। उसने कहा, कहां है डिक्शनरी? तो उसने, गृहिणी ने दूर टेबल पर रखी एक किताब बताई। उस एजेंट ने कहा, क्षमा करिए, वह डिक्शनरी नहीं है, वह धर्मग्रंथ मालूम होता है। उस स्त्री ने कहा कि हद हो गई बात! धर्मग्रंथ तुम कैसे इतनी दूर से पहचान रहे हो? न तो तुम्हें दिखाई पड़ रहा है यहां से, न तुम पढ़ सकते हो; तुम कैसे पहचानते हो कि धर्मग्रंथ है? मैं कहती हूं कि वह डिक्शनरी ही है। उस आदमी ने कहा कि मैं कहता हूं वह धर्मग्रंथ है। उस स्त्री ने कहा, लेकिन पहचानते कैसे हो? उसने कहा, उस पर जमी हुई धूल सब खबर दे रही है। डिक्शनरी पर इतनी धूल नहीं जम सकती है; बच्चे उलटते-पलटते रहेंगे। वह धर्मग्रंथ है जिसको कोई कभी नहीं उलटता- पलटता, उस पर धूल जम गई है। वह धूल बता रही है कि वह डिक्शनरी नहीं है।
सच में ही वह डिक्शनरी नहीं थी, वह धर्मग्रंथ ही था।

लेकिन हमें चीजें जैसी हैं, हम जहां हैं, हम जो हैं, उसे पहचानने में बड़ी पीड़ा होती है, बहुत दर्द होता है, बहुत कष्ट होता है। उस कष्ट की वजह से हम धोखा दिए जाते हैं। किसी और को? किसी और को धोखा देने का कोई अर्थ नहीं है, न कोई बड़ी हानि है। अपने को ही धोखा देना सबसे बड़ी हानि है। आदमी अपने को कुछ और समझे जाता है।

एक मित्र ने पूछा है कि आपने कहा कि अपने भीतर का नरक देखना चाहिए, हिंसा देखनी चाहिए। मैंने देखने की कोशिश की, तो फिर मुझे बहुत इनफिरिआरिटी कांप्लेक्स, बहुत हीनता का भाव आ रहा है।

आएगा। आने का कारण यह नहीं है कि आप हीन हैं, आने का कारण यह है कि आपने
अब तक सुपिरिआरिटी कांप्लेक्स को पाला होगा। आपने समझा होगा कि मैं कुछ हूं। इसलिए आ रहा है। आप तो जो हैं वह हैं, लेकिन आपने अपने को कुछ और समझा होगा। और जब आप भीतर खोजने गए तो आपने पाया वहां तो कुछ और है।
जब दो आदमी मिलते हैं तो दो आदमी नहीं मिलते, छह आदमी मिलते हैं। अगर मेरी आपसे मुलाकात हो तो उस कमरे में हम दो होंगे दिखाई पड़ने को, लेकिन ऐसे छह आदमी होंगे। एक तो मैं जो हूं, और एक मैं जो अपने को मैं समझता हूं, और एक वह मैं जो आप मुझको समझते हैं। और ऐसे ही तीन आप। वहां छह की मुलाकात होती है। और वे जो असली मैं हैं, सबसे पीछे खड़े रहेंगे; और वे जो नकली चार हैं, बीच में बातचीत चलाएंगे, लड़ाई-झगड़ा करेंगे, सब कुछ होगा।
तो अगर आप अपने भीतर खोजने जाएंगे तो कई प्रतिमाएं गिर जाएंगी जो आपने सोची थीं कि मैं हूं। आप भीतर पाएंगे कि कहां हूं मैं!
एक बाप समझता है कि मैं अपने बेटे को बहुत प्रेम करता हूं, बहुत प्रेम करता हूं। इतना प्रेम मैंने कभी नहीं किया। मैं प्रेम करता हूं इसीलिए उसे कालेज में पढ़ा रहा हूं, खून-पसीना एक कर रहा हूं, भूखा रह रहा हूं और उसे कालेज में पढ़ा रहा हूं। उसे मुझे पढ़ा कर शिक्षित करना है, उसे मुझे बहुत बड़े ओहदे पर पहुंचाना है। वह कहता है, मैं अपने लड़के को बहुत प्रेम करता हूं।
लेकिन अगर वह अपने भीतर खोजने जाएगा तो आश्चर्य नहीं कि वह पाए--लड़के
से उसे कोई भी प्रेम नहीं है। वह अहंकारी, महत्वाकांक्षी, एंबिशस आदमी है। जो-जो महत्वाकांक्षाएं खुद पूरी नहीं कर पाया, वह अपने लड़के के ऊपर थोप कर पूरी करना चाहता है। जब उसे यह दिखाई पड़ेगा तो घबराहट होगी, उसे लगेगा कि मैं कैसा बाप हूं! तब बड़ी इनफिरिआरिटी पकड़ेगी कि यह क्या मामला है? तब उसे ऐसा लगेगा कि यह क्या बात है? ऐसा नहीं हो सकता! मैं तो अपने बेटे को प्रेम करता हूं, इसीलिए तो खून-पसीना एक कर रहा हूं।
अगर दुनिया अपने बेटों को प्रेम करती होती और खून-पसीना बेटों के प्रेम के लिए एक करती होती, तो दुनिया बहुत दूसरी हो जाती। फिर कौन अपने बेटों को युद्धों पर लड़ने भेजता? कैसे युद्ध होते? फिर कौन अपने बेटों को हिंदू-मुसलमानों के झगड़े में कटवाता? कैसे दंगे होते?
नहीं, फिर असंभव हो जाती यह बात। लेकिन कोई बाप अपने बेटे को प्रेम कहां करता है! बाप करता है अपने अहंकार को प्रेम। छोटे-मोटे बाप ही नहीं, जिनको हम बड़े-बड़े बाप कहते हैं, वे भी।
गांधी जी जैसे बड़े बाप अपने बेटों को बिगाड़ने का कारण बन सकते हैं। बड़ा बेटा मुसलमान बना, गांधी जी की वजह से। बड़ा बेटा मांसाहारी बना, गांधी जी की अति सिद्धांतवादिता के कारण। बड़ा बेटा शराब पीने लगा, बड़े बेटे ने सारी जिंदगी बर्बाद कर दी। क्योंकि गांधी ने इतने जोर से सिद्धांत थोपे, इतने जोर से अच्छा आदमी बनाना चाहा उस बेटे को, उसको सब तरफ से गिरफ्त में लेकर अच्छा करने की ऐसी तेज कोशिश की कि उस बेटे को वह अच्छा होना परतंत्रता मालूम होने लगी, उसको तोड़ कर भाग जाना जरूरी हो गया। और फिर बाप ने जब अहंकार अपना थोपा हो, तो बेटा उस अहंकार को तोड़ने के लिए अपने अहंकार को दिखाने लगा।
फिर वह मुसलमान हो गया। फिर वह हरिदास मौलवी हो गया। और बंबई में गांधी जी को पहुंचाने लोग आए थे, तो एक तरफ लोग जय लगा रहे थे महात्मा गांधी की, तब अचानक एक नई आवाज सुनाई पड़ी, दस-पच्चीस मुसलमान आवाज लगा रहे

थे--मौलाना अब्दुल्ला गांधी जिंदाबाद! मौलाना अब्दुल्ला गांधी हो गया वह, उसने भी जय लगवा ली।
जबलपुर के पास कटनी एक स्टेशन से गांधी गुजरते थे। भीड़ थी, जोर से लोग नारे लगा रहे थे--महात्मा गांधी की जय! अचानक भीड़ में एक आदमी चिल्लाया कि बंद करो यह बकवास! तो गांधी जी भी चौंक गए, कस्तूरबा भी भीतर थीं, उन्होंने भी खिड़की से झांक कर देखा कि कौन है यह? उसने कहा कि बंद करो यह बकवास! यह बात सच नहीं है। बोलो माता कस्तूरबा की जय!
लोगों ने कहा कि कौन है भई यह? तो लोगों को पता चला कि वह हरिदास गांधी है। और उसने कहा कि यह झूठ बात है। गांधी नहीं, माता कस्तूरबा! क्योंकि मैंने अगर कहीं प्रेम पाया है तो इसमें, इनमें नहीं पाया। इनमें सिद्धांत मजबूत है, प्रेम बिल्कुल नहीं है।
अब यह बड़ा मुश्किल है। और यह बड़ा आसान भी है एक लिहाज से। हरिदास गांधी के जो व्यक्ति पिता न हो सके, वह राष्ट्रपिता हो सकता है। बहुत आसान है, राष्ट्रपिता होना बहुत आसान है, क्योंकि असली बेटा कहीं भी नहीं होता। असली बेटे के साथ बाप होना बहुत मुश्किल मामला है।
लेकिन हमारे सबके अपने अहंकार हैं। अच्छे आदमी का भी अपना अहंकार होता है। वह कहता है, मेरा बेटा अच्छा होना चाहिए! अच्छे बेटे से मतलब नहीं है, बेटे के अच्छे होने से मतलब नहीं है--मेरा बेटा! मेरा बेटा अच्छा होना चाहिए! मेरे "मैं" के बरदाश्त के बाहर है कि मेरा बेटा कल और बुरा हो जाए। तो बाप अपने बेटे से कहते हैंः कुल का ध्यान रखना! अपने बाप की इज्जत का ख्याल रखना! परंपरा, वंश, संस्कृति, सबका ध्यान रखना! कुर्बान हो जाना तुम, लेकिन वंश की इज्जत, नाम मेरा, वह बचे! बेटे की कोई फिक्र नहीं है।
यह जो, इस सबको खोजना पड़ेगा, तो बहुत घबराहट होगी, बहुत बेचैनी मन में लगेगी। लगेगा कि यह क्या बात है? तो इनफिरिआरिटी कांप्लेक्स मालूम होगा। वह जो मित्र ने पूछा है, ठीक पूछते हैं वे कि अगर हम भीतर खोजने जाएंगे तो ऐसा लगेगा कि यह क्या है?
अभी मैं एक घर में ठहरा था। वक्त हो गया है, मुझे सभा में जाना है। जो मुझे ले जाने वाले मित्र हैं, वे बार-बार भीतर जाते हैं, बार-बार बाहर आते हैं। मैंने उनसे कहा कि वक्त हो गया, बड़ी देर हो गई। वे कहते हैं, जरा पत्नी साड़ी नहीं पहन पा रही है। फिर भीतर जाते हैं, फिर बाहर आते हैं। फिर मैं भीतर गया। तो मैंने उनकी पत्नी को कहा, आप जल्दी साड़ी पहनिए। उसने कहा, मैं तो जल्दी पहन लूं, लेकिन वे ही फिर कहते हैं कि नहीं, यह बदलो, यह पहनो, यह बदलो! वह मेरे पति की वजह से मुश्किल है। तो मैंने कहा कि तू क्या सोचती है, पति तेरी साड़ी बदलने में इतनी उत्सुकता लेते हैं! तो उस स्त्री ने कहा कि मुझे बहुत प्रेम करते होंगे। पति बहुत प्रसन्न हुए। मैंने उन पति से पूछा कि सच बताइए, प्रेम की वजह से साड़ी इतनी ज्यादा बदलवा रहे हैं? कि मेरी औरत बाजार में एक एक्जीबिशन बन कर निकले, एक प्रदर्शनी, कि लोग देखें कि किसकी औरत है? तो ये गहने अपनी औरत को पहनाए हैं कि बाजार में जो आंखें देखेंगी उनको? किसको पहनाए हैं ये गहने?
तो पति खुद साधारण कपड़े पहन ले, उसको फिक्र नहीं है; लेकिन पत्नी को वह हीरे की अंगूठी पहना देगा। यह मत सोचना कि पत्नी से प्रेम है। क्योंकि प्रेम से हीरे का क्या संबंध है? संबंध कुछ और है। वह बाजार में दिखाई पड़ना चाहिए कि किसकी औरत है यह? वह हीरे की अंगूठी बताएगी कि फलां आदमी की पत्नी है। इस अंगूठी में वह फलां आदमी की चमक जारी रहेगी।
अगर पति इसको देखेगा कि मैंने कभी अपनी पत्नी को वस्त्र पहनाए ही नहीं, मैंने सदा बाजार की आंखों का ध्यान रखा, मैंने सदा अपने अहंकार को साड़ियां पहनाईं और गहने पहनाए, तो तकलीफ भीतर शुरू हो जाएगी। उसे लगेगा कि यह तो बहुत गड़बड़ बात है। मैं कैसा आदमी हूं?
लेकिन ऐसे आदमी हम हैं। और सत्य को जानना जरूरी है, अगर कोई रूपांतरण अपेक्षित है। पहचान लेना जरूरी है ठीक से कि यह रही बात।
तो वे जो मित्र कहते हैं कि हीनता का भाव मालूम होता है... ।
मालूम होने दें। वही सच है, तो उसे मालूम होने दें। जल्दी से फिर अपने अहंकार के भाव को थोप मत देना कि अरे, इस कहां की झंझट में मैं पड़ गया! वही

ठीक था कि हम ब्रह्म हैं, हम यह हैं, हम वह हैं, वही ठीक था। यह मैं कहां की खोज में चला गया! क्रोध, हिंसा को खोजने मैं कहां चला गया!
नहीं लेकिन, मैं आपसे कहता हूं, अगर कभी ब्रह्म होना जानना हो, तो इस क्रोध और हिंसा को ठीक से पहचान लेना। यह हीनता है तो है, तथ्य है। अगर मेरी एक ही आंख है तो एक ही आंख है। अगर अंधा हूं तो अंधा हूं। लेकिन अगर अंधा यह समझ ले कि मैं कैसे यह स्वीकार करूं कि मैं अंधा हूं? मैं तो दोनों आंखें मान कर चलूंगा! फिर गड्ढे में गिरना बहुत निश्चित है। जान लेना जरूरी है, जो है। जो है उसे जान लेने से परिवर्तन हो सकता है।
और फिर एक बात और सोच लेने जैसी है कि इनफिरिआरिटी दो तरह की हो सकती है, हीनता का भाव दो तरह का हो सकता है। एक तो यह जो मैंने कारण बताया कि हमने अपनी एक प्रतिमा बना रखी है बहुत सुंदर।
मैंने सुना है, एक स्त्री आईना नहीं देखती थी। अजीब स्त्री रही होगी! ऐसे आमतौर से स्त्रियां आईना देखना पसंद करती हैं, और कुछ पसंद ही नहीं करतीं। स्त्री बहुत अजीब रही होगी, वह आईना देखना पसंद नहीं करती थी। कारण था, वह स्त्री कुरूप थी। लेकिन वह अपने को सुंदर मानती थी। आईना देखने में कुरूपता दिखती थी, तो वह आईना अलग रख देती थी। फिर उसने यह कहना शुरू कर दिया कि आजकल ठीक आईने बनते ही नहीं। क्योंकि वह स्त्री सुंदर थी, वह अपने को सुंदर मानती थी। वह आईने फोड़ देती थी कि आईने सब बेकार हो गए हैं, अब आईने अच्छे बनते ही नहीं। क्योंकि वह आईने में दिखाई पड़ती थी।
तो एक तो हीनता का वह भाव हो सकता है जो आपने प्रतिमा बना ली हो, मैंने अपनी प्रतिमा बना ली हो एक कि मैं ऐसा आदमी हूं, फिर उस प्रतिमा से नीचे दिखाई पड़े मुझे सत्य तो हीनता मालूम पड़े। यह हीनता मालूम पड़े, ठीक है। इसमें हर्ज नहीं है, क्योंकि यह सच्चाई के करीब है, जो मैं हूं वह मुझे मालूम पड़ जाना चाहिए। तुलना क्यों कर रहे हैं उस प्रतिमा से जो आप हैं ही नहीं! तुलना की वजह से हीनता पैदा हो रही है। जो आप हैं, वह हैं।
अगर मैं सोचता था कि मेरी दो आंखें हैं, और खोज-बीन से पता चला कि एक ही आंख है, तो तुलना का कहां सवाल है? तो मैं सोच रहा हूं कि दो थीं और अब एक है, तो बड़ी हीनता मालूम हो रही है। लेकिन दो थीं ही नहीं, एक ही है, तुलना किससे कर रहे हैं? अगर ऐसी हीनता मालूम पड़े तब तो बहुत जल्दी चली जाएगी, क्योंकि आप पाएंगे यही तथ्य है।
लेकिन एक तरह की और हीनता है कि आप दूसरे से तौलते हैं। आप देखते हैं पड़ोस का आदमी तो बिल्कुल मुस्कुराता रहता है और मैं बड़ा उदास रहता हूं, इससे तौलते हैं आप। तो फिर हीनता का चक्कर लंबा हो जाएगा। क्योंकि आपको पड़ोसी आदमी के भीतर का कुछ भी पता नहीं है कि पड़ोसी आदमी के भीतर क्या है। हो सकता है, पड़ोसी आदमी इसीलिए हंसता हो कि उदासी पता न चल जाए। अधिक लोग इसीलिए हंसते हैं कि उदासी पता न चल जाए, हंसते रहते हैं। दूसरे को भी धोखा देते हैं, अपने को भी धोखा देते हैं कि भीतर की उदासी न छलक जाए! दूसरे आदमी के भीतर का हमें पता नहीं, उसकी ऊपर की शक्ल दिखाई पड़ती है।
एक आदमी अकड़ कर शान से चलता है, तो हम सोचते हैं बड़ा बहादुर होगा। असल में डरे हुए लोग ही अकड़ कर चलते हैं। नहीं तो अकड़ कर चलने की कोई जरूरत नहीं है। अकड़ कर कोई चलता हो तो भीतर डरा हुआ आदमी है।
मैं एक स्कूल में पढ़ता था। मेरे एक शिक्षक थे। वे पहले ही दिन आए, तो उन्होंने सोचा... आमतौर से शिक्षक सोचते हैं कि पहले दिन ही ठीक से रोब-दाब कायम कर देना चाहिए बच्चों पर। तो उन्होंने आते ही से कहा कि मैं किसी से कभी डरता नहीं हूं। और जो भी मुझसे उलझेगा वह मुश्किल में पड़ जाएगा। यहां तक कि अंधेरी रात में मैं मरघट पर चला जाता हूं।
मैं तो छोटा ही था। मैंने उनसे खड़े होकर कहा कि आप जो कह रहे हैं इससे पता चलता है कि आप बहुत डरे हुए आदमी हैं। इसकी बताने की जरूरत क्या है कि आप मरघट पर अकेले चले जाते हैं? चले जाते हैं, बड़ा अच्छा है, सभी अकेले जाएंगे; आप अभी जाने लगे, कुछ लोग पीछे जाएंगे। इसमें बताने की क्या बात है? जब आप बता रहे हैं कि मरघट पर अकेला चला जाता हूं, तो मैं पक्का मानता हूं आप मरघट पर अकेले नहीं जा सकते। यह जो आपको लग रहा है कि बड़ी बहादुरी का काम कर रहा हूं, यह बहादुरी का काम लग ही इसलिए रहा है कि कमजोर आदमी हैं, भयभीत आदमी हैं। इसमें कौन सी बहादुरी है कि मरघट पर अकेले चले जाते

हैं? इसको आप याद क्यों कर रहे हैं? और आते ही से आपने यह कहा कि मैं बहुत खतरनाक आदमी हूं, मुझसे सब डरना। उससे आपका डर पता चलता है, और कुछ भी पता नहीं चलता।
हम दूसरे के चेहरे को भी नहीं पहचान पाते न, क्योंकि हम अपने चेहरे पर
भी धोखे में पड़ गए हैं। दूसरे के चेहरे पर तो और भी धोखे में पड़ गए हैं। वहां भी बहुत दूसरी लैंग्वेज लिखी है, चेहरे पर दूसरी भाषा लिखी है। भीतर कुछ और है, चेहरे पर भाषा कुछ और है। क्योंकि चेहरा हमें लोगों को दिखाने के लिए बनाना पड़ता है। वह हमारा शो-केस है, वह हमारी असली स्थिति नहीं है। वह हमारा ड्राइंगरूम है, वह हमारा घर नहीं है। इसलिए ड्राइंगरूम के भीतर किसी के जाना अशिष्टता है। ड्राइंगरूम में ही रुकना चाहिए, भीतर कभी नहीं झांकना चाहिए। क्योंकि ड्राइंगरूम में बेचारे ने किसी तरह टीम-टाम कर ली है। कहीं से सोफा ले आया है, कहीं से चद्दर ले आया है, कहीं से फोटो लटका ली है। ड्राइंगरूम में उसने किसी तरह एक चेहरा बना लिया है बाहर की दुनिया के लिए। उस बाहर की दुनिया को वहीं ड्राइंगरूम से विदा कर देता है।
ठीक वैसे ही ड्राइंगरूम हमारे चेहरे में भी हैं, शो-केसेस हैं। एक चेहरा हमने बना रखा है जिससे हम दुनिया में काम चलाते हैं। वे हमारे असली चेहरे नहीं हैं। लेकिन वे ही चेहरे हमें दिखाई पड़ते हैं, इससे बहुत कठिनाई हो जाती है। और फिर हम उससे तुलना कर लेते हैं, तो फिर हीनता का भाव लगता है। लगता है--फलां आदमी कितना महान है! फलां आदमी कितना सज्जन है! फलां आदमी कितना संत है! और हम--हम कैसे पापी! क्योंकि भीतर अपने देखते हैं तो दिखाई पड़ता है।
लेकिन जिनको आप संत कहते हैं अगर उनके भी भीतर उतरने का कोई उपाय हो,
तो शायद आप हैरान हों कि वे भी इसी परेशानी में पड़े हैं।
मैंने सुना है, एक गांव में एक बार एक बहुत बड़ी दुर्घटना हो गई। पहली दुर्घटना तो यह हुई कि एक संन्यासी और एक वेश्या आमने-सामने रहते थे। आमने-सामने संन्यासी-वेश्या का रहना! लेकिन दिखता हो ऊपर से दुर्घटना, भीतर से बहुत तर्क-संगत है। संन्यासी और वेश्या का बड़ा निकट रिश्ता है, बहुत गहरा संबंध है। संन्यासी और वेश्या सामने रहे तो आश्चर्य न था कुछ! लेकिन सबसे बड़ा आश्चर्य तो तब हुआ कि दोनों एक ही दिन मर गए। और बड़ा आश्चर्य यह हुआ कि जब देवता उन्हें लेने आए, तो उन देवताओं ने देखा कि आर्डर में कुछ गलती है। वह जो लेने के लिए उनके पास आर्डर मिला था, आज्ञा मिली थी, उसमें कुछ गलती है। क्योंकि लिखा था आज्ञा-पत्र में कि संन्यासी को नरक ले जाओ और वेश्या को स्वर्ग ले आओ। उन्होंने सोचा कि कुछ आफिस में भूल हो गई। और जब से हिंदुस्तानी सब नेता स्वर्गीय होने लगे हैं तब से सब वहां भी आफिस गड़बड़ हो गए हैं। वहां भी सब अस्तव्यस्त हो गया है, कुछ पक्का पता चलता नहीं कहां क्या हो रहा है।
वे वापस लौटे, उन्होंने जाकर अपने प्रधान को कहा सुपरिनटेनडेंट को कि
यह क्या मामला है? कुछ गलती हो गई। संन्यासी मर गया है, उसको आर्डर मिला है कि नरक ले जाओ। और वेश्या मर गई है, आज्ञा मिली है कि स्वर्ग ले आओ। हम वापस लौट आए हैं। जल्दी से ठीक कर दें, कुछ भूल हो गई है।
उस सुपरिनटेनडेंट ने कहा कि तुम जरा नये-नये काम पर आए हो, तुम्हें कुछ पता नहीं, ऐसा सदा से होता रहा है। यह भूल आर्डर की नहीं है, यह भूल दुनिया में समझदारी की है। संन्यासी को अक्सर हमें नरक भेजना पड़ता है और वेश्या को अक्सर स्वर्ग!
उन्होंने कहा, पागल हो गए हो? क्या कह रहे हैं आप! यह कैसा नियम! यह कैसी उलटी बात! यह कैसे हो सकता है?
तो उस प्रधान ने कहा, तुम समझ लो, क्योंकि आगे तुमसे भूल न हो, इस तरह बार-बार होगा। कारण साफ है। वेश्या जब भी संन्यासी के मंदिर में घंटी की आवाज सुनती थी, तो रोती थी अपने कमरे के भीतर बैठ कर कि कब होगा वह धन्य दिन जब मैं भी भगवान के मंदिर में प्रार्थना कर सकूं! जब संन्यासी बाहर निकलता था, शांत, गेरुआ वस्त्रों में, सुबह के सूरज जैसा, तो वेश्या रोती थी, दूर से हाथ जोड़ती थी कि कब होगा वह दिन जब इतनी ही शांत मैं हो सकूं! ऐसे ही गैरिक वस्त्र, ऐसे ही आभापूर्ण वस्त्र, ऐसी ही आभापूर्ण आत्मा मेरी भी हो सके! जब संन्यासी आंखें नीची करके चलता था, तो वेश्या सोचती थी--कब मेरी

आंखें भी थिर हो जाएंगी! कब यह चंचलता मिटेगी! कब होगा वह दिन! परमात्मा, कब होगा वह दिन! वह दिन-रात रोती थी, दिन-रात रोती थी और आकांक्षा करती थी एक ही कि कब उसके जीवन में भी धर्म हो, संन्यास हो।
और जब वेश्या के घर में नूपुर बजते और वीणा पर तार छिड़ते और वेश्या का नृत्य होता और रंगीन लोग आते और कहकहे की आवाजें उठतीं, तब संन्यासी छाती पीटता था कि बड़ी भूल हो गई। पता नहीं वहां कैसा आनंद लूटा जा रहा है! एक हम ही फंस गए, एक हम ही चूक गए। वहां पता नहीं क्या होता होगा! तब वह वेश्या के घर के चक्कर लगाता था। लेकिन हिम्मत भी न जुटा पाता था कि खिड़की से झांक ले, इतनी हिम्मत भी न जुटती थी। अगर कभी कोई देखने लगता तो नजर नीची करके, फिर वही शांत भाव बना कर, फिर वही पवित्र बन कर वापस अपने मंदिर में चला जाता था। ऐसा बहुत रात होता था। रात-रात संन्यासी सो न पाता था। झपकी लगती थी, वेश्या दिखाई पड़ती थी। सपना आता था, लगता था वेश्या दरवाजा खटखटा रही है।
तो उसने कहा, ले आओ संन्यासी को नरक, वेश्या को स्वर्ग, हम कुछ कर नहीं सकते। संन्यासी मन से वेश्या के साथ रहा, वेश्या मन से संन्यासी के साथ थी। इसलिए नियम तो यहां मन पर लागू होते हैं, शरीर का यहां कोई हिसाब नहीं रखा जाता। शरीर के हिसाब दुनिया में चलते होंगे, यहां तो मन के हिसाब चलते हैं। तुम जाओ, भूल नहीं हुई। और आइंदा इस तरह जल्दी वापस मत लौट आना। हां, कभी ऐसा हो कि संन्यासी को स्वर्ग आने की आज्ञा मिले और वेश्या को नरक ले जाने की, तो एक दफे लौट कर पूछ जाना, तब भूल हो सकती है।
अगर पड़ोसी को देख कर आप तुलना करेंगे तो शायद हीनता का भाव भीतर प्रवेश कर जाए। लेकिन किसी से तुलना मत करना, क्योंकि किसी का चेहरा हम नहीं जानते। और जानते हों तब भी तुलना की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि मैं मैं हूं, आप आप हैं। तुलना की जरूरत क्या है? तुलना बहुत घातक है। तुलना बिल्कुल ही घातक है। तुलना से कोई प्रयोजन नहीं है।
एक वृक्ष छोटा है, एक वृक्ष बड़ा है। एक वृक्ष पर पीले फूल हैं, एक पर लाल फूल हैं। तुलना की क्या जरूरत है? मैं मैं हूं, आप आप हैं। हम सब अलग-अलग हैं, पृथक-पृथक हैं, बेजोड़ हैं, अद्वितीय हैं, एक-एक का अपना व्यक्तित्व है। और परमात्मा ने प्रत्येक को उसका अपना व्यक्तित्व दिया है; तुलना मत करना! देखना ही मत कि कौन क्या है। देखना यह कि मैं कौन हूं। और अगर मैं तुलना न करूं, तो फिर मैं बुद्धू हूं कि बुद्धिमान हूं? अगर मैं तुलना न करूं, तो मैं सुंदर हूं कि कुरूप हूं? अगर मैं पड़ोसी से न तौलूं, तो मैं कमजोर हूं, ताकतवर हूं? तब मैं कोई भी नहीं हूं। फिर मैं वही हूं जो हूं।
तुलना उपद्रव खड़ा करती है। अगर मैंने तौला किसी से तो फिर मैं सुंदर
बन जाऊंगा; सुंदर बनूंगा तो अहंकार मजबूत होगा। तौला किसी से तो कुरूप दिखाई पडूंगा; कुरूप होऊंगा तो हीनता दिखाई पड़ेगी, दीन मालूम पडूंगा। तौला किसी से तो लगेगा कि वह बहुत बुद्धिमान है, बहुत ज्ञानी है, मैं अज्ञानी हूं, तो रोऊंगा। तौला किसी से तो लगा कि मैं बहुत ज्ञानी हूं, तो अकड़ जाऊंगा। लेकिन तुलना कभी मुझे न जानने देगी कि मैं क्या हूं, वह सदा दूसरे से अटका कर मुझे उलझाती रहेगी।
नहीं, तुलना की कोई भी जरूरत नहीं है। मैं सीधा अपने को देखूं, जो मैं हूं। जो मैं हूं वह मैं अपने को देखूं; तुलना न करूं। तुलना करना ही व्यर्थ है। तो तब--तब फिर मैं न दीन हूं, न मैं हीन हूं; न मैं महान हूं, न मैं क्षुद्र हूं; न मैं पुण्यात्मा हूं, न मैं पापी हूं। तब तो जो मैं हूं, मैं हूं। भयभीत हूं, घृणा से भरा हूं, हिंसा से भरा हूं, प्रेम से भरा हूं या अहिंसा से भरा हूं--जो भी हूं, हूं।
और जब इस तरह हम तथ्य को देखेंगे, तो तथ्य की बड़ी शक्ति है, तथ्य से बड़ा शक्तिशाली और कुछ भी नहीं है। जिस दिन मैं अपने तथ्य को देखता हूं, वह जो फैक्ट है मेरा, अगर मैं उसे पूरा पहचान लूं, सब लेबल अलग कर दूं, सब धोखे अलग कर दूं और पकड़ लूं उसको कि यह रहा मेरा भय, मैं भयभीत आदमी हूं, अगर यह मुझे साफ दिखाई पड़ जाए तो तत्काल परिवर्तन शुरू हो जाएगा। क्योंकि कोई भी भयभीत नहीं रहना चाहता। और मजे की बात यह है--जिसने यह पकड़ लिया और समझ

लिया कि मैं भयभीत आदमी हूं, यह भी अभय का एक कदम है। क्योंकि अपने को भयभीत जानना बहुत बड़ी हिम्मत की बात है, छोटी हिम्मत की बात नहीं है।
यह जान लेना कि यह रहा पाप--और मैं पाप हूं--बहुत बड़ी हिम्मत की बात है। क्योंकि मैं जैसा हूं उसे वैसा ही जान लेना बड़ा दुस्साहस है, बड़ा एडवेंचर है। छाती दुखेगी, चारों तरफ से मन करेगा कि नहीं, मैं ऐसा नहीं हूं, बचने की कोशिश चलेगी। लेकिन अगर मैंने कोई कोशिश न की और जान लिया कि ऐसा मैं हूं! इस तथ्य को पहचान लेना पहला कदम है जीवन के रूपांतरण का।
और जैसे ही इस तथ्य को पहचाना, फिर इस तथ्य के साथ रहना। भागना मत, उपाय मत करना कि मैं भयभीत हूं, तो मैं ताकतवर कैसे हो जाऊं? मैं भयभीत हूं, तो मैं कौन सा ताबीज खरीदूं कि मेरा भय चला जाए? मैं भयभीत हूं, तो मैं किस गुरु को पकडूं कि निर्भय हो जाऊं?
नहीं, लिव विद दि फैक्ट। वह जो है तथ्य उसके साथ जीना, जानना कि मैं भयभीत हूं, जानना कि मैं घृणा से भरा हूं, जानना कि मैं क्रोधी हूं, और रहना इसके साथ; क्योंकि भागने का कोई उपाय नहीं है, यही मैं हूं। और अगर एक आदमी एक दिन भी अपने तथ्य के साथ रह ले, तो उसे अपने भीतर के पूरे नरक का बोध होगा, अपने पूरे तथ्य उसे दिखाई पड़ेंगे। और उसे लगेगा नरक कहीं जमीन में, पाताल में नहीं, यहां मेरे भीतर है।

एक मित्र ने पूछा है कि कभी आप कहते हैं, भीतर नरक है। कभी आप कहते हैं, भीतर आत्मा है। कभी आप कहते हैं, सबके भीतर बैठे परमात्मा को नमस्कार! हम क्या समझें?

ठीक पूछते हैं वे। भीतर बहुत बड़ी घटना है। लेकिन सबसे पहले नरक है। और जिस दिन नरक को कोई देख लेगा, पहचान लेगा पूरी तरह, तत्क्षण नरक से छलांग लगा कर बाहर हो जाएगा। आत्मा शुरू हो जाएगी, नरक से जिसने छलांग लगा ली, उसको आत्मा का दर्शन शुरू होगा। और आत्मा से भी जो छलांग लगा लेगा उसे परमात्मा का दर्शन शुरू होगा। कुछ लोग नरक पर ही रुक जाते हैं। कुछ लोग नरक पर भी नहीं जाते, उसके बाहर ही घूमते रहते हैं। लेकिन यह यात्रा करनी पड़ेगी, नरक पर जाना पड़ेगा, ताकि हम छलांग लगा सकें। और आत्मा पर रुक जाते हैं कुछ लोग; उन्हें लगता है कि बस ठीक है, नरक से छलांग लग गई, मैंने जान लिया कि मैं कौन हूं, बस अब यात्रा खत्म हो गई।
अभी यात्रा खत्म नहीं हो गई; अभी बूंद ने सिर्फ बूंद होना पहचाना, अभी बूंद को सागर होना भी पहचानना है। क्योंकि जब तक बूंद सागर न हो जाए तब तक बूंद परेशानी में रहेगी; जब तक बूंद सागर न हो जाए तब तक बूंद सीमित रहेगी; जब तक बूंद सागर न हो जाए तब तक बूंद का बहुत सूक्ष्म अहंकार मौजूद रहेगा। तो अंतिम छलांग शून्य में है, जहां सब खो जाता है--आत्मा भी! मेरा होना भी! तब फिर उसका ही होना रह जाता है--जो अस्तित्व है--जो है। और उस "है" को जब कोई जानता है, उस "है" के साथ जब कोई जीता है, उस "है" के साथ जब कोई लीन होता है, तब समय के बाहर कालातीत, तब मृत्यु के बाहर अमृत, और तब अंधकार के बाहर अनंत आलोक का जगत शुरू हो जाता है।
समस्त धर्म ने यही चाहा है, लेकिन हो नहीं सका। समस्त प्राणों की यही प्यास है, लेकिन हो नहीं सका। हम भी यही चाहते हैं, सब यही चाहते हैं। लेकिन चाहने ही से यह न होगा; सिर्फ चाहने से ही कुछ भी न होगा; कुछ करना पड़ेगा। भीतर की यह कठिन यात्रा पूरी करनी पड़ेगी। और कठिनाई सबसे बड़ी पहले कदम पर है। वह जो नरक है, उसको ही देखने पर है। हम उसी से बच कर, उस नरक को लीपने-पोतने लगते हैं। जहां लपट दिखाई पड़ती है, वहां चार फूल प्लास्टिक के लाकर बाहर से लगा देते हैं; और कहते हैं, लपट को दबाओ।
पंडित नेहरू इलाहाबाद आए थे, मैं उन दिनों इलाहाबाद था। जिस रास्ते
से वे गुजरने वाले थे, उस रास्ते के एक मकान में मैं ठहरा हुआ था। उस रास्ते के सामने ही एक गंदा नाला था। अब पंडित नेहरू वहां से निकल रहे हैं, तो क्या किया जाए?
तो जिन लोगों की नरकों और नालियों को सदा की दबाने की आदत है, वे होशियार हैं। उन्होंने फौरन कई गमले लाकर उस नाले में रख दिए। गमले, बड़े- बड़े गमले लाकर रख दिए, पाम के गमले पूरे नाले पर रख दिए, बड़े रंगीन फूल लाकर

सड़क के किनारे लगा दिए, पूरे नाले को ढंक दिया फूलों से। पंडित नेहरू निकले, बड़े खुश हुए होंगे--फूल ही फूल हैं। नीचे नाला बह रहा था।
सब तरफ नाले बह रहे हैं, ऊपर से फूल लगाए हुए हैं, ऊपर से फूल सजा दिए हैं।
ठीक है लेकिन, सड़क पर किसी नाले को फूल से ढांक दो, हर्ज भी ज्यादा नहीं। लेकिन भीतर के नालों को फूल से ढांक दिया तो बहुत हर्ज है। और हम भीतर वही ढांके हुए हैं।
उनको एक-एक फूल को उखाड़ कर नीचे देख लें, वहां नरक है। तो जहां घृणा है, वहां हम कहते हैं कि मैं कभी घृणा नहीं करता, मैं तो बड़ा प्रेमी आदमी हूं। कभी-कभी घृणा हो जाती है भूल-चूक से, ऐसे तो मैं चौबीस घंटे प्रेम करता हूं। घृणा भूल-चूक से हो जाती है।
हालत उलटी है--चौबीस घंटे घृणा है, प्रेम भूल-चूक से हो जाता है। हालत बिल्कुल उलटी है। वह हालत ऐसी है--नाला असली है, कभी-कभार नाले के किनारे कोई एकाध फूल खिल जाता है। कोई बीज पड़ जाता है, फूल खिल जाता है। लेकिन नाला अकड़ कर कहता है, मैं तो फूल ही फूल हूं। यह नाला तो कभी-कभी हो जाता हूं, ऐसे तो फूल ही फूल हूं। ऐसे ही हम हैं। चौबीस घंटे में शायद एक क्षण को भी कभी प्रेम का फूल खिलता हो; लेकिन हम मानते यह हैं कि हम प्रेम हैं। और जब क्रोध और घृणा चौबीस घंटे चलते हैं तो हम मानते हैं कि ये कभी-कभी हो जाते हैं।
व्यक्ति को अपने तथ्य को जानना व्यक्ति के जीवन में क्रांति की शुरुआत है। और सबसे गहरा तथ्य है भय का! भय को ठीक से जान लेना और उसके साथ जीना! जिस दिन भय की लपटें पूरी दिखाई पड़ेंगी, व्यक्ति छलांग लगा कर बाहर हो जाता है।
अंतिम सूत्र पर कल रात बात करूंगा, और जो प्रश्न रह गए हैं, उन पर भी।
मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नये समाज की खोज
चौथा प्रवचन

अंतस की बदलाहट ही एकमात्र बदलाहट

मेरे प्रिय आत्मन्!
अच्छा होगा कि मैं आज प्रश्नों के ही उत्तर दूं, क्योंकि बहुत प्रश्न इकट्ठे हो गए हैं। संक्षिप्त में ही देने की कोशिश करूंगा ताकि अधिकतम प्रश्नों के उत्तर हो सकें।

एक मित्र ने पूछा हैः बुरा मत देखो, बुरा मत सुनो, बुरा मत बोलो, इन तीन सूत्रों के संबंध में आपका क्या कहना है?

सूत्र तो जिंदगी में एक ही है--बुरे मत होओ। ये तीनों सूत्र तो बहुत बाहरी हैं। भीतरी सूत्र तो--बुरे मत होओ--वही है। और अगर कोई भीतर बुरा है, और बुरे को न देखे, तो कोई अंतर नहीं पड़ता। और अगर कोई भीतर बुरा है, और बुरे को न सुने, तो कोई अंतर नहीं पड़ता। और अगर कोई भीतर बुरा है, और बुरे को न बोले, तो कोई अंतर नहीं पड़ता। ऐसा आदमी सिर्फ पागल हो जाएगा। क्योंकि भीतर बुरा होगा! अगर बुरे को देख लेता तो थोड़ी राहत मिलती। वह भी नहीं मिलेगी। अगर बुरे को बोल लेता तो थोड़ा बाहर निकल जाता, भीतर बुरा थोड़ा कम हो जाता, वह भी नहीं होगा। अगर बुरे को सुन लेता तो भी थोड़ी तृप्ति मिलती, वह भी नहीं हो सकेगी। भीतर बुरा अतृप्त रह जाएगा।
नहीं, असली सवाल यह नहीं है। लेकिन आदमी हमेशा बाहर की तरफ से सोचता है। असली सवाल है होने का, असली सवाल करने का नहीं है। मैं क्या हूं, यह सवाल है। मैं क्या करता हूं, यह गौण है। क्योंकि मैं जो हूं, मेरा करना उसी से निकलता है।
लेकिन अब तक की सारी शिक्षाएं मनुष्य पर जोर नहीं देतीं, मनुष्य के करने पर जोर देती हैं। करना गौण है। भीतर मनुष्य क्या है, उससे करना निकलता है। हम जैसे हैं वही हमसे किया जाता है। लेकिन हम चाहें तो धोखा दे सकते हैं। बुराई भीतर दबाई जा सकती है। दबाई हुई बुराई दुगुनी हो जाती है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि बुरा करें। मैं यह कह रहा हूं, बुराई को दबाने से बुराई से मुक्त नहीं हुआ जा सकता! बुरे होने को ही रूपांतरित होना है। इसलिए सूत्र तो एक है कि बुरे न हों। लेकिन बुरे कैसे न होंगे, बुरे हम हैं! इसलिए इस बुरे होने को जानना पड़े, जागना पड़े, पहचानना पड़े। यही मैं तीन दिनों से कह रहा हूं कि यदि हम अपनी बुराई को पूरी तरह जान लें तो बुराई के बाहर छलांग लग सकती है।
लेकिन हम बुराई को जान ही नहीं पाते, क्योंकि हम तो यह सोचते हैं कि बुराई कहीं बाहर से आ रही है। बुरे को देखेंगे तो बुरे हो जाएंगे; बुरे को सुनेंगे तो बुरे हो जाएंगे; बुरा बोलेंगे तो बुरे हो जाएंगे। हम तो यह सोचते हैं कि बुराई जैसे कहीं बाहर से भीतर की तरफ आ रही है। हम तो अच्छे हैं, बुराई जैसे बाहर से आ रही है।
यह धोखा है! बुराई बाहर से नहीं आती; बुराई भीतर है! भीतर से बाहर की तरफ जाती है बुराई। गुलाब में कांटे बाहर से नहीं आते, भीतर की तरफ से आते हैं। फूल भी भीतर की तरफ से आता है, वह भी बाहर से नहीं आता। भलाई भी भीतर से आती है, बुराई भी भीतर से आती है; कांटे भी भीतर से, फूल भी भीतर से। इसलिए बहुत महत्वपूर्ण यह जानना है कि भीतर मैं क्या हूं? वहां जो मैं हूं, उसकी पहचान ही परिवर्तन लाती है, क्रांति लाती है।
लेकिन शिक्षाएं ऐसी ही बातें सिखाए चली जाती हैं। वे बहुत ऊपरी हैं, बहुत बाहरी हैं। इसलिए सारी शिक्षाओं ने मिल कर ज्यादा से ज्यादा आदमी के आवरण को बदला है, उसके अंतस को नहीं। और आवरण बदल जाए इससे क्या होता है? सवाल तो अंतस के बदलने का है। आवरण सुंदर हो जाए तो भी क्या होता है? सवाल तो अंतस के सुंदर होने का है।
हां, एक कठिनाई हो सकती है कि आवरण सुंदर बनाया जा सकता है और अंतस कुरूप रह जाए। तो आदमी दो हिस्सों में बंट जाए, असली आदमी भीतर हो, नकली

आदमी बाहर हो। जैसा कि है। एक आदमी है नकली, जो हम बाहर होते हैं; और एक आदमी है असली, जो हम भीतर होते हैं। वह जो भीतर है वही है। और अगर कहीं कोई परमात्मा है तो उसके सामने जब हम खड़े होंगे तो वह जो भीतर है वही दिखाई पड़ेगा। वह जो नकली है वह छूट जाएगा। वह साथ नहीं होगा।
इसलिए अगर कोई क्रांति करनी है तो आचरण में करने की उतनी चिंता मत करना, अंतस में करना; क्योंकि अंतस से आचरण आता है। लेकिन समझाया कुछ ऐसा जाता है कि जैसे आचरण ही अंतस है। तब आदमी आचरण को ही बदलने में लग जाता है। आचरण बदल भी जाए तो भी अंतस नहीं बदलता। अंतस बदले तो ही आचरण बदलता है।
मैं सुबह कह रहा था, मैं कह रहा था कि अगर कोई गेहूं बोए तो भूसा भी पैदा हो जाता है। गेहूं तो अंतस है; भूसा आचरण है, बाहर है। लेकिन अगर कोई भूसे को बोने लगे, तो गेहूं तो पैदा होता नहीं, भूसा भी सड़ जाता है। गेहूं बोना चाहिए, तो भूसा भी आ जाता है बिना बोए। और भूसा बोया, तो गेहूं तो आता ही नहीं, भूसा भी सड़ जाता है। आचरण भूसा है, अंतस आत्मा है।
इसलिए सूत्र एक है--बुरे मत होओ।
लेकिन बुरे हम हैं! मत होओ कहने से क्या होगा?
बुरे मत होओ, इसका अर्थ हुआ कि जो हम हैं--बुरे--उसे जानें, पहचानें।
इतना तय है कि अगर कोई आदमी अपनी बुराई को पहचान ले तो बुरा नहीं रह जाता।
बुरा होना असंभव है।
न मालूम कितने हत्यारों ने अदालतों में इस बात की स्वीकृति की है कि
हम हत्या होश में नहीं किए हैं। हम बेहोश थे तब हो गई यह बात। और कुछ हत्यारों ने तो यह भी कहा है कि उन्हें स्मरण ही नहीं है कि उन्होंने हत्या कब की। तो पहले तो समझा जाता था कि ये झूठ बोल रहे हैं। लेकिन अब तो मनोवैज्ञानिक उनकी स्मृति की खोजबीन करके कहते हैं कि वे ठीक बोल रहे हैं, उनको पता ही नहीं उन्होंने हत्या कब की। वे इतने बेहोश हो गए क्रोध में कि हत्या कर गए, वह उनकी स्मृति ही नहीं बनी, जब वे होश में आए तब हत्या हो चुकी थी।
जो गहरे में जानते हैं, वे कहते हैं, आदमी बुराई करता है सदा बेहोशी में। कोई भी आदमी बुराई को होश में नहीं करता। होश में कर नहीं सकता! सब बुराई बेहोशी में है। इसलिए असली सवाल बेहोशी तोड़ने का है।
महावीर से किसी ने पूछा--साधु कौन है? तो महावीर ने नहीं कहा कि जो मुंह-पट्टी बांधता है। बड़ी गलती की। वे अगर बता देते कि जो मुंह-पट्टी बांधता है, तो हम सब साधु हो जाते। महावीर ने नहीं कहा कि जो ऐसा खाना खाता है; जो ऐसा सोता है; ऐसा उठता है।
नहीं। महावीर से पूछा--साधु कौन है? तो महावीर ने कहा, जो जागा हुआ जीता है।
असाधु कौन है? तो महावीर ने नहीं कहा कि जो वेश्या के घर जाता है, कि
जो बीड़ी पीता है, कि मांस खाता है। महावीर ने कहा, जो सोया हुआ जीता है वह असाधु है।
हम सब सोए-सोए जी रहे हैं। हमें पता ही नहीं है कि हम सो रहे हैं, सोने में ही सब कुछ कर रहे हैं, एक नींद पकड़े हुए है और चले जा रहे हैं।
एक ही धर्म का गहरा सूत्र है कि हम जागें। उस संबंध में मैं आखिरी प्रश्न में बात करना चाहूंगा।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है, उन्होंने पूछा हैः आपके सारे विचार डिस्ट्रक्टिव हैं, कंस्ट्रक्टिव नहीं; सब विध्वंसात्मक हैं, निर्माणात्मक नहीं।

डिस्ट्रक्टिव ही होंगे, विध्वंसात्मक ही होंगे।
जीसस ने एक बार कहा हैः आई हैव कम नाट टु डिस्ट्राय। मैं आया हूं, नष्ट करने नहीं।
और मैं जीसस के शब्दों में कहना चाहता हूं--आई हैव कम टु डिस्ट्राय।
मैं आया हूं नष्ट करने। लेकिन मतलब मेरा भी वही है जो जीसस का है। जीसस ने कहा कि मैं आया हूं नष्ट करने नहीं, निर्माण करने। मैं भी कहना चाहता हूं

कि मैं आया हूं नष्ट करने, क्योंकि बिना नष्ट किए कुछ भी निर्माण नहीं किया जा सकता। नष्ट करना निर्माण करने की प्रक्रिया का हिस्सा है। और जो कौम नष्ट करना भूल जाती है, ध्यान रहे, वह निर्माण करना भी भूल जाती है। नष्ट करने की हिम्मत होनी ही चाहिए। उसी हिम्मत से निर्माण करने की हिम्मत आती है। निर्माण करना दूसरा कदम है। पहले तो मिटाना पड़ता है, तभी निर्माण होता है। निर्माण का कोई रास्ता ही नहीं है बिना विध्वंस के। लेकिन कुछ हमारा मस्तिष्क ऐसा सोचता रहा है कि निर्माण और विध्वंस दो विरोधी चीजें हैं। गलत सोचता रहा है। निर्माण और विध्वंस एक ही प्रक्रिया के दो अंग हैं। गिराना बनाने की तैयारी है और बनाना भी फिर गिराने की तैयारी है। वे एक ही प्रक्रिया के हिस्से हैं। जन्मना मरने की तैयारी है, मरना फिर जन्मने की तैयारी है। जिसे हम प्रारंभ कहते हैं वह अंत की शुरुआत है, जिसे हम अंत कहते हैं फिर वह नया प्रारंभ है।
लेकिन पुराना मन इतना घबरा गया है तोड़ने से कि वह तोड़ता नहीं। तो फिर
वह बना भी नहीं पाता। फिर वह मरे-मराए को, सड़े-सड़ाए को छाती पर ढोता चला जाता है।
हम ऐसे लोग हैं कि अगर मेरे घर में कोई मर जाए--बहुत प्यार करता हूं; बहुत प्रेम करता हूं--और मैं उसे मरघट ले जाऊं, तो गांव के लोग कहें, बड़े डिस्ट्रक्टिव मालूम पड़ते हो, जिसको इतना प्रेम किया उसको मरघट ले जा रहे हो!
अगर ऐसा कोई गांव हो जहां मुर्दों को दफनाने में डिस्ट्रक्शन मालूम पड़े, विनाश मालूम पड़े, तो उस गांव में जिंदा आदमी न रह सकेगा; फिर मुर्दे ही रहेंगे। फिर मुर्दे इतने इकट्ठे हो जाएंगे... ध्यान रहे, मुर्दे जिंदा से हमेशा ज्यादा हैं। अगर सारे मुर्दे इकट्ठे हो जाएं जमीन पर, तो जिंदा आदमी कहां रहे? वह तो मुर्दों को हम दफना आते हैं इसलिए जिंदा के रहने के लिए जगह बन पाती है, नहीं तो नहीं बन सकती। माना कि बहुत प्रेम करते हैं मुर्दे को, तो प्रेम से ही दफना आएंगे, झगड़ा नहीं करेंगे।
पुराने को मरना ही पड़ेगा; नहीं तो नये का जन्म नहीं होता। जिस दिन बेटा जन्मता है, उस दिन बाप के मरने की यात्रा शुरू हो जाती है। बल्कि पुराने लोग तो बेटे को जन्माते ही इसलिए थे, नहीं तो अंत्येष्टि कौन करेगा? दफनाएगा कौन? अगर बेटा न होगा तो आग कौन लगाएगा? तो पुराना आदमी परेशान होता था कि बेटा जरूर पैदा हो जाए। अब तो दूसरों के बेटे भी सहायता कर देते हैं। पहले यह ख्याल था--अपना ही बेटा!
लेकिन बात ठीक ही है, बात ठीक ही है। विध्वंस की तैयारी तो होनी ही चाहिए।
लेकिन विध्वंस शब्द से ही भय छा गया है कि जैसे यह कुछ बुरी बात है। अगर विध्वंस बुरा है तो फिर निर्माण कैसे होगा?
तो वे ठीक ही पूछते हैं मित्र, मैं डिस्ट्रक्टिव हूं। क्योंकि यह देश,
यह समाज, यह आदमी बहुत दिन तक कंस्ट्रक्टिव रह लिया, बहुत रचनात्मक कार्यक्रम हो चुके। लेकिन रचनात्मक कार्यक्रम से चरखा चलता है, और कुछ भी नहीं होता। अब विध्वंसक कार्यक्रम की जरूरत है। और किन्हीं न किन्हीं लोगों को हिम्मत करनी होगी कि अब हम डिस्ट्रक्टिव प्रोग्राम बनाएं। अब मिटाने की तैयारी करें।
और ध्यान रहे, आदमी की एक अदभुत खूबी है। अगर पुराना गिर जाए तो आदमी बिना बनाए नहीं रह सकता। लेकिन अगर पुराना बना रहे तो आदमी आलस्य में पुराने में ही रहे चला जाता है। वह सोचता हैः कल गिरा लेंगे, परसों गिरा लेंगे। फिर ऐसी जल्दी क्या है! थोड़ा पुराने में ही टीम-टाम कर लो; रंग-रोगन बदल दो; थोड़ा नया वार्निश कर दो; एकाध दीवार का पलस्तर गिर गया है, पलस्तर ठीक कर दो; पुराने में ही रहे चले जाओ। बना लेंगे, इतनी जल्दी क्या है! लेकिन अगर पुराना गिर जाए तो कितनी देर बिना नये के रह सकते हो?
जीवंत समाज सदा ही पुराने को गिराने के लिए तत्पर, नये को बनाने के लिए आतुर होता है। मुर्दा समाज पुराने को बचाने में तत्पर, नये से सदा भयभीत होता है। अब हमें कैसा रहना है, यह सोच लेना चाहिए। नये को आने से अगर निमंत्रण रोकना है तो फिर पुराने को बचा लेना चाहिए। और अगर नये को आमंत्रण देना है तो पुराने को हटाना ही पड़ेगा। दुखद भी होता है कई बार

पुराने को हटाना, क्योंकि उसके साथ इतने दिन रहे। लेकिन दुख के साथ भी विदा देनी पड़ती है। पुराने को अलविदा कहना ही पड़ेगा, तभी नये का आलिंगन हो सकता है। मैं तो विध्वंसक हूं। क्योंकि उसके अतिरिक्त अब सृजनात्मक होने का कोई मार्ग नहीं है। न कभी था।

एक मित्र ने पूछा हैः पुराना आदमी अच्छा है या बुरा, यह कैसे जान पड़ता है? जब कि हमारे पास बुरा या अच्छा आदमी का ख्याल नापने के लिए मापदंड नहीं है। अच्छा आदमी का मापदंड ही आदर्श है, यह बात तो आप भी सहमत नहीं होंगे।

पुराना आदमी बुरा है, इसे कहने का कारण कोई मापदंड और आदर्श नहीं है। इसे कहने का कारण पुराने आदमी की दुख भरी जिंदगी है, पुराने आदमी की सड़ी हुई जिंदगी है।
आपको अगर टी.बी. और कैंसर हो जाए तो डाक्टर आपसे कहे कि आपको कैंसर है, टी.बी. है। आप कहें, स्वास्थ्य का मापदंड क्या है? पहले स्वास्थ्य का आदर्श तो पता चल जाए, तभी तो आप सिद्ध कर सकेंगे कि मुझे कैंसर है। तो फिर डाक्टर आपसे न जीत सकेगा, क्योंकि स्वास्थ्य का मापदंड अभी तक तय नहीं हो सका, न कभी होगा। डाक्टर बता सकता है कि बीमारी क्या है। बीमारी की डेफिनीशन उसकी किताब में लिखी है कि कौन-कौन सी बीमारी क्या-क्या है। लेकिन स्वास्थ्य की कोई परिभाषा किसी शास्त्र में नहीं लिखी कि स्वास्थ्य क्या है। एक ही परिभाषा है कि जब कोई बीमारी न हो तो जो शेष रह जाता है वह स्वास्थ्य है। तो फिर आपको लौटना पड़ेगा बिना इलाज करवाए। नहीं, चिकित्सक कहेगा, स्वास्थ्य को जाने दो! इतना जानना काफी है कि टी.बी. तुम्हें गलाए दे रही है, सड़ाए दे रही है; तुम मरने के करीब पहुंच रहे हो। स्वास्थ्य के मापदंड की कोई जरूरत नहीं है टी.बी. को जानने के लिए। टी.बी. अपने में जताने के लिए काफी है।
पुराना समाज, पुराना आदमी बहुत दुख में जीया है, हिंसा में, संघर्ष में, युद्ध में। तीन हजार साल में पंद्रह हजार युद्ध हुए हैं पृथ्वी पर। तीन हजार साल में पंद्रह हजार युद्ध! आदमी जरूर रुग्ण रहा होगा। ऐसा लगता है कि आदमी लड़ने का ही काम करता रहा है, और उसने कोई काम ही नहीं किया। कभी- कभी बीच में दस-पांच दिन के लिए फुर्सत का वक्त आता है। वह भी फुर्सत का नहीं है, वह भी पुराने युद्ध की थकान मिटाने का और नये की तैयारी करने का है। आदमी की पूरी कथा युद्ध की, हिंसा की, घृणा की, क्रोध की कथा है। आदमी की पूरी जिंदगी प्रेम की नहीं, फूल की नहीं, कांटों की और गंदगी की कथा है। क्या इसके लिए मापदंड खोजना पड़ेगा, तब हम तय करें?
नहीं, दुनिया में फैली हुई उदासी कहती है, दुख कहता है। दुनिया में फैला हुआ आदमी का जीवन कहता है। रोज आदमी आत्महत्या करने को उत्सुक है, जीने को उत्सुक नहीं है। कितने लोग मुझसे आकर पूछते हैं कि किसलिए जीएं? क्या फायदा है जीने में? मर जाएं तो क्या हर्ज है? प्रति सेकेंड जमीन के किसी कोने पर एक आदमी आत्महत्या कर लेता है। मैं साठ मिनट बोलूंगा, कितने लोग आत्महत्या कर लेंगे! प्रति सेकेंड एक आदमी किसी कोने पर आत्महत्या कर रहा है। और यह बढ़ती जाती है संख्या। जिंदगी का रस खोता जाता है, जिंदगी उदास होती चली जाती है। और आदमी पूछने लगा है--जिंदगी का अर्थ क्या है? क्यों जीएं हम?
दोस्तोवस्की ने लिखा है कहीं कि अगर परमात्मा मिल जाए तो उससे एक ही सवाल मुझे पूछना है कि हमने क्या कसूर किया था कि आपने हमें जन्म दिया? और उसकी टिकट वापस कर देनी है कि यह अपनी टिकट सम्हालिए, हम इस जिंदगी के भवन के बाहर जाना चाहते हैं। और उससे पूछना है कि बिना पूछे जिंदगी में कैसे भेजा हमें?
ईश्वर से पूछने की कई बातें कई लोगों ने सोच रखी होंगी। लेकिन दोस्तोवस्की जो कहता है यह बात ठीक लगती है। यह उससे पूछना जरूरी होगा-- क्यों पैदा किया? क्या जरूरत थी पैदा करने की? शायद इसीलिए वह छिपा हो कि इसका उत्तर तो बहुत मुश्किल होगा। आदमी जैसा है वही बता रहा है कि वह वैसा नहीं है कि आनंद से नाच रहा हो, गीत से नाच रहा हो।

एक छोटी सी कहानी मुझे याद आती है। दिवायर ने एक छोटी सी कहानी लिखी है।
एक जादूगर है। उस जादूगर ने जिंदगी भर मेहनत करके, एल्केमी की साधना करके, कुछ रासायनिक तत्व खोज कर अमृत का पता लगा लिया। उसने पा ली वह चीज जिसको पीने से कोई आदमी अमर हो सकता है। तब वह सत्तर साल का हो गया था। फिर वह उस प्याले को अपने गले तक प्रसन्न होकर ले गया मुंह तक कि अब पी लूं। लेकिन तभी उसे ख्याल आया--फिर मर न सकोगे; क्योंकि अमृत पीने के बाद फिर कोई मृत्यु नहीं! उसने कहा, दो मिनट फिर से सोच लूं। क्योंकि यह तो बहुत मुश्किल बात है। अमृत पीने के बाद फिर मर न सकोगे--उसके भीतर से किसी ने कहा--जरा सोच लो; सदा रहने का इरादा है? फिर मरना असंभव है! फिर पहाड़ से कूदो, चोट न लगेगी; पानी में डूबो, डूब न सकोगे; आग में जलो, जल न सकोगे। अमृत के बाद फिर मौत नहीं है! उसने प्याली नीचे रख दी, उसने कहा कि दो दिन सोच लूं, इतनी जल्दी क्या है!
दो दिन सोचा तो उसे लगा कि यह तो बहुत खतरा मोल ले लिया, यह बहुत खतरनाक है। तो वह उस अमृत के प्याले को, जिसे खोजने के लिए जिंदगी भर गंवा दी थी, पा तो लिया उसने, लेकिन पीने की हिम्मत न जुटाई। फिर उसने सोचा कि इतनी मेहनत बेकार चली जाएगी, कुछ मित्रों से पूछ लूं।
जिस मित्र के घर गया वही खुश हुआ कि धन्यभाग, आओ-आओ! लेकिन पीने के पहले उसने पूछा कि भई, तुम खुद क्यों नहीं पीते? तो उसने कहा, मैंने सोचा पीने का, लेकिन फिर मर न सकूंगा। तो उस मित्र ने कहा, हमको दुश्मन समझा है अपना? कहीं और ले जाइए!
वह गांव-गांव घूमता रहा, कोई आदमी न मिला जो उसको पीने को राजी हो। सम्राट के पास गया। और उसने कहा कि मैं थक गया, अब मैं मरने के करीब हूं। जिंदगी भर मेहनत करके एक चीज खोजी थी, सोचता था बड़े काम पड़ जाएगी। यह अमृत है, आप पी लें। सम्राट पी गया! आमतौर से सम्राटों में बुद्धि कम होती है, नहीं तो सम्राट न बनना चाहते। उसने यह भी नहीं पूछा--पीने के बाद उसने पूछा--अब इसका असर क्या होगा? उसने कहा, इसका असर हो चुका! अब आप मर नहीं सकेंगे! उसने कहा कि बदतमीज, पहले क्यों नहीं बताया? मर नहीं सकूंगा, क्या मतलब तेरा? कभी नहीं मर सकूंगा? उसने कहा, अब कभी नहीं मर सकेंगे।
सम्राट ने कहा, इस आदमी को कैद कर दो। वह आदमी कैद कर दिया गया। वह कैद में मर गया। सम्राट के बेटे बड़े हुए, मर गए, पत्नियां मर गईं, बेटों के बेटे मर गए, बहुएं मर गईं, उनके भी बेटों के बेटे मर गए; लेकिन सम्राट मरता ही नहीं! सम्राट एक प्रेत छाया की तरह घूमने लगा। और सारा गांव चाहता है कि यह मर जाए। सारा घर चाहता है कि यह मर जाए। क्योंकि उसको कोई प्रेम करने वाला न बचा। उससे किसी का कोई संबंध न रहा। उससे लोग डरने भी लगे, भागने भी लगे। उससे इसलिए भी डरने लगे कि इस आदमी के पास भी होना खतरनाक है। पता नहीं यह कैसा आदमी है! यह मरता क्यों नहीं? उसके घर के लोग उससे बात न करते, क्योंकि कई पीढ़ियों का फासला पड़ गया।
वह पहाड़ों से गिरता है, वह आग में कूदता है, वह जहर पीता है, वह छुरा मारता है, लेकिन मरता नहीं। वह एक ही प्रार्थना करता है, सब तरह के मंदिरों में जाता है, गिरजों में जाता है, मस्जिदों में जाता है--कि कोई भगवान सुन ले, मुसलमान का सुन ले, ईसाई का सुन ले, हिंदू का सुन ले। कोई नहीं सुनता उसकी। वह कहता है, मुझे मरना है! मस्जिद सुनसान खड़ी रहती है। चर्च में चिल्लाता है, मुझे मरना है, ईशु! लेकिन कोई आवाज नहीं आती। मंदिर में पुकारता है कि कृष्ण, राम, कोई मेरी सहायता करो, मुझे मरना है! कोई उत्तर नहीं आता। भगवान को पुकारता है कि मुझे मरना है! लेकिन भगवान की फाइल में भी कोई उत्तर नहीं है। क्योंकि सदा लोग एक ही पुकार करते रहे थे कि हम मर न जाएं! उसका तो उत्तर है भी। लेकिन किसी ने कभी पूछा ही नहीं था कि मुझे मरना है।
सुनते हैं, वह आदमी अभी भी जिंदा है। लेकिन अब वह दूर जंगलों-पहाड़ों में बच-बच कर भागने लगा है। अब वह आदमी से बचता है। क्योंकि आदमी को देख कर उसे ईर्ष्या होती है कि यह तो मर जाएगा और मैं नहीं मरूंगा। हो सकता है कभी राजकोट में आए वह आदमी तो आपसे भी मिलना हो जाए।

क्या, हो क्या गया है? उसे अगर पूरी अमृत जिंदगी मिल गई, उस पागल को इतना परेशान क्यों होना चाहिए? परेशान होने का कारण है--जिसे हम जिंदगी कहते हैं वह मौत से बदतर है। वह जिंदगी ही नहीं है, वह सिर्फ दुख की लंबी कथा है। वह तो थोड़े दिनों की है, इसलिए हम सह लेते हैं। वह लंबी हो जाए तो बहुत मुश्किल हो जाए। सब लंबी चीजें मुश्किल हो जाती हैं। छोटी है, इसलिए सह लेते हैं। पता नहीं चलता, गुजर जाती है, इसलिए सह लेते हैं। लेकिन लंबी हो जाए तो मुश्किल हो जाए।
लेकिन क्या यह जिंदगी है जिससे हमें ऊब जाना पड़ता है? अगर जिंदगी से
भी हम ऊब जाते हैं तो फिर क्या होगा जगत में जिससे हम न ऊबेंगे?
नहीं, आदमी कुछ गलत हो गया है। आदमी कहीं कुछ गलत हो गया है, कहीं किसी रास्ते से भूल हो गई है। आदमी के बनावट के सूत्र बुनियादी रूप से गलत हो गए हैं। इसलिए मैं कहता हूं, पुराना आदमी गलत था। क्योंकि पुराना आदमी दुखी है, बेचैन है, परेशान है। पुराना आदमी नाचता हुआ नहीं है। नहीं कह सकते कि भविष्य का आदमी भी नाचता हुआ हो सकेगा। क्योंकि कैसे कहें कि हम पुराने जाल से छूट जाएंगे, छलांग लगा लेंगे?
हां, एक बात पक्की है कि कभी-कभी कोई-कोई आदमी पुराने दिनों में भी यह छलांग लगा गया है। कभी-कभी कोई कृष्ण, कभी कोई बुद्ध छलांग लगा गया इस आग के बाहर। फिर उसकी बांसुरी बजने लगी; फिर उसका चित्त आनंद से भर गया। फिर उसके जीवन में कुछ फूल खिले, जो हमारे जीवन में नहीं खिलते। फिर उसकी जिंदगी में कुछ गीत बजे, जो हमारी जिंदगी में नहीं बजते। फिर उसने किसी वीणा के तार छू लिए, जो हमने नहीं छुए। फिर वह कहता है--बहुत आनंद है; बहुत प्रकाश है; बहुत शांति है; बहुत अमरत्व है; परमात्मा है।
लेकिन हम पूछते हैं--कैसा परमात्मा? कैसा आनंद? हमें शक आता है। हमारा
शक बताता है कि हम चूक गए हैं। कृष्ण पर विश्वास आता है? नहीं आता है। कृष्ण कहते हैं, आनंद ही आनंद है, नृत्य ही नृत्य है जीवन में। विश्वास नहीं आता। बुद्ध कहते हैं, शांति ही शांति है, अमृत है, शांति ही शांति है। इतना आनंद है भीतर कि हिसाब नहीं। सुनते हैं, शक होता है कि यह आदमी ठीक कहता है? क्योंकि हमारी जिंदगी में तो कोई गवाही नहीं है इस बात की। बुद्ध झूठे मालूम पड़ते हैं, महावीर झूठे मालूम पड़ते हैं, जीसस झूठे मालूम पड़ते हैं। सुकरात, ये सब कोई ठीक नहीं मालूम पड़ते। क्योंकि हम, हमारी भीड़ कुछ और कहती है। हम कहते हैं--जिंदगी तो दुख है, कौन कहता है जिंदगी आनंद है? जिंदगी में तो कांटे ही कांटे मिलते हैं, कौन कहता है कि फूल भी खिलते हैं? जरूर कहीं हमारे साथ भूल हो गई है या बुद्ध और महावीर के साथ भूल हो गई है। किसी न किसी के साथ भूल हो गई है। अगर बुद्ध और महावीर के साथ भूल हो गई है, कृष्ण और क्राइस्ट के साथ भूल हो गई है, तो वह भूल करने जैसी है। और अगर हमारे साथ भूल हो गई है, तो उस भूल से छलांग लगाने जैसा है, उसके बाहर आने जैसा है।

एक मित्र ने पूछा हैः आपकी वेशभूषा साधु के जैसी है, इसका क्या कारण है? क्या आप पतलून, शर्ट वगैरह नहीं पहन सकते? आप तो विज्ञान को मानते हैं और पुराने को निकालने का उपदेश देते हैं।

साधु के पास सिवाय वेशभूषा के और कुछ भी नहीं है। इसलिए वह मैंने उससे चुन ली है और बाकी चीजें जिनके पास हैं वह उनसे चुन लिया है। साधु के पास सिवाय वेशभूषा के कुछ भी नहीं है। मगर वेशभूषा उसके पास है। और ध्यान रहे, बहुत वैज्ञानिक वेशभूषा है। पतलून और टाई वैज्ञानिक नहीं हैं। असल में वस्त्र वे बढ़िया हैं, जो नंगेपन को मिटने न दें। वस्त्र वे बढ़िया हैं, जो कस न लें, बांध न लें, कटघरा न बन जाएं। वस्त्र वे बढ़िया हैं, जो कहीं बांधते न हों, सदा खुला और मुक्त रखते हों।
लेकिन हम तो कटघरों में जीने के आदी हैं तो मकान भी कटघरों जैसा ही बनाते हैं। फिर मकान से तृप्ति नहीं होती--क्योंकि बाहर मकान को लेकर कैसे जाएंगे--तो कपड़े भी कटघरे जैसे बनाते हैं कि सब तरफ से कसे रहें, बंधे रहें। अब कुछ नहीं बनता तो टाई भी बांधते हैं। टाई का मतलब समझते हैं? टाई का मतलब होता है फांसी। उसको कहना चाहिए गलफांस, नेकटाई, गले की फांसी।

उसको भी लगा लेते हैं। हम बंधन के आदी हैं। तो सब तरफ से बंधे हुए होना चाहिए। कहीं से खुले हुए नहीं होना चाहिए।
साधु ने वेश तो होशियारी से चुना है, बहुत वैज्ञानिकता से चुना है। खुला हुआ चुना है, बंधा हुआ नहीं है। उसके वेश के भीतर वह बिल्कुल मुक्त है, कुछ बांधता नहीं है उसे। उसके वेश के भीतर हवाएं जाती हैं और पार होती हैं।
आपके वेश के भीतर हवाएं आर-पार नहीं होतीं। और पहले कभी होती रही हों,
अब तो बिल्कुल ही नहीं हो पाती हैं। क्योंकि टेरीलीन है, और सब है, और प्लास्टिक से बने हुए जितने कपड़े हैं वे कोई भी हवा को भीतर नहीं जाने देते। स्टील के कपड़े भी बनने, तैयार होने की बात है। वे पहनना और भी सुंदर होंगे, चमकदार होंगे। लेकिन वैज्ञानिकता नहीं है। वैज्ञानिकता कुछ और बात है। वैज्ञानिकता का मतलब हैः मैं कैसे जीऊं! वह जीना कैसे आनंदपूर्ण, स्वतंत्र, मुक्त हो! उसका सब तरफ से ख्याल होना चाहिए--वस्त्र में भी, भोजन में भी, उठने-बैठने में भी, मकान में भी।
लेकिन उसका हमें ख्याल नहीं है। मकान हम ऐसे बनाते थे कि चोर का ध्यान रखते थे, रहने वाले का नहीं। वह जिसको रहना है उसका ध्यान नहीं था, चोर का ध्यान था जो कभी आएगा। और जो चौबीस घंटे रहेगा उसकी कोई फिक्र नहीं। कभी आएगा चोर, वह पता नहीं आएगा कि नहीं आएगा, कोई पक्का भी नहीं है। लेकिन उसको ध्यान में रख कर मकान बनाते थे तो मकान कटघरा हो जाता था, मकान एक जेलखाना हो जाता था।
कपड़े भी हमने ऐसे बना लिए थे जो आदमी को कसे रहें चौबीस घंटे।
मैंने तो जान कर चुने हैं। मैं तो बिना जाने कुछ करता नहीं। मैंने देखा कि साधु के पास कपड़े बढ़िया हैं। कपड़े चुन लिए। और देखा कि कपड़े ही हैं, और कुछ नहीं है, तो और कुछ जहां मुझे मिला वहां से चुन लेता हूं। जिसके पास जो है मुझे स्वीकार है। अगर वह आनंदपूर्ण है, तो सिर्फ इस वजह से इनकार के योग्य तो न हो जाएगा कि फलां के पास था तो आपने कैसे चुन लिया!
नहीं, चुनाव की तो स्वतंत्रता है। और फिर मुझे यह भी लगा कि साधु के कपड़े मैं पहनूं तो अच्छा है। उससे यह भी पता चल जाए कि साधु के कपड़े पहनने से भी कोई आदमी साधु नहीं हो जाता। लोगों को पता चलता रहे कि यह आदमी भी साधु के कपड़े पहने है, साधु नहीं है।
अभी मैं एक ट्रेन में सवार हुआ, तो रोज बहुत मजेदार बातें हो जाती हैं। ट्रेन में सवार हुआ। कुछ मित्र छोड़ने आए थे। मेरे कंपार्टमेंट में जो सज्जन थे उन्होंने देखा बहुत लोग छोड़ने आए हैं, जरूर कोई महात्मा होना चाहिए। जब मैं अंदर गया, ट्रेन चल पड़ी, उन्होंने जल्दी से पैर पड़े और कहा कि महात्मा जी, आपका सत्संग हो गया, बड़ा अच्छा हुआ। मैंने कहा कि बड़ी गलती हो गई आपसे। अगर मैं महात्मा न होऊं, तो अब आप यह पैर छू लिए वापस कैसे लेंगे? उन्होंने कहा, क्या कहते हैं आप? मजाक करते हैं! मैंने कहा, मैं मजाक नहीं करता। मैं महात्मा नहीं हूं। मुझे सिर्फ कपड़ों का शौक है, तो मैंने ये कपड़े पहन लिए। उन्होंने कहा, क्या कहते हैं आप? मैंने कहा, अगर अब कोई उपाय हो तो जल्दी से पैर छुए वह वापस ले लें। उन्होंने कहा कि नहीं- नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है? मैंने कहा, ऐसा हो गया है, मैं सामने खड़ा हूं। मैं महात्मा नहीं हूं। तो उन्होंने कहा, आप हिंदू तो हैं, वैष्णव हैं? मैंने कहा कि यह और मुश्किल हो गई। आपको पहले ही पूछ कर सब करना था। मैं हिंदू भी नहीं हूं, वैष्णव भी नहीं हूं। उन्होंने कहा, क्या मतलब? क्या आप मुसलमान हैं? मैंने कहा कि अगर मैं मुसलमान होऊं तो क्या करिएगा आप? उन्होंने कहा, नहीं-नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। मैंने कहा, अपना मन मत समझाइए। सब हो सकता है। इसमें क्या कठिनाई है? मुसलमान होने में कोई कठिनाई है मेरे?
उन्होंने फिर मुझे नीचे से ऊपर तक देखा। मैंने कहा, बैठिए, घबराइए मत,
अब जो हो गया हो गया। अब बाकी सत्संग शुरू करिए। उन्होंने कहा, मुझे कोई सत्संग नहीं करना। लेकिन आप आदमी कैसे हैं? आप मुसलमान हैं? मैंने कहा कि अगर मैं मुसलमान भी न होऊं तो सिर्फ आदमी होने में आपको कोई एतराज है? सिर्फ आदमी न होने देंगे?

उन सज्जन ने कंडक्टर को बुलाया, वे अपना सामान वगैरह लेकर दूसरे कंपार्टमेंट में चले गए। वे सत्संग करने से बड़े आनंदित हो रहे थे। फिर मैं उनके दरवाजे को खटखटाया जाकर। मैंने कहा, सत्संग नहीं करिएगा? तो उन्होंने कहा, आप मेरे पीछे क्यों पड़ गए हैं? मैंने कहा, मैं पीछे नहीं पड़ा; मैं हिंदू हूं। उन्होंने कहा, आइए-आइए! मैं तो पहले ही समझता था कि आप हिंदू हैं। मैंने कहा, आप देखते नहीं, जरा से शक में पड़ गए! कपड़े नहीं बताते कि मैं महात्मा हूं! उन्होंने दुबारा मेरे पैर पड़े और कहा, आप महात्मा हैं ही, वह तो मैं पक्का मान ही रहा था।
तो यहां हमारी बुद्धि अटक गई है--कहीं कपड़ों पर, कहीं शब्दों पर। इसको तोड़ देना पड़ेगा। गैर-महात्माओं को महात्माओं के कपड़े पहन लेना चाहिए, महात्माओं को गैर-महात्माओं के कपड़े पहन लेना चाहिए। यह सिलसिला टूटना चाहिए। हिंदू को मुसलमान के नाम रख लेना चाहिए, मुसलमान को हिंदुओं के नाम रख लेना चाहिए। यह सिलसिला टूटना चाहिए। यह पचास साल के बाद पता न चल सके-- कौन गृहस्थ है, कौन संन्यासी है! कौन हिंदू है, कौन मुसलमान है! यह पता नहीं चलना चाहिए। इसके पता चलने से बहुत नुकसान हुआ है। आदमी-आदमी के बीच बहुत दीवारें खड़ी हुई हैं। वे सब दीवारें तोड़ देने की जरूरत है, अगर एक नया समाज और एक नया आदमी पैदा करना है।

एक मित्र ने पूछा है कि हमें कल के आपके प्रवचन में यह बात समझ में नहीं आई कि तुलना, कंपेरिजन नहीं करनी चाहिए। तुलना न करने से तो फिर विकास नहीं हो सकेगा!

तुलना करने से विकास हो गया है?
हो गया है--सब आदमी पागल हो गए हैं, यह विकास हो गया है! क्योंकि जितनी तुलना होगी उतना ही पागलपन बढ़ता चला जाएगा। तुलना का मतलब है--नजर दूसरे पर। तुलना का मतलब है--दूसरा क्या कर रहा है, उससे मुझे तौलना है अपने को। तुलना का मतलब है--दूसरे को क्या हो गया है, उससे मुझे तौलना है अपने को। तुलना का मतलब है--दूसरे सदा मेरे ध्यान में रहें और मैं सदा गौण, और सदा उनसे अपने को तौलूं।
लेकिन ध्यान रहे, दो आदमी एक जैसे नहीं हैं। अगर आप रवींद्रनाथ के पड़ोस में रह गए तो आप मुश्किल में पड़ जाएंगे। कहीं आप भी कविताएं करने लगे तो जिंदगी मुश्किल हो जाएगी। और रवींद्रनाथ अगर आपके बगल में रह कर कहीं दुकानदारी करने लगे तो इतनी मुश्किल में पड़ जाएंगे। रवींद्रनाथ के मां- बाप ने बहुत कोशिश की थी कि वे दुकानदार बन जाएं या डाक्टर बन जाएं या इंजीनियर बन जाएं। सभी मां-बाप करते हैं। बेटों को बिगाड़ने की कोशिश से कौन बचना चाहता है! लेकिन रवींद्रनाथ बच गए। बड़ी मुश्किल से बच पाए। नहीं तो एक अदभुत आदमी खो जाता।
रवींद्रनाथ के घर में एक किताब है, जिस किताब में बच्चों के जन्मदिन
पर घर के बड़े-बूढ़े बच्चों के संबंध में भविष्यवाणियां करते थे। खेल था एक कि देखें किसकी भविष्यवाणी आगे ठीक निकलती है। तो रवींद्रनाथ के संबंध में किसी ने अच्छी भविष्यवाणी नहीं की। और घर में ग्यारह बच्चे थे, उनमें से कई के संबंध में अच्छी भविष्यवाणियां हैं। क्योंकि कोई प्रथम आता था, कोई फर्स्ट डिवीजन आता था। कोई कुछ करता था, कोई गोल्ड मेडल लाता था। रवींद्रनाथ कभी कुछ नहीं लाए। इनके संबंध में कौन भविष्यवाणी करे! क्योंकि इनकी तुलना ही किसी से ठीक नहीं पड़ती थी।
रवींद्रनाथ की मां ने भी लिखा है कि रवि से कोई आशा नहीं है।
वह किताब देखने लायक है। वे ग्यारह बच्चों का दुनिया में बिल्कुल पता नहीं कि वे कहां चले गए। यह एक बच्चा है, अभी भी इसका नाम है। इससे बिल्कुल आशा नहीं थी। मां को ही आशा नहीं थी, किसी और को तो क्या होगी! क्योंकि मां को तो सदा आशा होती है, चाहे किसी को न हो। लेकिन मां को भी आशा नहीं थी कि इससे कोई आशा नहीं बनती कि यह कुछ भी हो सकेगा।
लेकिन यह लड़का कुछ हो सका। यह हो सका इसलिए कि इसे जो होना था यह उसी होने में लग गया। शिक्षक गणित पढ़ाता और रवींद्रनाथ शिक्षक का चित्र बनाते। गणित तो नहीं सीख सके, लेकिन चित्र बनाना आ गया। शिक्षक भूगोल

पढ़ाता और रवींद्रनाथ बाहर जो पक्षी गीत गाता उसको सुनते। भूगोल तो नहीं आई, लेकिन पक्षी का गीत प्राणों में प्रवेश कर गया।
लेकिन सारे बच्चे कुछ और कर रहे थे। रवींद्रनाथ के घर के भी लोग कह रहे थे--देखो, पड़ोस के बच्चे देखो! और घर के बच्चे देखो! बहुत बड़ा परिवार था, सौ लोग थे घर में, कितने बच्चे थे। सब आगे जा रहे हैं, तू पिछड़ा जा रहा है!
लेकिन उस लड़के ने कोई फिक्र न की। उसने कहा कि अगर पिछड़ा ही होने वाला हूं मैं, अगर पिछड़ा ही हुआ हूं, तो वही ठीक! अब मैं क्या करूं? जैसा हूं, वैसा हूं!
असल में न तुलना करने का मतलब है कि मैं जैसा हूं, वैसा हूं। इसका यह मतलब नहीं है कि विकास रुक जाएगा। इसका यह मतलब है कि अगर आप इस बात के लिए राजी हो गए कि जो मैं हूं, हूं; तो आपकी जिंदगी में एक विकास होगा, जो आंतरिक होगा। आप रुक थोड़े ही सकते हैं विकास करने से। पौधे बगल के पौधे को देख कर बढ़ रहे हैं?
आपने गुलाब का पौधा लगाया, वह बगल के पौधे को देख कर बढ़ रहा है कि इसमें कितने पत्ते हैं, कितने फूल लगे हैं, इतने मैं लगाऊं?
नहीं, वह अपनी खाद ले रहा है, अपना पानी ले रहा है, अपनी ताकत से बढ़ रहा है।
जिंदगी भीतर की ताकत से चलती है। हम उसे बाहर का फीवर, बाहर का बुखार चढ़ाना चाहते हैं। बुखार तो चढ़ जाता है तेजी से, दौड़ तेज हो जाती है। लेकिन गलत दौड़ हो जाती है, क्योंकि दूसरे के पीछे दौड़ शुरू हो जाती है। जो हमें नहीं होना, वह हम होने की कोशिश में लग जाते हैं। तुलना ने मनुष्य को, मनुष्य के सारे जीवन को नष्ट करने में बहुत बड़ा काम किया है। तुलना वायलेंस है, तुलना हिंसा है।
जब कोई बाप अपने बेटे से कहता है कि पड़ोसी के बेटे को देखो, वह आगे निकला जा रहा है! तो अपने बेटे की हिंसा कर रहा है, वह उसकी गर्दन दबा रहा है। वह कह रहा है, बुखार चढ़ाओ अपने ऊपर! दौड़ो तेजी से! दूसरा आगे न निकल जाए!
दौड़ जाएगा बेटा उसका। सब धक्के देंगे। पिता देगा, मां देगी, शिक्षक देगा, पूरा समाज देगा। कल उसकी पत्नी देगी। आगे जाकर उसके बेटे देंगे कि तुम क्या कर रहे हो, सबके बाप कारें खरीद लाए! अपनी कार घर में नहीं दिखाई पड़ती। वह जिंदगी भर दौड़ता रहेगा, दौड़ता रहेगा और मर जाएगा। हां, हो सकता है एक कार खरीद लाएगा, एक मकान बना लेगा, सर्टिफिकेट दीवारों पर लटका देगा, कहीं-कहीं अभिनंदन समारोह करवा लेगा। वह सब हो जाएगा और आदमी मर जाएगा। कार आ जाएगी, मकान आ जाएगा, सर्टिफिकेट आ जाएंगे; आदमी खो जाएगा।
अगर आदमी को बेच कर यह सब खरीदना हो, तुलना बहुत जरूरी है, तुलना औषधि है, वह करना। लेकिन अगर आदमी को बचाना हो... इसका यह मतलब नहीं है कि आदमी बच जाएगा तो कार नहीं आ सकती। इसका यह कोई मतलब नहीं है। आदमी बच जाए, यह पहली जरूरत है। कार हो, मकान हो, ये गौण जरूरतें हैं। हो जाएं, ठीक। लेकिन आदमी को बेच कर नहीं की जा सकती हैं।
लेकिन दौड़ तेज है। और उस तेज दौड़ में तुलना हमें मारे डाल रही है। बगल
का आदमी मकान बना रहा है। और उसके मकान बनाने से मेरा मकान एकदम मुश्किल में पड़ जाता है। हालांकि मेरे मकान में कोई फर्क नहीं होता; मेरे कमरे उतने ही बड़े थे जितने कल थे। लेकिन एकदम छोटे लगने लगते हैं, क्योंकि बगल में बड़े कमरे बन गए हैं। अब मुझे इस मकान में सोना अच्छा नहीं लगता, नींद नहीं आती, क्योंकि बगल में एक और बढ़िया शानदार मकान बन गया है। क्या पागलपन है! मेरा कमरा मेरा है। और उसमें मैं सो रहा था, कल तक सब ठीक था। यह बड़ा मकान बन गया, सब मुश्किल हो गई।
कलकत्ते में एक बहुत बड़े आदमी के घर मैं ठहरता था। शायद उनका कलकत्ते में सबसे अच्छा मकान था। सारी संगमरमर की कोठी है, बड़ा बगीचा है। एक दूसरे नये धनपति ने मुझे आकर निमंत्रण दिया कि कल आप मेरे घर खाना खाएं। तो मैंने कहा, अच्छी बात, मैं आ जाऊंगा। जिनके घर ठहरा था, उनसे भी उन्होंने कहा कि आप भी कल जरूर आएं। उन्होंने कहा कि नहीं, मुझे बहुत काम हैं, मैं न आ सकूंगा; बहुत ही जरूरी हैं। उन्होंने कहा, दो मिनट के लिए आ जाएं।

उन्होंने कहा, बहुत ही मुश्किल है, एक मिनट निकालना मुश्किल है। फिर कभी आऊंगा।
जब वे मित्र चले गए तो मैंने उनसे पूछा, उन्होंने इतना आग्रह किया, आप
दो मिनट के लिए चले चलते। उन्होंने कहा, काम तो बिल्कुल नहीं है। लेकिन इस आदमी ने जो मकान बनाया है, उसकी वजह से मेरा मकान नंबर दो हो गया। मैं उस गली से नहीं निकलता। मैं कार का दो मील का चक्कर लगा कर आता हूं। ठहर जाएं, घबराएं मत, साल दो साल की बात है। हम भी बना लेंगे। फिर जाएंगे उनके निमंत्रण पर। हम भी उनको निमंत्रण देंगे। अभी नहीं।
मैंने कहा, अजीब बात है। आप भी हद कर दिए। बना लेना आप मकान। लेकिन उनके मकान में जाने में क्या हर्ज है?
उन्होंने कहा, मैं उस गली से नहीं निकलता। वह मकान देख कर मुझे बड़ी मुश्किल हो जाती है।
फिर मैं दूसरे दिन उन दूसरे मित्र के घर भोजन करने गया। मैंने सोचा कि
यह आदमी पागल है। उनके घर गया, मैंने कहा कि वे तो नहीं आए, मैंने भी बहुत आग्रह किया। उन्होंने कहा कि वे आते ही नहीं! जब से मकान बनाया है, चाहता हूं, एक दफा आ जाएं, जरा देख लें कि कैसा मकान बनाया है!
तब मुझे पता चला ये भी पागल हैं। वे दोनों ही उसी चक्कर में हैं। मैं सोचता था कि पहला आदमी पागल है, दूसरा आदमी भी पागल है। अगर हम आदमी-आदमी को खोजने जाएं तो हमें पता लगेगा कि हम एक बड़ा मैड हाउस बना लिए हैं, एक बड़ा पागलखाना बना लिए हैं, उसमें सब आदमी पागल हैं।
लेकिन लगता है कि तुलना विकास करवा रही है। नहीं, तुलना दौड़ाती तो है, लेकिन दौड़ना हर हालत में विकास नहीं है। नरक की तरफ भी दौड़ा जा सकता है। गड्ढे में भी दौड़ा जा सकता है। और यह भी हो सकता है कि दौड़ते-दौड़ते आदमी दौड़ता ही रहे और पागल की तरह दौड़ता रहे, और कभी ठहर न पाए और दो क्षण विश्राम न कर पाए। किसी वृक्ष के नीचे न टिके, किसी छाया में न रुके। दौड़ता रहे, दौड़ता रहे, और गिरे और मर जाए। तो इस दौड़ को विकास कहिएगा?
करीब-करीब ऐसा ही होता है। बचपन से दौड़ शुरू होती है, कब्र पर शून्य होती है। फ्राम दि क्रेडल टु दि ग्रेव, झूले से लेकर बच्चे के, और मुर्दे की कब्र तक दौड़ चलती रहती है। और हम कहते हैं, बड़ा विकास हो रहा है। बड़ा विकास हो रहा है, क्योंकि आदमी दौड़ता चला जा रहा है।
नहीं, यह विकास नहीं है, यह विक्षिप्त दौड़ है। और यह विक्षिप्त दौड़ है कंपेरिजन की वजह से; यह विक्षिप्त दौड़ है तुलना की वजह से--दूसरा क्या कर रहा है!
दूसरे से क्या प्रयोजन है? मैं मैं हूं। कुछ क्षमताएं परमात्मा ने मुझे दी हैं। मैं उन क्षमताओं का आनंद लूं। और जब मैं उन क्षमताओं का आनंद लूंगा तो वे विकसित होंगी, बिना किसी दौड़ के। मुझे गीत गाना है, गीत गाऊं; सितार बजाना है, सितार बजाऊं; जूता बनाना है, जूता बनाऊं; किसी के पैर दबाने हैं, पैर दबाऊं। मुझे जो करना है, मैं करूं। और अगर मुझे आनंद आता है तो आनंद आने से मैं और करूंगा, और करूंगा, और करूंगा, गहरा करूंगा। आनंद मेरा बढ़ता जाएगा, मैं गहरा होता चला जाऊंगा। लेकिन दौड़ नहीं होगी, एक बहुत शांत गति होगी। शांत गति होनी चाहिए विकास में।
तुलना शांत गति नहीं होने देती। तुलना एक तरह के ज्वरग्रस्त व्यक्तित्व में जहर का काम करती है, जहर डालती जाती है और हम भागते चले जाते हैं।
यह ऐसा ही है कि जैसे हम किसी आदमी को पीछे से कोड़े लगाते जाएं और वह दौड़े। और अगर हम कहें कि यह कोड़े लगाना गलत है। तो कोड़े लगाने वाला आदमी कहे, कोड़े लगाए जा रहे हैं जिसे वह आदमी कहे कि अगर कोड़े न लगेंगे तो विकास कैसे होगा? कोड़े लग रहे हैं तब तो विकास हो रहा है। वह तो चमड़ी उधड़ जाती है पीठ की इसलिए तो मैं दौड़ता हूं।
तो मैं कहता हूं कि दौड़ो मत, ऐसे विकास से भी क्या होगा जिसमें पीठ की चमड़ी उधड़ जाती हो! आत्मा तक की चमड़ी उधड़ जाती है इस सारी प्रतियोगिता में, इस प्रतिस्पर्धा में, इस कांप्टीशन में, जो चारों तरफ हमें पकड़े हुए है। सब उधड़ जाता है। और आखिर में मौत हाथ में आ जाती है और जिंदगी का कोई पता

नहीं चलता। इससे क्या प्रयोजन है? यह पूछने जैसा है प्रत्येक को अपने से कि ऐसी दौड़ का क्या अर्थ है? नहीं, ऐसी दौड़ का कोई अर्थ नहीं।
और ध्यान रहे, जिंदगी की जो मंजिल है, जिंदगी का जो रस है, जिंदगी का जो सौंदर्य है, वह तेज दौड़ने से नहीं, वह अत्यंत शांति और धीरज से चलने से उपलब्ध होता है।
एक छोटी सी कहानी से समझाऊं। मैंने सुना है, एक नदी के तट पर दो फकीर उतरे। एक बूढ़ा फकीर है, एक युवा फकीर है। नाव से नीचे उतरे। मांझी नाव को बांधने लगा। बूढ़े फकीर ने और युवा फकीर ने, दोनों ने अपने सिरों पर--ग्रंथ थे उनके पास--ग्रंथों का बोझ उठा लिया। चलते वक्त, सूरज ढल रहा है, उन्होंने उस मांझी से पूछा कि इतना बता दो, गांव कितनी दूर है? पहाड़ी रास्ता है, सांझ होने के करीब है और हमने सुना है कि गांव के दरवाजे बंद हो जाएंगे सूरज के डूबने पर, तो कहीं ऐसा न हो कि हम न पहुंच पाएं और दरवाजे बंद हो जाएं तो रात जंगल में बितानी पड़े। कितनी दूर है?
उस मांझी ने कहा, दूरी की फिक्र न करें; एक ही ध्यान रखें कि धीरे-धीरे चलें।
वे दोनों तो सुने और भागे। उन्होंने कहा किसी पागल से पाला पड़ गया है। क्योंकि अगर धीरे चले तो हो गया। उससे पूछा था कि कितनी दूर है? उसने कहा, दूर की फिक्र न करें, इतनी ही फिक्र करें कि धीरे-धीरे चलें। अपनी नाव वह बांधता रहा। वे दोनों भागे, अब इससे बात करने में समय खोना भी ठीक नहीं था। यह आदमी पागल मालूम पड़ा, वे दोनों भागे।
सूरज नीचे उतरने लगा और उनकी तेज दौड़ होने लगी। पहाड़ी रास्ता है, बूढ़ा फकीर है, गिर पड़ा; घुटने टूट गए; किताबों के पन्ने उड़ गए। मांझी नाव को बांध कर गीत गाता धीरे-धीरे आ रहा है। बूढ़े के पास आकर खड़ा हो गया। अब बूढ़ा चल नहीं सकता; जवान फकीर उस बूढ़े को कंधे पर उठा रहा है। उस मांझी ने खड़े होकर कहा, मैंने कहा था, लेकिन आपने नहीं सुना, कोई नहीं सुनता। क्योंकि मैं वर्षों से देखता हूं कि जो धीरे चलता है वह पहुंच भी जाता है, जो दौड़ता है वह नहीं पहुंच पाता! रास्ते बहुत पहाड़ी हैं, सांझ का वक्त, अंधेरा उतरने के करीब। जो तेजी से चलता है, गिरता है। जो धीरे चलता है, पहुंच भी जाता है। जिंदगी भर के अनुभव से मैं यह कहता हूं, लेकिन कोई नहीं सुनता! अब तुम न पहुंच सकोगे, अब रात इस जंगल में ही बितानी पड़ेगी।
लेकिन हर्ज नहीं, किसी गांव में अगर रात भर न भी पहुंचे तो क्या हर्ज है? लेकिन जिंदगी के गांव में ही न पहुंच पाए और जिंदगी भर दौड़े, तब तो बहुत हर्ज हो जाएगा!
हम सब दौड़ते हैं, रास्ता पथरीला है, रास्ता अंधेरा है, वहां सांझ ही है रास्ते पर सदा। और पहाड़ी है, पथरीला है, रास्ता अनजान है, अपरिचित है। दौड़ने से गिरने की ही संभावना ज्यादा है, पहुंचने की नहीं। लेकिन गिरने को हम मंजिल समझते हैं। हां, यह बात दूसरी है कि कोई दिल्ली में जाकर गिर पड़ता है, तो हम कहते हैं, बहुत अच्छा हुआ।
पर दिल्ली में गिरे तो क्या फर्क पड़ता है, गिरे! दौड़ते-दौड़ते दिल्ली में गिर गए जाकर। आमतौर से ऐसा होता है, सारे मुल्क से लोग दौड़ते रहते हैं, गिरते दिल्ली में हैं। दिल्ली पुराना मरघट है, वहां जाकर लोग गिरते रहते हैं। और वहां कोई चला गया तो फिर वहां से लौटता नहीं। फिर वह कहता है, अब जब तक न गिर जाएं तब तक लौटें कैसे! मरेंगे यहीं, राजघाट पर ही दफनाए जाएंगे, अब कहीं नहीं जाते। तो वहां जो गया वह चिपक कर बैठ जाता है। या तो गिर ही जाता है जाते-जाते, नहीं तो दो-चार दिन बाद गिर जाता है। लेकिन दौड़ है दिल्ली के लिए और दिल्ली बड़ी हैरान है। और दिल्ली सदा यही सोचती है, लोग किसलिए दौड़ कर यहां आते हैं--सिर्फ मरने के लिए? गिरने के लिए? किसलिए दौड़ कर यहां चले आते हैं?
सारे यश के केंद्र, सारी प्रतिष्ठा के केंद्र, धन के केंद्र कब्र बन जाते हैं। दौड़ का आखिरी पड़ाव वहां पड़ता है, आदमी गिर जाता है।
टाल्सटाय ने एक छोटी सी कहानी लिखी है, वह सबने पढ़ी होगी। वह बहुत अदभुत है। उस कहानी का नाम हैः हाउ मच लैंड डज ए मैन रिक्वायर? एक आदमी को कितनी जमीन की जरूरत है?

एक आदमी के घर में एक मेहमान रुका है रात। और उस मेहमान ने रात में उस आदमी से कहा कि तुमने सुना? तुम क्या कर रहे हो, समय खो रहे हो अपना! छोटी सी जमीन है, इसको बेच दो। वहां दूर साइबेरिया के पास बड़ी अदभुत जमीन मुफ्त में मिल रही है। तुम यहां क्यों पड़े हो? भागो!
उस आदमी ने कहा, कहां है वह जगह? वह उस रात नहीं सो सका। उसको सदा अच्छी नींद आती थी, उस रात वह नहीं सो सका। रात में कई बार उठा कि सुबह हुई कि नहीं हुई। वह आदमी उठ आए तो पता लेकर मैं भागूं।
सुबह उठ कर उसने पता लिया। जमीन बेच दी और साइबेरिया की तरफ भागा। वहां जाकर उस गांव में पहुंचा जहां वह जमीन मिलती थी--मुफ्त! हालांकि उसको कभी कोई खरीद नहीं पाता था। लेकिन अगर हमको भी पता चल जाता--मेरे घर में भी कोई ठहरता और मुझसे कहता कि जमीन मुफ्त मिल रही है, तुम क्या कर रहो हो यहां! तो मैं भी भागता। और एक ही शर्त थी कि सुबह खूंटी गाड़ कर दौड़ो और सांझ होने तक लौट आओ, जितनी जमीन को तुम घेर लोगे दौड़ कर, उतनी तुम्हारी। इतनी ही शर्त पर जमीन मिलती थी। हालांकि उस गांव की जमीन कभी नहीं बिकी। उस गांव के लोग बड़े बुद्धिमान रहे होंगे। इतने बुद्धिमान लोग पृथ्वी पर कहीं भी नहीं हैं। उस गांव में बड़े बुद्धिमान लोग थे। एक इंच जमीन कभी भी न गई उनकी; हालांकि इतनी सस्ती बेचते थे। लेकिन तरकीब बहुत होशियारी की थी। सारी मनुष्य-जाति का अनुभव उस तरकीब में लगा दिया था उन्होंने।
वह आदमी भागा हुआ पहुंचा। सौ एकड़ जमीन थी, उसने बेच दी, रास्ते का खर्च पूरा किया। वहां जाकर जब उसने सुना कि बात सच है, तो उसने दावत दी और कहा कि कल सुबह मैं दौड़ शुरू करूंगा। क्या यही शर्त है सिर्फ कि मुझे खूंटी गड़ा कर दौड़ना है! रात भर वह फिर न सो सका। उसने सोचा, किस तरफ दौडूं? पूरब जाऊं कि पश्चिम जाऊं? सब तरफ जमीन बढ़िया से बढ़िया है।
सुबह उसने खूंटी गड़ाई, सूरज अभी उग भी नहीं पाया और खूंटी उसने गड़ा दी। गांव का मुखिया आ गया, गांव के लोग आ गए, सबने उसको शुभकामनाएं कीं कि भगवान करे तुम ज्यादा से ज्यादा जमीन घेर लो! लेकिन उस पागल आदमी ने यह न पूछा कि पहले कोई घेर पाया? वह नहीं पूछा। कोई नहीं पूछता; वह भी क्यों पूछता। वह भागा। उसने तो आशीर्वाद सुनने की भी फिक्र न ली। शुभकामना सुनने में समय गंवाना व्यर्थ है। वह तेजी से दौड़ा। वह भागा।
उसने अपने साथ रोटी और पानी ले लिया था, ताकि भूख-प्यास न सताए, जल्दी
न लौटना पड़े। रास्ते में ही भोजन कर लूंगा, पानी पी लूंगा। वह पहले भागता ही रहा। उसने कहा कि दोपहर तक तो मैं भागता ही रहूं--बारह बजे तक; फिर लौटना शुरू करूंगा। तो जितनी तेजी से दौड़ सकूं दौड़ता जाऊं। जितना दौड़ता था उतनी सुंदर जमीन आगे थी, उतनी और मखमली जमीन थी, उतनी कीमती जमीन थी। वह तो पागल हुआ जा रहा था। उसने कहा, एक दिन का मौका है सिर्फ! जितना मिल गया, मिल गया; चूक गया, चूक गया।
मीलों दौड़ चुका था। बारह बज गए। उसने कहा, बारह बज गए! मन के किसी हिस्से ने कहा, लौट चलो। लेकिन मन के किसी हिस्से ने कहा कि थोड़ा सा और दौड़ लो, इतनी जल्दी क्या है? लौट चलेंगे, जरा तेजी से चलेंगे लौटते वक्त।
मन सदा यही कहता है--लौटते वक्त तेजी कर लेंगे, थोड़ा और बढ़ जाएं, थोड़ा
और बढ़ जाएं। मन ने कहा, थोड़ा और आधा घड़ी दौड़ने में क्या हर्ज है! अब तो सबसे अच्छी जमीन आ रही है! झील करीब आ गई थी और जमीन बहुत सुंदर हो गई थी। और ऐसा लग रहा था कि सोना उगल देगी। इसको चूकना बहुत मुश्किल है। फिर दोबारा तो यह मौका नहीं मिलेगा। वह गांव सिर्फ एक दिन का मौका देता था। सभी गांव एक दिन का मौका देते हैं। जिंदगी एक दिन का मौका ही तो है। उसने और थोड़ा दौड़ा। उसने कहा, लौटते में जरा ताकत ज्यादा लगा लेंगे और दौड़ लेंगे।
लेकिन ध्यान रहे, चढ़ता हुआ दौड़ना एक बात है, लौटते वक्त दौड़ना बिल्कुल दूसरी बात है। दो बजे के करीब वह अपने मन को समझा पाया कि अब लौट चलना चाहिए। लेकिन तब तक वह थक चुका था। दो बजे तक कौन नहीं थक जाता है! सूरज जब ढलने लगता है, कौन नहीं थक जाता है! जिंदगी जब ढलने लगती है, तब कौन नहीं थक जाता है! थक गया था, पैर उठते न थे। भोजन करने बैठे, समय जाया हो जाए! पहुंच सके खूंटी तक, न पहुंच सके। रोटी उसने निकाल कर फेंक दी।
आदमी जमीन इसलिए चाहता है कि रोटी मिल जाए, लेकिन रोटी इसलिए फेंक देता है कि जमीन मिल जाए। उसने रोटी फेंक दी। उसने कहा, आज न खाया तो हर्ज

क्या है? कितने लोग दुकान पर बैठ कर उपवास करते रहते हैं। आज न खाया तो हर्ज क्या है? प्यास लगी थी, लेकिन क्षण भर रुक कर पानी पीना खतरनाक था। क्योंकि सूरज तेजी से डूब रहा था और फासला इतना दूर मालूम हो रहा था कि लोग दिखाई नहीं पड़ते थे कि जहां वह छोड़ आया है खूंटी गड़ा कर वह कहां है। पानी पीने का समय न था, पानी की थैली भी उसने फेंक दी। क्योंकि बोझ भी लगता था और समय भी न था।
अब वह तेजी से दौड़ रहा है, पैर पत्थर जैसे भारी हो गए हैं। पैर उठता नहीं है, फासला अनंत मालूम होता है, सूरज तेजी से ढलता है। अब वह भाग रहा है, अब वह चिल्ला रहा है कि मैं मर गया, मैं लुट गया। हालांकि उससे किसी ने कुछ भी नहीं लिया था, जमीन मुफ्त मिल रही थी। वह चिल्ला रहा है कि मैं लुट गया, मैं हार गया, मैं मर गया। वह भाग रहा है, वह चिल्ला रहा है, वह भगवान से प्रार्थना कर रहा है--सूरज को थोड़ा धीरे चलाओ! इतनी तेजी से तो कभी चलते नहीं देखा, यह सूरज को क्या हो गया है! सूरज एकदम है कि डूबा चला जाता है, डूबा चला जाता है। वह भाग रहा है, वह भाग रहा है... अब वह घिसटने लगा है, अब पैरों ने जवाब दे दिया है, अब आंखों में कुछ दिखाई नहीं पड़ता है, अब वह अंधेरे में घुप्प हो गया है। ऐसा लग रहा है कि सूरज डूब तो नहीं गया। कभी सूरज दिखाई पड़ता है, कभी डूबा मालूम पड़ता है। सूरज अपनी जगह है, लेकिन उस आदमी की आंखें गड़बड़ा गई हैं। इतनी तेजी से जो दौड़ेगा, उसकी अगर दृष्टि गड़बड़ा जाए तो कुछ आश्चर्य है!
वह पहुंच गया है--सांझ होते-होते, सूरज बिल्कुल ढलते-ढलते, आखिरी किनार छूने लगी है क्षितिज को। वे गांव के लोग खड़े हैं, पूरा गांव खड़ा है, वे चिल्ला रहे हैं कि मित्र जल्दी करो, सूरज डूबा जा रहा है! अब वे लोग दिखाई पड़ने लगे हैं। आशा फिर बंध गई है, अब वह फिर ताकत लगा कर दौड़ता है। आखिरी ताकत--अब वह श्वास भी नहीं लेता है--वह खूंटी के पास आकर गिर जाता है। वह आखिरी श्वास खूंटी के पास लेता है। दिल्ली आ गई! वह मर गया। गांव के लोग हंसते हैं। वह मरते आखिरी क्षणों में श्वास टूटने में हंसी की गूंज सुनता है और अपने मन में सोचता है कैसा पागल था!
वह मर रहा है, गांव वाले लोग उसके खीसे के रुपये निकाल रहे हैं, वह जो
सौ एकड़ बेच आया था जमीन। और वे सब हंस रहे हैं, क्योंकि यह रोज होता है उस गांव में। कोई आता है और रोज यही होता है। और वे सब हंस कर बात कर रहे हैं, आदमी कैसा मूरख है, बिल्कुल समझ के बाहर है। लेकिन सब आदमी ऐसे ही मूरख हैं और समझ के बिल्कुल बाहर हैं।
नहीं, जिंदगी दौड़ने से नहीं मिलती। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि चलें मत। लेकिन चलने और दौड़ने में बहुत फर्क है। दौड़ता वह है जो तुलना करता है। चलता वह है मौज से जो तुलना नहीं करता, अपनी भीतर की गति से चलता है। जितनी गति है, चलता है। विश्राम करना है, विश्राम करता है। क्योंकि वह यह देखता ही नहीं कि पड़ोस का कहां चला गया। उससे कोई मतलब नहीं है; उससे कोई प्रयोजन नहीं है; उससे कोई संबंध नहीं है। मुझे जब मौज है तब चलता हूं, जब मौज है तब सोता हूं। जब उठना है तब उठता हूं, जब बैठना है तब बैठता हूं।
विकास, विकास बहुत आंतरिक बात है, बाहरी बात नहीं है। इसलिए मैंने कहा
कि तुलना से मुक्त होना चाहिए तो ही मनुष्य शांत गति कर सकता है और आनंद के लक्ष्य तक पहुंच सकता है।

एक अंतिम प्रश्न। एक मित्र ने पूछा हैः आप मनुष्य के भीतर परमात्मा
है उसको नमस्कार क्यों करते हैं? एक मित्र ने तो यह पूछा है कि आपने कल कहा कि भय के कारण प्रणाम करते हैं। तो आप लोगों से डरते हैं क्या जो उनको प्रणाम करते हैं?
और दूसरे एक मित्र ने पूछा है कि आप, लोगों के भीतर परमात्मा है, ऐसी बात जब करते हैं तो उससे तो एक आदर्श निर्मित हो जाता है और आप आदर्श के विरोधी हैं।

इन दोनों बातों को समझ लेना जरूरी है। मैंने यह नहीं कहा कि सभी प्रणाम भय के प्रणाम हैं। मैंने यह भी नहीं कहा कि सभी प्रार्थनाएं भय की प्रार्थनाएं हैं। मैंने इतना ही कहा कि पहचानने की कोशिश करना है कि जो

प्रार्थना कर रहे हो वह भय की तो नहीं है? जो प्रणाम कर रहे हो वह भय का तो नहीं है? जो प्रेम कर रहे हो उसके भीतर भय तो नहीं है?
सौ में निन्यानबे मौके पर होता है; क्योंकि आदमी भय पर खड़ा है। और चूंकि भय पर खड़ा है इसलिए उसकी जिंदगी में कभी वह घड़ी ही नहीं आ पाती जब वह बिना भय के भी कुछ कर सके। कोई घड़ी नहीं आ पाती, कोई घड़ी ही नहीं आ पाती जब हम बिना भय के कुछ कर सकें।
अगर हम रास्ते पर भी किसी आदमी को प्रणाम करते हैं, नमस्कार करते हैं,
तो भी भय के कारण ही करते हैं, अकारण नहीं करते। लेकिन अकारण प्रणाम करने का आनंद ही अलग है--जब कोई कारण ही नहीं है। अगर आपने कभी कारण से नमस्कार किया है तो नमस्कार बेकार हो गई। लेकिन अगर आपने बिना कारण किया है, सिर्फ इसलिए कि दूसरी तरफ भी वही है जो इस तरफ है, दूसरी तरफ भी वही मौजूद है जो सब तरफ मौजूद है, अगर ये हाथ किसी भी भय के बिना जुड़े हैं, तो हाथ जुड़ने का जो आनंद है उसका हिसाब लगाना मुश्किल है।
मैंने आपसे कहा कि अक्सर हम जब पैरों में सिर रखते हैं तो भय के कारण रखते हैं, लेकिन मैंने यह नहीं कहा कि सब सिर भय के कारण ही रखे जाते हैं।
कभी कोई सिर बहुत प्रेम के कारण भी रखा जाता है। लेकिन तब कोई भय नहीं है।
तब कोई भय नहीं है।
सच तो यह है कि जहां प्रेम है वहां भय नहीं है।
मैंने सुना है, एक युवक ने विवाह किया नया-नया और अपनी पत्नी को लेकर
वह यात्रा पर निकला। वह एक जहाज पर सवार हुआ। वह जहाज चल रहा है। जोर का तूफान आ गया है और जहाज डगमगाने लगा है और अब डूबा, अब डूबा होने लगा है। वह युवक शांत बैठा है। सारे जहाज के लोग भागने लगे हैं, घबराने लगे हैं। और उसकी पत्नी थर-थर कांप रही है और उसने उस युवक को कहा, आप घबरा नहीं रहे? आप डर नहीं रहे, भयभीत नहीं हो रहे? जहाज डूबने के करीब है, आपको भय नहीं लगता? उस युवक ने अपनी कमर से बंधी तलवार खींच ली है और उस अपनी प्रेयसी के, अपनी पत्नी के कंधे पर रख दी है नंगी तलवार। और वह पत्नी हंस रही है। उस युवक ने कहा, तुझे भय नहीं लगता? तलवार नंगी तेरे कंधे पर है, भय नहीं लगता? उसने कहा, हाथ में तुम्हारे तलवार हो तो मुझे भय कैसा! तो उस युवक ने कहा, परमात्मा के हाथ में तूफान है। और जब से उससे अपनी पहचान हुई है तब से कोई भय नहीं है।
कैसा भय! जहां प्रेम है, वहां कोई भय नहीं है। फिर नंगी तलवार भी कंधे
पर हो तो भय नहीं है। हाथ जोड़ने की तो बात अलग है, नंगी तलवार भी कंधे पर कोई रखे तो भी भय नहीं है। लेकिन प्रेम हो तब!
तो एक तो वह प्रणाम है जो प्रेम से निकलता है और एक वह प्रणाम है जो भय
से निकलता है। दोनों में हाथ एक से जुड़ते हैं। लेकिन भीतर प्राण में दोनों में घटनाएं अलग घटती हैं। उसकी खोजबीन करनी चाहिए, उसकी खोजबीन करनी चाहिए कि मेरी जिंदगी में वह मौका आ जाए जब कि प्रेम से भी हाथ जुड़ने लगें, प्रेम से भी हाथ उठने लगें।
अभी तो हमारे सब हाथ मतलब से उठते हैं, प्रयोजन से उठते हैं। जहां प्रयोजन है, जहां मतलब है, वहां भय है। जहां निष्प्रयोजन हाथ उठते हैं वहां तो कोई भय की बात नहीं है।
एक कहानी और मुझे याद आती है जो मुझे बहुत प्रीतिकर है। एक फकीर एक मंदिर में ठहरा। रात थी बहुत सर्द और भगवान बुद्ध की तीन मूर्तियां थीं लकड़ी की। पुरोहित तो सो गए थे। उस फकीर ने एक मूर्ति उठा कर आग लगा कर जला कर ताप ली। जब आग भभकी तो पुजारी की नींद खुली कि मंदिर में आग किसने जलाई? क्या वह पागल फकीर आग जला लिया मंदिर के भीतर? तो वह उसे ठीक करने आया, समझाने आया कि मंदिर में आग मत जलाओ! लेकिन जब आकर उसने देखा कि बुद्ध जल रहे हैं--जल ही चुके हैं, राख हो गए हैं--तब तो उसके मंदिर में ही आग नहीं लगी, पुजारी में भी आग लग गई। पुजारी ने तो लकड़ी उठा ली। उसने कहा, यह तुम क्या कर रहे हो? तुम पागल मालूम होते हो! तुमने भगवान की मूर्ति जलाई? तुमने भगवान को जलाया?
उस फकीर ने कहा, भगवान? एक लकड़ी पास पड़ी थी, वह उठा कर उसने, जो राख हो
गए थे बुद्ध, वहां कुरेद कर देखा। उस पुरोहित ने पूछा, क्या कर रहे हो यह? उसने कहा, भगवान की अस्थियां खोज रहा हूं। उस पुरोहित ने कहा, निपट पागल

मालूम होते हो तुम। लकड़ी की मूर्ति में कहीं अस्थियां होती हैं? उसने कहा, जब अस्थियां तक नहीं होतीं तो भगवान कहां होंगे! रात बहुत सर्द है, तुम एक मूर्ति और उठा लाओ तो बड़ी कृपा होगी। तीन मूर्तियां पूरी रात काट देंगी। उस पुरोहित ने पूछा, तुझे भय नहीं लगता? तू पागल, भगवान की मूर्ति जला लिया और इतनी मौज से बैठा हुआ है! तो उस फकीर ने कहा, जब से भगवान को पहचाना तब से कोई भय न रहा।
निकाल पुरोहित ने उसे बाहर किया। उसको ठहराना खतरनाक था, रात में दो मूर्तियां और जला सकता था। रात अभी काफी बाकी थी और सर्द थी रात। उसे निकाल बाहर किया।
सुबह जब मंदिर का दरवाजा खोला पुरोहित ने, तो देखा बाहर जो पत्थर गड़ा है--मील का पत्थर सड़क के किनारे--उसके ऊपर फूल डाल कर, हाथ जोड़ कर वे सज्जन बैठे हैं जो रात मूर्ति जला गए हैं। उसने कहा कि कैसा पागल आदमी है! जाकर उसके पास कहा, यह क्या कर रहे हैं महाशय! रात तो भगवान की मूर्ति जला दी और अब पत्थर को हाथ जोड़ रहे हैं।
तो उस फकीर ने कहा, मूर्ति जलाने की हिम्मत इसीलिए आ सकी कि अब पत्थर
को भी हाथ जोड़ने की हिम्मत आ गई है। मूर्ति जलाने की हिम्मत इसीलिए आ सकी कि अब पत्थर को भी हाथ जोड़ने की हिम्मत आ गई है। अब हम उतने ही मजे से पत्थर को हाथ भी जोड़ सकते हैं और उतने ही मजे से मूर्ति को जला भी सकते हैं। अब कुछ फर्क न रहा। अब वही है। चाहे जलाओ, चाहे पूजो, चाहे कुछ भी करो, अब वही है। चलते हैं तो उसी पर, श्वास लेते हैं तो उसी में, सोते हैं उसी पर, खाते हैं उसी को, पीते हैं उसी को, जीते हैं उसी में, मरते हैं उसी में। अब वही है, अब सब बात खतम हो गई। अब हाथ भी जोड़ लेते हैं, आग भी जला लेते हैं। रात सर्द लग रही थी बहुत, मूर्ति जला ली। अब सुबह से धन्यवाद देने का मन हो रहा है कि रात तेरी मूर्ति ने बड़ा काम दिया। रात सर्द थी बहुत, तेरी मूर्ति बड़ी काम पड़ गई और रात बड़ा मजा आया, तो अब धन्यवाद दे रहे हैं हाथ जोड़ कर। ये फूल ले आएं हैं तोड़ कर, दो फूल रख दिए हैं, प्रार्थना कर ली है कि ऐसी ही कृपा बनाए रखना। जब भी कभी रात सर्द हो, ऐसे मंदिर में ठहरा देना जहां मूर्ति लकड़ी की हो। और पुजारी जरा ठीक से रखा करो, रात भर तो सोया रहे, बीच-बीच में न उठे।
इस आदमी को पहचानना थोड़ा मुश्किल पड़ जाता है। लेकिन यह धार्मिक आदमी है। और धार्मिक आदमी को पहचानना सदा ही मुश्किल है। धार्मिक आदमी एक रहस्य है। और जो आदमी बिल्कुल समझ में आ जाए वह धार्मिक नहीं है। धार्मिक आदमी एक मिस्ट्री है। उसकी जिंदगी बहुत रहस्य है। उसमें बड़े विरोधों का समन्वय है। उसमें सब उलटी चीजें आकर समाविष्ट हो जाती हैं। उसमें अंधेरा और प्रकाश मिल जाता है, उसमें मिट्टी और सोना एक हो जाता है, उसमें जन्म और मृत्यु का फासला नहीं रह जाता, उसमें मित्र और शत्रु नहीं बचते हैं, उसमें चांटा मारना और हाथ जोड़ना भी बराबर हो सकता है। कुछ बहुत कठिन नहीं है। और दूसरे मित्र ने पूछा है कि इससे आदर्श पैदा हो जाता है, आप कहते हैं
कि सबके भीतर परमात्मा है।
इससे आदर्श पैदा नहीं होता। मैं आपसे नहीं कहता हूं कि आप मानें कि सबके भीतर परमात्मा है। अगर मैं आपको कहूं कि आप मानें कि सबके भीतर परमात्मा है, तब तो आदर्श पैदा हो जाएगा। यह मैं कहता हूं कि सबके भीतर परमात्मा है। यह मेरी मान्यता नहीं है--ऐसा मुझे लगता है, ऐसा मेरा जानना है। अब मेरे जानने को मैं कैसे झुठलाऊं! जो मुझे दिखाई पड़ता है मैं वही कह सकता हूं, उससे अन्यथा नहीं कह सकता। मेरे लिए आदर्श नहीं है यह सबके भीतर परमात्मा होना; यह तथ्य है।
श्री अरविंद से किसी ने पूछा, डू यू बिलीव इन गॉड? ईश्वर में विश्वास करते हैं आप?
अरविंद ने कहा, नो! नहीं!
उस आदमी ने कहा, मैं जर्मनी से आ रहा हूं, इतनी दूर से, यही सोच कर कि आप बड़े ज्ञानी हैं, ईश्वर को पा लिया आपने। आप ईश्वर में नहीं मानते?
अरविंद कहा, नहीं!
उस आदमी ने कहा, बड़ी यात्रा फिजूल हो गई। आप ईश्वर को बिल्कुल इनकार करते हैं?

अरविंद ने कहा, मैंने इनकार कहां किया! मैंने तो इतना ही कहा कि मैं मानता नहीं।
तो उस आदमी ने कहा, इनकार तो हो गया।
अरविंद ने कहा, तू गलत सवाल पूछता है। आई नो देयरफोर आई कैन नाट बिलीव। मैं जानता हूं इसलिए मैं विश्वास कैसे करूं? जिसको हम जानते हैं उसमें विश्वास करते हैं? जिसको जानते नहीं उसमें विश्वास करते हैं।
अरविंद ने कहा, ईश्वर है, यह मेरा ज्ञान है, यह मेरा विश्वास नहीं।
आस्तिक का विश्वास होता है। इसलिए आस्तिक का कोई भरोसा नहीं। आस्तिक कहता है, हम ईश्वर में विश्वास करते हैं।
विश्वास? विश्वास का मतलब कि पता नहीं है। सूरज में विश्वास करते हैं? राजकोट में विश्वास करते हैं? नहीं, राजकोट है। विश्वास की कोई जरूरत नहीं। सूरज है। ईश्वर में विश्वास करते हैं, क्योंकि पता नहीं कि है या नहीं। इसलिए विश्वासी के भीतर सदा अविश्वास बैठा रहता है।
नहीं, जो जानता है, जानता है, तथ्य है। यह मैं आपसे कहता नहीं कि आपके भीतर परमात्मा है, है ही। सच तो यह है कि भाषा बड़ी गलती करवा देती है। जब मैं आपसे कहता हूं "आपके भीतर", तो भाषा गलत बोल रहा हूं। लेकिन कोई उपाय नहीं है।
कल सुबह मैंने, मैं जिस घर में ठहरा हूं, वहां किसी से कहा कि जरा एक पानी का गिलास ले आओ। पानी का गिलास तो कोई ला नहीं सकता। पानी का गिलास कैसे लाइएगा? लेकिन गिलास में पानी कोई ले आया। भाषा मेरी गलत थी, लेकिन मतलब समझ में आ गया। हम आमतौर से कहते हैं, पानी का गिलास ले आओ! लेकिन जब भी आता है गिलास में पानी आता है, पानी का गिलास कभी नहीं आता।
तो जब मैं आपसे कहता हूं "आपके भीतर", तो भाषा थोड़ी गलत है, क्योंकि भाषा गलत ही होगी। जब मैं कहता हूं "आपके भीतर", तो मेरा मतलब है आप ही। ऐसा नहीं कि आप कुछ अलग हैं और आपके भीतर परमात्मा है। आप ही परमात्मा हैं। और आपका मतलब आप यह मत समझ लेना कि आप ही हैं, ये जो खंभे गड़े हैं ये भी हैं, वह जो दीवार खड़ी है वह भी है, वह जिस फर्श पर आप बैठे हैं वह भी है। आप इस अहंकार में मत पड़ जाना कि आप! सड़क पर पड़े हुए पत्थर भी हैं।
जब मैं आपसे कह रहा हूं तो आपसे ही नहीं कह रहा, ये दरख्त भी सुन रहे हैं और दरख्तों पर सो गए पक्षी भी सुन रहे हैं। सोए हुए आदमी सुन रहे हैं, सोए हुए पक्षी भी सुन रहे हैं। नहीं, आपसे मतलब है--जो भी है वह परमात्मा ही है। और यह कोई आदर्श नहीं है, यह तथ्य है।
इन चार दिनों में मेरी इन सब बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नये समाज की खोज
पांचवां प्रवचन

जीवन-मूल्य और संघर्ष

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, कई बार कोई चीज हमारे भीतर जागते-जागते किसी कोने में पड़ी रह जाती है। भूल जाते हैं, दूसरे काम में लग जाते हैं, दूसरी जिंदगी आ जाती है। कई दफा बीस वर्ष नहीं, बीस-बीस जन्म तक कोई चीज हमारे भीतर होकर पड़ी रहती है। और कभी भी उस पर चोट पड़ जाए, वह फिर जिंदा हो जाती है। क्योंकि भीतर कुछ मरता नहीं है, जन्मों-जन्मों तक नहीं मरता, प्रतीक्षा ही करता है और मौका देखता है कि कब ठीक पानी पड़ जाएगा और बीज फूट जाएगा। और जब वैसा होगा तो बहुत फर्क पड़ेगा। जिस आदमी के भीतर वैसी कोई बात नहीं हुई है कभी, वह भी सुनेगा, उसे यह बिल्कुल फॉरेन मालूम पड़ेगा कि विजातीय बात है, पता नहीं क्या बात है। लेकिन जिसके भीतर कुछ सजातीय स्वर जग जाएगा, उसे बात ऐसी लगेगी कि यह मुझे कहनी थी और आपने कैसे कह दी! बस ऐसा ही लगेगा, इससे अलग कुछ और नहीं लगेगा।

और ऐसा लगता है जैसे सारे क्राउड में शायद मुझे ही आप कह रहे हैं।

हां, बिल्कुल ही, बिल्कुल ऐसा ही, बिल्कुल ऐसा लगेगा, बिल्कुल ऐसा लगेगा। ठीक कहते हैं, हमेशा ऐसा ही है। और सच बात तो यह है कि क्राउड से तो कोई बात हो ही नहीं सकती; होती तो एक-एक से ही है, चाहे वहां कितने ही लोग मौजूद हों।

क्या यह सही है कि हर एक चीज का एक क्षण होता है?

निश्चित ही सही है।

आज ही सुनना था यह?

हां, अक्सर यह बात सही है।

क्योंकि मेरे इस छोटे से जीवन में इतनी घटनाएं घटी हैं और मैंने तो किसी परम परमात्मा से... जो उसने दिया-लिया सब उसी का, मेरी कोई इच्छा नहीं है। मगर यह जरूर है कि जो पाया और जो गंवाया है, सब उसी की इच्छा से हुआ है। और जब कल शाम को हम लोग जा रहे थे वापस, एक और मित्र थे हमारी इंडस्ट्री के ही, वे भी आपके भक्त हैं। तो हम यही सोचते जा रहे थे कि आचार्य जी से मिलना है क्योंकि पिछली बार जब आप आए थे तो महीपाल जी से बात हुई थी, विष्णु से बात हुई थी कि आप भी कुछ इंडस्ट्री के व्यक्तियों से मिलना चाहते हैं।

हां-हां, जरूर मिलना चाहता हूं।

और यह मुझे अभी तक क्लियर नहीं था कि क्यों मिलना चाहते हैं! और इस इंडस्ट्री में कितने गिनती के लोग हैं जो कि इस धारा में बहना चाहेंगे! तो कल ही हम सोच लिए थे कि जाकर आज शूटिंग से वापस पहुंचा तो कहने लगे आपके लिए एक शुभ समाचार है।

मेरी महीपाल जी से बात हुई थी, वे तो मिले नहीं, कल चले गए। नहीं तो उनका ख्याल था, आप की भी बात हुई थी। फिर आज अचानक प्रवीण ने कहा। तो मैंने कहा, आज ही बुला लो, अगर वे हों तो उन्हें बुला ही लो। काम तो बहुत है। क्योंकि असल में हर युग का अभिव्यक्ति का माध्यम है, और हर युग का अलग है, हर युग का माध्यम अलग है। जिससे हम लोक-मानस तक पहुंच सकते हैं, वह माध्यम

अलग है। जब तक हम बोल कर ही पहुंच सकते थे, दूसरा कोई रास्ता नहीं था। और जो बात कान से पहुंचती है, उससे हजार गुना आंख से पहुंचती है, अगर वह देखी जा सके।
हम आमतौर से यह कहते हैं कि आपने सुना है कि देखा है? क्योंकि सुने हुए
के सच होने का कोई भरोसा नहीं है, भरोसा मुश्किल है। देखे हुए झूठ पर भी अविश्वास करना मुश्किल है। और जिस इंडस्ट्री की आप बात कर रहे हैं, उसने चीजों को देखने का मौका दे दिया है। देखे हुए झूठ पर भी अविश्वास नहीं किया जा सकता, देखने का बल इतना है। सुने हुए सच पर भी विश्वास करना बहुत मुश्किल है। सुनने का कोई बल नहीं है।
हां, लेकिन वह झूठ का भी बल है। और देखे हुए झूठ का तो बहुत बल है। और आंख को कुछ पता नहीं है कि वह सच में देख रही है कि परदे पर देख रही है। आंख सिर्फ देखती है। और उसकी लाखों-करोड़ों वर्षों की देखी हुई बात पर विश्वास करने की आदत है। वह जो देख लेती है उसको सच मानती है। इंस्टिंक्टिव है वह सब, वह आपको पता नहीं है। और इसीलिए तो आप फिल्म में देख रहे हैं कि एक आदमी दुखी हो रहा है--और एक आदमी बैठ कर रोने लगा। वह बिल्कुल भूल गया है कि यह जो है वह परदा है, वह भूल ही गया है। क्योंकि आंख को पता ही नहीं है। आंख तो देखना जानती है, देखने पर विश्वास करना जानती है। यह करोड़ों वर्षों की आंख की आदत है। और हमको कभी पता नहीं था कि हम झूठा परदा भी बना लेंगे और उस पर हम देख लेंगे।
तो अब क्या हुआ... और हमेशा यह होता है कि जब भी कोई नया आविष्कार होता है, तो सबसे पहले नये आविष्कार का उपयोग हमारी निम्नतम जरूरतों के लिए होता है। कहावत है अरब में कि जब भी कोई नया आविष्कार होता है तो शैतान उस पर पहले कब्जा कर लेता है। भगवान को बहुत मुश्किल से मौका मिलता है उस पर कब्जा करने का, नये आविष्कार पर। तो नये आविष्कार तो रोज होते चले जा रहे हैं और हमारी जो निम्नतम हैं वृत्ति, वे उस पर कब्जा कर लेती हैं। और इसलिए निम्नतम वृत्तियां बिल्कुल पागल हो गई हैं। और उनको पागल करके शोषण भी किया जा सकता है, किया जा रहा है।
अब इस वक्त सारी की सारी दुनिया आदमी के सेक्स का शोषण कर रही है, पूरी तरह से शोषण कर रही है। हमें दिखाई भी नहीं पड़ता कि हम पेंटिंग से भी वही कर रहे हैं, हम फिल्म से भी वही कर रहे हैं, संगीत से भी वही कर रहे हैं, हम घूम-फिर कर आदमी के सेक्स का एक्सप्लायटेशन कर रहे हैं। और अगर सेक्स का इतना एक्सप्लायटेशन होगा, तो आदमी निश्चित ही खतरे में पड़ते चले जाएंगे। क्योंकि वहां से जितनी शक्ति एक्सप्लायट हो गई, उतनी कनवर्ट नहीं हो सकेगी फिर।
और यह मजे की बात है कि सेक्स एक्ट से उतनी इनर्जी आपकी व्यय नहीं होती जितनी सेक्स इमेजिनेशन से व्यय होती है; क्योंकि इमेजिनेशन परवर्शन है। एक्ट तो प्रकृति है, इमेजिनेशन बिल्कुल परवर्शन है। और इमेजिनेशन का शोषण हो सकता है।
तो मेरा कहना यह है कि इस इमेजिनेशन का क्या शोषण शुभ के लिए नहीं हो सकता?
इस दिशा में बहुत सोचा जाना जरूरी है, बहुत सोचा जाना जरूरी है। जैसे दरवेश नृत्य होते हैं।
एक फकीर था गुरजिएफ, आठ-दस साल पहले मरा। तो उसने कुछ दरवेश नृत्य खोजे हुए थे, जिनको आप घंटे भर सिर्फ देखें, आप देखते-देखते ध्यान में चले जाएंगे। सिर्फ वह डांस देखते रहिए, उसके सारे स्टेप्स, उसकी सारी लय, उसका पूरा संगीत, वह आपके भीतर से आपको ऊपर उठाना शुरू करता है। और घंटे भर में आप बिल्कुल ही उस जगत को अनुभव करेंगे जो आपने कभी नहीं जाना। और एक बार उसकी जरा सी भी अनुभूति हो जाए तो फिर उसकी पुकार आपका पीछा करेगी, वह आपको चौबीस घंटे बुलाएगी कि वहां भी एक दुनिया है जो अनजानी रह गई। उसने कुछ दरवेश नृत्य... ।
अब दरवेश नृत्य के द्वारा बहुत काम किया है सूफी फकीरों ने। जो लोग कुछ और नहीं समझ सकते--किताब नहीं समझ सकते, ज्ञान नहीं समझ सकते, कोई फिलासफी नहीं समझ सकते--वे भी नृत्य देख तो सकते हैं। और हम उनसे समझने के लिए कुछ कह ही नहीं रहे, उनकी आंख देखने में जो कर जाती है, उससे उनके सारे

स्नायु पर जो असर हो जाते हैं और उनकी सारी चेतना तक जो प्रवेश हो जाता है, वह बिल्कुल ही सहज है। उसमें उनसे करने को हम कुछ कह नहीं रहे हैं। और पहला अनुभव अगर सहज हो जाए तो दूसरा अनुभव आदमी साधना से करना चाहता है।
इस वक्त जो कठिनाई पड़ गई है--हम पहला अनुभव ही साधना से करवाने की दिक्कत में पड़े हुए हैं। पहला अनुभव सहज हो जाए, तो दूसरा अनुभव आप कितने ही कष्ट को उठा कर, श्रम को उठा कर कर सकते हैं। संगीत अदभुत है इस दुनिया में... इधर मेरा ख्याल है कि एक थोड़े से मित्रों को, जो अलग-अलग दिशाओं में सोचते हैं--संगीत में हैं, या फिल्म में हैं, या पेंटिंग में हैं, या काव्य में हैं--क्या यह नहीं हो सकता कि ये सारे लोग मिल कर यह सोचें कि हम आदमी को उस ऊंचाई की तरफ ले जाने के लिए अलग-अलग दिशाओं से क्या दर्शन दे सकते हैं?
अगर एक पेंटिंग को देख कर एक आदमी कामातुर हो सकता है, तो एक पेंटिंग
को देख कर एक आदमी रामातुर क्यों नहीं हो सकता? और अगर एक संगीत को सुन कर सेक्सुअलिटी जगती हो और आदमी सेन्सेट हो जाता हो, तो यह क्यों नहीं हो सकता कि एक दूसरे संगीत को सुन कर सेक्सुअलिटी खोती हो और आदमी आध्यात्मिक होता हो?
वह जो आप कहते हैं न कि क्या काम हो सकता है? काम तो बहुत है। काम तो इस वक्त इतना है, और मेरा मानना है हमेशा कि जो लोग नये माध्यम में काम करते हैं, उन्हीं के लिए सबसे ज्यादा काम होता है। पुराने माध्यम पिट गए होते हैं। और जो चीज पिट गई होती है, जिसके हम आदी हो गए होते हैं, वह हमारे भीतर किसी नये दरवाजे को तोड़ने में असमर्थ हो जाती है। कभी उसने तोड़ा होगा, जब वह नई थी। अब वह तोड़ना बहुत मुश्किल हो गया है।
और एक मजा हो गया कि दुनिया की जितनी पुरानी कलाएं थीं, वे एक अर्थ में एक्टिव थीं, उसमें आपको पार्टिसिपेट करना पड़ता था। नृत्य का पूरा मजा नाचने में था। संगीत का पूरा मजा खुद गाने में था, पैदा करने में था। नई दुनिया ने क्या व्यवस्था की कि सारी एक्टिव कलाओं को पैसिव आर्ट बना दिया। न आपको नाचना है, न आपको गाना है। आपको सिर्फ देखना है, सुनना है, बैठे रहना है। आप तो पैसिव एनटाइटी हैं। एक मुर्दे की तरह आप बैठे रहें तीन घंटे, और बाकी सब दूसरा कर रहा है।
इसके परिणाम बड़े खतरनाक हुए। इसका सबसे बड़ा परिणाम हुआ--सुबह से लेकर रात तक आदमी को हम पैसिव एनटाइटी बना रहे हैं। हम उससे कहते हैं, तुम्हें कुछ नहीं करना है, हम सब कर देंगे। किराये के आदमी हम कर देंगे, तुम सिर्फ देख लो बस काफी है, तुम्हारे लिए कुछ परेशान होने की जरूरत नहीं। एक संगीतज्ञ जिंदगी भर मेहनत करेगा, वह गा देगा, तुम सुन लेना; कोई नाचेगा, तुम देख लेना। धीरे-धीरे सारी पैसिविटी... और यह मजे की बात है कि जितना आदमी पैसिव हो उतना सेक्सुअल हो जाएगा; और जितना आदमी एक्टिव हो उतना स्प्रिचुअल होगा।
ये सारे जितने नये माध्यम आ गए हैं, नये माध्यम को भी हम मनुष्य की पुरानी आत्मा को उठाने के लिए कैसे काम में लाएं--यह बहुत ही बड़ा सवाल है। और नहीं हम लाते हैं, तो वह तो काम में लाया जा रहा है, नीचे ले जाने के लिए पूरी तरह काम में लाया जा रहा है। और यह ध्यान रहे कि सब पुरानी बातें पिट जाती हैं, उसके लोग आदी हो जाते हैं, फिर उसको देखते ही नहीं।
एक आदमी शादी कर लाता है। शादी के पहले उसने अपनी पत्नी को देखा होगा। फिर बीस साल हो गए हैं, अगर वह आज ख्याल करेगा तो चौंक जाएगा, बीस साल से उसने देखा ही नहीं है, वह आदी हो गया है। रोज निकला है और पत्नी को गले भी लगाया है, उससे बात भी की है, सुबह-शाम उससे लड़ा-झगड़ा भी है, लेकिन देखा नहीं है। देखने का कोई मौका ही नहीं आया, कोई जरूरत नहीं पड़ी, वह आदी हो गया है। हां, कोई नई औरत को सड़क पर वह आज देख लेता है--आज भी देख लेता है, एक क्षण को आज भी देख लेता है--और देखने की वजह से वह आज भी लालायित हो जाता है। और अपनी पत्नी उसको अब आकर्षित नहीं करती, क्योंकि उसको वह देखता ही नहीं है। उसकी पत्नी को भी कोई देख कर उत्सुक हो जाता है, कोई देखता है तब न! पर हम आदी हो जाते हैं सबके, और धीरे-धीरे सारे माध्यम आदत के हिस्से हो जाते हैं।

अभी मैं पटना था, तो जालान पिंडी है, एक बहुत अच्छा उन्होंने म्यूजियम बनाया हुआ है घर पर, बहुत शौक से। तो उधर मैं गया तो एक तिबेतन गांग रखा हुआ है। देखा आपने कभी? हम घंटा मंदिर में रखते हैं, वैसा तिबेतन गांग होता है, वह गोल होता है। एक लकड़ी का डंडा होता है। एक लकड़ी का डंडा होता है तो वह उस गांग में जोर से घुमाते हैं, ऐसा तीन बार घुमाते हैं, फिर जोर से उसको मारते हैं। तो तीन बार घुमाने से और चौथी बार चोट करने से "ओम मणि पद्मे हुम्" इसकी पूरी आवाज करता है, वह गांग जो है, पूरी आवाज करता है। इतनी अदभुत आवाज करता है कि आप कल्पना ही नहीं कर सकते। पूरा सूत्र बोल देता है वह। तीन दफा उस गोले के अंदर डंडे को घुमाया और चौथी बार उसको मारा, तो वह "ओम मणि पद्मे हुम्", वह जो चोट है वह "हुम्" कर देती है, और वह आवाज गूंजती रहती है। तो वह मंदिर में, जहां पगोडे गांग है, वह गूंजती रहती है। और वह ध्यान के लिए काम में लाई जाती है।
अब वह हजारों वर्षों से लाई जा रही है। और उसे कोई नहीं सुनता, दिन भर
बज रही है। न किसी को मतलब है, न किसी को प्रयोजन है। जैसे मंदिर में जाकर हम घंटा ठोंक देते हैं, ऐसा वह तिबेतन जाकर उसको ठोंक कर अपने घर चला आता है। वह सुनता ही नहीं, उसको मतलब ही नहीं रहा।
वह कभी डिवाइस थी। और जिसने पहली दफा जिस चेतना ने... आज भी जो चेतना उसको पहली दफा सुनेगी, तो आपको पूरे प्राणों में वह ओम मणि पद्मे हुम की आवाज अंदर तक गूंजती मालूम पड़ेगी। और फिर जहां वह खोने लगती है, उस खोने पर ही ध्यान करना है। और जहां वह खोते-खोते, खोते-खोते शून्य हो जाती है, उसी शून्य में डूब जाना है।
अब वह इतना मेकेनिकल, अब वह आदत हो गई है। अब वह उसको रोज सुन रहा है। गांव में दिन-रात वह बज रहा है, किसी को मतलब नहीं है।
सब चीजें पुरानी पड़ जाती हैं। और इसलिए हमेशा मनुष्य की चेतना को रोज नये-नये माध्यम खोजने पड़ते हैं। तो निम्नतम प्रवृत्तियां तो रोज नये माध्यम खोज लेती हैं और श्रेष्ठतम प्रवृत्तियां पुराने माध्यमों पर ही जोर दिए जाती हैं, इसलिए हार जाती हैं। तो मेरा मानना है कि इस दौड़ में निम्न प्रवृत्ति हमेशा नया खोज लेती है, नया काम्पिटीशन ले आती है। श्रेष्ठ प्रवृत्ति पुराने की ही दुहाई दिए चली जाती है। बस वह मुश्किल में पड़ जाती है, वह हार जाती है।
जिस दिन हम श्रेष्ठ के लिए भी रोज-रोज नया खोज सकेंगे--रोज नया गीत, रोज नया संगीत, रोज नया माध्यम--उस दिन, उस दिन मनुष्य की चेतना में बड़ी क्रांति हो जाएगी। और सब तरफ से... वह जो आप कहते हैं कि क्या उपयोग? उपयोग तो बहुत हो सकता है, बहुत उपयोग हो सकता है। और कुछ लोगों को यह सब कुछ सोचना चाहिए।
साधु-संत अब नहीं जीत सकेंगे, वे हार चुके हैं। अब उनसे कुछ हो नहीं सकता, वे बिल्कुल मरी हुई बाजी पर खड़े हुए हैं। अब तो साधुता को बिल्कुल नये द्वार खोज कर लड़ाई लेनी पड़ेगी, तब तो होगा, नहीं तो गया, एकदम गया। इस बुरी तरह से हार रही है श्रेष्ठता जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। और हर वर्ष कितने जोर से सब नीचे उतर रहा है, उसकी भी कल्पना नहीं कर सकते! और धीरे-धीरे कुछ बातें हमें याद ही नहीं रह जाएंगी कि वे थीं भी। आज भी नहीं हम मान सकते हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, वह जाएगा, वह जाएगा। वह जाएगा, क्योंकि क्लासिकल संगीत को समझने वाली चेतना के साधना के स्तर कहां हैं?

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

उसको सिर्फ... वह मैंने कहा न कि वह जो मामला था, वह सिर्फ पैसिव होने
का नहीं था। अब क्लासिकल संगीत को भी आप सुनेंगे, लेकिन सुनने की भी ट्यूनिंग चाहिए। यानी सुनना भी एक एक्टिव पार्टिसिपेशन है, वह भी एक

पैसिव नहीं है, कि आप बैठ गए, आप गए और जाकर सुन लिया। आप जाकर तो वही सुन सकते हैं जो उस लेवल पर हो जिस पर सब आदमी हैं।
तो एक जॉज है, या कुछ और है, धूम-धड़ाका है, वह कोई भी जाकर सुन सकता है, क्योंकि हम सब उस जगह हैं। उसे समझने के लिए कुछ सीखना जरूरी नहीं, उसे समझने के लिए पहले कहीं से गुजरना जरूरी नहीं। हम वहां हैं!

फकीर की तरह ही नाचने-गाने वाले... ।

नाचने-गाने वाले लोग, नाचने-गाने वाले लोग... । कुछ करना जरूरी है। और मेरा कहना यह है कि सब तरफ से करना जरूरी है--नाच भी, और गीत भी--और चित्र भी, और पेंटिंग भी, सब तरफ से चोट करनी जरूरी है। अगर यह हो सकती है तो यह हारती हुई बाजी बच सकती है, नहीं तो वह गई एकदम।
और मजा यह है कि जो हमें अनुभव में न हो उस पर हम विश्वास भी कैसे करें?
अभी मैं पढ़ रहा था, एक मनोवैज्ञानिक कहता है कि सौ वर्ष बाद सभ्यता इतनी तनावग्रस्त हो सकती है कि कुछ बच्चे बचपन से ही अनिद्रा के रोग से ग्रसित पैदा हों। जैसे ही वे पैदा हों, उन्हें नींद की दवा देनी पड़े। वे बच्चे बड़े होंगे। लेकिन अगर उनसे कोई कहेगा कि सौ वर्ष पहले ऐसे लोग थे जो बिस्तर पर सिर रखते थे और सो जाते थे, वे बच्चे नहीं मानेंगे। और क्यों मानें! मानें भी क्यों! वे बच्चे कहेंगे, यह हो ही नहीं सकता, यह कभी हुआ ही नहीं, ये झूठी बातें लिखी हैं किन्हीं किताबों में। यह कैसे हो सकता है कि कोई आदमी बस लेटे और सो जाए और कुछ न करे? यह हो ही नहीं सकता।
सच में ही जिसको बचपन से नींद न आई हो, वह कैसे विश्वास करे कि कोई दूसरा आदमी आंख बंद करता है और बस सो जाता है। और कुछ भी नहीं बीच में करना होता, बस सो जाता है। हम भी आज विश्वास नहीं कर सकते कि वक्त था, कि लोग बस आंख बंद करके बैठे और समाधि में चले गए। हम विश्वास नहीं कर सकते। हम विश्वास नहीं कर सकते, यह कैसे हो सकता है! हम तो मरे जाते हैं, और कहां की समाधि! कहां का ध्यान! कहीं कुछ प्रवेश नहीं होता। कैसे हम मानें इस बात को! या तो आदमी झूठ बोल रहा है, या कोई पौराणिक कथा है, ऐसा हो नहीं सकता! और वह हमारा ठीक भी है कहना, हमारा ठीक भी है कहना, क्योंकि हम भी कैसे विश्वास करें! कुछ चीजें एकदम खो रही हैं; और इस बुरी तरह खो रही हैं कि उनकी संभावना के द्वार भी जैसे बंद हो रहे हैं, जैसे कोई दरवाजा ही बंद हो गया, अब हमें उसका पता ही नहीं है कि वह है भी।
इस सबको तोड़ने की बड़ी... और यह चेष्टा साधु-संन्यासी के बस अब नहीं है। क्योंकि पहली तो बात यह है कि वह खुद ही उसे कुछ पता नहीं है। और दूसरी बात कि चेतना इतने द्वारों से उलटी गई है कि अब तुम एक द्वार से उसे वापस नहीं ला सकते, उसे बहुत द्वारों से वापस लाना पड़ेगा। और मेरा मानना यह है कि जिन द्वारों से पतन होता है, उन्हीं द्वारों से ही उठान हो सकता है।
तो आज चेतना किन-किन मार्गों से नीचे चली जा रही है, उन्हीं-उन्हीं मार्गों से उसे वापस बुलाने की जरूरत है। और वही मैथडोलॉजी खोजनी पड़ेगी, उसी मीडियम में उसे हम वापस ला सकते हैं। और यह हो सकता है, इसमें अड़चन जरा भी नहीं है, सिवाय इसके कि न किया जाए तो नहीं होगा।
तो इधर मैं सोचना हूं कि कुछ अलग-अलग माध्यम में काम करने वाले लोग, जो अलग दिशाओं में सारा जीवन लगा दिए हैं, वे उन दिशाओं से कुछ, और सब तरफ से हम कैसे एक इंपैक्ट...
और मेरा मानना यह है कि समझाने का माध्यम सबसे पुराना हो गया है। और समझाते भी हम थे, तो समझाना अंततः अगर बहुत गौर से देखें तो परसुएशन है, और कुछ भी नहीं है। मैं आपको समझा कर क्या समझा सकता हूं! परसुएड कर सकता हूं किसी बात के लिए कि वहां भी कुछ है, चलें देख लें। बस इतना ही कर सकता हूं, और तो क्या समझा सकता हूं। समझेंगे तो आप देख कर। परसुएड कर सकता हूं। परसुएशन के पुराने रास्ते सब गलत हो गए अब, वे काम नहीं करते। परसुएशन के नये रास्ते सब उपयोग किए जा रहे हैं।
अभी मैं एक दिन देख रहा था एक रिसर्च। न्यूयार्क के एक सुपर मार्केट में किसी ने कुछ रिसर्च वर्क किया। तो उसने, जितनी स्त्रियां वहां आती

हैं--सारे अंदर दुकान में कैमरे लगे हुए हैं--वे जो स्त्रियां अंदर प्रवेश करती हैं, वे उनके आंखों के चित्र ले रहे हैं। वे सब यह देख रहे हैं कि स्त्रियां किस बात से आकर्षित होती हैं। तो उन्होंने हिसाब लगाया कि जो डिब्बे लाल रंग से रंगे हुए हैं, वे सात स्त्रियों को दस में से आकर्षित करते हैं।
तो दुकानदारों को उन्होंने सलाह दी कि डिब्बे लाल रंग में रंग दो। कोई भी और दूसरा रंग हार जाएगा। कंटेंट क्या है, यह सवाल नहीं है। लेकिन पहले स्त्री लाल रंग के डिब्बे को उठा कर देखती है।
फिर उन्होंने यह देखा कि वह कितनी ऊंचाई पर रखा हुआ है डिब्बा, आंख की कितनी ऊंचाई पर है--जिस पर स्त्री आकर्षित होती है खरीदने वाली। उन्होंने देखा कि अगर बहुत ज्यादा ऊंचाई पर है तो आंख से चूक जाता है, बहुत नीचाई पर है तो चूक जाता है। एक खास लेवल है, स्त्री की जो ऊंचाई का आंख का लेवल है, उसका एक फोकस है, एक फीट का, उसके भीतर जो डिब्बे पड़ते हैं वे उसको आकर्षित करते हैं। तो जो चीज सबसे सस्ती है और सबसे ज्यादा फायदा देने वाली है, वह इस ऊंचाई पर रखी जानी चाहिए। और जो चीज महंगी है या कम फायदा देने वाली है या उसके बेचने से में कोई फायदा नहीं है, वह इतनी ऊंचाई पर रखी जानी चाहिए। वे डिब्बे उस हिसाब से रख दिए गए और इसका परिणाम हुआ!
और वे इस नतीजे पर पहुंचे कि अगर काउंटर पर एक आदमी है, जो पूछता है-- आपको क्या खरीदना है? तो नुकसान होता है दुकान का। क्योंकि जब आदमी यह पूछता है--आपको क्या खरीदना है? तो खरीदने वाली औरत को घर से तय करके आना पड़ता है कि मुझे क्या खरीदना है। तो परसुएड करने की सीमा का लिमिटेशन हो जाता है। उसको तय करके आना पड़ता है कि वह आदमी पूछेगा कि क्या खरीदना है? तो उसको कहना पड़ता है कि मुझे एक स्टोव खरीदना है।
काउंटर से आदमी हटा दिया, सिर्फ पैसा लेने वाला बाद में रहेगा, आपको थैला पकड़ा दिया, आप चले जाएं, जो चीज आपको पसंद है वह ले आएं। तो उन्होंने जो सर्वे किया वह यह कि जो स्त्रियों ने चीजें खरीदीं, जो खरीद कर स्त्रियां निकलीं, उसमें से दस में से सात वे थीं जो वे खरीदने आई नहीं थीं और तीन वे थीं जो वे घर से तय करके आई थीं।
तो इसका मतलब क्या हुआ? इसका मतलब हुआ कि काउंटर से हटा दो, उन्होंने कहा, दुकानदार काउंटर पर नहीं होना चाहिए जो पूछे कि क्या खरीदना है। स्त्री को खुद ही छोड़ दो। और आंख के जो चित्र लिए, उनसे पता चला कि जैसे ही स्त्री देखती है चीजों को, वैसे ही वह हिप्नोटाइज्ड हो जाती है, उसके होश में नहीं है वह। आंख का जो वि.जन है वह छोटा हो जाता है। उतना ही हो जाता है जितना हिप्नोसिस की हालत में होता है।
तो अब वे दुकानदार को कहते हैं कि तुम्हारे परसुएड करने का यह रास्ता है।
अब वह इसका मतलब यह हुआ कि अब जो खरीद वाला है उसको कुछ पता नहीं है कि
वह कैसे परसुएड किया जा रहा है, और किस चीज के लिए उसे परसुएड किया जा रहा है, और वह क्या खरीद कर जाएगा। वह कौन सी किताब पढ़ेगा, वह कौन सा मंजन करेगा, वह कौन सी सिगरेट पीएगा--वह सब परसुएड किया जा रहा है उसको। और परमात्मा के लिए परसुएडर्स जो हैं वे बहुत पुराने ढंग उपयोग कर रहे हैं, वे बहुत ही पुराने ढंग उपयोग कर रहे हैं। अब उनका कोई मायने नहीं रह गया है। जो परसुएडर्स हैं--परसुएडर्स फॉर गॉड--वे बिल्कुल हार जाएंगे इस दुनिया में, वे खड़े नहीं हो सकते। उनके पास परसुएशन के वे रास्ते हैं जो चार-पांच हजार साल पहले... बहुत क्रूड मैथड्स हैं। वे जिन्हें बता रहे हैं, वे किसी पर अपील नहीं करने वाले।
पूरे रिलीजन को साइंटिफिक बनाना होगा अब। जैसा कि सारी चीजों के लिए
जो हो रहा है, वह उसके लिए करना पड़ेगा। तो हम जीतते हैं यह हारी बाजी, नहीं तो गए; हम उससे कभी जीत नहीं सकते हैं, संभावना नहीं है जीतने की। अगर यह हो सकता है कि एक फिल्म को देख कर सैकड़ों लोग आत्महत्या करने के ख्याल से भर सकते हैं, कुछ लोग आत्महत्या कर सकते हैं, तो यह क्यों नहीं हो सकता कि एक फिल्म को देख कर सैकड़ों लोग साधना के ख्याल से भर जाएं और कुछ लोग साधना में उतर जाएं? यह हो क्यों नहीं सकता? इसमें कोई विरोध नहीं है, इसमें कोई विरोध नहीं है।

लेकिन कठिनाई यह है कि पुराना जो आर्टिस्ट था, आनंद जी, वह आर्टिस्ट कुछ ख्याल लेकर खड़ा हुआ था, जहां लोगों को आना पड़ेगा। आज का आर्टिस्ट सिर्फ बाजार में खड़ा हुआ है, जहां लोग हैं वह वही पहुंच जाता है। मरेगा! आप समझ रहे हैं न? आर्टिस्ट कहता है कि लोग जहां जा रहे हैं हम वहां जाते हैं, वे जो चित्र पसंद करते हैं वह हम पेंट करेंगे, वे जो गीत पसंद करते हैं हम गाएंगे। इस युग का सारा आर्टिस्ट आम आदमी के पीछे है। पिछले युगों का सारा आर्टिस्ट आम आदमी के आगे था। हां, आदमी के पीछे है तो वह पैसे के पीछे हो जाता है। वह आदमी के आगे था। उसके पास कोई मैसेज थी, वह कोई लड़ाई लड़ रहा था। वह मुसीबत में भी था एक अर्थ में। आज भी जो लड़ेगा वह मुसीबत में हो जाएगा। लेकिन कुछ लोगों को तो संघर्ष लेना चाहिए, वे जहां भी हैं। नहीं, नहीं सारी चीजों में ले सकें तो कुछ दिशाओं में थोड़े से प्रयोग करने चाहिए कि वहां कुछ समझ बदले।
तो जरूर आपके मित्रों को मुझे मिलाइए तो मैं कुछ जरूर बात करना चाहूंगा कि इस तरफ कुछ सोचें, कुछ करें।

इतना आनंद आ रहा था आपके विचार सुनने में, मैंने बोल कर...

न, न, न, जरा भी नहीं।

जहां तक इस छोटी सी दुनिया का ताल्लुक है उसमें... यह दुनिया विचित्र दुनिया बन गई है। जहां तक हमारा ताल्लुक है, आज पच्चीस साल के बाद इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि बेगिंग करना फिजूल है।

यह तो ठीक है, यह तो ठीक है... ।

जिस उद्देश्य को लेकर मैं इस लाइन में आया था, उसमें मैं हार चुका हूं।

यह भी ठीक है।

यह नहीं कि भगवान ने मुझे कोई ख्याति नहीं दी। एक कलाकार के रूप में लोगों ने मेरी जो भी कुछ सेवा रही उसे सराहा। मगर क्या मैं वह कर सकता हूं जो मैं करना चाहता हूं? क्या ये वह कर सकते हैं जो ये करना चाहते हैं? हमारा प्रोड्यूसर जो पिक्चर बनाता है, उसको नहीं लोगों को भगवान की तरफ ले जाना है। उसे पैसा बनाना है। और उसके बस में हो, अगर सेंसर बोर्ड न हो, तो वह तो नंगा नाच दिखाएगा।

यह तो बात ठीक है।

और जब सेंसर बोर्ड उनकी पिक्चर काटता है, उसके वे खिलाफ खड़े हो जाते हैं। आज बारह साल से ओशो मैंने व्रत लिया हुआ है--सिने इंप्लाइज की सेवा करने का, जो एक्सप्लायटेड क्लास है मेरी इस इंडस्ट्री का। आज भी उन्नीस सौ उनहत्तर में जब कि महंगाई इतनी बढ़ गई है, जब कि मर्सिडीज में घूमने वाले लाखों रुपये कमाते हैं एक्टर और एक्ट्रेसेस, वह गरीब अभी तक स्टूडियो में अस्सी रुपये महीना कमाता है, जो कि गवर्नमेंट के किसी भी स्केल में नहीं आता। यानी आज मिल मजदूर जो है वह ज्यादा कमाता है, आज चपरासी ज्यादा कमाते हैं, ड्राइवर ज्यादा कमाते हैं। मगर मेरे स्टूडियोज में जो लेबर हैं--वह आज भी अस्सी रुपये... एक साउंड रिकार्डिस्ट एक सौ अस्सी रुपया लेता है। जब कि एक पानी पिलाने वाला, सेलटेक्स ट्रेड यूनियन के कारण, तेरह रुपये दिन के ले लेता है। मैं उन गरीब लोगों की सेवा करने के लिए आज तेरह साल से खड़ा हुआ हूं। गवर्नमेंट की कमेटियां बनीं, वे.ज बोर्ड बने, पास हो गए सब कुछ, फिर भी लागू नहीं हो रहे। आज किसी... मेरे साथ कभी आप चलिए, मैं आपको स्टूडियो में ले जाऊं।

मैं जरूर चलूंगा कभी।

आप दंग रह जाएंगे कि किस गंदे एटमास्फियर में हम लोग काम करते हैं।
जहां किसी के बैठने की जगह नहीं, जहां बाथरूम्स नहीं, जहां किसी मेहमान को हम एक प्याला चाय भी नहीं पिला सकते हैं, वहां हम सुबह से शाम कर देते हैं। अमीर लोग जो लाखों रुपये... उनके लिए एयरकंडीशन रूम बन जाएंगे मेकअप करने के लिए। मगर दूसरे जो गरीब लोग हैं उनके पास बैठने की जगह नहीं है। और यह जो पैसे वाला प्रोड्यूसर है या स्टूडियो ओनर है उसको इस बात की कोई चिंता ही नहीं है। क्योंकि वह उन्हें आदमी नहीं समझता, वह जानवर समझता है। उनको वह समझता है कि इनको जरूरत क्या है!

ठीक है, समझा।

तो आज इतने सालों के बाद उनको ये इतना भी नहीं दिलवा पा रहे हैं। क्योंकि अगले दौर में, मैं उनके साथ जाकर बात कर रहे हैं। और अगर स्ट्राइक करवाते हैं तो बुरी बात है कि हमारा धंधा आप बंद करवाने में लगे हैं।
परसों की बात है, मैं इनसे कह रहा था, प्रकाश स्टूडियो में वर्कर्स बैठे थे। न धूप से कोई शेड उनको दिया हुआ है, न बैठने की कोई जगह दी हुई है उनको। वे कहने लगे, मनमोहन जी, आप आठ साल से हमारे अध्यक्ष हैं, कुछ नहीं हो पाया। मुझे इतना दुख हुआ, मैंने कहा, जाओ मैनेजर के दफ्तर में जाकर बात करो। जब जाकर बीस आदमी बैठेंगे, तब उन्हें ख्याल आएगा कि हां, आप भी कोई व्यक्ति हैं, आप भी कुछ आदमी हैं, आपको भी बैठने की जगह होनी चाहिए। तभी उनको अकल आएगी, नहीं तो नहीं आएगी। इंकलाब लाने के लिए क्या है कि वह जो बैठक में मैंने अर्ज किया--पिक्चर बनाने वाले वे हैं।

मैं समझा आपकी बात।

हम सारे अगर संगठन भी कर लें कि हमें गंदी पिक्चरों में काम नहीं करना... ।

नहीं-नहीं, यह भी मैं समझा था।

क्या है कि उस आदमी ने बिल्कुल न मासेस को एजुकेट करना है, न मासेस को कोई रिलीजस मैसेज देना है। कुछ हैं भी जो अच्छी फिल्में ही बनाते हैं, मगर वे गिनती के ही हैं। फिर भी उनका ध्येय यही है कि किस तरह दो के दस बनें। उनके हृदय में कभी यह चीज नहीं है। पढ़े-लिखे लोग भी आकर अनपढ़ हो गए हैं इस लाइन में आकर। और किस प्रकार से उनको सीधे रास्ते पर लाया जाए, वह अगर कोई आप रास्ता बता सकते हैं, तो उसके लिए हम सब तैयार हैं। यानी कि क्या करें! अब आप कल्याण जी से कहिए कि भई आप जिस प्रकार का संगीत... ये कहेंगे, मैं क्या करूं भई! मुझे डिमांड है उस प्रोड्यूसर की।

यह तो मैं बात समझा मनमोहन जी, यह बात मैं समझा। यह तकलीफ आपकी नहीं है, यह तकलीफ सब की है। क्योंकि कोई भी आदमी यहां अकेला नहीं है, एक बड़े सामाजिक जाल के सारे लोग हिस्से हैं। कोई आदमी अकेला नहीं जी रहा है, अपनी मर्जी से नहीं जी रहा है, एक बड़े जाल के हिस्से हैं। लेकिन यह बात इस जाल में किसी भी आदमी से कहिए, तो वह यही कहेगा कि हम तो इस जाल के हिस्से हैं। आप अगर सोचते हों कि प्रोड्यूसर यह नहीं कहेगा, तो आप गलत सोचते हैं। प्रोड्यूसर भी यही कहेगा कि हम क्या कर सकते हैं? जहां से हम रुपया लाते हैं, हम यह करते हैं, वे इसीलिए रुपया देते हैं।
मेरा मतलब यह है, यह जो बात है न यह बात सार्थक तब थी, जब कि कोई इस हालत में होता, जो कह सकता कि हां, मेरे लिए मैं जिम्मेवार हूं। ऐसा कोई भी नहीं है। सारे लोग इकट्ठे जिम्मेवार हैं। एक इंटरडिपेंडेंस है सारे लोगों की। यह तो बात जाहिर हो गई, यह तो समस्या हुई, इस पर रुक नहीं जाया जा सकता।
मेरा मानना यह है कि आनंद जी करते हैं काम, वे जो करते हैं वह उन्हें करना

पड़ेगा; वैसे ही करना पड़ेगा; वे एक बड़े जाल के हिस्से हैं। लेकिन कुछ काम, जो उस बड़े जाल के बिना वे कर सकते हैं। वह बड़ा जाल चलता है, उसके वे हिस्से हैं, वे भी चलते हैं, वह भी ठीक है। लेकिन कुछ वे गा सकते हैं, जो वे पैसे के लिए नहीं गाते हैं। कोई नाच सकता है, जो वह पैसे के लिए... ।
मेरा मतलब यह हैः कहीं से हमें, कहीं से हमें तोड़ना पड़े। और यह तो मैं मानता ही नहीं हूं कि आप सारे जाल को तोड़ें, तब कुछ होने वाला है। यह तो हो नहीं सकता है! हां, हमें तो अपने हिस्से में कुछ काम तोड़ने की कोशिश करनी पड़े। और फिर सवाल यह है, इतना कमजोर आदमी कोई भी नहीं है--इतना सबल आदमी कोई नहीं है जो यह कह सके कि मैं बिल्कुल स्वतंत्र हूं--इतना कमजोर आदमी कोई नहीं है जो यह कह सके कि मेरे हाथ में कुछ भी नहीं है। ये दोनों बातें मेरे ख्याल में हैं। इतना कमजोर से कमजोर आदमी भी खोजना मुश्किल है जो यह कह सके कि मैं कुछ नहीं कर सकता हूं। बहुत मुश्किल है करना, लेकिन बिल्कुल ही ऐसा नहीं है कि कोई कुछ नहीं कर सकता है। और थोड़ा सा भी जो कर सकता है, उसको करने को राजी हो, तो भी हम सर्किल को तोड़ते हैं। और जब दस लोग थोड़ा सा करने वाले मिल जाएं तो सर्किल को और जोर से तोड़ते हैं।
एक मजे की बात यह है कि इतना बड़ा जाल है कि अगर एक व्यक्ति उसके सामने अपने को खड़ा करके सोचे, तो फौरन हार जाएगा, फौरन हार जाएगा। वह सोच भी ले तो हार गया, यानी अगर वह यह देखे कि इतना बड़ा जाल है यह खड़ा हुआ, इसके खिलाफ मैं खड़ा होता हूं, मैं कहां खड़ा... सोचना ही असंभव है, मर गए यह तो, हार जाऊंगा। यह तो बात सच है। लेकिन अगर वह इस तरह सोचे कि इतना बड़ा जाल भी कुछ व्यक्तियों का ही बनाया हुआ है, और कोई व्यक्ति एक से ज्यादा मूल्य नहीं रखता। बड़े से बड़ा व्यक्ति नहीं रखता, छोटे से छोटा भी कम नहीं रखता, वह चूंकि चल रहा है सिर्फ, इसलिए ताकतवर मालूम पड़ता है। और जिस दिन तोड़ने वाली कड़ी मिल जाए, तो एक कड़ी भी तोड़ देगी, फिर हजार कड़ी मिलती चली जाती हैं एकदम। हजारों कड़ियां प्रतीक्षा करती हैं, मनमोहन जी, कि कोई आवाज दे और वे आ जाएं। और हजारों कड़ियों के मन में आग होती है, लेकिन राह देखती हैं कि कोई जल जाए और हम जल जाएं।
इस दुनिया में एकाध लाख में एकाध आदमी होता है जो दूसरे की प्रतीक्षा नहीं करता! अधिकतम लोग प्रतीक्षा करते हैं। और हमें सिर्फ हमेशा उन थोड़े से लोगों को खोजने की जरूरत होती है जो प्रतीक्षा नहीं करते और जो कुछ कर सकते हैं। और कई बार बहुत छोटे-छोटे लोग इतना बड़ा तोड़ देते हैं... । लेकिन होता क्या है, हमें यह दिखाई नहीं पड़ता; क्योंकि तोड़ते ही से वे बड़े-बड़े लोग हो जाते हैं। सब छोटे-छोटे लोग तोड़ते हैं दुनिया में। लेकिन इतिहास कभी नहीं आंक पाता कि छोटे आदमी कुछ करते हैं। सब काम छोटे आदमी करते हैं। लेकिन इतिहास में अंकते-अंकते वे सब बड़े आदमी हो जाते हैं, क्योंकि वे कर चुके। और तब हम कहते हैं कि वह बड़ा आदमी था। वह कर चुका। वह बड़े आदमी की वजह से नहीं किया, किया इसलिए बड़ा आदमी था और कोई भी छोटा आदमी... ।
तो मुझे यह लगता है कि जो हम कर सकते हैं, बहुत छोटा सा कुछ, वह इस दिशा में करने का ख्याल। अब आप जो कह रहे हैं, जिस लड़ाई की आप बात कर रहे हैं, वह लड़ाई बिल्कुल दूसरी है। जिस लड़ाई की बात मैं कर रहा हूं, वह बिल्कुल दूसरी है।
और मैं आपसे कहता हूं कि उस जिस लड़ाई में हम लड़ रहे हैं, जिसमें हम सौ रुपये वाले आदमी को डेढ़ सौ रुपये दिलाना चाहते हैं, अंततः वह लड़ाई रुपये की है। और जिससे हम दिलाना चाहते हैं पचास रुपये, पचास रुपये जिस कारण से हम दिलाना चाहते हैं, उसी कारण से वह भी पचास रुपये छोड़ना नहीं चाहता। जो बेसिक लड़ाई है, जो बेसिक लड़ाई है... और मेरा कहना है कि आप जब तक उससे पचास रुपये छुड़वा पाएंगे, जब तक आप पचास रुपये उससे छुड़वा पाएंगे लड़ कर, वह आप तभी छुड़वा पाएंगे जब वह पचास लाख और इकट्ठे कर लेगा। और लड़ाई हमेशा... गैप उतना ही बना रहता है, गैप जाता नहीं।
हैरान होंगे आप, हम तो छोटी लड़ाई लड़ रहे हैं, रूस जैसे मुल्क तो बड़ी लड़ाई लड़ रहे हैं, लेकिन गैप खत्म नहीं होता, गैप बना हुआ है। सोचा था कि इतनी बड़ी क्रांति होगी, सब गैप चला जाएगा। लेकिन गैप नहीं गया। वह जो कल मालिक था, अब मैनेजर है। मगर वह उतना ही रोब-दाब है, उतनी ही ताकत है, उतनी ही पकड़ है। बल्कि कल से पकड़ ज्यादा बढ़ गई है।

मैं एक मजाक सुन रहा था कि ख्रुश्चेव गया तिफलिस, जब वह ताकत में था।
तो वहां की कम्युनिस्ट पार्टी के बड़े नेताओं के बीच उसने कहा कि अब तो हमारे पास सब कुछ है। आपके पास भी सब के पास कारें, रेडियो, सब होंगे? सबने सिर हिलाया, सिर्फ एक आदमी ने खड़े होकर कहा कि नहीं, मेरे पास तो नहीं हैं। तो उसने कहा, कि आप अपना नाम दें, यह कैसे हो सकता है!
दूसरे दिन वह आदमी नदारद हो गया, दूसरे दिन वह आदमी गायब हो गया। दूसरे दिन ख्रुश्चेव ने पूछा कि वह जिस आदमी को गाड़ी वगैरह चाहिए थी, वह मिल गई न! तो लोगों ने कहा कि जरूर मिल गई होगी, क्योंकि उस आदमी का कोई पता ही नहीं चल रहा है।
दूसरी घटना मैंने सुनी... । वह आदमी गया! क्योंकि उसने यह बात कैसे कही! गाड़ी है, मतलब हां भरनी चाहिए। गाड़ी है कि नहीं, यह सवाल नहीं है।

हां करनी चाहिए।

हां करनी चाहिए थी। मैंने दूसरी घटना सुनी कि स्टैलिन के खिलाफ ख्रुश्चेव बोल रहा था प्रेसिडियम में उनकी। तो एक आदमी ने यह कहा कि आप स्टैलिन के साथ जिंदगी भर थे, उस वक्त आप क्यों नहीं बोले? ख्रुश्चेव एक क्षण रुका और उसने कहा कि जो सज्जन यह बोल रहे हैं, वे कौन हैं, कृपा करके नाम तो बता दें! तो कोई आदमी ने नाम नहीं बताया। तो ख्रुश्चेव ने कहा कि जिस वजह से आप नाम नहीं बता रहे हैं अभी, उसी वजह से मैं भी चुप रहा।
यह क्या हुआ फर्क? माना कि छप्पर भी मिल गया, और माना कि तनख्वाह भी मिल गई, लेकिन बड़ा महंगा मूल्य हो गया, आत्मा पूरी बिक गई। और वह जिस मैनेजर के हाथ में कल रुपया थे, आज उसके हाथ में आत्मा भी चली गई है।
आदमी जो लड़ाई लड़ रहा है मनमोहन जी, वह लड़ाई असल में, हम जिस मुद्दों पर लड़ते हैं, वे मुद्दे ही लड़ाई के हैं। जब तक वैल्यूज नहीं बदलतीं तब तक आप रुपयों के दिलवाने की लड़ाई में कभी जीतने वाले नहीं। दिलवाते-दिलवाते आप पाएंगे कि जब तक फासला आगे बढ़ गया, तब इसको फिर मिल गए। यानी जब तक आपको छप्पर मिल पाएगा आपके मजदूर को, तब तक पाएंगे मालिक बहुत आगे चला गया और छप्पर अब बेमानी हो गया। अब इसको कुछ और चाहिए, और लड़ाई जारी है।
यह जो सारी लड़ाई है, अगर बहुत हम गौर से देखें, तो पैसे की लड़ाई नहीं है। यह इस बात की लड़ाई है कि क्या समाज ऐसा ही रहेगा जिसमें एक आदमी किसी न किसी रूप में अपने अहंकार को बड़ा करके ही तृप्ति पाएगा? और तृप्ति का कोई रास्ता नहीं हो सकता? जो बेसिक लड़ाई है वह यह है कि क्या मैं अपने अहंकार को ही तृप्ति करके बस तृप्ति पा सकता हूं और कोई तृप्ति का रास्ता नहीं है?
अगर यही है, तो फिर बहुत मुश्किल है कि मैं आपके पास कार होने दूं। क्योंकि मेरे पास कार का मजा ही सिर्फ यह है कि आपके पास कार नहीं है। और मेरे पास बड़े मकान का मजा ही यह है कि आपके पास झोपड़ा है। और मैं जब छाया में बैठता हूं तो मुझे सुख ही इतना है कि कुछ लोग छाया में नहीं बैठे हुए हैं। और आप लड़ाई लड़ रहे हैं कि वे छाया में बैठ जाएं। छाया-वाया का झगड़ा नहीं है, सारा झगड़ा यह है कि मेरा सारा सुख छीन लोगे। आप दिलवा रहे हो छाया उनको, लेकिन मेरा सारा सुख छीन रहे हो। क्योंकि जो छाया में बैठा हुआ है, उसे छाया-वाया में बैठने का सुख नहीं है, बेसिक सुख इस बात का है कि वह छाया में बैठा है और दूसरे लोग छाया में नहीं हैं। और कल जब तक आप सब के लिए छाया का इंतजाम कर दोगे, वह नया उपाय कर लेगा, जिसमें वह ऊपर खड़ा हो जाएगा। वह कहेगा, मेरे पास यह है जो तुम्हारे पास नहीं है। और तकलीफ शुरू हो जाएगी। वह एयरकंडीशन में चला जाएगा।
तो मेरा कहना यह है कि जो हम ये लड़ाइयां लड़ रहे हैं, ये लड़ाइयां कोई तीन हजार साल से लड़ रहे हैं और नहीं जीत पा रहे हैं। और कभी नहीं जीत पाएंगे; जीत ही नहीं पाएंगे, क्योंकि गलत मुद्दे पर आप लड़ रहे हैं। मेरा कहना यह है, हम लड़ाई तब जीत पाएंगे, जब हम जीवन में तृप्ति के कुछ दूसरे रास्ते खोजें। जैसे हम उस आदमी को कोई तृप्ति का अर्थ न मालूम पड़े, जो कि दूसरे आदमी को धूप में खड़े देख कर खुद छाया में बैठा है--यह आदमी एकदम अपमानित हो जाए, यह आदमी एकदम अपमानित हो जाना चाहिए। इसको कुछ करने की

जरूरत नहीं है, न कोई लड़ाई लड़ने की जरूरत है। न आपको कोई हड़ताल करने की जरूरत है। एकदम पूरे समाज में यह आदमी अपमानित हो जाना चाहिए, एकदम! लेकिन वे जो छप्पर के नीचे नहीं बैठे हैं, धूप में खड़े हैं, वे भी इसको आदर देते हैं, क्योंकि इसके पास छप्पर है। अब यह बड़ी मुश्किल की बात है। यह आदमी एकदम अपमानित होना चाहिए। इसका सब मामला खत्म हो जाना चाहिए।
राहुल रूस गए पहली दफा। जिस आदमी ने उनका स्वागत किया स्टेशन पर उसने हाथ मिलाया, और हाथ खींच लिया। राहुल का हाथ बहुत मुलायम, बहुत खूबसूरत और अच्छा है। वह कभी काम तो कुछ किया नहीं था। यहां तो हिंदुस्तान में जो भी हाथ देखता था, वह कहता था, अरे, बहुत मखमली हाथ है तुम्हारा! उस आदमी ने एकदम हाथ खींच लिया। राहुल ने कहा, क्या बात है? उसने कहा, आप हाथ किसी से भी ख्याल से मिलाना, क्योंकि इस तरह के हाथ को हम अच्छे आदमी का हाथ नहीं समझते। क्योंकि इसने काम नहीं किया है। आप जिससे भी हाथ मिलाओ, सोच कर मिलाना; क्योंकि वह आदमी फौरन आपके प्रति नफरत से भर जाएगा कि यह आदमी मुफ्तखोर है।
राहुल ने कहा है कि मैं ऐसा डरा-डरा रहा हूं पूरे वक्त... कि कोई हाथ मिलाए तो डर लगे, क्योंकि हाथ मिलाया कि उसका चेहरा बदला फौरन!
सोशल वैल्यूज बदलने की बात है। अगर एक आदमी बड़े महल में रह कर सुखी होता है तो सुखी होने का कारण सोशल वैल्यू है। इसको डिसवैल्यू बनाना चाहिए। यह लड़ाई-वड़ाई नीचे-ऊंचे, उसकी लड़ाई नहीं है। मेरी नजर में हमें वैल्यूज बदलनी चाहिए। हम उस आदमी को आदर देंगे--किस तरह के आदमी को आदर देंगे, क्यों आदर देंगे, वह हमें सारा का सारा बदलना चाहिए। और एक दफा वैल्यू बदल जाए तो आप हैरान होंगे! अगर आप नंगे आदमी को आदर दो, आप हजार आदमी पाओगे बंबई में नंगे खड़े हुए हैं। आखिर साधु-संन्यासी खड़े हुए हैं, और क्या वजह है! आप समझते हैं कोई अध्यात्म मिल गया है! सिर्फ उनको आदर देने वाले लोग हैं, और कोई कारण नहीं है। आप आदर देने लगो, हजार आदमी कांटे पर लेट जाएंगे।
तो जहां मामला बिल्कुल साफ है--मेरी नजर में लड़ाई यह है कि हम गलत चीजों में आदर देते रहे हैं। हमें कुछ आदर का पूरा ढंग बदलना चाहिए। और अगर हम आदर का ढंग बदल दें तो आप हैरान होंगे कि यह सोसायटी जहां लड़ रही है, वे मुद्दे इतनी सरलता से हल हो जाते हैं, जिनको कि हमें हल नहीं करना पड़ेगा। और नहीं तो यह लड़ाई जारी रहेगी। कम्युनिज्म आ जाए तो भी लड़ाई जारी रहेगी। क्योंकि बेसिक वैल्यूज वही की वही हैं, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता, कोई फर्क नहीं पड़ता।
अभी पीछे-पीछे, हटने के पहले, ख्रुश्चेव ने कहा कि रूस में भी जो लड़के
पढ़ लेते हैं वे फिर--अब इस्टैब्लिश्ड सोसायटी हो गई रूस में--तो वे अब मजदूरी करना नहीं चाहते। पढ़े-लिखे लड़के क्लर्क होना चाहते हैं, रूस में भी। फिर मैं पूछता हूं, मतलब क्या हुआ?
यह उन्नीस सौ तीस की बात है, राहुल की जो घटना है। आज उन्नीस सौ पैंसठ में कोई जाकर पढ़ा-लिखा लड़का कहता है कि मैं भी खेत पर काम करने नहीं जाऊंगा। तो फिर हिंदुस्तान में और अमेरिका में और रूस के लड़के के दिमाग में वैल्यू का फर्क क्या है? वह भी व्हाइट कालर को आदरपूर्ण समझता है। तो फिर ठीक है, वही का वही हो गया। आज जो चीन और रूस के बीच झगड़ा है, वह झगड़ा यह है कि रूस बिल्कुल ही कैपिटलिस्ट माइंड पर फिर आ गया वापस। क्योंकि बेसिक वैल्यू तो बदली नहीं थी, जबरदस्ती तुमने कोशिश की, वह पचास साल में फिर खिसक गई।
बड़ी संभावनाएं हैं। और फिर मैं यह कहता हूं कि जिस जिंदगी में हारना
ही है उसमें किसी ऐसी लड़ाई के लिए हारना चाहिए कि हारने का भी सुख हो, मजा आए। यानी हारना ही है जिस जिंदगी में, तो फिर लड़ाई बड़ी ले लेनी चाहिए। मेरा अपना मानना यह है कि जहां जीतने का भरोसा ही नहीं है, और जहां इस तरह की चीजों में जीत कर भी कुछ पाने का भरोसा नहीं है, वहां कोई लड़ाई ले लेनी चाहिए। और लड़े और हारे तो भी हर्जा नहीं, एक तृप्ति तो रहेगी कि एक ऐसी चीज के लिए लड़ते थे जिसमें हारने में भी मजा था। और मेरी अपनी समझ यह है कि जो लोग गलत चीजों के लिए जीत भी जाते हैं वे कोई तृप्ति नहीं पाते। जीत तृप्ति नहीं लाती मनमोहन जी, आप किसके लिए लड़ते हैं, उसकी हार भी... ।

अब अगर गौर से देखें तो जीसस हारा हुआ आदमी है, बुद्ध हारे हुए आदमी हैं। ये कोई जीते हुए आदमी नहीं हैं, अभी इनको जीतने में हजारों वर्ष लग जाएंगे। और कभी जीतेंगे, यह भी शक मालूम होता है। शक ही है, अभी जीत-वीत नहीं हुई। लेकिन फिर भी ये लोग कितने आनंद से मरे हैं, हारते हुए, कि जिनको हम जीता हुआ कहते हैं, हिटलर को, या नेपोलियन को, या सिकंदर को... । अब यह बड़ा उलटा मालूम पड़ता है।
इस दुनिया में परमात्मा के लिए लड़ने वाला हारता भी है तो भी एक अर्थ में जीत जाता है। और परमात्मा के खिलाफ लड़ने वाला जीतता भी है तो भी हारता है। क्योंकि वह जो सुगंध थी जीत की वह तो आई नहीं। और मुझे ऐसा लगता है कि अगर बड़ी चीजें जीत जाएंगी तो और बड़े लोग पैदा होंगे, जो और बड़ी चीजों के लिए लड़ेंगे और हारेंगे। यानी ऐसे लोग हमेशा पैदा होते रहेंगे।
नीत्शे ने एक वाक्य लिखा है, बहुत अदभुत लिखा है। नीत्शे ने लिखा है
कि वह दिन मर जाने योग्य होगा जिस दिन ऐसे आदमी पैदा नहीं होंगे जो आदमी पर शरमाएं। वह दिन मर जाने योग्य होगा जिस दिन ऐसे आदमी पैदा नहीं होंगे जो आदमी पर शरमाएं। वह दिन बेकार होगा जिस दिन आदमी की प्रत्यंचा-- प्रत्यंचा--वह जो तीर है वह अज्ञात के लिए नहीं उठेगा। वह दिन शरमाने जैसा होगा जिस दिन लोग कोई ऐसी बड़ी चीज न पाएंगे जिसके लिए लड़ा जा सके, हारा जा सके।
बहुत मुश्किल है। मैं भी सोचता हूं, मैं भी यही सोचता हूं कि यह बहुत मुश्किल होगा। ऐसा तो कभी नहीं होगा। बड़े से बड़े आकाश खुलते जाते हैं लड़ाई के लिए। हमें छोटी-मोटी लड़ाई लेनी चाहिए। जहां भी हम हैं, जो भी हम कर सकते हैं, जो कुछ भी हम कर सकते हैं, हमें करना चाहिए।

और मिल-जुल कर आपस में... ।

हां, बिल्कुल ही आप मित्रों की कोई छोटी मीटिंग रखिए। उसमें कुछ डिटेल्स में बात करिए। मैं समझा, वह आपने रखी और मैंने पूरी बात सुन कर पूरी आपसे बात की।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मैं समझा, मैं समझा, तभी मुझे ख्याल होगा, मेरा कोई संबंध नहीं है।
हां, आ गए हैं तो सुनाएं, थोड़ी देर सुन लिया जाए।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नहीं, अनिश्चित नहीं है कमल। असल में दस साल का तो सवाल नहीं है, दस सेकेंड का भी सवाल नहीं है। कठिनाई है हमारी, हमने जो बैरियर्स बना रखे हैं उनकी।

नहीं, मेरी समझ में यह बात नहीं आई। अगर किसी का अनुभव हो गया इंसान को, तो फिर वह जान जाता है कि क्या उचित है।

हां-हां, बिल्कुल ही। तब तो बहुत सुगम है, फिर दस साल का सवाल नहीं है, फिर तो सवाल नहीं है। वही होने में देर लगती है--पहला अनुभव होने में। पहला अनुभव हो जाने के बाद तो अत्यंत सरल बात है। पहला अनुभव ही...

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

असल में दो तरह की उम्र हैं। एक तो जो हमें दिखाई पड़ रही है कि एक आदमी पचास साल का है, एक आदमी पंद्रह साल का है, एक तो यह उम्र। और एक वह उम्र है जो पीछे से आ रही है। और हो सकता है कि पंद्रह साल वाला ठीक उम्र पर हो कि उसके काम पड़ जाए बात और पचास साल वाला ठीक उम्र पर न हो, उसके काम न पड़े। तो यह जो बाहर से एज दिखाई पड़ रही है, इसका तो कोई मूल्य नहीं है। एक और एज है

जो पीछे से आ रही है और बहुत लंबी है, और बच्चा बूढ़ा हो सकता है और बूढ़ा बच्चा हो सकता है। उस एज को ध्यान में रख कर ही ये सारी बातें हैं। और एक खास एज पर ही, उस एज पर पहुंच कर ही ये बातें काम की हैं और उपयोग की हैं।

उसको ही लगेंगी?

हां, उसको ही लगेंगी। इसलिए बेफिक्री से फेंकी जा सकती हैं। क्योंकि
जो उस एज के बाहर है वह चुपचाप खाली हाथ लौट जाएगा। और सच बात तो यह है कि जो उस एज के बाहर है उसे अर्ज भी नहीं होगी, वह आएगा भी नहीं, एक दफा आ जाएगा तो फिर दोबारा नहीं आएगा। वह तो चोट ही वहीं होती है, जहां कोई चीज पक गई है और तैयार हो गई है। आप एक पत्थर फेंकें, वह पका फल जो है, छूते से ही गिर जाता है, कच्चा फल हिलता है और अपनी जगह रह जाता है, पत्थर वापस लौट आता है।

ओशो, जिन तारों को छेड़ कर आप वापस चले जाएंगे। उन तारों का क्या होगा?

बहुत कुछ होगा, बहुत कुछ होगा।

क्योंकि मन बहुत कुछ और सुनने को चाहता है। आप और कुछ कहिए। जब थोड़ा
सा मार्ग-दर्शन मिलता है तो और राहें खुलती हैं। और आप जहां भी हों बस वहीं से... ।

मैं समझा, मैं समझा, आपकी बात समझा। और इसलिए कुछ भी छूटता नहीं। क्योंकि बहुत तरह की ग्रोथ है। हमने एक बीज को डाल दिया जमीन के भीतर, और चला गया डाल कर आदमी। और बीज सोचता होगा--अब मेरा क्या होगा? छोड़ कर तो चले गए। लेकिन इस बीच बीज फूटेगा, बढ़ेगा। वह जब पड़ा है जमीन में तब भी बढ़ रहा है। असल में कोई चीज भीतर हो, फिर वह बढ़ती है, उसकी अपनी ग्रोथ है। एक बार वहां हो, तो वह बढ़ने लगती है। और मेरी अपनी दृष्टि यह है कि जब भी उस बढ़ती हुई हालत को जरूरत होती है तो ठीक वक्त पर उसे सहायता मिल जाती है, उसे कहीं कभी बाधा नहीं पड़ती। यानी इतनी सहायताएं बह रही हैं हमारे चारों तरफ, चूंकि हम तैयार नहीं हैं इसलिए हम चूक जाते हैं। यानी हमारी तरफ न मालूम कितनी चेष्टाएं चल रही हैं, हमारे करीब से चल रही हैं, हमारे पड़ोस से चल रही हैं, हमारे निकट से वह आदमी गुजर रहा है, जब हमें जरूरत होगी तो फौरन काम पड़ जाएगा। लेकिन हमें चूंकि जरूरत नहीं है... ।
देखें आप, हमारी जो जरूरत है, उसके अनुकूल हम अपने पास खींच लेते हैं, जरूरत खींच लेती है। अनुकूल आता नहीं। अब एक ही जमीन है, और उसमें आपने चमेली का पौधा लगाया हुआ है। चंपा का पौधा लगाया हुआ है, जमीन एक ही है और चंपा वह सुगंध खींच लेती है उसी जमीन से जो वह खींच सकती है और चमेली वह सुगंध खींच लेती है जो वह खींच सकती है। और जमीन एक है! हवा एक है! और सूरज एक है! दोनों की खींचने की जरूरतें अलग-अलग हैं। वे अलग फूल बन जाते हैं, वे अलग फूल खिल जाते हैं। ठीक जहां महात्मा खड़ा हो जाता है, वहीं उसके पास ही एक बुरा आदमी भी पैदा हो रहा है, और उसी जमीन से खींच रहा है वह अपनी ग्रोथ। यानी मेरा मानना यह है कि हमारे भीतर जो भी जरूरत है उसे पूरा करने के लिए परमात्मा निरंतर तैयार है। हमारी निकृष्टतम जरूरत को भी पूरा करने को तैयार है, तो हमारी श्रेष्ठतम का तो सवाल ही नहीं है। यानी हम बुरे से बुरे भी होने को तैयार हों तो परमात्मा कभी सहायता नहीं छोड़ता। बुरे से बुरे होने की हमारी तैयारी हो तो उसकी सहायता मौजूद है, वे रास्ते खुले हुए हैं सब।

एक और रास्ता यह है, मैंने कुरेली का "सारोज ऑफ सैटर्न" पढ़ा। इतना सुंदर कि सैटर्न बेचारे की ऐसी ड्यूटी रखी हुई है कि आदमी को नीचे गिराए। और कोई व्यक्ति उस सैटर्न के असर को नजरअंदाज करके अगर ऊपर पहुंचेगा तो बेचारा सैटर्न कहीं एक स्टेप ऊपर चढ़ पाएगा। आह! कितना अच्छा। सैटर्न की ड्यूटी है गिराना, मगर वास्तव में वह ऊपर उठना चाहता है। अगर उसके असर से हट कर आप ऊपर आए तो उस गरीब की कहीं प्रोग्रेस होगी।

तो ऐसे ही संस्कार कहिए, पिछले जन्म का असर कहिए या एक्सिडेंट कहिए। मैं यह भी समझता हूं कि भगवान ने जो हमें इस दुनिया में से निकाल कर एक छोटी सी फिल्म इंडस्ट्री के घेरे में रखा है। गुरुदेव, आप विश्वास कीजिए कि इतनी छोटी दुनिया में छोटे से समय में बहुत कुछ देखने को मिला है जो कि बड़ी दुनिया में नहीं मिल सकता है। बीस साल में चढ़े हुओं को गिरते देखा, गिर कर फिर चढ़ते हुए देखा है। और वे जो वैल्यूज हैं--पोज वैल्यूज कहिए--उनकी प्रशंसा होती देखी है और जो टैलेंट है उसकी बेकदरी होती देखी है, परवाह ही नहीं कोई। और फिर भी मैं भगवान का शुक्र करता हूं कि प्रभु शायद आपने इसीलिए इस लाइन में भेजा है। एक होता है, चलता है चक्कर।

समझा।

मगर आपका पहला ही लेक्चर जो मैंने सुना था, छह महीने पहले पोद्दार कालेज में, आपके उस लेक्चर ने मेरे इस फैटेलिज्म को तोड़ा था, वह मुझे नहीं भूलता। जब आपने भारत की वह स्थिति बताई थी कि एक जवान हैं, एक बूढ़े हैं। एक जो पीछे हैं, एक जो आगे हैं यानी उस रोज मैं कहूं भगवान ने आज कहां से भेजा इन्हें, मेरी इस फैटेलिज्म को तोड़ने के लिए! चुपचाप बैठा मैं सुन रहा हूं। और एक-एक जो आपने उपमा दी; वह जापान के उन वृक्षों की जिनकी जड़ें काटी जाती हैं, वे बढ़ नहीं पाते। मगर जड़ों को गुरुदेव, अगर हम नीचे समझें, जितना ऊपर है उतना ही नीचे होना चाहिए, तो मैं समझता हूं कि गिरे हुए आदमी के चांसेज ऊपर उठने--उतने ही ऊपर उठने--के ज्यादा हैं, जिस तरह कि बाल्मीकि।

बिल्कुल ही, हमेशा! मीडियाकर आदमी के ऊपर उठने के कोई मौके नहीं हैं; जितना बीच का आदमी है, उसके कोई मौके नहीं हैं, क्योंकि उसमें नीचे जाने की क्षमता नहीं है। और क्षमता के लिए दिशा का सवाल नहीं है, क्षमता सिर्फ जाने की क्षमता होती है। आप पूरब जाते हैं कि पश्चिम जाते हैं, यह सवाल नहीं है। जाने की क्षमता होती है। वह आदमी नीचे की तरफ जाता है तो ताकत उसके पास नीचे की तरफ जाने की है। वह जिस दिन तय करता है ऊपर की तरफ जाने की, तो ऊपर की तरफ जाने की उसके पास ताकत है। और वह जो आदमी बीच में खड़ा है, जो न कभी नीचे गया, न कभी ऊपर गया, उसके पास कोई ताकत नहीं है। नहीं तो वह कहीं न कहीं गया होता; ताकत रुकती नहीं, जाती है। इसलिए मैं कहता हूं, बीच के आदमी से नीचे का आदमी हमेशा बेहतर है। क्योंकि नीचे के आदमी के पास कुछ ताकत है इसका सबूत है। वह कहीं गया है।
बुद्ध के जीवन में एक डाकू का उल्लेख आता है, अंगुलीमाल का।

हां, हमने उस पिक्चर में काम किया है। मैं अंगुलीमाल का बाप बना हूं।

वह अंगुलीमाल जो है, वह एक क्षण में बदल जाता है। उतनी ताकत का आदमी है।
ताकत जो है उसकी कोई दिशा नहीं है, दिशा हम देते हैं। एक अर्थ में बुरे होने की क्षमता सौभाग्य है, क्योंकि क्षमता तो है। बुरे हुए, यह गलती की है; और क्षमता है। और मजे की बात यह है कि बुरा होना हमेशा भले होने से कठिन है। यह आमतौर से ऐसा नहीं दिखाई पड़ता; लेकिन बुरा होना अच्छे होने से बहुत कठिन है, अत्यंत कठिन है।

अगर कांशसली बुरा हो तो।

कांशसली तो बहुत कठिन है और बहुत शक्ति मांगता है। क्योंकि प्राणों
की पूरी आकांक्षा तो सदा ऊपर जाने की है और आप उसे नीचे ले जाते हैं, बड़ी ताकत लगती है। और जद्दोजहद दुनिया से तो है ही, अपने से भी है। बुरा आदमी दोहरी लड़ाई लड़ता है। अच्छा आदमी इकहरी लड़ाई लड़ता है। अच्छा आदमी सिर्फ आस-पास की दुनिया से लड़ता है। बुरा आदमी आस-पास की दुनिया से तो लड़ता ही है, अपने से भी लड़ता है और अपने से लड़ता है। नीचे जाने के लिए; और भीतर तो कोई

निरंतर ऊपर उठना चाह रहा है। वह जो ऊपर उठने की चाह है, वह कहीं भी पीछा नहीं छोड़ती। अब रह गई बात ताकत की।
इसलिए जो मीडियाकर हैं, जो बीच के हैं, वे हमेशा अभागे हैं और उनमें कोई बल नहीं है। वे अगर चोरी नहीं करते हैं तो उसका कारण यह नहीं है कि वे चोरी नहीं करना चाहते हैं, उसका सौ में निन्यानबे मौके पर कारण यह है कि वे इतना बल नहीं जुटा पाते कि चोरी करें। और इसको वे समझते हैं कि कोई गुण है। यह कोई गुण नहीं हुआ। और चूंकि वे चोरी करने का ही बल नहीं जुटा पाते इसलिए कभी साधु होने का बल तो वे जुटा पाने वाले नहीं हैं।
और आप हैरान होंगे, साधु इसलिए हार रहे हैं दुनिया में कि सब मीडियाकर साधु बन गए हैं और सब ताकतवर लोग बुरे लोग हैं, इसलिए बुरे लोगों से साधु जीत नहीं पा रहे हैं। क्योंकि ताकतवर बुरा आदमी है और साधु बिल्कुल बोगस है, वह मीडियाकर है। वह चोरी नहीं कर सकता था, वह दुकान में बेईमानी नहीं कर सकता था, इसलिए वह मंदिर में बैठ गया। मंदिर में बैठ जाना कोई पाजिटिव एक्ट नहीं है उसका, सिर्फ बचाव है, वह बच गया। और इसलिए ही साधु हार जाता है बुरे आदमी से। बुरा आदमी बहुत शक्तिशाली है। इसलिए हिटलर जीत जाते हैं, नेपोलियन जीत जाते हैं। उनकी दुनिया जीतती चली जाती है। और अच्छा आदमी बिल्कुल इंपोटेंट साबित होता है। वह कहता रहता है, कहता रहता है, कोई सुनता नहीं। जब हिटलर और नेपोलियन जैसे ताकत के लोग अच्छे आदमी बनते हैं, तब दुनिया बदलती है, नहीं तो नहीं बदलती, उतनी ताकत चाहिए।

मगर वह बदलने के लिए भी कोई उनके जीवन में कहीं कुछ ऐसी हैपनिंग्स हो जाती हैं। वह आता है, मौके पर ही आता है।

हां, जरूर हैपनिंग्स हैं, बिल्कुल ही हैपनिंग्स हैं। असल में आप अगर बुरे ही होते चले जाएं तो भी वह मौका आ जाएगा जहां से आप लौट पड़ेंगे। आप जाएं तो कहीं, हर चीज जाकर लौटती है, हर चीज की सीमा है। लेकिन जो सीमा तक नहीं जाते, वे कभी नहीं लौटते। इसलिए मैं कहता हूं कि अगर एक आदमी शराब पीता हो, तो मैं कहता हूं कि थोड़ा-बहुत मत पीते रहो, क्योंकि तुम कभी नहीं लौट सकोगे! शराब ही पीनी है तो फिर पी ही डालो और उस सीमा तक जो कि आखिरी तुम्हें मालूम पड़े। और निश्चित तुम वापस लौट आओगे। लौटने के लिए वर्तुल पूरा तो होना चाहिए। हां, हम कहीं से जाकर, किसी सीमा से जाकर लौट सकते हैं।

लौटने का एक वह भी तरीका है।

बीच से कभी कोई नहीं लौटता। और बीच से लौटा हुआ फिर वापस लौट सकता है। क्योंकि बीच से लौटा हमेशा अधूरे से लौटा, आधा अनुभव उसका बाकी रह गया है बुरे होने का अनुभव भी अगर पूरा हो जाए तो आदमी को अच्छे होने के सिवाय बचता क्या है! आप यह जान कर हैरान होंगे कि हम वही होने को कभी राजी नहीं हैं जो हम हैं, हम कुछ और होना चाहते हैं, निरंतर कुछ और होना चाहते हैं। और अच्छे का मतलब ही एक है--मेरी जो परिभाषा है अच्छे और बुरे की। मैं बुरे की परिभाषा उसे कहता हूं, वह स्थिति जिससे आप कभी राजी न हो सकें। आपको जिस स्थिति से निरंतर हटना ही पड़े, चाहे और बुरे में जाना पड़े; लेकिन जिससे आप राजी न हो सकें; जो सतत आपको भगाती रहे--कहीं और, कहीं और, कहीं और। और अच्छे को कहता हूं वह स्थिति जहां आप राजी हो सकें, जो भगाए न, और जो कहे--यहीं, यहीं, यहीं।
तो बुरे के साथ एक डायनामिज्म है, इसलिए बुरा कोई चिंतनीय नहीं है। बुरा चिंतनीय तब है--सिर्फ एक स्थिति में बुरा चिंतनीय है--कि उसके ऊपर लिबास अच्छे का हो और सेल्फ डिसेप्शन शुरू हो जाए। यानी वह खुद यह समझे कि मैं अच्छा हूं, और वह बुरा हो, तब खतरा शुरू होता है। नहीं तो कोई खतरा नहीं है। एक बुरे, सीधे निपट बुरे आदमी से कोई हर्जा नहीं है। और यह आदमी वापस लौट आएगा। यह खालिस आदमी है। यह बुरे से राजी नहीं हो सकेगा, वापस आना पड़ेगा, कनवर्शन होगा।

लेकिन अगर यह ऐसा आदमी है, जो है बुरा और अपने को अच्छा समझता है, तो कनवर्शन में बहुत वक्त लग जाएगा, जन्म भी लग सकते हैं। क्योंकि इसने एक ऐसा धोखा खड़ा कर लिया जिसमें असली स्थिति मुश्किल में पड़ गई है। यह है बुरा, जिसे बदलना चाहिए था; और यह मानता है अच्छा, और अच्छा बदलना चाहता नहीं। अब यह एक जिच में पड़ गया; जैसा है वह बदलना चाहिए और जैसा मानता है वह बिना बदले रहना चाहे।
इसलिए कई बार जो ऊपर से दिखाई पड़ता है कि यह फलां आदमी है बुरी स्थिति में और फलां आदमी है अच्छी स्थिति में। अक्सर उलटा होता है। आत्मवंचना की स्थिति में जो लोग हैं वे सबसे बुरी स्थिति में हैं। जो जानते हैं कि हम बुरे हैं, पहचानते हैं कि हम बुरे हैं, और किसी तरह के धोखे में नहीं हैं, उनकी स्थिति बड़ी अदभुत है, इनका लौटना आने के करीब हैं, ये लौट आएंगे। और ये उतनी ही गति से लौटेंगे जितनी गति से गए हैं, इनकी जड़ें जितनी नीची गई हैं उतना ही ऊपर इनका शिखर पहुंच जाने वाला है।
और यह भी मजे की बात है कि जो लोग नीचे कभी भी नहीं गए हैं, एक अर्थ में उनका जीवन अधूरा होगा, उसमें जिसको रिचनेस कहें, वह नहीं होगी।

ओशो, ऐसा भी हुआ है कि जो बच्चे गुरुकुल में भेजे गए, गुरुकुल से पास होने के बाद ऐसा उलटा फेरा मारा उन्होंने कि जितनी वे शक्तियों में बड़े हुए हैं, उसके बिल्कुल ही विपरीत वे जाते हैं।

हां, हां, अक्सर ही।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

एक समृद्धि है अनुभव की, वह सस्ते ढंग से अच्छे बन गए आदमी में नहीं होती; हो ही नहीं सकती। जो बुरे के बहुत गहरे अनुभव से गुजरा है, उसी के अनुभव में रिचनेस होती है। और वही आदमी जो बहुत बुरे से गुजरा है, भले के रस को और स्वाद को भी उपलब्ध होता है।
इसलिए जीवन की व्यवस्था इस दृष्टि से बड़ी अर्थपूर्ण है। यहां अंधेरे
से भी गुजरना इसीलिए है कि प्रकाश दिखाई पड़ सके; और यहां बुरे से भी गुजरना इसीलिए है कि किसी दिन भले का स्वाद आ सके; और यहां पदार्थ की यह लंबी यात्रा भी इसीलिए है कि परमात्मा का अनुभव हो सके।
ये दिखाई पड़ने वाली उलटी चीजें, उलटी बिल्कुल नहीं हैं, किसी एक तीसरी इकाई को दोनों तरफ से समृद्ध करती हैं। जैसे काले तख्ते पर कोई सफेद लकीर से लिखता है। अब सफेद तख्ते पर सफेद लकीर से भी लिखे तो हर्ज नहीं है। लिख तो जाएगा, पढ़ा नहीं जा सकेगा। और जो लिखा हुआ पढ़ा न जा सके, उसके लिखे होने का मतलब क्या है? लिखते हैं हम काले पर, और लिखते हैं सफेद से। वह काले पर उभर कर दिखता है।
तो इसीलिए बुरे का भी जीवन की व्यवस्था में उतना ही अर्थ और प्रयोजन
है जितना भले का; अशुभ का भी उतना ही महत्वपूर्ण अर्थ और प्रयोजन है जितना शुभ का। रावण व्यर्थ नहीं है, निष्प्रयोजन भी नहीं है। और रावण के बिना राम का कोई अर्थ भी नहीं है। और इसीलिए जो जानते हैं वे राम का गुणगान न करेंगे और रावण की निंदा न करेंगे। वे कहेंगे, राम और रावण एक ही कथा के दो हिस्से हैं, जिनके दोनों के बिना कथा होती नहीं, बनती नहीं। और मजा यह है कि राम को जो भी निखार मिल रहा है वह रावण के वजह से।
जैनों की कथाओं में रावण को भविष्य का तीर्थंकर कहा है। यह कथा बड़ी अर्थपूर्ण है, कि होने वाले भविष्य का तीर्थंकर। क्यों? क्योंकि वह बुरे की अंतिम सीमा तक पहुंच गया, अब भले का वर्तन शुरू होगा। फ्यूचर तीर्थंकर है वह! क्योंकि बुरे को जहां तक छुआ जा सकता है, छू लिया गया। अब लौटना शुरू होगा। काला तख्ता तैयार हो गया, अब सफेद से लिखा जाएगा।
इसलिए अगर कोई बहुत गौर से देखे तो कोई राम पहले है, कोई रावण थोड़ी देर बाद फिर राम है। समय का अंतराल है, स्थिति का अंतराल नहीं है। और इस अनंत समय में समय के अंतराल का मतलब क्या है कि दो दिन पहले कि दो दिन बाद! इस

अनंत समय में अर्थ क्या है कि आप दो दिन पहले पहुंचते हैं, मैं दो दिन बाद पहुंचता हूं! यह नासमझी है।
बुद्ध अपने पिछले जन्म में, जब बुद्ध नहीं थे, एक बुद्ध पुरुष के पास गए। दीपंकर नाम का एक बुद्ध पुरुष था, उसका दर्शन करने गए। तो उसके पैर छुए। दीपंकर खूब हंसने लगा। और पास भिक्षु इकट्ठे थे, वे पूछने लगे, क्यों हंसते हैं? तभी वह दीपंकर झुका और बुद्ध के चरण छुए।
तो बुद्ध तो बहुत घबरा गए! उन्होंने कहा, आप यह क्या करते हैं? मैं छुऊं आपके पैर, सो ठीक है। आप मेरे छुएंगे, यह क्या करते हैं?
तो दीपंकर ने कहा कि तुझे समय का पता नहीं। आज मैं बुद्ध हूं, कल तू हो जाएगा। और जो पूरे समय की धारा को जानते हैं वहां आगे और पीछे का कोई मतलब नहीं है, क्योंकि धारा अनंत है। धारा अगर सीमित हो तो आगे और पीछे होता है कोई। अगर न धारा का यहां कोई छोर है, न वहां कोई छोर है, तो कौन है आगे, कौन है पीछे? आज तू अज्ञानी है, कल तू ज्ञानी हो जाएगा, होना ही पड़ेगा; कोई अज्ञानी कभी भी ज्ञानी बने बिना कैसे रुक सकता है? वह जो अज्ञान की जो यात्रा चल रही है, वह ज्ञान की ही यात्रा का प्राथमिक चरण है।
बुरे की जो यात्रा चल रही है, वह भले का ही प्राथमिक चरण है। और इसलिए खतरा जो है वह बुरे की यात्रा पर जाने वाले के लिए नहीं है। खतरा जो है वह उन मीडियाकर्स के लिए है जो जाते बुरे की यात्रा पर हैं--जा भी नहीं पाते, क्योंकि हिम्मत नहीं जुटा पाते--जाते बुरे की यात्रा पर हैं, आकांक्षा भले की किए जाते हैं। तब जिच पैदा हो जाती है। जाते बुरे की यात्रा पर हैं, होते बुरे हैं, और मान बैठते हैं भला। तब मुश्किल खड़ी हो जाती है, तब दोहरा रोल हो जाता है।
इकहरा रोल बना रहे। रावण जाने कि रावण होना है। अब ठीक है, रावण हूं।
और जरा भी फिकर न करे राम-वाम की! क्या जरूरत है राम की फिकर होने की! अगर राम निकलने हैं तो रावण होने से ही निकलेंगे। और नहीं निकलने हैं तो बेमानी बात है, कोई होगा राम तो होगा, उससे मुझे क्या लेना-देना है! मैं जो हो सकता हूं वह मुझे होना है। और अगर इतना बल और हिम्मत हम हर व्यक्ति को दे सकें कि जो उसे होना है वही उसे होना है, कोई की नकल नहीं, कोई की कापी नहीं, किसी का अनुकरण नहीं। बुरा होना है, तो बुरा होना है वह भी आथेंटिक है। बुरे होने में भी एक आथेंटिसिटी है न! भला ही तो आथेंटिक नहीं होता, बुरा भी आथेंटिक होता है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, यह अलग ही बात है, बुरे होने की आथेंटिसिटी, कि अगर मैं झूठ बोलता हूं तो फिर मैं सच बोलूंगा ही नहीं। आथेंटिक झूठ बोलने वाले का मतलब यह होता है कि यह कस्त रहा कि अब सच मुझसे नहीं होगा। और सच बोलूंगा तो इसको बेईमानी समझूंगा, मतलब मैं झूठ बोलने वाला हूं।
एक फकीर हुआ मुल्ला नसरुद्दीन। जिस गांव में वह था, उस गांव के सम्राट
को यह ख्याल पैदा हुआ कि राज्य में झूठ बोलना बंद करवा दूं! तो मुल्ला को बुलाया, क्योंकि वह ज्ञानी था। गांव के लोगों ने कहा, मुल्ला से पहले पूछो! क्योंकि ऐसा कभी सुना नहीं कि झूठ बंद हो गया हो। और कानून से कभी झूठ बंद हुआ हो, ऐसा कभी सुना नहीं। और ऐसा कभी जाना नहीं जगत में कि ऐसा कोई वक्त आया हो एक क्षण को भी कि झूठ न रहा हो। फिर भी मुल्ला से पूछो!
वह मुल्ला आया। और सम्राट ने कहा, मैंने तो तय किया है कि झूठ को उखाड़ फेंकूंगा! और साधारण तय नहीं किया है, झूठ बोला कोई आदमी कि पकड़ा और मैंने उसको फांसी पर लटकाया--उसी वक्त। कुछ निर्दोष भी मरेंगे, मुझे फिकर नहीं है। लेकिन रोज झूठ बोलने वाले दरवाजे पर लटके हुए मिलेंगे। और कल सुबह से तारीख शुरू होती है नये वर्ष की, कल सुबह ही दरवाजे पर खोजबीन की जाएगी कि कोई झूठ बोलता फंस जाए तो वहीं उसे लटका देना है। तुम क्या कहते हो मुल्ला? इसको रोक दें झूठ बोलने को? मुल्ला ने कहा, कल दरवाजे पर मिलेंगे। राजा ने कहा, हम यह पूछते हैं तुमसे! उसने कहा, कल दरवाजे पर मिलेंगे मैं पहला आदमी रहूंगा। दरवाजे पर, आप पहले ही मौजूद हो जाएं। दरवाजा खुलेगा और

मैं भीतर प्रविष्ट हो जाऊंगा। पर सम्राट ने कहा, तुम्हारा मतलब क्या है? उसने कहा, वह दरवाजे पर ही बात करेंगे।
सुबह दरवाजे पर सम्राट खड़ा है। दरवाजा खुला, मुल्ला अंदर घुसा, अपने गधे पर सवार है। सम्राट ने पूछा, मुल्ला, कहां से चले आ रहे हो, कहां जा रहे हो? मुल्ला ने कहा, फांसी पर जा रहा हूं। सम्राट ने कहा, क्या मतलब? मुल्ला ने कहा, फांसी पर लटकने को जा रहा हूं। सम्राट ने कहा, सरासर झूठ बोल रहे हो, फांसी पर लटकवा देंगे! मुल्ला ने कहा, तो लटकवा दो, वही हम कह रहे हैं कि हम फांसी पर लटकने जा रहे हैं। और अगर तुमने लटकाया, तो हम जो बोलते थे वह सच हो जाएगा; अगर तुमने नहीं लटकाया, तो झूठ बच कर निकला जा रहा है। क्या करते हो? झूठ जाता है अब। राजा ने कहा, यह तो बड़ी मुश्किल में डाल दिया। तो मुल्ला ने कहा, छोड़ो तुम यह बकवास। यह तय करना ही मुश्किल है कि क्या सच है और क्या झूठ है। तो कौन फैसला करे? दूसरा तो तय कर ही नहीं सकता, उस मुल्ला ने कहा, खुद ही आदमी तय कर ले तो काफी है।
और आदमी अगर तय कर ले और आथेंटिक हो--झूठ पर हो जाए तो कोई फिकर नहीं--
और मैं मानता हूं कि उसकी आत्मा पैदा हो जाएगी, अगर झूठ पर भी आथेंटिक हो जाए। आथेंटिसिटी, प्रामाणिकता लाती है बल। गति लाती है। और एक आदमी एक दिशा में चला जाए पूरी तरह, तो यह मेरा कहना है कि बुरे का मतलब यह है कि जिस पर आप ठहर नहीं सकते, ठहर ही नहीं सकते। वह ऐसा जैसे जलते तवे पर कोई खड़ा हो जाए। वह ठहर ही नहीं सकता बुरे पर, उसे बुरे को तो छोड़ना ही पड़ेगा, छोड़ना ही पड़ेगा। वह और बुरे को पकड़ता जाए और छोड़ता चला जाए, अंततः उसे बुरे को छोड़ना पड़ेगा। और इस बुरे की यात्रा से गुजर कर जिस दिन वह भले की तरफ आना शुरू होगा उस दिन जो उसकी समृद्धि होगी अनुभव की, वह जो बुरे की रेखा खिंच गई है उस पर जो सफेद की लिखावट आएगी, वह चमक और है।
और इसलिए वह बोथले साधुओं में कभी नहीं होती, जिन्होंने बुरे को नहीं जाना और जो किताब पढ़ कर भले हो गए हैं उनमें कभी कोई चमक नहीं होती, चमक हो ही नहीं सकती। वह चमक बुरे के अनुभव से आती है। वह भले की लिखावट से आती है, लेकिन आती बुरे के अनुभव से है। और यही कठिनाई है कि बेईमान दुनिया, में बुरा आदमी दुनिया में ज्यादा चमकदार है। और साधु बिल्कुल बोथले, बोगस। क्योंकि साधु मीडियाकर है। जो बुरा करने की हिम्मत नहीं जुटा पाया वह साधु दिखाई पड़ रहा है। और जो बुरा करने की हिम्मत नहीं जुटा पाया उससे भला तो कभी हो सकता नहीं, बस वह खड़ा रह सकता है कि बुरा नहीं करता। तो उसकी निगेटिव एक स्थिति है कि वह बुरा नहीं करता, वह चोरी नहीं करता, झूठ नहीं बोलता।
एक फकीर था गुरजिएफ। तो लोग उसके पास आते, साधु आते, फकीर आते, और वह पूछता कि तुम करते क्या हो? तो एक बहुत बड़ा साधु उससे मिलने आया है और वह उससे पूछता है, तुम करते क्या हो? वह कहता है, मैं झूठ नहीं बोलता। उसने कहा, मैं समझा कि तुम झूठ नहीं बोलते, लेकिन यह न करना हुआ। यह न करना हुआ! मैं पूछता हूं, तुम करते क्या हो? वह कहता है, मैं मांसाहार नहीं करता, मैं हिंसा नहीं करता। यह तो न करना हुआ, मैं पूछता हूं तुम करते क्या हो? उसने कहा, मैं चोरी नहीं करता, किसी को दुख नहीं पहुंचाता। तो गुरजिएफ कहता है, इस आदमी को बाहर कर दो यहां से! यह आदमी कहता है कि हम यह नहीं करते, यह नहीं करते। सवाल यह है ही नहीं कि तुम क्या नहीं करते हो। क्योंकि न करने से कहीं कोई आत्मा पैदा हुई है। तुम करते क्या हो? इससे तो बेहतर है कि तुम चोरी करो, क्योंकि वह करना तो होगा। गुरजिएफ उससे कहता है, तू चोरी कर! करना तो होगा, एक्शन तो होगा, उससे बीइंग तो पैदा होगी।
मैं तो ऐसा सोचता हूं।

मगर क्या अच्छा है, क्या बुरा है, क्या इंसान खुद ही जज करेगा?

इसके सिवाय कोई और मार्ग नहीं है। और जज करने की कोई बहुत कठिनाई नहीं है। एक तो यह बात कि जिस पर आप ठहर न सकें। क्योंकि बच्चे से ज्यादा बच्चे हो तुम। शरीर की एक उम्र होती है और आत्मा की उम्र उनकी बिल्कुल भी नहीं होती। और तब वे बच्चों जैसे काम करते रहते हैं। अब एक बूढ़ा आदमी रुपये

इकट्ठे कर रहा है। इसको बच्चा समझिए, क्योंकि यह काम बच्चे जैसा कर रहा है। यह काम बिल्कुल बच्चों जैसा कर रहा है।
यह कर क्या रहा है? इधर मौत सामने खड़ी है और वह आदमी तिजोरी पर ताले लगा रहा है। अब यह बिल्कुल बच्चा है, इसकी कोई स्प्रिचुअल एज नहीं है किसी तरह की। यह गुड्डा-गुड्डियों से खेलने वाला है। वह दूसरे तरह के गुड्डा- गुड्डियों से खेल रहा है। अब छोटे बच्चे हैं वे गुड्डा-गुड्डियों से खेल रहे हैं। और एक आदमी बड़ा है और रामचंद्र जी की बारात लिए चला जा रहा है! सब गुड्डा-गुड्डी रखे हुए है और जुलूस निकाल रहा है और शोरगुल मचा रहा है। अब यह बच्चा है। इसकी बुद्धि गुड्डा-गुड्डियों से ज्यादा आगे नहीं गई। इसने गुड्डा-गुड्डी दूसरे बनाए, अच्छे नाम रखे हैं, बड़े नाम रखे हैं। लेकिन इसकी अकल बहुत नहीं है, इसकी मेंटल एज नहीं है कोई।
और तब कई दफा... इसलिए कई तरह की उम्रें हमारे भीतर हैं, कई तरह की उम्रें हमारे भीतर हैं। और मेरी तो तलाश और मेरी तो अपील उस उम्र से है, वह जो भीतरी है। और यह जो आप पूछते थे कि बुरे को पहचानें कैसे? तो दो बातें हैं। एक तो जिस पर आप रुक न सकें, जिस जगह पर कभी भी खड़े न हो सकें, उस जगह को बुरी मानें। यानी मेरा कहना यह है, जो भला है, जो आनंदपूर्ण है, वहां रुकने का मन होता है; वहां मन होता है कि यहां ठहरें, यहीं ठहर जाएं; वहां मालूम होता है कि विराम, विश्राम; वहां मालूम होता है कि आ गई जगह। बुरी जगह का मतलब यह है कि आप वहां पहुंच तो जाते हैं, लेकिन पहुंचते से ही मन कहता है कि चलो, आगे चलो। एक आदमी दस लाख रुपये इकट्ठे करता है और मन कहता है कि और करो, और करो, और करो। वह करता चला जाता है और मन कहता है, और करो।
एक सूफी फकीर था इजिप्त में जुन्नून। और जो सम्राट था इजिप्त का वह उसके पास कभी-कभी आता था। बहुत दिन से फकीर नहीं आया था राजधानी में, तो सम्राट खुद ही बिना खबर किए उसके झोपड़े पर गया। उसकी औरत बैठी है, बगिया में काम कर रही है, फकीर कहीं पीछे काम करने गया है खेत पर। उसने सम्राट को आया देख कर उससे कहा कि आप बैठें, मैं उसे बुला लाती हूं। वहीं जहां मेड़ पर, जहां वृक्ष पर वह काम कर रही थी, उसने कहा, आप बैठ जाएं। तो सम्राट कहने लगा, मैं यहां टहलता हूं, तू बुला ला। उसकी औरत ने कहा कि कब तक आप टहलते रहेंगे, देर लगेगी, दूर वह है, चलें आप अंदर झोपड़े में बैठ जाएं। उसने सोचाः शायद मेड़ पर बैठना सम्राट को ठीक नहीं पड़ेगा। उसे भीतर ले गई। उसने चटाई डाल दी और कहा, आप इस पर बैठ जाएं। सम्राट फिर वहीं टहलने लगा दहलान में। उसने कहा, तू बुला ला, मैं यहीं टहलता हूं।
औरत को गुस्सा आया। उसने अपने पति को लौटते वक्त रास्ते में कहा कि कैसा आदमी है यह सम्राट! उससे मैंने दो-चार बार कहा, बैठ जाओ! दरख्त के नीचे कहा, वहां नहीं बैठा। अंदर लाई, दरी बिछा दी, वहां नहीं बैठता। कैसा आदमी है!
फकीर कहने लगा, तू नहीं जानती, सम्राट है वह, सिंहासन से नीचे नहीं बैठेगा। सिंहासन पर बिठाएगी, फौरन बैठ जाएगा। तो जहां बैठने को तूने जो जगह बताईं, वहां नहीं बैठेगा। और उस औरत से वह कहने लगा, तू यह भी ध्यान रखना, आदमी का मन भी ऐसा ही है। सम्राट है, जब तक सिंहासन न मिल जाए नहीं बैठेगा। तुम बताओ--इस पर बैठ जाओ! वह जाएगा और कहेगा कि नहीं बैठते, और कुछ चाहिए, और कुछ चाहिए, और कुछ चाहिए।
बुरा मैं उसे कहता हूं, जहां मन कहे कि और आगे। भला मैं उसे कहता हूं, जहां मन कहे कि बस यहीं। यानी माइंड की जो, जो-जो हम कर रहे हैं, जिस चीज पर मन कहता है कि बस यहां मिल गई मंजिल, यहां! मन कहे रुको यहां। ऐसे क्षण हैं जिनमें आप मर जाना चाहें, कहें कि बस। ऐसे क्षण हैं जिनमें आप मर जाना चाहें, कि कहें बस! अब और क्या? जाना, और इतना ऊंचा जाना कि बस यहीं! और ऐसे क्षण हैं जिनमें आप अनंतकाल तक भागते रहें और ठहरना न चाहें। तो एक तो मैं पहचान कहता हूं कि जहां मन ठहरना न चाहे, जहां मन कहे कि चलो, और पहुंचते ही से कहे कि फिर चलो।
दूसरी बात यह है कि आमतौर से कहा जाता है, बुरा वह है जो दूसरे को दुख दे। मैं ऐसा नहीं कहता। मैं कहता हूं, दूसरे के दुख का तो आपको पता ही नहीं चल सकता। बुरा वह है जो आपको दुख दे। और ऐसा नहीं कि अगले जन्म में दे। इसको मैं बेईमानी का हिसाब कहता हूं। क्योंकि अगले जन्म में कैसे हो सकता

है? अभी आग में हाथ डालूंगा तो अभी जल जाऊंगा; अगले जन्म में थोड़े ही जलूंगा। बुरा वह है जो अभी इसी वक्त दुख दे। और बुरा बहुत दुख देता है। और भला वह है जो इसी वक्त सुख दे, नगद, आगे नहीं। और भला बहुत सुख देता है। इतना छोटा सा भला कि कोई बच्चा रास्ते में गिर पड़ा और आपने उठा कर उसे किनारे खड़ा कर दिया, और अपने रास्ते पर चले गए हैं आप--और किस ऊंचाई पर पहुंच गए हैं, कैसी छलांग लग गई है! और एक बीमार है और आपने एक फूल तोड़ कर उसके हाथ में दे दिया, और आप लौट पड़े--आप दूसरे आदमी हैं! जो फूल देने गया था वह नहीं है अब, वह दूसरा ही सम्राट लौट रहा है।
और एक छोटा सा एक्ट जिसमें कोई मतलब नहीं है। कई बार आप सिर्फ मुस्कुरा दिए हैं एक आदमी को देख कर, और आप कुछ और हो गए हैं। और आप जरा जोर से किसी पर आंख करके देखें, और एक गाली देकर देखें, और एक चोट करके देखें, और आप पाएंगे कि आप नीचे ऐसे गिर गए हैं जैसे कोई पहाड़ से गिरा दिए गए हों। दूसरे का सवाल ही नहीं है। यह भी हो सकता है, आप ऐसा बुरा करें जिससे दूसरे को फायदा हो जाए। लेकिन ऐसा बुरा आप नहीं कर सकते, जिससे आपको फायदा हो जाए। क्योंकि दूसरा बहुत दूर है आपसे, बहुत फासले पर है।
तो दो बातें मैं मानता हूं बुरे की डेफिनीशन मेंः एक तो जहां आप ठहर न सकें, मन कहे, चलो, बस चलो; और दूसरा, जहां मन दुख पाए। अगर इन दो बातों की थोड़ी जांच चलती रहे तो बहुत कठिनाई नहीं है कि हम पहचान लें कि कहां बुरा है। और इससे ठीक उलटा भला है, जहां मन रुकने का होने लगे कि यहां ठहर जाओ, अब कहां और खोजना है!

कभी-कभी मन धोखा देता है, कहता है कि यहां ठहर जाओ। गलत चीज पर भी ठहरना चाहता है और ठहर जाता है। कहता है कि यह सुख है।

हां-हां, मन कहेगा, मन बिल्कुल कहेगा। मन बिल्कुल कहेगा, लेकिन जब तक नहीं मिला तभी तक। वही मैं दुख की परिभाषा कर रहा हूं, वही बुरे की परिभाषा कर रहा हूं। मन कहेगा कि यहां सुख है, जहां नहीं मिला है। जैसे ही मिला और मन कहेगा, मामला खत्म हुआ, आगे चलो। मन कहेगा, यह औरत मिल जाए तो बहुत सुख होगा। लेकिन मिली नहीं है औरत। यह मिल जाए, और मिलते ही से मन कहेगा, वह जो पड़ोस में दूसरी औरत है, वह मिल जाए।
बायरन की शादी हुई। बायरन ने कोई साठ औरतों से प्रेम किया और शादी नहीं की। और आखिरी एक औरत ने उसको मजबूर कर दिया शादी के लिए, तो उसे शादी करनी पड़ी। पर आदमी बहुत, जिसको मैं आथेंटिक बुरा आदमी कहता हूं, उन लोगों में से था, जिसके बुरे होने में भी एक गौरव है, एक शान है। अच्छे आदमी होते हैं कई ऐसे बोगस और लीच, कि गोबर-गणेश, उनमें कुछ अच्छा नहीं होता। और कभी बुरा आदमी इतना शानदार होता है कि उसकी चमक खुशी भर देती है।
बायरन उन बढ़िया बुरे लोगों में से था। वह उस औरत का हाथ पकड़ कर चर्च से नीचे उतर रहा है। घंटियां बज रही हैं अभी चर्च की, शादी हुई है, और वह सीढ़ियां उतर रहा है, मेहमान विदा हो रहे हैं। और सड़क पर एक औरत एक आदमी का हाथ पकड़े जा रही है। और बायरन अपनी औरत से बोला, बस। उसकी औरत ने कहा, क्या हुआ? उसने कहा, सब खत्म! उसने कहा, मतलब तुम्हारा? गाड़ी में आकर औरत को बिठाया और उसने कहा, मैं तुमसे कहता हूं, एक क्षण को तुम नहीं थीं, वह औरत सब हो गई। और कल तक मैं सोच रहा था कि तुम मिल जाओगी तो क्या होगा, कितनी खुशी होगी! और अभी चर्च से विदा हो रहा हूं शादी करके, सीढ़ियां नहीं उतरा हूं, अभी घर नहीं पहुंचा हूं, लेकिन तुम मेरी मुट्ठी में हो और बेकार हो गईं! हाथ तुम्हारा मेरे हाथ में है और बेकार हो गया! अब तुम मेरी हो और बात बेकार हो गई!
मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न?

पा लिया!

पा लिया, मामला खत्म हो गया।
तो मन तब तक कहेगा जरूर जब तक नहीं पा लिया है कि यह पा लो तो बहुत सुख है। और पाते से ही मन कहेगा कि वहां है सुख! और मन हमेशा कहेगा, जहां आप

नहीं हो वहां है सुख। यही तो मैं कह रहा हूं, यही तो उसकी दौड़ है। और जहां आप पहुंचे वहीं वह कहेगा, यहां क्या रखा हुआ है? बेकार आ गए, मेहनत हो गई, और आगे बढ़ो, यहां कुछ भी नहीं था। भूल हो गई, चूक हो गई।
लेकिन मन धोखा कभी नहीं देता। यह धोखा नहीं है, यह तो सीधा-साफ मामला है। यह इसमें धोखा क्या है? इसमें धोखा कुछ नहीं है। मन यह कहता है कि यहां सुख नहीं है। वहां हो सकता है, क्योंकि वहां हम नहीं हैं। वहां चलो तो पता चलेगा।

अपना अनुभव चाहिए।

हां! और अनुभव का मतलब यह है कि जब आप हजार जगह से गुजर चुके और आपने हर जगह पाया कि जहां पहुंचे, पहुंचने के पहले लगा कि सुख है, पहुंचते ही से लगा कि सुख नहीं है, लगा कि दुख है। और जैसे ही पहुंचे कि मन ने कहा, आगे बढ़ो; कुछ भी नहीं है यहां।
मजबूरियां हैं कि आप नहीं बढ़ पाते तो बहुत दुख होता है। मजबूरियां हैं सिर्फ जिनसे आप नहीं बढ़ पाते। नहीं तो मन तो रोज बढ़ाए।
अभी आप कहते हैं कि आठ तलाक करो। आठ तलाक से काम नहीं चलेगा। एक जिंदगी में; एक जिंदगी तो बहुत बड़ी है, आठ तलाक से काम नहीं चलेगा; अगर तलाक को बिल्कुल ही नियमित कर दो--मन के अनुसार--तो रोज भी एक हो सकता है। और वह भी कम पड़ सकता है। कम पड़ सकता है, क्योंकि सवाल यह नहीं है, सवाल यह नहीं है कि कितना! मजबूरियां हैं बहुत तरह की जिनकी वजह से आप रुकते हैं और दुख झेलते हैं।
मैं यह कहता हूं, मन जहां से कहता है, भागो-भागो, और आगे, और आगे, और जहां-जहां पहुंचते हैं वहीं-वहीं दुख देता है, वहां बुरा है। और जहां मन कहता है, यहां, वहां नहीं। वह देर तो ठीक है, यहां! यहां आनंद है, जहां मैं हूं! तब क्या धोखे की बात है? वहां धोखा हो सकता है, क्योंकि वहां मैं नहीं हूं, जब पहुंचूंगा तब पता चलेगा। यहां! इस वक्त!
अगर यह हमें साफ होने लगे डिस्टिंक्शन तो इतना... बारीक है, लेकिन अगर थोड़ा हम प्रयोग करते रहें और दिन के चौबीस घंटे में जांच-पड़ताल थोड़ी सी भीतर जारी रखें कि यह जो मैंने एक्ट किया, यह मुझे सुख दिया या दुख दिया। मैं यह जो पहुंचा जिस जगह मन की, यहां मैं रुकना चाहता था कि हट जाना चाहता था। ऐसी एक छोटी परख चलती रहे, तो आपको दो-चार महीने में इतना साफ दिखाई पड़ेगा, इतना साफ कि घटना घटेगी और आप जानते हैं कि बुरी घट रही है कि भली घट रही है। यह अवेयरनेस आ जाए तो जिंदगी बदल जाती है।
मैं यह नहीं कहता कि बुरे को छोड़ो, मैं यह कहता ही नहीं। मैं यह कहता नहीं कि अच्छे को करो, यह मैं कहता ही नहीं। मैं यह कहता हूं कि तुम सिर्फ पहचानो कि क्या अच्छा है और क्या बुरा। और बुरा छूटने लगेगा और अच्छा होने लगेगा। तो वह छोड़ने-वोड़ने का सवाल नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

रूप को तो बचाना बहुत आसान है। उसकी आत्मा को चलाना बहुत मुश्किल है। रूप को तो बचाना बिल्कुल आसान है कि ब्रह्मचारी चोटियां बढ़ाए हुए बैठ जाएं, चद्दर-वद्दर लपेट लें, उसी ढंग से रहें, यह सब हो सकता है। लेकिन आत्मा को बचाना बहुत मुश्किल है। क्योंकि असल में कालात्मा बदल गई, टाइम स्पीड बदल गई, टाइम स्पीड बदल गई। और ध्यान रखिए चमन भाई, अगर उस पुरानी आत्मा को बचाना हो, तो रूप को बिल्कुल नहीं बचाया जा सकता, तो ही आप उस आत्मा को बचा सकते हैं। अगर उस आत्मा को बचाना है तो बिल्कुल ही नये रूप में बच सकती है वह। और मुश्किल यही हो गई है कि परंपरावादी जो चित्त है वह पुराने रूप पर उसका आग्रह भारी है, भारी आग्रह है उसका। वह मेकअप है पूरा का पूरा, उसका कोई मूल्य नहीं है।

तो उसको तोड़ने की वैज्ञानिक प्रक्रिया क्या हो सकती है?

हां, हमारा तो धंधा ही यही है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

कई बार ऐसा होता है कि पुराने रूप को पहचानना तो बिल्कुल सरल है, क्योंकि अंधा भी पहचान सकता है, और इसलिए हम रूप को बचा लेते हैं। और रूप को बचाने में ही आत्मा मर जाती है।

डिसेप्शन हो जाता है।

हां, डिसेप्शन पूरा हो जाता है। क्योंकि रूप बिल्कुल जड़ चीज है, उसे बचा लेने में कोई कठिनाई नहीं है। बिल्कुल जड़ है, उसमें कोई कठिनाई नहीं है। मगर जो आत्मा थी वह बहुत लिक्विड है, बहुत तरल है। उसको आप जैसे ही ठोंक-पीट कर बांधे कि वह गई। उसको हर युग में अपना नया रूप लेना पड़ता है, हर युग में नया रूप लेना पड़ता है।

नये रूप की तो कोशिश हुई, मगर... हां, गांधी ने एक ओर मेहनत की थोड़ी सी, मगर वही पुराना ढंग पकड़ कर। पैंतीस साल में यह हालत फिर आ गई।

नहीं, कुछ नहीं किया, कुछ किया ही नहीं, कुछ नहीं किया।

अब आप कीजिए।

हां, मैं कर रहा हूं न!

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मजा यह है कि मनुष्य का स्वभाव जैसी कोई चीज ही नहीं है। आप जैसा बनाते हैं वैसा बन जाता है। मनुष्य-स्वभाव जैसी चीज ही नहीं है, एब्सोल्यूटली नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न, न, न, सब कुछ आता है। लेकिन मनुष्य-स्वभाव जैसा कुछ भी नहीं है। यही
तो फ्रीडम है मनुष्य की; वह जैसा बनाना चाहे वैसा बना सकता है। और जो हमको दिखता है मनुष्य-स्वभाव, वह मनुष्य-स्वभाव नहीं है; वह लंबे संस्कारों का परिणाम है केवल। इसीलिए तो आप दुनिया में पच्चीस तरह के मनुष्य देखते हैं।
मनुष्य-स्वभाव जैसी कोई चीज नहीं है। आप मेरा मतलब समझे न? मेरा मतलब
यह है--जैसे कुत्ते का एक स्वभाव है, बिल्ली का एक स्वभाव है, इस अर्थ में मनुष्य का कोई स्वभाव नहीं है। और यही फर्क पड़ गया है एवोल्यूशन में कि पहली दफा एक ऐसा प्राणी पैदा हुआ है जिसका कोई ठोस स्वभाव नहीं है और वह जैसा होना चाहे वैसा हो सकता है।
जैसे हम, एक उदाहरण के लिए, किसी कुत्ते को हम यह नहीं कह सकते कि तुम आधे कुत्ते हो। लेकिन एक आदमी को हम कह सकते हैं कि तुम बिल्कुल अधूरे आदमी हो। आप कुत्ते को क्यों नहीं कह सकते कि आधे कुत्ते हो? सब कुत्ते बराबर कुत्ते हैं। हर कुत्ता पूरा कुत्ता है। कुत्ते होने में कोई रंच भर आप फर्क नहीं कर सकते कि यह कुत्ता कुछ कम कुत्ता है, वह कुत्ता कुछ ज्यादा कुत्ता है। क्यों? कुत्ते का स्वभाव है फिक्स, उसे कुछ बनाना-वनाना नहीं है, वह बना हुआ पैदा होता है। और आप जो हैं, आप बिल्कुल अनबने पैदा होते हैं और सब आपको बनाना है। यही फ्रीडम है और यही घबराने वाली है। और इसलिए आप कुछ भी बन सकते हैं, कोई भी रूप ले सकते हैं। और यह रूप भी कभी ऐसा नहीं है कि आप इसको एक क्षण में न तोड़ दें। एक क्षण में तोड़ भी सकते हैं।

इसे अगर गौर से देखें तो यह जो ह्यूमन फ्रीडम है, यही अदभुत बात है। आप ज्योतिष पर काम करते हैं, यह बड़े मजे की बात है, सौ में निन्यानबे मौकों पर ज्योतिष काम करेगा; एक मौके पर भर काम नहीं करेगा। और जिस मौके पर काम नहीं करता, वहीं आप हो; बाकी मामलों में आप मशीन हो, बाकी मामलों में आप मशीन हो। जहां-जहां ज्योतिष काम करता है, वहां आप हो ही नहीं! आदमी नहीं हो आप वहां! इसका मतलब हुआ कि प्रेडिक्टेबल हो। प्रेडिक्टेबल का मतलब यह है कि आप बंधे हुए हो, कहा जा सकता है कि कल आप यह करोगे।
बुद्ध के जीवन में एक बहुत बढ़िया घटना आती है कि बुद्ध के पैरों में
वे चिह्न हैं, जिनको ज्योतिषी कहेंगे कि उनको चक्रवर्ती सम्राट होना चाहिए। और वे हो गए भिखारी! सब गड़बड़ हो गया ज्योतिष! और वे निकले हैं एक नदी के किनारे से, रेत पर उनके पैर का चिह्न है।... बारह साल बेकार हो गए। मगर इस आदमी को खोज तो लें, यह आदमी कहां है?
तो वह उन पैरों को खोजता हुआ उस झाड़ के पास पहुंचा जहां बुद्ध बैठे हुए थे। देख कर मुश्किल में पड़ गया! आदमी तो भिखारी है, लेकिन आदमी चक्रवर्ती है। आदमी का चेहरा तो लगता है कि वह कोई सम्राट ही है, और आदमी तो भिखारी है! फटे कपड़े पहने हुए है, हाथ में भिक्षा-पात्र रखे हुए है। जाकर बुद्ध के पास वह बैठ गया और कहा कि मुझे बिगूचन में डाल दिया है। बारह साल मेहनत करके लौटा हूं। ये सब शास्त्र नदी में फेंक दूं? पैरों में चिह्न हैं आपके चक्रवर्ती होने के और आप भिखारी हैं, भिक्षा-पात्र लिए बैठे हैं!
बुद्ध ने कहा कि तुम्हारा ज्योतिष ठीक कहता है, लेकिन मैं ज्योतिष के बाहर हो गया हूं, मैं आदमी हो गया हूं। ज्योतिष तुम्हारा अब काम नहीं करेगा। अगर मैं कुछ न करता तो मैं चक्रवर्ती हो ही जाता; वह एक धारा थी अंधी, जिसमें जो हो रहा था वह होता। मैंने कुछ गड़बड़ कर दी। अब तुम्हारा ज्योतिष मुझ पर काम नहीं करेगा। अब तुम्हारा कोई नक्षत्र मेरे संबंध में कुछ भी नहीं कहेगा। अब मैं बाहर हो गया, अब मैं आदमी हो गया हूं।
मतलब समझ रहे हैं न? जब फ्रीडम--अब बुद्ध अनप्रेडिक्टेबल हो गए, अब आप प्रेडिक्ट नहीं कर सकते कि यह आदमी क्या कहेगा, क्या करेगा। यह कल क्या होगा, यह अभी घड़ी भर बाद क्या होगा, कुछ नहीं कहा जा सकता।

गणना के बाहर हो गया।

हां, यह गणना के बाहर हो गया, यह गणना के बाहर हो गया।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

तो यह जो हमारी चेष्टा यही होनी चाहिए अंततः कि हम निःस्वभाव में लीन
हो जाएं। वहां जहां कि कोई स्वभाव नहीं है--परिपूर्ण स्वतंत्रता है। स्वभाव परतंत्रता है। यानी वह कल हम जैसे थे, वैसे ही फिर कल होने की मजबूरी है। इसका मतलब तो यह होता है न कि मेरा स्वभाव है क्रोध करना। अगर मैं यह कहूं तो इसका मतलब यह है कि मैं मजबूर हूं। आज आपने गाली दी थी, मैंने क्रोध किया; कल भी आप गाली दोगे, मैं वैसे ही क्रोध करूंगा--जैसे बटन दबाने से आज पंखा चला था, कल भी चलेगा। तो मैं आदमी कहां रहा!
इस बात की पासिबिलिटी है कि आज आपने गाली दी और मैं क्रोधित हुआ और कल
आप गाली देने आएं और मैं गले लगा लूं। यह जो मामला है न, इसकी संभावना है। और इसकी जो संभावना है, वह इस बात की सूचना है कि मनुष्य के पास कोई यंत्रवत स्वभाव नहीं है। यही उसकी स्वतंत्रता है। और ऐसी स्थिति बनती चली जाए कि हम प्रतिपल ऐसे जीएं कि पिछले पल से हमारा आने वाला पल बंधा हुआ न हो, यह मुक्त होने का अर्थ है, जीवन-मुक्ति का जो अर्थ होगा। जीवन-मुक्ति का जो अर्थ होगा वह यह कि कल जो बीत गया उससे मेरा यह क्षण बंधा हुआ नहीं है। मैं जो कह रहा हूं, वह एक डिसकंटिन्युअस मामला है, वह कंटिन्युटी के बाहर है। वह कंटिन्युटी जो कल तक थी, वह मैं नहीं हूं। और कल मैं जो होऊंगा, वह कुछ और होगा, वह जो आज नहीं है। ऐसी जो चित्त-दशा है वहां परम आनंद है, क्योंकि वहां परम स्वतंत्रता है। और नहीं तो परतंत्रता है।

एक आदमी कहता है कि मैं सिगरेट पीने को मजबूर हूं, क्योंकि मेरी आदत है। आदत का मतलब कि तुम आदमी नहीं हो; आदत का मतलब तुम एक मशीन हो। तुम वक्त पर पुकारते हो कि बस बारह बज गए, अब सिगरेट चाहिए! तो तुमको सिगरेट डालनी पड़ती है। यह डालना और निकालना और बारह बजे यह रोज होना, यह बिल्कुल मैकेनिकल एक्ट है।

भोजन पर भी यही बात लागू होती है क्या?

हां, अगर बहुत गौर से देखें, बहुत गौर से देखें, तो हम जितने भी लोग भोजन करते हैं, शायद ही कभी हममें से कोई उस वक्त भोजन करता हो जब भूख लगती है। हम सब भोजन करते हैं आदतवश, भूखवश नहीं। और यह बिल्कुल दूसरा मामला है, भूख बिल्कुल दूसरा मामला है और आदत बिल्कुल दूसरा मामला है। ग्यारह बज गए, और रोज ग्यारह बजे भोजन करते हैं आप, तो ठीक ग्यारह बजे पेट कहता है कि वक्त हो गया, खाना खाओ! और यह भी हो सकता है, घड़ी किसी ने एक घंटा आगे-पीछे कर दी हो और आपको पता न हो, अभी दस ही बजे हैं, लेकिन आपने देखा कि ग्यारह बज गए और आपको भूख लग गई, वक्त हो गया, चल कर खाना खा आए। आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न? यह बिल्कुल मेंटल एसोसिएशन है ग्यारह बजे का; भूख-वूख नहीं लगी है। और अगर हम ठीक भूख पर खाएं, यानी जब भूख लगे तब की हम प्रतीक्षा करें,
तो खाने में जो स्वाद होगा उसका हमें पता ही नहीं है। क्योंकि ग्यारह बजे खा लेना सिर्फ भोजन डालना है। क्योंकि शरीर की जिसको जरूरत कहें वह तो अभी पैदा नहीं हुई, शरीर ने मांगा ही नहीं था। अब यह मजबूरी में लार भी छोड़ेगा शरीर, मजबूरी में पेट में जगह भी देगा, आप डाल रहे हैं, आप डिब्बे की तरह व्यवहार कर रहे हैं। आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न?
और इसीलिए दुनिया में भोजन तो बहुत बढ़ गया है, लेकिन भोजन का अर्थ बिल्कुल खो गया है। मुश्किल से कोई आदमी भोजन कर रहा है। मुश्किल से कोई आदमी भोजन कर रहा है, उसे अनुभव कर रहा है। और तब परिणाम यह होता है कि फिर हमें इतर व्यवस्था करनी पड़ती है, क्योंकि खुद भोजन में तो कोई रस नहीं रहा है इसलिए इतर व्यवस्था करनी पड़ती है। ऐसा भोजन बनाओ जो स्वादिष्ट मालूम पड़े, ऐसा हो, वैसा हो। यह सारा इंतजाम करना पड़ता है। यह सारा इंतजाम सिर्फ उस समाज में बढ़ता है, जिस समाज में भोजन आदत बन गया है। नहीं तो इसकी कोई जरूरत नहीं है।
पर सब ऐसा ही हो गया है। आप वक्त पर सो जाते हैं रोज, क्योंकि बारह बजे सोना है या दस बजे सोना है। और मैकेनिकल रूटीन है, आप दस बजे सो जाते हैं, चाहे नींद आती हो या न आती हो। और आप वक्त पर उठ जाते हैं--चाहे नींद टूटती हो, चाहे न टूटती हो। सभी ऐसा हो गया है, हम आदतें फिक्स कर रहे हैं, ऊपर से बिठा रहे हैं। और तब बड़ी परेशानी होती है। एक जवान है, वह आठ घंटे सोता था; अब वह बूढ़ा हो गया, अब उसको चार घंटे नींद आती है, लेकिन वह आठ घंटे सोना चाहता है। फिर वह कहता है कि बड़ी मुसीबत हो रही है, सब नींद गड़बड़ हो गई है, नींद नहीं आ रही है।

जरूरी नहीं है।

हां, अब जरूरी नहीं है। मगर वह उसको आदत तो आठ घंटे सोने की पड़ी है। और
अब आठ घंटे सोने की कोशिश में वह चार घंटे सोने का मजा भी खो रहा है। तो आठ घंटे पर फैला रहा है चार घंटे की इंटेंसिटी को। वह मुश्किल में पड़ गया है, अब वह परेशानी में रहा आएगा। और यह रोज होता रहेगा, यह रोज होता रहेगा।...

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

अक्सर यह कठिनाई होती है कि अगर आपके पास बंधा हुआ उत्तर है, तो चैलेंज नहीं रह जाता न! जब भी सवाल उठता है, आपके पास जवाब तैयार है, आप जवाब दे देते हैं। तो वह जो माइंड की जो स्ट्रगल होनी चाहिए किसी प्राब्लम से वह नहीं हो पाती है। नहीं हो पाती तो सूझ निखरती नहीं है। नहीं निखरती तो धीरे-धीरे जाम हो जाती है। और हम जिस चीज का उपयोग करते हैं वही जगती है

और जिसका उपयोग नहीं करते वह जाम हो जाती है। और हमें कोई जरूरत नहीं है, सब बातें हमें मालूम हैं।
यह बड़ी मुश्किल की बात है--जितना ज्ञान बढ़ा है उतनी सूझ कम हुई है और जितनी सूझ कम हो जाती है। उतना बड़ा खतरनाक हो जाता है। क्योंकि ज्ञान आंख नहीं है। अंधा भी लकड़ी से टटोल लेता है और बाहर निकल जाता है। सूझ आंख है।
आप टटोलते नहीं, तब आप देखते हैं। सोचते भी नहीं हैं कि दरवाजा कहां है।
दिखता है और आप निकल जाते हैं।
यह जो अगर हम सोच कर पहले से तैयार न हों, तो ही सूझ पैदा होगी। और देखना चाहिए, बहुत आनंदपूर्ण है यह बात।
अभी अमेरिका में एक छोटा सा "हैपनिंग", पेंटर्स का एक छोटा मूवमेंट चल रहा है। पेंटर्स ने सारी अपनी पेंटिंग्स लटका दी हैं, एग्जिबिशन है, लोग देखने आए हैं। कुछ खाली कैनवस भी लटकाए हुए हैं। उनके पास रंग, ब्रश और यह सब रखा हुआ है। फिर कोई देखने वाला आया है, और उसको धुन आ गई है, और उसने उठा लिया ब्रश और वह पेंट करने लगा। न उसने कभी पेंटिंग सीखी है, न वह कुछ पकड़ना जानता है। बाकी इतनी पेंटिंग्स को देख कर उसको भी हैपनिंग हो गई! तो उसके लिए मौका है, और वह पेंट कर जाए।
और ऐसा अनुभव हुआ है कि ऐसे बिल्कुल सिक्खड़ लोगों ने जो पेंट किया है, उसका मुकाबला नहीं है। उसका बड़े से बड़ा पेंटर भी मुकाबला नहीं कर सकता है। उसे वे हैपनिंग कहते हैं। वे कहते हैं, वह कोई बात घट गई, कोई बात हो गई। क्वेकर्स जो मीटिंग रखते हैं, उनकी मीटिंग तो सायलेंट होती है। और उनका जो टेंपल होता है, उसमें वे वक्त पर इकट्ठे हो जाएंगे, सब चुपचाप बैठ जाएंगे। कोई प्रीचर नहीं होता है। क्योंकि प्रीचर हमेशा तैयार होकर आएगा। सब मित्र बैठ गए हैं, अंधेरा हो गया है। फिर हैपनिंग--किसी को लगता है कि कहना है कुछ, तो कह देता है। कई बार ऐसा होता है कि महीनों बीत जाते हैं, कोई कुछ नहीं कहता। लोग बैठते हैं और विदा हो जाते हैं कि आज कुछ कहने को नहीं था तो नहीं कहा गया। फिर किसी को लगता है कि कुछ कहने को, तो वह खड़ा हो जाता है। न कोई इंट्रोडक्शन है, न कोई पहचान है, न कुछ बात है। वह खड़ा हो गया और उसे लगा कि मुझे यह लगता है, यह मैं कहना चाहता हूं। एक ही शर्त है कि कोई कभी तैयार होकर न आए।
तो क्वेकर्स ने तीन सौ वर्षों में जो इस तरह की सायलेंट मीटिंग्स में
जो कुछ लोगों ने कहा है, उसका जो संकलन किया है वह देखने जैसा है। जैसे बात सीधी ईश्वर से आ रही हो, बिल्कुल साधारण आदमी से कभी वैसी बात आती है। लेकिन हमारी जितनी शिक्षा और जितना कल्टीवेटेड माइंड हम तैयार करते चले जाते हैं, उतनी ही सूझ-बूझ कम होती चली जाती है। और बंधा हुआ सब तैयार हो जाता है, वह सब तैयार है। तो मैं तो सख्त दुश्मन हूं इस बात का। मैं तो यह कहता हूं कि आपके सामने बैठा हूं, आपने कुछ कहा, बात चल पड़ी तो मैंने कुछ कहा। नहीं चली और नहीं चली है तो खत्म हो गई, कोई कहना जरूरी भी नहीं है कि कहना ही चाहिए। और जहां ले गई बात वहां चले गए। और नहीं ले गई और बीच में रुक गई तो किसी से कोई ठेका लिया हुआ है! नमस्कार कर लिया, एक बात खत्म हो गई, अब नहीं आज कुछ कहना को था।
लेकिन पहले से तैयार करके सोच कर जब आप जाते हैं, तो आप तो मर गए, मरे हुए आदमी हैं आप। फिर तो टेप-रिकार्डर अच्छा था, वह भर देते और वह अपना कह देता। और तब फिर बोझ नहीं है, तब एक फ्लावरिंग है। तब फिर बोझ नहीं है। और नहीं तो बहुत बोझ है। वह जो हम अकेले आदमी से बात करते में हम कभी नहीं बोझ अनुभव करते और हजार आदमी के सामने करने में अनुभव करते हैं। क्यों? बोलना हमें बहुत आता है, हम दिन-रात बोलते हैं। लेकिन हजार लोगों के सामने क्या मुश्किल हो गई? हजार लोगों के सामने हम तैयार होकर बोलना चाहते हैं, और बोझ शुरू हो गया। हजार लोगों के सामने भी हम वैसे ही बोल दें जैसे अकेले में एक आदमी के सामने बोलते हैं, फिर बोझ नहीं है।
और मेरा मानना है कि अगर आप उतनी ही सरलता से बोलें जैसा एक आदमी से बोलते थे, हजार से, तो जो कम्युनिकेशन होगा वह ज्यादा आंतरिक और हार्दिक होगा। क्योंकि हम सब बोलते हैं, हम सब रोज बात कर रहे हैं। लेकिन फर्क इतना ही पड़ता है कि आपसे मैं बात कर रहा हूं घर में बैठ कर, आप अपनी पत्नी से बात

कर रहे हैं, अपने मित्र से बात कर रहे हैं, अपने बेटे से बात कर रहे हैं--आप तैयार नहीं हैं, इसलिए कोई बोझ नहीं है।

बोलना है।

हां, जहां आपको बोलना एक काम हो गया और तैयारी करनी पड़ी, वहां से कठिनाई शुरू हो गई। और आदमी को हम इसी तरह दबाए दे रहे हैं, सब तरफ से--चाहे बोलना है, चाहे गाना है, चाहे गीत बनाना है--वह सब काम है, वह स्पांटेनियस कहीं भी नहीं है, सहज कहीं भी नहीं है। और तब वह जो आथेंटिसिटी चाहिए उसमें वह नहीं रह जाती, वह बनती नहीं है। और तब तक वह बहुत गहरे प्राणों में जा भी नहीं सकती, वह जाती नहीं है। और हिंदुस्तान में तो बहुत उपद्रव हो गया। हिंदुस्तान तो पूरा उपदेशक है, सारा मुल्क ही उपदेशक है।
मैं एक मजाक कहा करता हूं। एक लड़की थी यहां बंबई की, वह अमेरिका चली गई। उसने मुझे एक मैगजीन भेजी वहां से। उसमें किसी ने एक मजाक का लेख लिखा हुआ है कि अगर अंग्रेज शराब पी ले, तो वह वैसे ही चुप रहता है, वह और बिल्कुल चुप हो जाता है, फिर वह बोलता ही नहीं है। अगर फ्रेंच शराब पी ले, तो वह वैसे ही शोरगुल मचाता है, बातचीत करता है, नाचता है, फिर वह बहुत उछल-कूद करने लगता है। अगर डच शराब पी ले, तो वह एकदम खाने की मेज की तरफ जाता है, एकदम खाने पर टूट पड़ता है।
उसने लिखा है कि अगर शराब पीती हालत में जो नेशनल कैरेक्टरस्टिक है,
वह पता चल जाती है। तो उस लड़की ने मुझे लिखा कि लेकिन हिंदुस्तानी के बाबत उसमें कुछ नहीं लिखा।
मैंने कहा, वह तो जाहिर है कि वह अगर पी ले तो वह उपदेश देगा! फौरन उपदेश देगा! उसने पी कि उसने उपदेश शुरू किया। वह तो हमारा बिल्कुल... और वह सब तैयार है, बिल्कुल तैयार है।

हमारे संगीत के बारे में कुछ कहें कि हम कुछ अच्छा काम कर सकें। हालांकि इस दिशा में प्रयास कुछ कम है... ।

प्रयास बहुत कम है और असल में सभी चीजों के पास, सभी कलाओं के पास, पीछे कोई मैसेज था। अब कोई मैसेज नहीं है। अब सब माध्यम से, आदमी का कैसे शोषण हो सकता है, उसकी चिंता है। यानी पहली दफा हर चीज बाजार में खड़ी हो गई है, पहली दफा। कुछ चीजें थीं जो बाजार के हमेशा बाहर थीं। और हजारों साल तक हजारों लोगों ने कोशिश की थी कि कुछ चीजें बाजार के बाहर ही रहें। इस जिंदगी में कुछ तो होना चाहिए जो बाजार के बाहर हो। अगर सभी कुछ बाजार में हो जाए तो बहुत दयनीय हालत हो जाएगी। हजारों साल तक बड़ी मेहनत करके कुछ चीजों को बिल्कुल बाजार के बाहर रखने की कोशिश की थी। इधर इन सौ वर्षों में सब चीजें बाजार में लाकर खड़ी कर दी हैं--सब! और तब स्वभावतः, सब चीजें आप बाजार में ले आएंगे, तो वे सारी ऊंचाइयां खो जाएंगी जो बाजार के बाहर हो सकती हैं। और पहली दफा... अब तक कला इसकी फिक्र नहीं करती थी कि आपकी समझ में आता है कि नहीं आता है, कि आपको पसंद पड़ता है कि नहीं पड़ता है। कला यह कहती थी कि अगर आपको पसंद नहीं पड़ता आप तो आदमी गलत हो, आप इस योग्य बनो कि आपको पसंद पड़े!

कला तो अपनी जगह खड़ी थी।

कला अपनी जगह खड़ी थी। आदमी को यात्रा करनी पड़ती थी कि तुम आओ। मंदिर अपनी जगह बना था। वह बाजार में नहीं आता था। तुम्हें आना है, तुम बाजार छोड़ो और मंदिर आओ।
उलटा हो गया। बाजार के लोगों ने मंदिर जाना बंद कर दिया। पुजारी ने कहा, हम मंदिर को बाजार ले आते हैं। तुम नहीं आ सकते हो, हम मंदिर को वहीं ले आते हैं। हम वहीं मंदिर बना देंगे, तुम्हारी दुकान के बगल में। तुम वहीं से निकलना, नमस्कार कर लेना। या तुम कहो तो तुम्हारी दुकान के सामने

ही बना देंगे। या कहो तो तुम्हारी दुकान में ही बना देंगे। तुम्हारी तबियत हो कभी, देख लेना। नहीं तो चल जाएगा।
और जब श्रेष्ठ जनता की तरफ देखने लगता है तो नष्ट होना शुरू हो जाता है। कुछ लोगों को, कुछ दिशाओं में, हमेशा यह हिम्मत रखनी चाहिए कि उन्हें कोई नहीं समझ सकेगा, कोई नहीं पहचान सकेगा, कोई नहीं मान सकेगा। लेकिन वे ही थोड़े से लोग और वे ही थोड़ी सी दिशाएं लोगों को पुकारती हैं--आज नहीं कल पुकारती हैं, आज नहीं कल पुकारती हैं।
गुरजिएफ था एक फकीर, अभी मरा कुछ दिन पहले। उसके व्याख्यान कभी भी ऐसे नहीं होते थे कि वह आठ दिन पहले से खबर हो गई, न। आठ दिन पहले से खबर हो गई कि जो लोग गुरजिएफ के व्याख्यान में उत्सुक हैं वे अपने नाम भेज दें। और व्याख्यान के घंटे भर पहले उनको खबर कर दी जाएगी कि यहां व्याख्यान हो रहा है, आप पहुंच जाइए।
कहीं व्याख्यान बीस मील दूर है, कहीं पच्चीस मील दूर है। घंटे भर पहले खबर आई कि कल्याण जी, यहां व्याख्यान है, छह बजे पहुंच जाइए। तो अब आपको हजार काम हैं, हजार परेशानियां हैं, पहले से इंतजाम कर लिया होता। अब यह घंटे भर में भाग कर जाना है।
गुरजिएफ के मित्रों ने बहुत कहा कि यह बड़ा गड़बड़ है, यह आप क्या करते हैं? तो गुरजिएफ ने कहा, जिसको आना है उसे श्रम लेकर आना चाहिए, तो ही मेरी बात का कोई मतलब है; तो ही मैं उसे ऊपर उठा पाऊंगा; नहीं तो मैं उसे ऊपर नहीं उठा पाऊंगा।
और एक बार ऐसा हुआ कि उसने पेरिस में जाहिर किया कि वह बोलेगा। वह पहले दिन बोलने आया। कोई तीन सौ लोग इकट्ठे थे। उसने आकर देखा और उसने कहा कि आज मैं नहीं बोलूंगा, कल बोलूंगा। कल डेढ़ सौ लोग आए हुए थे। वह फिर खड़ा हुआ और उसने कहा कि आज भी मैं नहीं बोलूंगा, मैं कल बोलूंगा। पंद्रह-बीस लोग ही रह गए थे तीसरे दिन। उसने कहा, कि अब मैं बोलूंगा। क्योंकि वे लोग चले गए जो ऐसे ही आ गए थे, अब वे लोग रुक गए हैं जिनसे बात की जा सके।
यह जो माइंड था न पीछे! तो चाहे संगीत हो, चाहे काव्य हो, चाहे साहित्य हो, चाहे धर्म हो, चाहे दर्शन, चाहे कुछ भी हो, इस वक्त जो सबसे बड़ी जरूरत पड़ गई है वह यह है कि कुछ लोग यह हिम्मत जुटाएं कि वे कहें कि तुम्हें वहां आना पड़ेगा, तुम्हें यात्रा करनी पड़ेगी।
और मजा यह है कि ऐसा नहीं है कि लोग दूर की यात्रा पर जाने को तैयार नहीं हैं। लोग बड़े आतुर हैं! और चूंकि आपने कोई दूर की यात्राएं नहीं छोड़ी हैं तो वे फिजूल की यात्राएं कर रहे हैं। गर्मी होती है तो वे हिमालय जाते हैं। आप हैरान होंगे कि यह माइंड की वही बेचैनी है, जो दूर की यात्रा पर निकलने का है। गर्मी होती है तो एक आदमी अमेरिका जाता है, एक आदमी रूस जाता है देखने। अब चांद पर जाएगा आदमी। वह जापान में कोई टिकिट बेच रही है कोई कंपनी उन्नीस सौ पचहत्तर के लिए। और अभी से लोग बुकिंग करवाएंगे कि हम... । काहे के लिए चांद पर जा रहे हैं? मेरी अपनी समझ यह है कि यह जो इतने जोर से टूरिज्म है। इतने जोर से लोग भाग रहे हैं यहां से वहां, वहां से यहां। इसका बुनियादी कारण है। इसका बुनियादी कारण है कि दूर की यात्रा का जो भीतर भाव रह गया है तब का, और कोई यात्रा आपने छोड़ी नहीं--न संगीत कोई यात्रा है, न धर्म कोई यात्रा है, न कोई यात्रा है। अब एक ही यात्रा है, फिजिकल, ट्रेन में बैठो, कार में बैठो, और भागो।
आप हैरान होंगे कि पुरानी दुनिया में कभी इतनी यात्राएं नहीं थीं। सब्स्टीट्यूट दूसरा था। पुराने दिनों में एक आदमी, कभी-कभी ऐसा भी होता था, एक ही गांव में जीता था और मर जाता था।
लाओत्से ने लिखा है ढाई हजार साल पहले कि मैंने अपने बुजुर्गों से सुना है कि एक वक्त ऐसा था कि बीच में नदी बहती थी, इस तरफ के गांव के लोग थे और उस तरफ के गांव के लोग थे। रात में कुत्तों की आवाज सुनाई पड़ती थी कि वहां कोई गांव है। लेकिन कभी कोई उस पार नहीं गया। क्योंकि आवाज सुनाई पड़ती थी, कभी कोई उस पार नहीं गया। वह बहुत हैरान हुआ! उसने कहा, कैसे लोग थे कि पता लगाने ही नहीं गए कि उस पार कौन है! जिस बूढ़े से उसने पूछा, उसने कहा, क्या जरूरत थी! हम और बड़ी यात्राओं पर गए हुए थे। इतनी छोटी-छोटी चीजों को देखने कौन जाता है! जिसको हीरे-जवाहरात मिल गए हों, वह कंकड़-पत्थर

नहीं बीनता फिरता। लेकिन अगर हीरे-जवाहरात न मिले हों, तो वह जो बीनने की कमी रह जाती है वह कंकड़-पत्थर भी बीन लेती है।
और मेरी अपनी नजर में एक डायमेंशनल फर्क पड़ गया है। एक तो यात्रा होती
है जिसको हम कहें वर्टिकल, ऊपर की तरफ जाती है। और एक यात्रा है हॉरिजेंटल, जो मुझसे आपकी तरफ जाती है, आपसे आपकी तरफ जाती है, मगर तल वही रहता है। चाहे न्यूयार्क में मैं रहूं और चाहे बंबई में मैं रहूं और चाहे हिमालय पर मैं रहूं, मैं वही रहूंगा। और उसी तल पर रहूंगा, हॉरिजेंटल यात्रा चलती रहेगी।

हाइट नहीं होगी।

हां! और हाइट लाने वाली जो--जैसे संगीत है, या साहित्य है, या धर्म है,
या योग है वह बिल्कुल वर्टिकल यात्रा है। आपको नहीं कहता कि आप यहां-वहां जाओ; आप जहां हो वहीं से एक ऊपर की तरफ जाने का रास्ता जाता है।

हेलिकाप्टर की तरह।

हां, हेलिकाप्टर की तरह। तो वह जो, वह बंद हो गया न सारा, क्योंकि आप कहते हैं कि हम वहीं ले आएंगे। मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न?
तो हमें कुछ न कुछ करना पड़ेगा, चाहे वह किसी भी दिशाओं में काम करने वाले मित्र हों। कुछ न कुछ यह करना पड़ेगा कि एक बार जो बाजार का बहुत तीव्र आकर्षण है इस वक्त, उसे कुछ लोगों को कहीं न कहीं से तोड़ने की फिकर करनी चाहिए। और कहना चाहिए कि नहीं, तुम्हें आना होगा। मैं आने वाला नहीं हूं। हम वहां नहीं लाएंगे चीजों को जहां तुम हो, तुम्हीं को वहां आना पड़ेगा जहां चीजें हैं। और इसमें ही तुम्हारा हित भी है, इसमें ही तुम्हारा हित भी है। क्योंकि अगर यह नहीं होता है, अगर यह ट्रांसेनडेंस का ख्याल नहीं चलता है, तो आदमी जहां के तहां ठहर जाता है। क्योंकि आप सब उसे वहीं उपलब्ध करा देते हैं।
एक सूफी फकीर हुआ है--बहाउद्दीन नक्सबंद। एक सूफी आर्डर है फकीरों का--नक्सबंदी। बहाउद्दीन के पास एक आदमी आया और उससे कहने लगा कि मेरे पास सब है, धन है, सब है, लेकिन कोई आनंद नहीं है। कोई ऐसा आदमी बताओ इस दुनिया में जो सबसे ज्यादा आनंदित हो। नक्सबंद ने कहा, ऐसे एक आदमी को मैं जानता हूं, लेकिन बड़ी लंबी यात्रा करनी पड़ेगी। उस आदमी ने कहा, मैं कोई भी यात्रा करने को तैयार हूं, मैं कितनी ही दूर जा सकता हूं। नक्सबंद ने कहा, दूर का उतना सवाल नहीं है, ऊंचा जाना पड़ेगा। दूर तो तुम जा सकते हो, दूर का सवाल नहीं है; ऊंचा जाना पड़ेगा। उस आदमी ने कहा कि दूर जाने के साधन मेरे पास हैं, ऊंचे जाने के साधन कहां हैं? ऊंचे जाने का क्या मतलब है? बैलगाड़ी में बैठ सकता हूं, ऊंट पर बैठ सकता हूं, घोड़े पर बैठ सकता हूं--सब मेरे पास हैं-- लेकिन ये दूर जाने के साधन हैं। ऊंचे जाने का क्या मतलब है? उस फकीर ने कहा, वह साधन मैं तुमसे कहूंगा। लेकिन ध्यान रहे, दूर जाने वाले हर साधन में तुम सवार हो जाते हो; ऊंचे जाने वाले साधन में तुम्हें अपने को काटना पड़ेगा! क्योंकि तुम्हारा ही बहुत सा हिस्सा है जो तुम्हें ऊंचा नहीं जाने देता; वह तुम्हें काट-काट कर नीचे गिरा देना पड़ेगा। और दूर जाने वाली यात्रा पर तुम साबित रहते हो, यहां तुम साबित नहीं रह जाओगे। क्योंकि तुम ही बाधा हो।
अगर बहुत गौर से हम देखें तो ऊंचे जाने में कोई और बाधा थोड़े ही होता है, मैं बाधा होता हूं। और मेरे ही होने से बाधा होती है। मैंने ही जो पत्थर और सब बांध रखे हैं चारों तरफ, वह बाधा होती है, वे एक-एक करके काटने पड़ते हैं।
उसने कहा कि तुम ही बाधा हो! तुम्हें काट-काट कर टुकड़े-टुकड़े कई हिस्से खो देने होंगे, तब तुम जा सकोगे। उसने कहा, लेकिन मैं जाना चाहता हूं यात्रा पर, मैं अपने को तोड़ने को राजी नहीं हूं। उस फकीर ने कहा, फिर यह यात्रा नहीं हो सकती। क्योंकि एक यात्रा है जिसमें तुम साबित वापस लौट आओगे; लेकिन तुम तुम ही रहोगे, यात्रा बेकार हो जाएगी। एक यात्रा है

जिसमें तुम कटोगे, मरोगे, सड़ोगे, गलोगे, बिल्कुल बदल जाओगे। लेकिन तुम पहुंच जाओगे उस दिन, जिस आदमी की बात कहते हो कि सबसे सुखी आदमी कहां है, वह मैं तुम्हें बता सकता हूं।
उस आदमी की कुछ समझ में नहीं आया, वह वापस चला गया। वह नक्सबंद हंसने लगा। उसके और फकीर बैठे थे, उन्होंने कहा कि आपका मतलब क्या था?
आप जो पूछते हैं न, संगीत या धर्म, ये सारी बातें, ये असल में बहुत-बहुत दिशाओं से आदमी के कुछ हिस्सों को तोड़ने और काटने की चेष्टाएं हैं।
अब अगर मेरी बात समझें, तो आदमी के भीतर चौबीस घंटे एक डिसहार्मनी है। आदमी के भीतर हजारों स्वर हैं, हजारों विचार हैं, हजारों तनाव हैं, सब तरफ से आदमी एक अनार्की है। और संगीत का मेरी दृष्टि में एक ही मतलब है कि बाहर आप कुछ ऐसा उपाय करें कि उस बाहर की लय, हार्मनी को सुन कर वह जो भीतर की लयहीनता है वह शांत हो जाए। बाहर आप ऐसी सिचुएशन क्रिएट करें कि वह जो भीतर आदमी है, ठहर जाए, रुक जाए, एक क्षण को सही। यानी एक क्षण को बाहर की लयबद्धता भीतर की लयहीनता को तोड़ दे, संगीत का काम पूरा हुआ।
मेरा मतलब समझे न आप? यानी सवाल आपकी लयबद्धता का नहीं है। असली सवाल
वह जो सामने वाला है, उसके भीतर लयहीनता है। वह संगीत की कमी से बहुत बुरी तरह परेशान है। कोई आदमी रोटी की कमी से इस बुरी तरह परेशान नहीं है। लेकिन संगीत भी एक भोजन है और अदभुत है, शरीर का नहीं है, आत्मा का है। और वहां एक बड़ी कमी हो गई है। समझ में नहीं आ रहा है उसे, वह लयबद्धता खोज रहा है। वह चाहता है कि कहीं से कोई समस्वर आ जाए, कहीं से कोई ऐसी हवा आ जाए कि भीतर के सब उपद्रव शांत हो जाएं, कोई स्वर कोई आवाज न रह जाए, भीतर सब मौन हो जाए।
मेरी दृष्टि में, अब यह बहुत उलटा दिखाई पड़ेगा, लेकिन संगीत का मेरी दृष्टि में यही अर्थ है। संगीत तो ऐसे स्वरों का सारा समायोजन है, लेकिन संगीत की सारी चेष्टा स्वर-शून्यता के लिए है। संगीत तो साउंड है, लेकिन जिस प्रयोजन से है वह सायलेंस है। अगर संगीत सायलेंस पैदा करता है किसी में तो सार्थक हो गया।

साउंडलेसनेस।

हां, साउंड जो है टुवर्ड्स साउंडलेसनेस। इट मस्ट एंड इन साउंडलेसनेस।
वह वहीं ले जानी चाहिए। वह सारी साउंड की योजना यह है कि साउंड ऐसी हो कि उसको साउंडलेस कर दे। तो वह थोड़ी देर को वहां पहुंच जाए जहां कोई ध्वनि नहीं है, कोई स्वर नहीं है।
चीन में एक बहुत बड़ा धनुर्धर हुआ। उसकी बड़ी ख्याति हो गई और सारा देश समझने लगा कि उससे बड़ा धनुष चलाने वाला कोई भी नहीं है। तो उसने अपने सम्राट को कहा कि अब घोषणा कर दें कि मैं प्रथम धनुर्धर हूं। और अगर कोई प्रतियोगिता करना चाहे तो वह प्रतियोगिता कर ले, ताकि यह निर्णय हो जाए कि मैं श्रेष्ठतम हूं।
उस सम्राट ने कहा कि तुम कहते हो वह ठीक है, लेकिन मैंने जंगलों में एक आदमी को देखा है जो तुमसे बड़ा धनुर्धर है। तुम एक बार उसके दर्शन कर लो, फिर यह घोषणा करेंगे। हालांकि तुम घोषणा भी करोगे तो भी वह आएगा नहीं प्रतियोगिता करने; लेकिन मैं जानता हूं कि तुमसे एक श्रेष्ठ है, इसलिए मैं घोषणा करने में जरा हिचकिचाता हूं। वह आएगा नहीं। क्योंकि जो श्रेष्ठ है वह प्रतियोगिता करने नहीं आता है।
और सिर्फ निकृष्ट के मन में प्रतियोगिता उठती है, सिर्फ हीन के मन में
यह ख्याल आता है। वह जो इनफिरिआरिटी है, वह कहती है, काम्पीट करो, सिद्ध करो। जो सिद्ध है, वह कहता है, ठीक है। असिद्ध हमेशा चेष्टा में है, हीन हमेशा चेष्टा में है कि मैं सिद्ध करके बता दूंगा कि मैं प्रथम हूं।
तो उस सम्राट ने कहा कि तुम श्रेष्ठ तो नहीं हो, क्योंकि तुम प्रतियोगिता के ख्याल में हो। फिर मैं एक आदमी को जानता हूं, तो मैं घोषणा पूरे मन से न कर सकूंगा। हालांकि वह प्रतियोगिता करने नहीं आएगा। अच्छा हो कि तुम जाओ उसके पास, सीख आओ कुछ दिन।

वह गया, जंगल में खोजा, एक बूढ़ा आदमी मिल गया। पता चला, उससे पूछा कि आप
ही धनुर्धर हैं? उसने कहा, धनुर्धर हूं या नहीं, यह तो दूसरे लोग जानते होंगे, लेकिन धनुष चला लेता हूं।
उसके पास रहा तो दंग रह गया! यह तो कुछ भी न था उसके सामने। तीन साल उससे सीखा, तब जाकर ऐसा लगा कि हां उसके करीब खड़ा हुआ हूं। जिस दिन यह लगा कि अब मैंने सब सीख लिया जो वह जानता था, सोचा अब लौट जाऊं और घोषणा कर दूं। लेकिन यह आदमी जिंदा है! और भला कोई भी न कहे, लेकिन मैं तो जानूंगा कि किसी से मैंने सीखा है और गुरु के बराबर मैं नहीं हो सकूंगा। आज से यह आदमी मर जाए। उसने सोचा--इसको मार कर जाओ।
तो वह गुरु लकड़ी काट कर लौट रहा है और उसने तीर मारा है। वह निहत्था है, तो उसने एक लकड़ी के बंडल से लकड़ी खींच कर तीर को मारी, वह तीर वापस लौट पड़ा और जाकर उसकी छाती में छिद गया। भागा हुआ गुरु आया, उसने छाती से तीर निकाला। और उसने कहा, यह एक और दांव रह गया था जो मैंने तुझे नहीं बताया था; क्योंकि प्रतियोगी शिष्य हमेशा खतरनाक है, आखिर में वह गुरु की भी हत्या करना चाहता है। वह अनिवार्य है। प्रतियोगी कभी शिष्य नहीं हो सकता है! तुझसे मैं डरा था और जानता था कि आज नहीं कल तू मुझे मार ही डालेगा। लेकिन आज वह भी बता दिया। और अब तू मुझे मरा समझ; अब मारने की कोई जरूरत नहीं, मैं हूं ही नहीं। मैं तेरी कोई प्रतियोगिता में नहीं हूं। लेकिन ध्यान रखना, मेरा गुरु अभी जिंदा है! और उसके सामने मैं कुछ भी नहीं हूं। बहुत सीखा, थक गया, फिर वापस लौट आया। क्योंकि वहां तो सीखने को सदा शेष है। सोच कर गया था कि कभी पूरा सीख लूंगा; फिर जितना-जितना सीखने लगा उतना-उतना पता चला कि अनसीखा ज्यादा है। तब थक गया--यह कब तक करता रहूंगा? फिर मैं वापस लौट आया। मैं थक कर लौट आया हूं। दूसरा किनारा मैंने नहीं पाया था। वह आदमी अभी जिंदा है। अच्छा हो तू उसके दर्शन कर ले।
तो कहां है वह आदमी?
उसने कहा, उसे खोजना पड़ेगा और ऊपर पहाड़ों पर। पता नहीं वह अब बचा भी है
कि नहीं बचा, क्योंकि वह अकेला रहता है।
क्योंकि ऊंचाइयां हैं कुछ जहां आदमी अकेला ही रह सकता है; सिर्फ नीचाइयों पर हम साथ रह सकते हैं। इसलिए जितनी नीचाई पर रहेंगे, उतने ज्यादा लोग साथ होंगे। जितनी ऊंचाई पर होंगे, उतने अकेले होने लगेंगे। और एक ऊंचाई है जहां बिल्कुल टोटल लोनलीनेस है, जहां बिल्कुल अकेले हो जाएंगे।
तो अकेला है वह। पर खोजो, शायद मिल जाए। वह गया उसे देखने। बहुत मुश्किल से खोज कर, एक ऊंचे पहाड़ पर, जहां हजारों फिट लंबी एक सीधी चट्टान है, एक बूढ़ा आदमी खड़ा है जिसकी कमर झुकी है। वही एक आदमी मिला। और उससे पूछा कि आप ही तो वे धनुर्धर नहीं हैं जिनकी चर्चा सुन कर मैं आया हूं? उसने आंखें ऊपर उठाईं और उसने कहा, तुम कौन हो? और यहां कैसे आए? क्योंकि इन ऊंचाइयों पर कोई आता ही नहीं। उसने कहा, मैं भी एक धनुर्धर हूं। धनुष-बाण टांगे हुए था तो वह बूढ़ा हंसने लगा। उसने कहा, अगर धनुर्धर हो तो धनुष-बाण की क्या जरूरत है? यह तो जब सीखते हैं तब काम के होते हैं।
बूढ़े ने कहा कि जब संगीतज्ञ कुशल हो जाता है तो वीणा तोड़ देता है। क्योंकि वीणा तो सिर्फ स्वर की साधना है। अंतिम संगीत तो स्वर-शून्य है, वहां वीणा की कोई जरूरत नहीं रह जाती। अंततः यह तो साधन था, जो एक जगह बाधा बन जाएगा। उस बूढ़े ने कहा कि वीणा, जो कि संगीत में पहले साधक है, अंततः बाधक हो जाएगी। क्योंकि वह भी डिस्टरबेंस पैदा करती है। वह भी तो स्वर का आघात पैदा करती है। वह भी तो संगीत को तोड़ती है। वीणा जो शुरू में संगीत की सहयोगी है, अंततः संगीत में बाधा बन जाएगी। क्योंकि अंतिम संगीत तो बिल्कुल स्वर-शून्य है।
तो जब धनुर्धर पूरा धनुर्धर हो जाता है तो धनुष-बाण फेंक देता है, उसकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। धनुष तुम रखे हो, तुम अभी बच्चे हो, सीखते होंगे, धनुर्धर कहते हो अपने को!
उसने कहा, यह तो बड़ी मुश्किल है। आप कहते हैं तो ठीक मालूम होता है। लेकिन बिना धनुष-बाण के फिर धनुर्धर करेगा भी क्या?

उस बूढ़े ने कहा कि तुम, मैं जहां खड़ा हूं, जरा मेरे पास सरक आओ। वहां हजार फिट लंबी गड्ढ है और उसके किनारे वह कमर झुका बूढ़ा खड़ा है, और वह आगे सरक गया है और उसके पंजे का आगे का हिस्सा गड्ढ में निकल गया है। उसकी कमर झुकी है, वह उस गड्ढे पर खड़ा है, जहां जरा सी भी सांस छूटी... । वह इससे कहता है, आओ, और पास आ जाओ। यह चार फिट दूर से कहता है, और पास मैं नहीं आ सकता, मेरा शरीर कंपता है। उस बूढ़े ने कहा, जिसका मन और शरीर अभी कंपता है, उसका निशाना पूरा कैसे हो सकता है! क्योंकि निशाना चूकता क्यों है? इधर हम कंप जाते हैं, उधर वह चूक जाता है। और जब तक निशाना चूकता है, तब तक धनुष-बाण की जरूरत है। और जब इतना अकंप चित्त हो जाता है... तो उस बूढ़े ने ऐसा हाथ उठाया और सामने उड़ते हुए पक्षियों की एक कतार नीचे गिर गई। अकंप चित्त अगर चाहे तो हो जाता है। उस बूढ़े ने कहा, अकंप चित्त चाहे कि गिर जाओ, तो कौन है इनकार करने को! हम ही कंप जाते हैं इसलिए कट जाता है। नहीं तो कोई कारण नहीं है।
वह उस बूढ़े के पास से वापस लौटा। सम्राट को जाकर उसने कहा कि सम्हालो
यह धनुष-बाण। न हमें कोई प्रतियोगिता करनी है और न हम धनुर्धर हैं। हम देख कर आए हैं धनुर्धरों को, जिनके पास धनुष भी नहीं हैं, बाण भी नहीं हैं। लेकिन उनके पास ही जाकर पता चला है कि धनुर्विद्या क्या है।
सारी विद्याएं, ठीक अल्टीमेट अर्थों में, अपने से उलटे की आकांक्षा हैं। संगीत अंततः स्वर-शून्यता की आकांक्षा है। यह समझौता है हमारा बीच में कि हम स्वर-शून्यता पैदा नहीं कर सकते, इसलिए स्वर-संबद्धता पैदा करते हैं।
एक जर्मन संगीतज्ञ था, वेजनर। उससे किसी ने पूछा कि क्या कहते हो संगीत को? तो उसने कहा, लीस्ट अग्ली नॉइज। सबसे कम, सबसे कम कुरूप आवाज। वैसे है तो कुरूप, है तो आवाज, बाकी सबसे कम कुरूप है, कम से कम कुरूप है। आखिरी जगह पर, जहां हमको आवाज करनी ही है, तो फिर संगीत करना है। आवाज ही छोड़ देनी है, फिर संगीत नहीं।
और प्रयोजन इतना ही है कि हम बाहर ऐसी आवाज कर सकें कि भीतर वह जो गैर-आवाज है वह प्रतिध्वनित हो जाए। और जब भी कभी, कभी भी जब आप आनंदित हो जाते हैं, एक गीत सुन कर, वीणा सुन कर, तो आप बहुत हैरान होंगे कि आपके आनंद का सारा राज इतना है कुल--आनंद वीणा से नहीं आता है, वीणा का स्वर-संघात आपको शून्य कर देता है, आनंद भीतर से शून्य में उमड़ आता है।
आनंद सदा भीतर से आता है। सिर्फ वैक्यूम बीच में वीणा पैदा कर देती है। और किसी भी ढंग से वैक्यूम पैदा हो जाए माइंड में, भीतर से चीजें भरने को तैयार हैं, वे दौड़ कर भर जाती हैं।
उस दिशा में कि कैसे संगीत ध्यान बन सके अधिकतम लोगों के जीवन में, उस दिशा में बहुत सोचने जैसा है।
कभी अगली बार बैठ कर बात करेंगे। अभी तो चलना पड़ेगा। अच्छी बात है।

नये समाज की खोज
छठवां प्रवचन

शून्य की दिशा

ओशो, उस दिन जो बात हुई थी उसमें सबसे बड़ा मूल प्रश्न जो हमारे ध्यान में आया था, जिसके बारे में हमें आपसे कुछ जानना है, वह यह है कि शून्यवाद का असर जो हमें बुद्धिज्म और जैनिज्म में दिखाई देता है, शायद वह शून्य का इंटरप्रिटेशन कितना ही पाजिटिव हो, लेकिन शब्द-प्रयोग से ही लोगों के जनरल ख्यालातों में इंटरप्रिटेशन हो जाते हैं। हर एक को नई फार्मूला एक पुराने शब्द के लिए नहीं दी जा सकती। लेकिन प्रापर शब्द शायद यूज किया जा सकता है। तो इस संभावना से हमें यह नजर आता है और कई लोगों के माइंड में भी यह फैक्ट आया हुआ है कि शून्य इ.ज दि ओनली वर्ड व्हिच कैन डिस्क्राइब योर एप्रोच टु दि ट्रुथ? या और कोई ऐसी चीज है या रास्ता है या शब्द-प्रयोग है कि जिससे सामान्य जनता में यह निगेटिवइज्म के प्रति ले जाने की दृष्टि आप में है, ऐसा प्रतीत न हो। मिसअंडरस्टैंडिंग न हो।

न, न, न, ऐसा क्यों प्रतीत न हो? मुझ में प्रवृत्ति है ही। और ऐसा भी मैं नहीं मानता हूं कि और कोई रास्ता है! शून्य के अतिरिक्त कोई रास्ता भी नहीं है। और निगेटिव माइंड ही सत्य तक पहुंचता है, दूसरा कोई माइंड कभी पहुंचता भी नहीं है। इसे थोड़ा समझ लेना उपयोगी है।
असल में जो भी हम जानते हैं, जो भी सीखा है, जो भी सुना है, जो भी हमारा अनुभव है, वह तो हमारा पाजिटिव माइंड बन जाता है। वह हमारी संपदा है। इस क्षण जो भी आप जान रहे हैं, आज तक जो भी इकट्ठा हो गया है आपके पास, वही तो आपका माइंड है। बचपन से लेकर अभी तक, या अगर लंबा विस्तार करें, तो सारे जन्मों का, जो भी आपके पास इकट्ठा हो गया है ज्ञान, वही तो आपका माइंड है। इस माइंड से ही सत्य को नहीं जाना जा सकता। क्योंकि सत्य अज्ञात है, अननोन है। और जो भी आप जानते हैं, वह सब नोन है। नोन और अननोन के बीच छलांग न लगे, जंप न हो जाए, तो अननोन में आप कभी नहीं पहुंच सकते।
तो अगर सत्य को जानना हो, अस्तित्व को जानना हो--सत्य न कहें, अस्तित्व
को जानना हो, जो भी है उसको जानना हो--तो जो भी हम जानते हैं उसको विदा देनी पड़ेगी, उसे हटा देना पड़ेगा। और चित्त के जानने के जो भ्रम पैदा हो गए हैं कि यह मैं जानता हूं, यह मैं जानता हूं, यह मैं जानता हूं, ये चित्त के ऊपर पच्चीस तरह की दीवारें हैं और पर्दे हैं, ये सब तोड़ देने पड़ेंगे। और मुझे उस जगह खड़े हो जाना पड़ेगा, जहां मैं कह सकूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। और मैं खाली होकर खड़ा हूं, ताकि जो है उसे जान सकूं। अज्ञानी होने की हिम्मत जुटाना ज्ञानी होने के लिए पहली शर्त है। और जिसको हम ज्ञानी कहते हैं, वह चूंकि अज्ञानी होने की हिम्मत बिल्कुल नहीं जुटा पाता, बल्कि ज्ञानी होने की ही दौड़ में लगा रहता है, तो वह कभी उस इनोसेंस को नहीं उपलब्ध होता जो अज्ञान को उपलब्ध है--जो उस आदमी को उपलब्ध है जो कह सकता है कि मैं नहीं जानता हूं, जो पूरे हृदय से कह सकता है कि मैं नहीं जानता हूं, कोर-कोर, कण-कण जिसका कह सकता है कि मैं नहीं जानता हूं, आई एम इग्नोरेंट।
ऐसा जो कह सके कोई, तो पाजिटिव माइंड गया, अब रह गई शून्य की दशा, क्योंकि मैं कुछ नहीं जानता हूं। इस क्षण में ही, इस शून्य की अवस्था में ही, इस निगेटिव स्थिति में ही, वह सब हम पर टूट पड़ता है--वह सब जो हमारे चारों तरफ घिरा है, हमारे भीतर भी घिरा है, वह जो अस्तित्व है, वह सब तरफ से द्वार प्रवेश पा जाता है। और हम जानते हैं।
लेकिन उस जानने को भी अगर हमने फिर ज्ञान बना लिया, नोइंग को अगर नालेज बनाया, तो फिर पाजिटिव माइंड इकट्ठा होना शुरू हो जाता है। और तब जो झलक मिली थी वह फिर खो जाती है।
इसलिए प्रत्येक साधक को या खोजी को इस चेष्टा में होना चाहिए कि वह हर रोज कैसे निगेटिव माइंड को वापस उपलब्ध कर ले, जो जाना था उसको विदा कर दे।

वह फिर कैसे खाली हो जाए; वह फिर कैसे इनोसेंट हो जाए; वह फिर कैसे मुक्त हो जाए।
अन्यथा जो हम कल से जानते हैं वह हमारे आज के जानने के बीच में बाधा बनता है। और तब फिर हम उसी के रिपिटीशन को ही दोहराते चले जाते हैं। तो रोज-रोज मुक्त हो जाना उस सब से जो हम जान लेते हैं... ऐसे ही जैसे रोज धूल जम जाती है शरीर पर, हम स्नान करके मुक्त हो जाते हैं। ऐसे ही चित्त के दर्पण पर भी रोज अनुभव की धूल जम जाती है, शास्त्र की धूल जम जाती है, शब्द की धूल जम जाती है। रोज कुछ न कुछ जम जाता है। उसे रोज झाड़ देना है, ताकि फिर चित्त का दर्पण खाली हो जाए। वह खाली दर्पण ही देखता है, वह खाली दर्पण ही जान सकता है, क्योंकि वही रिफ्लेक्ट कर सकता है, वहीं चीजें प्रतिबिंब बनती हैं।
आपने कल भी पेंट किया था, परसों भी पेंट किया था, जिंदगी भर से आप चित्र बनाते रहे हैं--वे सब चित्र जो आपने बनाए थे अगर आपके चित्त के किसी भी कोने में बैठे हुए हैं, तो आप नया चित्र तो कभी बना ही नहीं सकते! घूम-फिर कर वही चित्र फिर बनते चले जाएंगे और आपका चित्त उन्हीं चित्रों को बार-बार पुनरुक्त करता रहेगा।
नहीं, उनको विदा करना पड़ेगा। उनको ऐसे विदा कर देना पड़ेगा जैसे आपसे उनका कोई लेना-देना नहीं है। जो बन गया वह गया, जो बन गया वह मर गया। चाहे वह ज्ञान हो और चाहे चित्र हो, चाहे धारणा हो, चाहे शब्द हो, चाहे सिद्धांत हो, जो बन गया वह मर गया। जो मर गया उससे छूट जाएं। ताकि फिर जीवन की स्पंदना वैसी ही खड़ी हो जाए जैसी कि बिल्कुल नये में खड़ी होती है। ताकि फिर नया, फिर नया।
और वह जो सत्य है वह नित नया है। और वह जो अस्तित्व है वह कोई ऐसी डेड एनटाइटी नहीं है कि आप ने एक बार जान ली और चुक गया। उसे तो प्रतिपल रोज-रोज जानते ही चले जाना है। क्योंकि वह तो रोज नया है, वह रोज नया होता चला जा रहा है। और उस नये को जानने के लिए वह जो ओल्ड माइंड है, बाधा बनता है। और ओल्ड माइंड यानी पाजिटिव माइंड, ओल्ड पाजिटिव ही होता है हमेशा। वह जो नया है वही निगेटिव होता है। निगेटिव का मतलब ही है कि जिसके पास अब कोई संग्रह नहीं है, जो बिल्कुल खाली है।
तो मैं जो कह रहा हूं शून्य, वह शून्य अगर ठीक से समझें तो मैं ऐसा कहता हूं कि शून्य ब्रह्म को जानने का द्वार है। शून्य तो मेथड है; शून्य तो विधि है; शून्य तो मार्ग है; जिसे हम जान लेते हैं शून्य से वह ब्रह्म है। और इसलिए शून्य और ब्रह्म में मैं विरोध नहीं मानता। और पाजिटिव और निगेटिव में भी विरोध नहीं मानता। निगेटिव जो है वह पाजिटिव के प्रकट होने का रास्ता है। लेकिन जैसे ही पाजिटिव प्रकट हुआ, निगेटिव ढंका, कि मिस्टेक शुरू हो गई। फिर पाजिटिव को हटाओ, ताकि फिर निगेटिव... और यह चलता ही रहे सतत और ऐसी स्थिति आ जाए कि माइंड पाजिटिव बने ही नहीं, चीजें बनें और विदा हो जाएं, बनें और विदा हो जाएं, और माइंड हमेशा निगेटिव हो, तो ही आप जान पाएंगे।
जैसे कि हम देखते हैं न, एक कैमरे से आप फोटो निकाल रहे हैं, निगेटिव प्लेट लगाई हुई है। वह जैसे ही चित्र बन जाता है, वह प्लेट व्यर्थ हो गई। वह जो निगेटिव थी वह पाजिटिव हो गई, उस पर कुछ बन गया, वह खत्म हो गई, वह खराब हो गई, वह व्यर्थ हो गई अब, एक चित्र बन गया और वह मर गई।
हमारा चित्त जो है बहुत कुछ कैमरे की प्लेट की तरह काम कर रहा है, और इसलिए बहुत जल्दी मर जाता है। बच्चे के पास भी बच्चे जैसा मन नहीं है।
बच्चे के पास भी बूढ़े जैसा मन है। यह फर्क हो सकता है कि बच्चे के पास दस साल के बूढ़े का मन है, सत्तर साल वाले के पास सत्तर साल के बूढ़े का मन है। लेकिन एक दिन के बच्चे के पास भी बच्चे का मन नहीं है, एक दिन के बूढ़े का मन है। वह एक दिन का इकट्ठा हो गया उस पर।
तो चाहे साहित्य हो, चाहे कला हो, चाहे दर्शन हो, चाहे धर्म हो, सारी प्रक्रियाओं में आपको निगेटिव से गुजरना ही पड़ेगा। और आप कितने निगेटिव रह सकते हैं उतना जिन्यून पाजिटिव आपके भीतर से प्रकट होता रहेगा।
तो मैं तो कहता भी नहीं कि शब्द बदलें, क्योंकि वह कोई जरूरत नहीं है।
और वह जो सामान्यजन जिसको हम कहते हैं--और किसी अर्थों में हम सब ही

सामान्यजन होते हैं--वह जो सामान्यजन का चित्त है वह पाजिटिव की मांग करता है, क्योंकि वह भयभीत है। और निगेटिव डराता है, क्योंकि निगेटिव अनजान है। और पाजिटिव जाना हुआ है। जो जाना हुआ है, पहचाना हुआ है, परिचित है-- सुरक्षा मालूम पड़ती है। अनजाना, अपरिचित--असुरक्षा मालूम पड़ती है, डर लगता है, मन जाने में घबराता है। ऐसे रास्ते पर चलो जो पहचाना हुआ है!
लेकिन ध्यान रहे, जो ऐसे रास्ते पर चलेगा जो पहचाना हुआ है, वह कहीं पहुंचेगा नहीं। क्योंकि पहचाने हुए पर घूमना ही हो सकता है, पहुंचना नहीं हो सकता। अगर पहचाने हुए से पहुंचना होता तो पहुंचना हो गया होता। वह तो पहचाना हुआ रास्ता है, उस पर तो हम चल चुके हैं, जान चुके हैं। नहीं पहुंचे हैं और फिर उस पर घूम रहे हैं, तो वह कोल्हू का बैल बन जाता है आदमी।
अनजान को खोजना पड़ेगा, जिस पर हम नहीं चले हैं। शायद उससे पहुंच सकें।
और रोज-रोज ही खोजना पड़ेगा। ऐसा नहीं है कि यह यात्रा किसी दिन पूरी हो जाती है। एक दिन आदमी कह देता है कि मैं ज्ञानी हो गया, बात खत्म! अब मैं ब्रह्मज्ञानी हो गया, अब मुझे कुछ जानने को शेष नहीं। ऐसा जो आदमी कहता है, उसने किसी अनुभव को पकड़ कर पाजिटिव हो गया वह। कोई अनुभव हो, कितना ही बड़ा अनुभव हो, बस वह वहीं रुक गया और मर गया, अब उसका जीवन न रहा। क्योंकि जीवन का अर्थ ही जानना है, जानना है, जानना है... और जीना है, और जीना है, और जीना है... । और जब हम कहते हैं कि अनंत है अस्तित्व! कहते हैं, अनंत है परमात्मा! तो उसका मतलब ही इतना है कि आप कितना ही जान लो, फिर भी जानने को अनंत सदा शेष है। आप कितना ही जी लो, फिर भी अनंत शेष है। आप कितना ही पा लो, फिर भी अनंत शेष है।
अगर पाए हुए को पकड़ लिया, तो ध्यान रहे, पाजिटिव हमेशा सीमित होगा, पाजिटिव असीमित नहीं हो सकता। निगेटिव ही असीम हो सकता है, शून्य ही असीम हो सकता है, बाकी तो सबकी सीमा होगी। तो जिसको जान लिया, पकड़ लिया, आप सीमित से बंध गए। और जो अनुभव गुजर चुका वह मर चुका!
मैंने कल आपको प्रेम किया था और उसको पकड़ कर बैठ गया हूं कि आपका प्रेमी हूं। न आप वह रहे; न मैं वह रहा; न दुनिया वह रही; कुछ भी वह नहीं रहा है अब। अब सिर्फ एक मरा हुआ अनुभव और एक स्मृति को पकड़ कर बैठा हुआ हूं। और आज जब आप मुझे मिलोगे, तो मैं उसी स्मृति को बीच में लेकर आपको देख रहा हूं। और तब तकलीफ शुरू हो गई, उपद्रव शुरू हो गया। क्योंकि वह आप आदमी नहीं हो, न मैं वह आदमी हूं, अब कुछ भी वह नहीं है। और वह मरा हुआ अनुभव बीच में खड़ा है। और इस तरह मरे हुए अनुभव बहुत से बीच में खड़े हो जाएं, तो हमारा जीवन से संपर्क ही टूट जाता है।
क्या पता अब, कल प्रेम किया था, आज नहीं भी प्रेम हो सकता है! इसीलिए तो प्रेमिका को हम पत्नी बना लेते हैं। पत्नी पाजिटिविटी है और प्रेमिका बिल्कुल निगेटिव है। कल प्रेमिका थी, आज नहीं भी हो सकती है। लेकिन पत्नी को हम पाजिटिव बना लेते हैं। क्योंकि वह कल भी थी, आज भी होना पड़ेगा, कल भी होना पड़ेगा; जब तक मर न जाए तब तक उसको पत्नी रहना पड़ेगा।
लेकिन पत्नी होने में ही प्रेमिका मर गई और प्रेम भी मर गया। और पत्नी
से प्रेम की अपेक्षा बिल्कुल पागलपन है। वह प्रेमिका से ही हो सकती थी-- जहां कि प्रेम के न मिलने की भी संभावना थी; जहां जरूरी न था कि प्रेम मिले--वहीं अपेक्षा भी हो सकती थी। अब तो अपेक्षा करना भी पागलपन है। अब तो प्रेम मिलेगा ही! और जो मिलेगा ही, वह व्यर्थ हो गया, उसमें कोई सार्थकता न रही। वह व्यवसाय हो गया, वह धंधा हो गया, सुरक्षा हो गई।
सारी चीजों के मामले में यह ध्यान रख लेना जरूरी है कि हमारा मन कोशिश करता है पाजिटिव बनाने की। और पाजिटिव बनाने की कोशिश इसलिए करता है कि मन की हिम्मत बहुत ज्यादा नहीं है, बहुत कमजोर है। सिक्योरिटी की मांग ज्यादा है, सत्य की मांग कम है। तो वह जो सुरक्षा की मांग ज्यादा है, वह कहती है, जो जाना है उसको पकड़ लो, अनजाने पर मत भटको, पता नहीं भूल जाओ, जो हाथ में है वह खो जाए।
मेरा कहना है कि जो है वह कभी नहीं खोता! इसलिए अनजान रास्तों पर भटकने में कोई डर नहीं है। जो नहीं है और झूठा आपके ख्याल में है कि है, वही खो सकता है। और अनजान रास्तों पर भटकते-भटकते आपका माइंड बदलता है पूरा का पूरा और धीरे-धीरे, धीरे-धीरे निगेटिव हो जाता है। निगेटिव का मतलब सिर्फ

इतना है कि जो कुछ नहीं पकड़ता, जो कहीं नहीं रुकता, जो कोई दीवार नहीं बनाता, जो सदा खुला है और मुक्त है और जिसके भीतर प्रवेश की अनंत संभावना है।
निगेटिव का मतलब क्या हुआ?
यह कमरा है, इस कमरे में हम आए हैं। ये दीवारें यह कमरा नहीं हैं। इन दीवारों के बीच में जो खाली जगह है वह कमरा है। और खाली जगह जितनी बड़ी होगी, कमरा उतना बड़ा होगा। यह खाली जगह अगर भरी हुई है तो इसके भीतर प्रवेश निषिद्ध हो जाएगा, मुश्किल हो जाएगा।
पाजिटिव माइंड भरा हुआ माइंड है, उसके भीतर नये का प्रवेश असंभव है।
और सत्य जो है वह नित नया है। अस्तित्व जो है वह नित नया है, वह प्रतिपल द्वार खटखटा रहा है कि खोलो, मैं भीतर आऊं! लेकिन यहां भीतर पाजिटिव माइंड, भरा हुआ माइंड है। वह कहता है, जगह नहीं है। वह कहता है, हमारे पास जो परिचित बैठे हैं वे ठीक हैं, अपरिचित को यहां जगह नहीं है। अपरिचित की झंझट में कौन पड़े! बामुश्किल इनसे हम परिचित हो पाए हैं अभी, जो अंदर आ गए हैं। अपरिचित को और कौन बुलाए! दरवाजा हम बंद करके बैठे हैं, परिचित में तृप्त हैं।
मर गया। वह रोज-रोज जो दस्तक दे रहा है नया अस्तित्व, उसके लिए द्वार बंद हो गए।
निगेटिव माइंड का मतलब हैः खाली कमरा, जिसमें कोई भरा हुआ नहीं है। जिसमें अतिथि आते हैं और चले जाते हैं, कोई ठहर ही नहीं जाता है। तो नये अतिथि के लिए रोज द्वार खुला हुआ है कि वह आ जाए, हम प्रतीक्षा में ही हैं कि वह आ जाए। नये की इतनी तीव्र प्रतीक्षा ही अंततः अस्तित्व से जोड़ पाती है, नहीं तो नहीं जोड़ पाती है। और जीवन से जोड़ पाती है, नहीं तो नहीं जोड़ पाती है।
तो निषेध और नकार और शून्य, वह जो विधेय जीवन है उसको जानने का द्वार है। उनमें कोई विरोध नहीं है। और सामान्यजन को इतनी विधायकता पकड़ाई गई है, इतना पाजिटिव पकड़ाया गया है--इसीलिए वह सामान्य है, नहीं तो वह भी असामान्य हो जाए। फर्क और कुछ है नहीं। एक असामान्य व्यक्ति में और एक सामान्य व्यक्ति में और क्या फर्क होता है? वह सामान्य पकड़े हुए है पाजिटिव को, इसीलिए सामान्य हो गया है। वह भी छोड़ दे, उसकी भी रूट्स टूट जाएं वहां से, जड़ें उखड़ जाएं, वह भी असामान्य हो जाए। वह भी असामान्य हो जाए, वह भी उतर जाए उसी यात्रा पर।
तो न तो मैं शब्द बदलना चाहता हूं, बल्कि जोर देना चाहता हूं कि शून्य शून्य ही है। और हिम्मत जुटाओ उसमें कूदने की! और जितनी हिम्मत जुट जाएगी उसमें कूदने की... ।
एक छोटी कहानी मैं कहता रहता हूं इस संबंध में, कि एक आदमी है, वह दुनिया का अंत खोजने के लिए निकल पड़ा है। बहुत लोग समझाते हैं कि दुनिया का अंत कभी कोई खोज पाया है? और दुनिया क्या कहीं अंत होती है? तू किसलिए पागल हुआ है? लेकिन जितना लोग समझाते हैं उतनी ही उसकी जिद बढ़ जाती है कि जब कोई नहीं खोज पाया तो मैं कोशिश तो करूं! और वह खोजते-खोजते एक जगह पहुंच जाता है जहां आखिरी जगह आ जाती है, आखिरी मंदिर आ जाता है। और वह मंदिर का पुजारी कहता है, और आगे मत जाना, क्योंकि थोड़ी ही दूर जाकर दुनिया खत्म हो जाती है। वहां जाना ही मत, क्योंकि उस दुनिया के अंत होने को देखना ही बहुत घबराने वाला है। यह मंदिर हम इसीलिए बनाए हुए हैं कि कभी कोई भूला- चूका इधर आ जाए तो उसे आगे न जाने दें। लेकिन वह आदमी कहता है, मैं तो उसकी खोज में ही निकला हूं। मैं रुकूंगा नहीं। मैं आया ही उसकी खोज में हूं। वह आदमी आगे गया। वहां एक तख्ती लगी है, जहां लिखा है कि हियर एंड्स दि वर्ल्ड। यहां खत्म होती है दुनिया। आगे मत जाओ, सावधान! लेकिन उसे तो जाना ही है, वह तो उसे ही देखने आया है। लेकिन उस तख्ती के पास पहुंच कर ही उसके प्राण घबराने लगते हैं, क्योंकि उसे पहली दफा ख्याल आता है कि जहां दुनिया खत्म हो जाएगी वहां मैं कैसे बचूंगा! मैं तो दुनिया का एक हिस्सा हूं! और सच में अगर दुनिया खत्म होती है तो मैं कैसे बचूंगा! उसके पैर लड़खड़ाने लगते हैं। क्योंकि दुनिया जहां खत्म होगी वहां मैं भी खत्म हुआ! मैं कैसे

बचूंगा! दुनिया का अंत तो देखना चाहता हूं, लेकिन मैं तो बच जाऊं। फिर भी वह कहता है कि दो-चार कदम तो आगे बढ़ कर देखो!
वह दस-पांच कदम आगे जाता है--खड्ड आ गया अनंत, जहां आगे शून्य ही शून्य है, नीचे शून्य ही शून्य है, बाटमलेस! न कोई नीचे तल है, न ऊपर कोई तल है, न आगे कोई तल है। सिर घूम जाता है। वह एकदम भागता है कि कहीं ऐसा न हो कि इस गड्ढ में मैं गिर जाऊं। क्योंकि सब गड्ढे देखे थे, वे निकलने वाले थे, जिनसे निकला जा सकता था। यह गड्ढा ऐसा है कि इसमें से निकल ही न सकूंगा; क्योंकि यह गड्ढा ऐसा है कि इसमें गिर ही नहीं सकूंगा! इसमें तो गिरता ही जाऊंगा, गिरता ही रहूंगा... ऐसा कभी वक्त ही नहीं आएगा कि मैं कह सकूं कि गिर गया, जगह आ गई नीचे टिकने वाली। नीचे तो कोई जगह ही नहीं है टिकने वाली। वह भाग कर घबराता है, वह उलटा लौट पड़ता है एकदम। आकर मंदिर की सीढ़ियों पर गिर पड़ता है, बेहोश हो जाता है।
वह पुजारी उसे हिलाता है, पानी छिड़कता है, पूछता है--क्या हुआ? वह कहता है, जो कुछ हुआ उसकी याद भी मत दिलाओ। क्योंकि जो देखा वह बहुत घबराने वाला था। वह पुजारी पूछता है, तख्ती के उस तरफ भी तूने पढ़ा था कुछ? उसने कहा, नहीं; मैं तो घबरा कर भाग आया हूं, दूसरी तरफ क्या लिखा था वह मैंने नहीं पढ़ा है। तो वह पुजारी उसको कहता है, दूसरी तरफ लिखा था--यहां परमात्मा शुरू होता है। अगर तू कूद ही जाता... । मगर तू वापस लौट आया है, अब फिर तुझे जन्म-जन्म लग जाएंगे। क्योंकि वह तख्ती अब उसी जगह न मिलेगी। क्योंकि सब चल रहा है, कहीं कुछ ठहरा नहीं है। अगर तू वापस भी लौट कर जाए तो वह तख्ती उसी जगह नहीं मिलेगी और वह अंत भी उस जगह नहीं मिलेगा। अब फिर जन्म-जन्म लग जाएंगे तब तू पहुंच पाएगा। अब की दफे ख्याल रखना, अगर वह गड्ढ आ जाए जहां सब खत्म हो जाता है तो तू भी कूद जाना। क्योंकि वहां तू पहली दफे कूद कर पाएगा कि सब हो गया।
शून्यमय होकर ही कोई पाता है कि सब हो गया। और यह जिसको हम कहते हैं ब्रह्मवादी और ईश्वरवादी और आत्मवादी, यह कोई नहीं पा सकता; क्योंकि यह सब पाजिटिव को पकड़ता है। यह कहता है कि ईश्वर है! उसके हम चरण पकड़े हुए बैठे हैं और भजन-कीर्तन कर रहे हैं। यह मिटने वाला आदमी नहीं है, यह मिटने की हिम्मत इसकी नहीं है। यह तो और परमात्मा को भी पकड़ कर अपने को बनाने की कोशिश में लगा हुआ है। यह नाच रहा है, कूद रहा है, प्रसन्न हो रहा है, आनंदित हो रहा है, इसलिए कि भगवान मिल गए हैं। यह मरने से डरता है; मिटने से डरता है; शून्य होने से डरता है। इसने भगवान को भी शून्य से बचने की आखिरी तरकीब बना ली है। यह आदमी कभी सत्य को नहीं जान पाता! यह अपने ही मन के किसी प्रोजेक्शन को, कल्पना को जानता रहता है। सुख भी पाता है, लेकिन उसे नहीं जान पाता जो है। और उसे जानना हो तो किसी न किसी तरह शून्य के खड्ड से गुजरना ही पड़ेगा, उसमें गिरना ही पड़ेगा; वह चाहे किसी दिशा से कोई गिर जाए। इधर मैं मानता हूं कि नई कला उस शून्य के गड्ढे के आस-पास भटक रही है।
वह तख्ती के आस-पास है, जहां लिखा है--यहां खत्म होता है सब। और इसलिए सब मापदंड गड़बड़ हो गए हैं, सब रंग-रेखा गड़बड़ हो गई है। इसलिए कुछ झांकना शुरू हुआ है जो निगेटिव है, उससे पाजिटिव खो गया है, साफ शक्ल नहीं रह गई है अब। क्या है, यह भी कहना मुश्किल है।
वह पेंटर भी पेंट करके यह नहीं कह सकता कि क्या है यह। यह उसने जो पेंट किया है यह क्या है। पाजिटिव होता तो वह कहता कि यह भगवान कृष्ण मुरली बजाते हुए खड़े हैं। वही पेंट किया था उसने कल तक, सब साफ-सुथरा था, चीजों की रेखाएं थीं, कहीं सब गड्ड-मड्ड नहीं हो जाता था। अब सब गड्ड-मड्ड हो गया है। अब सिर्फ उसकी फ्रेम भर साफ रह गई है, बाकी भीतर फ्रेम के जो है वह सब गड़बड़ हो गया है। और इसलिए फ्रेम खो जाएगी, बहुत ज्यादा दिन तक पेंटिंग पर फ्रेम नहीं चल सकती है। क्योंकि वह जो अंदर बनाया जा रहा है वह फ्रेम में बैठने वाला नहीं है। फ्रेम पुरानी है। फ्रेम पुरानी है, जहां सब ढांचे में बैठता था उसके चारों तरफ फ्रेम थी। पेंटिंग कहीं शुरू होती थी, कहीं खत्म होती थी। अब वह न कहीं शुरू होती है, न वह कहीं खत्म होती है। अब वह एक अनंत शून्य के साथ साक्षात्कार कर रही है। और उस साक्षात्कार में कुछ हो रहा है जो कभी नहीं हुआ था।

इसलिए मैं मानता हूं कि अब तक पुरानी पेंटिंग ने कैमरे का काम किया था, फोटोग्राफ का काम किया था। कैमरा नहीं भी था, उसकी जरूरत थी, उसने पूरी कर दी थी। पहली दफा पेंटिंग फोटोग्राफ से मुक्त हो रही है, कैमरे से मुक्त हो रही है। और वहां आ रही है, जहां चीजें जैसी हैं। लेकिन चीजें जैसी हैं उनके साथ शून्य जुड़ा हुआ है। और इसलिए मुश्किल होता चला जा रहा है।
सब तरफ वह हो रहा है। काव्य भी वहीं पहुंच रहा है जहां अर्थ खो जाएगा। क्योंकि जब तक काव्य में अर्थ है तब तक शून्य प्रकट नहीं हो सकता। और जब तक अर्थ की बंधी हुई व्यवस्था है, तब तक वही प्रकट होगा जो सीमा में आता है। इसलिए उपनिषद भी जो नहीं कह सके और लाओत्से जैसे लोग जो नहीं कह सके, हो सकता है आने वाले दिनों की कोई पेंटिंग, कोई कविता उसे कहेगी। लेकिन उसे समझना मुश्किल हो जाएगा! उसे समझना मुश्किल हो जाएगा। और उसके आस-पास भटकने वाला अगर पागल हो जाए तो आश्चर्य नहीं है।
इधर मेरी समझ यह है कि जिनको हम संत कहते हैं, महात्मा कहते हैं, इनमें
से मुश्किल से ही कभी कोई शून्य के पास से गुजरता है। ये सब विधेय के, पाजिटिव के पास ही घूमते रहते हैं।
शून्य के पास से कुछ लोग गुजरते हैं, जैसे नीत्शे जैसा आदमी गुजरता है, तो पागल हो जाता है! पहुंच गया वहां जहां दुनिया खत्म होती है। छलांग लगा लेता तो कुछ बात हो जाती। छलांग नहीं लगाता है, लौट पड़ता है। फिर वह पागल हो जाता है। क्योंकि शून्य को देखने के बाद लौट कोई अगर आए तो पागल हुए बिना और कोई रास्ता नहीं रह जाएगा! कूद जाए तो सब कुछ बदल जाए, और लौट आए तो सब मुश्किल हो जाए।
इधर पचास वर्षों में दुनिया के श्रेष्ठतम चिंतन करने वाले, चित्रण करने वाले, गीत गाने वाले, सभी पागल होने के करीब पहुंच गए हैं। वे कहीं शून्य के आस-पास भटक रहे हैं। उस वक्त जो छलांग लगा जाएगा वह उस अवस्था में हो जाएगा जहां बुद्ध या लाओत्से जैसा आदमी कभी प्रवेश करता है। लौट आएगा, तो इस दुनिया में पागल हो जाएगा वह! क्योंकि जो वह देख आया है, अब उसको भुला भी नहीं सकता! जिसके करीब की झलक पा ली, उसे मिटा भी नहीं सकता! और अब कभी, जो यहां चारों तरफ है, उससे वह राजी नहीं हो सकता! क्योंकि उसने कुछ और भी देखा है जिसका इससे कोई मेल नहीं है, ताल-मेल नहीं है।
जो सारी, जिसको क्राइसिस कहें, इस वक्त जो संकट है सारी मनुष्य-जाति
के चित्त पर वह यह है कि हमारी ट्रेनिंग पाजिटिव माइंड की है और सारी विकास की स्थिति वहां ले जा रही है जहां निगेटिव माइंड पैदा होना चाहिए। पाजिटिव माइंड की ट्रेनिंग है, निगेटिव के करीब घूम रहे हैं, मुश्किल हो रही है।
इसलिए मेरा कहना है कि हमें निगेटिव माइंड की ट्रेनिंग देनी चाहिए।
और तब नीत्शे पागल नहीं होगा; और तब हमारा वानगाग भी पागल नहीं होगा। और तब हमारा सामान्य आदमी भी निगेटिव से जो निकलता है उसको पहचान सकेगा, पकड़ सकेगा। वह उसे देख सकेगा कि हां, इसमें भी कुछ है। वह यह नहीं पूछेगा--क्या है? वह यही देख सकेगा जो है।
अभी एक पेंटिंग के पास खड़े होकर एक आदमी पूछता है, यह क्या है? जब तक सामान्य आदमी पूछ रहा है, यह क्या है? तब तक समझना चाहिए कि उसकी कोई निगेटिव माइंड की ट्रेनिंग नहीं हो पाई किसी तरह की। फिर वह देखेगा।
अभी हम एक वृक्ष के पास खड़े होकर नहीं पूछते कि यह क्या है। दो फूल क्यों खिले, यह भी नहीं पूछते। चांद ऐसे ही इसी जगह क्यों अटका हुआ है, यह भी नहीं पूछते। चीजें हैं! लेकिन एक पेंटिंग के पास खड़े होकर हम पूछते हैं--ऐसा क्यों है? यह क्या है? ऐसा क्यों बनाया है?
तो सारी दुनिया को निगेटिव माइंड की ट्रेनिंग की जरूरत है। हम जिस दुनिया से गुजर गए हैं, वह पाजिटिव माइंड की थी, वह बचकानी थी, वह गई। अब एक अत्यंत प्रौढ़ दुनिया आएगी जो निगेटिव माइंड की होगी। बीटल हैं, हिप्पी हैं, बीटनिक हैं, ये सब निगेटिव माइंड के आस-पास परेशान हो रहे हैं। और अगर आप ट्रेनिंग नहीं देते, तो ये सब पागल हो जाने वाले हैं। तो निगेटिव माइंड की, शून्य की चर्चा भी होनी चाहिए, साधना भी होनी चाहिए।
मैं तो जो साधना शिविर रखता हूं वह शून्य के ही लिए है। यानी कैसे एक आदमी थोड़ी देर के लिए सही, चौबीस घंटे न सही, पंद्रह मिनट के लिए बिल्कुल

शून्य हो जाए। थोड़ा तो पहुंचे वहां जहां सब खो जाता है। और इसका अगर थोड़ा सा प्रयोग बढ़े, तो आपके जीवन में एक नया ही द्वार खुलता है जिसका आपको कोई ख्याल भी नहीं था। और वहीं से वे किरणें आनी शुरू होती हैं जो सत्य की हैं। तो मैं तो शून्य को ही ब्रह्म कहता हूं। और जिसकी शून्य की तैयारी है,
वह ब्रह्म का अधिकारी हो गया। जिसकी शून्य की तैयारी नहीं है, वह ब्रह्म का अधिकारी नहीं है। और शून्य के पहले जिस ब्रह्म को आप मान लेते हैं, वह झूठा है, माना हुआ है। और केवल कंफर्टेबल है, आपको थोड़ी सी सुविधा में कर देता है, इससे ज्यादा उसका कोई मूल्य नहीं है।

व्हाई वन शुड ट्राई टु नो दि अननोएबल?

हां! आप पूछते हैं कि क्यों कोई जानना चाहे अज्ञात को, अननोएबल को, अननोन को? अज्ञेय को क्यों कोई जानना चाहे?
जैसे ही हम यह पूछते हैं--क्यों कोई जानना चाहे? वैसे ही हम बता देते हैं कि "क्यों" हमारे भीतर है। और "क्यों" हमें बेचैन करता है। वह जो व्हाई है, वह हमें बेचैन करता है। यानी इसे भी हम सीधा स्वीकार नहीं कर सकते कि अज्ञेय को हम जानें। हमारा मन पूछता है--क्यों? हमारा मन यह भी पूछता है-- क्यों है अज्ञेय? क्या है अज्ञेय? क्यों है? है भी क्यों? और हम भी क्यों जानना चाहते हैं?
अगर बहुत गौर से देखा जाए कि हम क्यों जानना चाहते हैं अज्ञेय को? यह
भी अज्ञेय को ही जानने की कोशिश हुई। यह भी अज्ञेय को ही जानने की कोशिश हुई, क्योंकि यह भी बिल्कुल अज्ञेय है कि मैं क्यों जानना चाहता हूं?
तो मेरा कहना यह है कि वह जो ह्यूमन स्प्रिट है, वह जो मनुष्य की आत्मा है, अज्ञेय को जानने की जो आकांक्षा है, वही है। इस पूरे जगत में आदमी भर पूछ रहा है। और सब आदमी भी नहीं पूछ रहे हैं। "क्यों" और "क्या" आदमी पूछ रहा है। आदमियत का हिस्सा है वह। आदमी होने की नियति और भाग्य है वह। हम रुक ही नहीं सकते। हम आदमी हुए और हम पूछेंगे। और हमारे भीतर विवेक हुआ और हम पूछेंगे कि क्यों अस्तित्व है? क्यों हम हैं? क्यों यह सब है? यह न होता तो हर्ज क्या था? यहां बैठ कर हम बात कर रहे हैं, यह बात न हुई होती तो हर्ज क्या था? क्या फर्क पड़ता था? यह क्यों हो रही है? यह हम क्यों इकट्ठे हो गए हैं? यह हम बिना पूछे नहीं रह सकते, यह पूछना ही पड़ेगा। यह जो क्वेस्ट है, यह जो पूछना है, यह पूछना ही मनुष्य की आत्मा है। यानी यहीं से मनुष्य शुरू होता है--इस पूछने से, इस जिज्ञासा से। और इसलिए इस जिज्ञासा पर "क्यों" नहीं लगाया जा सकता। क्योंकि वह बेमानी है। इस जिज्ञासा पर कि "हम क्यों जिज्ञासा करें?" यह तो जिज्ञासा ही हुई। इसलिए जिज्ञासा पर कोई "क्यों" नहीं जोड़ा जा सकता, क्योंकि वह फिर जिज्ञासा ही रहता है। मेरी आप बात समझ रहे हैं न?
और तब एक तरह का, जिसको वे इनफिनिट रिग्रेस कहते हैं लाजिक में, वह हो जाता है खड़ा। हम पूछें--क्यों जिज्ञासा कोई करे? फिर हम पूछें कि जिज्ञासा पर भी कोई क्यों पूछे? यह बात तो कुछ मतलब की होती नहीं। इतना तय है कि जिज्ञासा है। और जिज्ञासा है और वह मनुष्य की चेतना जितनी विकसित होती है उतनी तीव्र होती है।
जिज्ञासा को भुलाने की कोशिश भी हम करते हैं। क्योंकि वह बड़ी बेचैन करने वाली है, वह घबराने वाली है। शराब पी लेते हैं, ताकि "क्यों" से छुटकारा हो जाए। यह न पूछें कि क्यों? नींद ले लेते हैं, बेहोश हो जाते हैं, मैस्कलीन ले रहे हैं, लिसर्जिक एसिड ले रहे हैं। वह "क्यों" मिट जाए हमारे भीतर से। लेकिन वह "क्यों" मिटता नहीं; वह "क्यों" खड़ा है।
जरूर विराट प्रयोजन में उसका कोई अर्थ है। क्योंकि जैसे ही बुद्धि थोड़ी विकसित हुई कि वह "क्यों" खड़ा हुआ है। छोटा सा बच्चा भी उस "क्यों" से मुक्त नहीं है। एक चींटा चला जा रहा है, वह उसको मार डालता है। हम शायद सोचते हों कि वह चींटे का दुश्मन है। न; वह सिर्फ यह जानना चाहता है कि यह क्यों चल रहा है? क्या चल रहा है? इसके भीतर क्या है? जो चल रहा है वह क्या है? वह उसे तोड़ कर... । वह न चलने वाली चीज की उतनी फिकर नहीं करता, लेकिन

चलने वाली चीज को छोटा सा बच्चा भी मसल कर देखना चाहता है--मामला क्या है? यह क्या हो रहा है? यह क्यों चल रहा है? यह गति कहां है?
"क्यों" हमारे भीतर है। मानना चाहिए कि "क्यों" ही मनुष्य की आत्मा है--दि व्हाई। और इसलिए जितना विकास होगा आदमी का, उतना वह जो "दि व्हाई" है वह बढ़ता चला जाएगा। और आखिरी सीमा पर जब टोटल समग्र रूप से मनुष्य पूछता है--क्यों? समग्र रूप से वह तभी पूछ सकता है जब अब उसके चित्त में कोई भी रेडीमेड उत्तर न रह गया हो, यानी पाजिटिव माइंड पूरा खत्म हो गया हो। पाजिटिव माइंड नहीं पूछता कि क्यों? वह कई चीजों को मान लेता है, इसीलिए पाजिटिव है। वह मान लेता है, वह शक ही नहीं करता, वह संदेह ही नहीं करता, वह डाउट ही नहीं करता। पाजिटिव माइंड मान लेता है। मान लेना, वह जो बिलीविंग माइंड है, वह पाजिटिव माइंड है। वह जो डाउटिंग माइंड है, वह निगेटिव माइंड है। और जिस दिन डाउट टोटल होता है, जिस दिन पूर्ण हो गया संदेह, उसी दिन छलांग लग जाती है। उसी दिन छलांग लग जाती है, आप वहां खड़े हो जाते हैं जहां "व्हाई" का उत्तर है।
लेकिन उस उत्तर को आज तक कोई यहां नहीं ला सका। उसे जान कर भी वह लौट
कर यही कहता है कि जो जाना है वह कहा नहीं जा सकता। लेकिन जब तक वह नहीं हम उसमें छलांग में गुजर जाते, वह "व्हाई" हमको पीछे धक्का मारता चलेगा, मारता चलेगा, मारता चलेगा। और जो आदमी जितना ज्यादा पूछ रहा है उतना ही ज्यादा आदमी है। और जो जितना कम पूछ रहा है उतना ही कम आदमी है। यानी मेरे लिए तो ह्यूमन स्प्रिट यानी पूछना, यानी संदेह, यानी स्वीकार न कर लेना जैसा जो कुछ है, कुछ भी स्वीकार न कर लेना।
वह जो अस्वीकृति की शक्ति और संदेह की जो जिज्ञासा की तीव्र कामना है भीतर, वही मनुष्य-आत्मा है। और वह है। और यह नहीं पूछा जा सकता कि वह क्यों है। क्योंकि यह तो बैगिंग दि क्वेश्चन, यह तो फिर वही बात हो गई। वह क्यों है, यह नहीं पूछा जा सकता। "क्यों" क्यों है, यह बात नहीं पूछी जा सकती। वह है, ऐसा है।

यह नहीं है कि हर निगेटिव माइंड की स्मृतियां अपने मार्ग पर हट कर हम क्या हम कुछ समझ यूं भर नहीं लेते जो हमें हर आने वाली निगेटिव माइंड की एप्रोच को बढ़ावा दें या तो जानने की कोशिश में मदद करें?

निगेटिव माइंड को आपका संग्रह किया हुआ कोई भी बढ़ावा नहीं दे सकता।
यह ऐसा ही है, जैसे एक आदमी कहे कि मैं भिखारी होना चाहता हूं, और संपत्ति इकट्ठा करता हूं ताकि संपत्ति मेरे भिखारीपन को बढ़ावा दे। आप मेरा मतलब समझे न? भिखारी होने का मतलब ही संपत्तिहीन होना है। एक आदमी कहता है कि मैं संपत्ति इसलिए इकट्ठा करता हूं कि कल जब मैं भिखारी होऊं तो मुझे सुविधा रहे भिखारी होने में। यह तो उलटी बात हो गई न!
निगेटिव माइंड का मतलब यह है कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं, ऐसी स्थिति मेरी निरंतर बनी रहे। तो जो भी मैं जान लूंगा वह इसमें बाधा बनने वाला है, सहयोगी बनने वाला नहीं है। क्योंकि वह उसको कम करेगा, उसको कम करेगा। हमें ख्याल ही नहीं रह जाता धीरे-धीरे कि हम कुछ भी नहीं जानते हैं। और इतना ज्ञान इकट्ठा कर लेते हैं कि मुश्किल हो जाती है।
एक मुसलमान फकीर हुआ है, बायजीद। वह एक गांव से गुजर रहा है। सांझ का वक्त है, और आज दिन भर से उसे कोई नहीं मिला है, रास्ता भटक गया है। एक छोटा सा बच्चा एक दीया जला कर मंदिर की तरफ जा रहा है। उस बच्चे को रोक कर वह पूछता है कि दीया तूने ही जलाया? कहां ले जा रहा है? तो वह बच्चा कहता है, मंदिर में चढ़ाने जा रहा हूं और दीया मैंने ही जलाया है। तो बायजीद पूछता है, तूने ही जलाया है, तेरे सामने ही ज्योति जली है, तो तू बता सकता है कि यह ज्योति आ कहां से गई इस दीये में? कहां से आई, कैसे आई? वह बच्चा बायजीद को देखता है और फूंक मार कर दीये को बुझा देता है और बायजीद से कहता है, ज्योति चली गई बिल्कुल आपके सामने; वह कहां चली गई और कैसे चली गई, आप बताएंगे? तो फिर मैं भी कुछ सोचूं कि वह कहां से आई थी! तो बायजीद खड़ा रह जाता है। फिर उस बच्चे के पैरों पर गिर पड़ता है और वह कहता है कि मुझे बड़ा भ्रम था कि मैं जानता हूं कि जीवन कहां से आया और कहां जाता है। सच तो यह है

कि तूने मुझे अज्ञान में पटक दिया। अब मैं इस ज्योति को भी नहीं जानता कि यह कहां चली गई है। लेकिन तूने मुझ पर बड़ी कृपा की। जिन गुरुओं के पास मैंने बहुत कुछ सीखा उनसे भी मुझे इतना नहीं मिला। और आज तेरे पास से मैं यह सीख कर जाता हूं कि कुछ भी नहीं जानता हूं। यह भी नहीं जानता हूं कि यह ज्योति कहां चली गई है।
एक ज्ञान का सीखना है, और मैं मानता हूं कि एक अज्ञान का सीखना भी है। अज्ञान का सीखना ही निगेटिव माइंड को पैदा करने का रास्ता है और ज्ञान का सीखना पाजिटिव माइंड को पैदा करने का रास्ता है। सारी संस्कृति, सारी सभ्यता, सारे विद्यालय, सारे गुरु, सारे शिक्षक पाजिटिव माइंड को पैदा करवा रहे हैं। और इसीलिए तो यह होता है--विश्वविद्यालय से निकले हुए आदमी में प्रतिभा खत्म हो जाती है। उसका कारण है। पाजिटिव माइंड मजबूत हो जाता है और निगेटिव माइंड नहीं रह जाता उसके पास। इसीलिए यह हुआ आज तक कि विश्वविद्यालय में जो नहीं गए थे उन्होंने कुछ आविष्कार भी किया हो, कुछ खोजा भी हो, लेकिन वह विश्वविद्यालय में जाने वाला एकदम मुर्दा हो जाता है। उसके पास पाजिटिव माइंड मजबूत है। और जो भी जाना जा सकता है, खोजा जा सकता है, वह हमेशा निगेटिव माइंड का काम रहा है।
हेनरी थारो पढ़ कर लौटा है। उसके गांव में लोगों ने स्वागत किया। एक बूढ़े ने एक बात कही उस स्वागत में। एक बूढ़े ने यह कहा कि हम हेनरी थारो का स्वागत इसलिए कर रहे हैं कि यह लड़का विश्वविद्यालय से बिना बिगड़े हुए घर वापस आ गया। इसे विश्वविद्यालय बिगाड़ नहीं पाया। यह अब भी पूछता है, यह अब भी शक करता है! यह अब भी अज्ञानी होने की हिम्मत रखता है, अब भी! वह सब जो ज्ञान था, इसको ज्ञानी नहीं बना पाया।
तो यह तो सोचिए ही मत कि वह जो हम इकट्ठा कर लेंगे वह हमें दीन बनने में सहयोगी होगा। जीसस का एक शब्द है--पुअर इन स्प्रिट। वह निगेटिविटी का अर्थ हुआः पुअर इन स्प्रिट। जो भीतर से दरिद्र है! और एक ही समृद्धि है भीतर--अनुभव की और ज्ञान की। भीतर और कोई समृद्धि नहीं है। न तो रुपया ले जा सकते आप भीतर, न कुछ और ले जा सकते। लेकिन ज्ञान भीतर जाता हुआ मालूम पड़ता है, अनुभव भीतर जाता हुआ मालूम पड़ता है। और वह समृद्ध हो जाता है आदमी। बाहर जिनके पास पैसे हैं, वे भी अकड़े हुए हैं। और भीतर जिनके पास अनुभव या ज्ञान इकट्ठा हो गया है, वे भी अकड़े हुए हैं। और बाहर की अकड़ से भीतर वाले की अकड़ ज्यादा है, क्योंकि वह सोचता है कि न मुझसे चोर चुरा सकते, न मुझसे छीना जा सकता, न मुझसे कुछ लिया जा सकता; उसकी अकड़ और ज्यादा है। तो पुअर इन स्प्रिट नहीं है वह।
लेकिन किसी भी दिशा में, जहां भी जानना हो, पुअर इन स्प्रिट, वह आंतरिक
एक दीनता। और दीनता का मतलबः वह आंतरिक एक निषेध, जहां समृद्ध होने का ख्याल नहीं है। मेरे पास कुछ भी नहीं है। और इस भाव को लेकर जहां भी खड़े हो जाएंगे वहीं बहुत कुछ दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा।

व्हाई डू यू आंसर अवर क्वेश्चंस?

जैसे ही, जैसे ही हम पूछते हैं कि क्यों आप हमारे प्रश्न का उत्तर देते हैं? तो बहुत कारण हो सकते हैं आपके प्रश्न के उत्तर देने के। मेरा कारण यह है ताकि और प्रश्न उठा सकूं। मेरा कारण यह है। मैं आपको कोई उत्तर देता ही नहीं। मैं आपको उत्तर देना ही नहीं चाहता। क्योंकि मैं कौन हूं जो उत्तर दे दे? और मेरा उत्तर आपका उत्तर कभी हो नहीं सकता है। तो मेरी तो सारी चेष्टा, जो मैं उत्तर देता हुआ भी मालूम पड़ता हूं, वह इसीलिए है कि आपके भीतर प्रश्न और गहरा हो जाए, और विकराल हो जाए, और कठिनाई में डाल दे। और एक प्रश्न हल न हो, दस खड़े हो जाएं, हजार खड़े हो जाएं, और आपके भीतर प्रश्न ही प्रश्न हो जाएं। क्योंकि मुझे लगता यह है कि जितना प्रश्न हमारे भीतर बड़ा होता चला जाता है, उतनी ही आत्मा हमारी बड़ी होती चली जाती है। और आत्मा बड़ी हो... ।

आपकी या और दूसरे की आत्मा बड़ी होती है?

सच बात तो यह है कि हम और दूसरे इतने अलग-अलग नहीं हैं जितने मालूम होते हैं। अगर आपकी आत्मा बड़ी होती है तो यह असंभव है कि मेरी बड़ी न हो जाए उसके साथ ही। मुझे पता न चले, यह हो सकता है। एक सुकरात पैदा होता है तो सारी मनुष्यता की आत्मा में कुछ बढ़ावा आता है। जो किसी को पता चले या न चले, यह सवाल नहीं है बड़ा। तो मेरी आत्मा कोई ऐसी अलग टूटी हुई चीज नहीं है कि अकेली बड़ी हो जाए। बड़ी होगी तो साथ बड़ी होगी, छोटी होगी तो साथ छोटी हो जाएगी। हम थोड़ा आगे-पीछे हो सकते हैं, अलग-अलग नहीं हो सकते।
एक लहर आगे भागी चली जा रही है। उसके पीछे दूसरी लहर भागी चली आ रही है। लेकिन दो लहरें अलग नहीं हैं, आगे-पीछे हो सकती हैं।
बुद्ध आगे हो सकते हैं, मैं पीछे हो सकता हूं, अलग-अलग नहीं हो सकते। अंततः अगर गौर से देखें तो पूरी मनुष्य-आत्माएं एक साथ ही बड़ी होती हैं।
और यह जो बड़े होने की चेष्टा है--तो जब मैं आपके बड़े होने की कामना कर रहा हूं तो जाने-अनजाने अपने को ही बड़ा कर रहा हूं। हम सब चाहे छोटे हों तो हम दूसरे को छोटा करते हैं और बड़े हों तो हम दूसरे को बड़ा करते हैं। हम इतने अलग-अलग नहीं हैं, हम इकट्ठे हैं।

आपने इस प्रश्न का समाधान किया कि यह शून्य के बारे में जो एप्रोच है,
वह इतना निगेटिव नहीं है, जितना उसके ऑन दि फेस पर दिखाई देता है। अब इसकी जो निगेटिव ट्रेनिंग की पासिबिलिटी आपने सामने रखी है, वह शायद एक नये प्रकार के कर्म की या आचरण की व्यक्ति की प्रगति के लिए कल्पना हो सकती है। तो क्या वह व्यक्ति के लिए ही है या इस प्रकार की निगेटिव ट्रेनिंग का कंसेप्शन कुछ सारे समाज के लिए भी आप रखते हैं?

बिल्कुल, बिल्कुल, सारे समाज के लिए ही! क्योंकि मैं मानता ही नहीं कि
ये जो हमने विभाजन कर रखे हैं व्यक्ति और समाज के, ये सच में कहीं हैं।

वह प्रश्न पूरा तब होगा जब इसके पीछे एक संदेह और लगाया जाए कि जो इस प्रकार का निगेटिव ट्रेनिंग का कंसेप्शन इंडिविजुअल और उसको सोसाइटी के लिए किसी प्रकार के आर्ट के फार्म में और प्रैक्टिसिंग लाइन के फार्म में रखा जाए, तो क्या वह अनार्की तक नहीं पहुंचाएगा?

पहुंचाना ही चाहिए! अनार्की एकमात्र सुव्यवस्था है, बाकी सब अव्यवस्था है। बाकी सब अव्यवस्था है। अराजक जिस दिन हम समाज को बना सकेंगे, उसी दिन समाज पूरी तरह प्रकट होगा। जो थोड़ा-बहुत समाज कहीं प्रकट होता है, वह अराजक लोगों से प्रकट होता है।
तो यह तो अंतिम ख्याल है कि किसी दिन समाज उस जगह पहुंच जाए, जहां अराजक हो सके। अराजक होने की सारी सुविधा हम जुटा दें कि पूरा समाज अराजक हो सके, उस दिन समाज पूरी तरह प्रकट होगा, सारे रूपों में प्रकट होगा। अराजकता जो है वह विकास की अंतिम कामना है, वहां विकास पूरा होगा--जहां एक-एक आदमी पर कोई रोक नहीं, कोई बंधन नहीं, जहां कोई सीमा नहीं, जहां कोई दीवार नहीं, जहां कोई कानून नहीं, लोग जीते हैं अपने स्वभाव से।
और यह अगर हम समझें ठीक से, तो निगेटिव माइंड जितना विकसित होगा उतनी अराजकता अराजकता नहीं रह जाएगी। अराजकता की अपनी डिसिप्लिन है। आप समझ रहे हैं न? अराजकता सिर्फ डिसिप्लिन का अभाव नहीं है, अराजकता की अपनी डिसिप्लिन है, अपना अनुशासन है। लेकिन वह आंतरिक है और बाह्य नहीं है। निगेटिव माइंड की भी अपनी डिसिप्लिन है, लेकिन वह आंतरिक है, बाह्य नहीं है। पाजिटिव माइंड की सब डिसिप्लिन बाहर से है। और इसीलिए पाजिटिव सोसाइटी की भी सब डिसिप्लिन बाहर से थोपी जाएगी--कानून से, पुलिस से, अदालत से। निगेटिव माइंड की डिसिप्लिन भीतर से आती है। वह उसकी सहजता से, स्पांटेनिटी से आती है।
तो हम जैसे ही किसी आदमी को निगेटिव बनाने की दिशा में गतिमान होते हैं, वैसे ही उसके भीतर से एक आंतरिक अनुशासन जगना शुरू होता है। और अगर पूरा समाज कभी भी... आखिरी कामना तो वह होनी चाहिए कि पूरा समाज ऐसा हो कि स्वभाव से चलता हो, भीतर से उसकी सारी व्यवस्था आती हो। अगर भीतर से नहीं

व्यवस्था आती है, तो उसका मतलब कुल इतना है कि निगेटिव माइंड विकसित नहीं हुआ, माइंड पाजिटिव है। माइंड पाजिटिव है, इसलिए हम मांग सदा बाहर से करते हैं।
मैं एक लड़की को प्रेम करूं। निगेटिव माइंड प्रेम करने को पर्याप्त मानेगा। और उस प्रेम से जो भी संभव होगा अनुशासन, वह निकलेगा, वह उस प्रेम से निकलेगा। मैं साथ रहूं, तो वह साथ रहना मेरे प्रेम से निकलेगा। लेकिन पाजिटिव माइंड कहेगा कि नहीं, सात फेरे लगा कर विवाह करना चाहिए, रजिस्ट्री आफिस में जाकर रजिस्ट्री करवाना चाहिए। कानून ऊपर होना चाहिए। कानून कहे कि साथ रहो, कानून रोके कि अलग मत हो जाओ। प्रेम पर्याप्त नहीं है, कानून भी ऊपर से चाहिए। वही प्रेम की सुरक्षा बनेगा। और मजे की बात यह है कि जो प्रेम पर्याप्त न हो तो प्रेम है ही नहीं। फिर अब व्यवस्था बनानी पड़ेगी। और अगर हम कहें कि नहीं, कोई व्यवस्था मत बनाओ! तो लोग कहेंगे, फिर तो सब अराजक हो जाएगा।
लेकिन क्या प्रेम की अपनी व्यवस्था नहीं है एक?
और मेरी अपनी मान्यता यह है कि अराजक सब हो गया है। और जो भी महत्वपूर्ण है, सब मर गया है। क्योंकि वह सब सहज ही विकसित होता है, वह नियम और कानून से विकसित होता ही नहीं। वह सब मर गया है। और पूरी ह्यूमैनिटी एबनार्मल हालत में है, कोई नार्मल हालत में नहीं है। पूरी मनुष्यता करीब-करीब पागल होने जैसी हालत में है। सब तरफ कानून है। बाप के पैर भी छूने हैं तो... ।
एक-एक व्यक्ति के भीतर उसके निगेटिव माइंड को विकसित होने दें। तो उसके उस निगेटिव माइंड से उसकी डिसिप्लिन भी निकलेगी, वह जीएगा ऐसे जिसमें जीना सर्वाधिक आनंदपूर्ण हो सके। और मेरा मानना यह है कि जो व्यक्ति अपने आनंद के लिए थोड़ा भी जीने की कोशिश करता है, वह किसी के दुख के लिए कभी चेष्टा नहीं करता। यह असंभव है। और जो व्यक्ति किसी तरह का दुख झेलता है अपने जीवन को बनाने में, वह दूसरे को भी दुख देने की सब तरह की चेष्टा करता है। यह हमारी पूरी सोसाइटी सैडिस्ट और मैसोचिस्ट है। और सब तरह के लोग इसमें इकट्ठे हो गए हैं।
वह जो कानून बनाने वाला है, वह सैडिस्ट है। वह कानून को मूल्य देता है। वह कहता है, तुम्हें शादी करनी है तो जिंदगी भर साथ रहना पड़ेगा! वह एक शर्त लगाता है। और जिंदगी भर साथ रहना इतना दुखद भी हो सकता है कि उस दुख और बोझ के नीचे वह जो शादी का और साथ रहने का थोड़ा सा आनंद था, वह फूल कहीं भी दब जाए इस पत्थर के नीचे, उसे मतलब नहीं है। वह कहता है, जिंदगी भर साथ रहना पड़ेगा तो तुम शादी कर सकते हो! अन्यथा शादी नहीं कर सकते। अगर मुक्त रहना है तो शादी नहीं कर सकते, तो प्रेम की संभावना से बच जाओगे। और अगर प्रेम करना है तो शादी करनी पड़ेगी।
वह जो सैडिस्ट है, मेरी अपनी मान्यता यह है कि कानून बनाने वाले सभी सैडिस्ट होते हैं। चाहे वह मनु महाराज हों और चाहे कोई भी हो, सब सैडिस्ट होते हैं। वे सताने का सब उपाय करते हैं। लेकिन सताने को इस भांति छिपाते हैं कि ऐसा मालूम पड़ता है कि वे समाज के और लोगों के कल्याण के लिए भारी उपाय कर रहे हैं। भारी उपाय कर रहे हैं।
समाज में सैडिस्ट भी हैं, और उनसे ही धारा प्रभावित रही है अब तक। और मैसोचिस्ट भी हैं, ऐसे लोग हैं जो खुद को दुख देने में मजा पाते हैं। ऐसे लोग कानून मान कर अपने को बिल्कुल ढांचे में खड़ा कर देते हैं। कितना ही दुख पाएं, लेकिन वह अगर शीर्षासन करना नियम है, तो वे शीर्षासन लगा कर खड़े हो जाएंगे। वे अपने को सताने में मजा लेते हैं। ये सताने वाले हमारे गुरु हो जाते हैं, नेता हो जाते हैं--अपने को सताने वाले। और दूसरे को सताने वाले नियंता हो जाते हैं, स्मृतियों के बनाने वाले हो जाते हैं, कानून बनाने वाले हो जाते हैं। अब तक दुनिया सैडिस्ट और मैसोचिस्ट के चक्कर में है, उनके हाथ में है। इसलिए इतना पागलपन, इतना उपद्रव है।
आदमी का निगेटिव माइंड अगर विकसित हो, तो न तो आदमी मैसोचिस्ट रह जाता है, न सैडिस्ट रह जाता है। न वह किसी को सताना चाहता है, न खुद को सताना चाहता है। वह निगेटिव माइंड पहली दफा यह बात जान लेता है कि एक-एक क्षण जीने जैसा है और इतना आनंदपूर्ण है कि उसे हम जीएं। पीछे से भी छोड़ें, आगे

से भी छोड़ें और पल-पल हम जीएं। वह मोमेंट टु मोमेंट लिविंग निगेटिव माइंड से पैदा होती है। और वह अगर पैदा हो सके, तो एक के लिए भी वही सत्य है, सब के लिए भी वही सत्य है। देर कितनी ही लगे, यह दूसरी बात है। किसी को भी सुख पाना हो तो उसे क्षण-क्षण जीना पड़ेगा, तो ही सुख पा सकता है। हां, दुख पाना हो तो क्षण में कभी न जीए, तो पीछे अतीत के सब इतिहास में जीए, और भविष्य की सब कल्पना में जीए, तो वह दुख पाता रहेगा। वह दुख पाता रहेगा।
चाहे व्यक्ति, चाहे समाज, आज नहीं कल हमें इस जगह आना ही पड़ेगा कि हम व्यक्ति को कितने दूर तक मुक्ति दे सकें और समाज को भी कितने दूर तक मुक्ति दे सकें। निश्चित ही सब बदल जाएगा! राष्ट्र नहीं रह सकते, युद्ध नहीं रह सकते, जातियां नहीं रह सकतीं, धर्म नहीं रह सकता, क्योंकि यह सब थोपा हुआ पाजिटिविटी है, यह सब खो जाएगा। और इसलिए दुनिया में जितने दुखवादी हैं, पर-दुखवादी या स्व-दुखवादी, वे सब बड़ी परेशानी में पड़ जाएंगे। और इसलिए वे नहीं चाहेंगे कि यह हो। वे सारी चेष्टा कर रहे हैं। विद्यालय उनके हाथ में हैं, राज्य उनके हाथ में है, सब उनके हाथ में है। वे सारी चेष्टा कर रहे हैं।
अगर कहीं मंगल से कोई ऐसा प्राणी देखे हमें, तो वह हमें कहेगा कि यह पूरी पृथ्वी पागल हो गई है, यह पूरा प्लेनेट पागल है। अगर कोई बिल्कुल दूर का यात्री हमें बिल्कुल पूरी तरह से देखे और हमारा सब हिसाब देखे, तो वह ऐसा नहीं कहेगा कि इसमें कुछ लोग पागल हैं। यह पूरा प्लेनेट एज ए होल पागल है। और बिल्कुल मैड हाउस बन गया है। और मैड हाउस जिन्होंने बनाया है वही नेता हैं, वही गुरु हैं, वही शिक्षक हैं, वही सब मैड हाउस बनाए चले जा रहे हैं।
तो एक भारी बगावत चाहिए सारी दुनिया में पाजिटिव माइंड के खिलाफ।

आपकी विचारधारा में और नागार्जुन की विचारधारा में क्या फर्क है?

जितना फर्क मुझमें और नागार्जुन में होगा, उतना फर्क होगा। मेरा मतलब समझे आप? मेरा मतलब यह है कि... ।

उनका आधार भी शून्यवाद ही है।

न, न, न। यह जो जल्दी हो जाती है न, जल्दी हो जाती है। मुझमें और नागार्जुन में फर्क बहुत होंगे। मेरी बात समझ लें। मेरी बात समझ लें। विचार कोई ऐसी चीज नहीं है जो आकाश से टपक जाती है। विचार की जड़ें हैं मुझमें, वे मुझसे निकलती हैं और फैलती हैं।
जैसे नागार्जुन है। नागार्जुन शून्य की तो बात करता है, लेकिन मैसोचिस्ट है। शून्य की तो बात करता है, लेकिन दुखवादी है। खुद को भारी दुख दे रहा है।
मैं दुखवादी जरा भी नहीं हूं। मैं मानता हूं कि शून्यवाद परम हैडोनिज्म है, वह अंतिम सुख और आनंद की तलाश है। नागार्जुन आनंदवादी नहीं है।
बुद्ध के पीछे जो कतार चली वह दुखवादियों की है। बुद्ध उनमें सबसे कम दुखवादी हैं। लेकिन मजा यह है कि जो कतार चली वह भारी दुखवादियों की है। बुद्ध उनमें सबसे कम दुखवादी आदमी हैं, जिनसे कतार चली। लेकिन उनके पीछे आने वाला भारी दुखवादी है। और बुद्ध के विचार में उसको दुख के लिए समर्थन मिला। एक आदमी दुखवाद के लिए शून्य का समर्थक हो सकता है। वह कहता है, किसी में कोई सार नहीं है। शून्य का मतलब नागार्जुन के लिए क्या है? शून्य का मतलब नागार्जुन के लिए है कि सब व्यर्थ है। किसी में कुछ सार नहीं है। सब अकारण है। कोई चीज किसी मतलब की नहीं है। सब मीनिंगलेस है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, हां, हां, उसकी बात नहीं कर रहा हूं मैं।

तो वह सारी चीज को--कि भोजन भी व्यर्थ है, कपड़ा भी व्यर्थ है, पत्नी भी व्यर्थ है, प्रेम भी व्यर्थ है। वह अगर बहुत गौर से देखें तो नागार्जुन के शून्य में और शंकर की माया में कोई फर्क नहीं है, वे दोनों एक ही हैं। शंकर ने नागार्जुन के शून्य से ही माया चुराई हुई है पूरी की पूरी। वह वही चोरी है पूरी की पूरी। शंकर और नागार्जुन में कोई फर्क नहीं है।
मुझमें और नागार्जुन में तो जमीन-आसमान का फर्क है। सच बात तो यह है
कि मैं धर्म की बात कर रहा हूं और जिस धर्म की बात कर रहा हूं वह वैसा है कि अगर चार्वाक धर्म की बात करे या एपीकुरस धर्म की बात करे, तो मैं वैसे धर्म की बात कर रहा हूं। चार्वाक ने बात नहीं की धर्म की और न एपीकुरस ने की है। मेरा अगर तालमेल है तो चार्वाक और एपीकुरस से है। लेकिन उन्होंने धर्म की बात नहीं की।
तो धर्म की बात जो मैं करता हूं तो धर्म की बात का तालमेल दिखता है नागार्जुन से, शंकर से, बुद्ध से। मैं बात वह कर रहा हूं जो शंकर और बुद्ध ने की है, नागार्जुन ने की है। और कर रहा हूं वहां से जहां से एपीकुरस और चार्वाक करें। इसलिए एक बड़ा उलझन का मामला हो गया है जरूर। मेरी आप बात समझ रहे हैं न? यानी मैं खुद तो सुखवादी हूं, निपट सुखवादी हूं।

ऐसा भी नहीं था। नागार्जुन ने भी सब लोगों की मुक्ति हो इसलिए ही रास्ता खोला था!

मुक्ति किससे? मुक्ति किससे? मेरी आप बात समझ रहे हैं न? मेरी बात पर
आप सोचना, मेरी बात पर आप सोचना।

मुक्ति तक अपने दुख सहन करना, यह उसका मार्ग है। वह मार्ग कैसा है, इसी
से प्रतीत होता है कि...

मेरी बात आप ख्याल में लिए न!

एक बात समझ गया कि आप जो क्रांतिकारी बात करते हैं और बिल्कुल ऊंचे उठ कर, वह सही बात है। लेकिन सब लोगों को अच्छी से अच्छी तरह से समझ सके, इसीलिए और भी अच्छे उदाहरणों से समझाना जरूरी है।

बिल्कुल जरूरी है। बिल्कुल जरूरी है।

यू सेड देयर वुड बी मैडमेन हू हैव कम बैक फ्राम दि शून्य, दे हैव सीन
दि शून्य एंड केम बैक, लाइक हिप्पीज एंड अदर मैडमेन। नाउ डू यू एप्रूव ऑफ दी.ज मैडमेन बाइ दि यूज ऑफ ड्रग्स सेंडिंग देम बैक टु दि शून्य?

नहीं; जरा भी नहीं, जरा भी नहीं, जरा भी नहीं। क्योंकि असल में एल एस डी
या मैस्कलीन या मारिजुआना शून्य को भुलाने की कोशिश है, जीने की कोशिश नहीं है। जीने की कोशिश नहीं है वह। वह भी एस्केपिस्ट है। वह तो हमारा सोमरस से ऋषि बहुत दिन से प्रयोग कर रहा है उसका। गांजा, अफीम, हमारे मुल्क में संन्यासी बहुत दिन से प्रयोग कर रहा है। वह जो देखा है शून्य उसको भुलाने की चेष्टा है, वह फार्गेटफुलनेस की आखिरी चेष्टा है। सोमरस से लेकर एल एस डी तक वह एक ही कथा है। वह वेद में भी कुछ ऋषि वहां पहुंच गया है, जहां शून्य है। और उससे इतनी घबराहट और बेचैनी पैदा हो गई है कि अब किसी तरह उसको भुलाना जरूरी है। तो नाचो, गाओ, गीत गाओ, शराब पीओ, सोमरस पीओ--कुछ भी करो--उसे भूल जाओ।
मेरा कहना है, शून्य में छलांग लगाओ, घबराओ मत। मेरा कहना है, शून्य से घबरा कर लौट मत आओ। लौटने का रास्ता कोई भी हो--लौटो मत। क्योंकि लौट कर तुम या तो पागल हो जाओगे और या नशे में धुत हो जाओगे। दो में से और कोई रास्ता नहीं है। पागलपन से बचना होगा तो नशा करना पड़ेगा; नशे से बचोगे तो पागल हो जाओगे। लौटो मत!

मनुष्य उस जगह पहुंच गया है जहां उसे शून्य का साक्षात्कार, एनकाउंटर करने की हिम्मत जुटानी चाहिए। उसका एनकाउंटर करो और शून्य विलीन हो जाएगा और पूर्ण प्रकट हो जाएगा। वह एनकाउंटर में होगा यह।

दीज हिप्पीज हैव नाट बिकम मैड सीइंग दि शून्य; व्हाट हैज हैपेन्ड इ.ज दैट टेकिंग ड्रग्स दे हैव बिकम मैड!

न, न, न, मैड-वैड तो वे नहीं हुए हैं। ड्रग लेने से कोई मैड नहीं होता। ड्रग लेने से कोई मैड नहीं होता, मैड भी ड्रग ले सकता है यह दूसरी बात है। लेकिन एल एस डी लेने से कोई पागल नहीं होता। एल एस डी में कोई तत्व ही नहीं कि किसी को पागल कर दे।
एल एस डी के साथ तो खूबी यह है कि आप जो होओगे एल एस डी आपको वही कर देगा, ज्यादा प्रकट कर देगा। अगर आप पागल हो, तो आप ज्यादा पागल दिखाई पड़ने लगोगे। अगर आप गंभीर हो तो ज्यादा गंभीर हो जाओगे। अगर पेंटर हो तो ज्यादा पेंटिंग में लग जाओगे। अगर कवि हो तो ज्यादा गीत गाने लगोगे। एल एस डी का जो उपयोग है, वह तो जो आप हो उसको पूरी तरह एनफ्लेम कर देना है। और उससे ज्यादा उसका कोई मतलब नहीं है।
अगर आदमी पागल है तो पागल हो जाएगा। अगर एक आदमी भूत-प्रेत देखता है
और एल एस डी ले लेगा तो भूत-प्रेत इतने भारी दिखाई पड़ने लगेंगे। और अगर मीरा को एल एस डी दे दोगे तो कृष्ण ही कृष्ण दिखाई पड़ने लगेंगे। वह जो आपका माइंड है, एल एस डी उसको पूरा का पूरा कर देगा। उसमें शक-शुबहः सब मिटा देगा, वह पूरा आपको दिखाई पड़ने लगेगा जैसा भी आपका माइंड है।
इसलिए हक्सले ने एल एस डी लिया तो उसको बड़ा ऐसा लगा कि कबीर को जो अनुभव हुआ वह मुझे हो रहा है। लेकिन दूसरों ने लिया तो उनको ऐसा नहीं लगता। क्योंकि वह जो आपके माइंड में है वही प्रकट हो जाएगा। एल एस डी खुले कैनवस पर आपके भीतर जो है उसको प्रोजेक्ट कर देगा बस, और कुछ करेगा नहीं। मगर यह सब बचाव है। हिप्पीज हैं या बीटनिक हैं--यह एक तरह की बगावत है, लेकिन बच्चों की बगावत है, एक विचारशील बगावत नहीं है वह। एक विचारशील बगावत नहीं है।

शून्य की तरफ जाने का क्या कोई माध्यम है यह?

जरूर, ध्यान को मैं शून्य की तरफ जाने का मार्ग... ।

नहीं, यह हिप्पीज का जो आजकल का व्यवहार है... ।

हां, यह होगा, बनेगा माध्यम। असल में हिप्पीज से अब दुनिया कभी मुक्त नहीं हो सकेगी।

नहीं, मेरा प्रश्न यह है कि यह जो ड्रग्स वगैरह लेते हैं, यह लेने से कोई ये माध्यम जाहिर करते हैं उस तरफ जाने का, शून्य की तरफ जाने का?

हां-हां, जाहिर कर रहे हैं न! वे जाहिर यह कर रहे हैं... । असल में एक खास जगह संकट के करीब मनुष्य का मन पहुंच गया है, यह हमें पता नहीं है। एक खास संकट के करीब मनुष्य का मन पहुंच रहा है। उसमें कोई आगे है, कोई पीछे है, यह दूसरी बात है। नये बच्चे उसके ज्यादा निकट हैं, बूढ़ा आदमी उससे जरा दूरी पर है। और जो मुल्क जितना विकसित है वह उसके उतना ज्यादा निकट है, जो मुल्क जितना कम विकसित है वह उससे उतनी दूरी पर है।
हिंदुस्तान में हिप्पी पैदा नहीं हो सकता। कोई उपाय नहीं है पैदा करने का अभी।
वह जो करीब-करीब बार्डर लाइन पर जो खड़े हो गए हैं नये युवक जाकर, उनको आपकी पुरानी पूरी दुनिया बेमानी, एब्सर्ड थी, यह दिखाई पड़ रहा है--एक। आपने जो मूल्य बनाए थे, वे सब फिजूल और बेवकूफी के मालूम पड़ रहे हैं। और सच बात यह है कि जो भी सोचेगा उसे मालूम पड़ेंगे। तो पुरानी जगह से पैर उखड़ गए।

पुराना कुछ सार्थक नहीं मालूम हो रहा। और आगे भयानक शून्य है, एबिस है। आगे कुछ दिखाई नहीं पड़ता कि और कोई वैल्यू हो सकती है। आगे कुछ है नहीं और पीछे का सब उखड़ गया है। इस हालत में दो उपाय हैंः या तो वह हिम्मत करके इस एबिस में उतर जाए और या फिर एल एस डी लेकर सो जाए। मेरा मतलब समझ रहे हैं न? बार्डर लाइन पर खड़े हुए आदमी के लिए दो ही उपाय हैं कि या तो वह जंप लगा ले, फिर जो कुछ होगा, होगा। और या फिर वह एल एस डी ले ले। क्योंकि पीछे से तो वह उखड़ गया, पीछे लौटने का उपाय नहीं है। वह पुल गिर गया, वह ब्रिज गिर गया, जिस पर हम कल तक चले थे। या हो सकता है कि वह था ही नहीं; सिर्फ कल्पना का था, हम सोचते थे कि है और इसलिए बड़े मजे से चल रहे थे। वह तो गिर गया। वह जो हिप्पी जैसा युवक है आज, वह पीछे का ब्रिज गिर गया, आगे कोई ब्रिज नहीं है और इतनी पतली लकीर पर वह खड़ा है मोमेंट की कि डर लगता है कि कहीं गिर न जाए, तो वह एक नशा ले लेता है। फिर भूल गया, फिर ब्रिज दिखाई पड़ने लगते हैं आगे-पीछे, सब होने लगता है।
तो मेरा कहना यह है कि जिस हिप्नोटिज्म के भीतर मनुष्यता जी रही थी,
अब उसको पैदा करने के लिए ड्रग के बिना कोई रास्ता नहीं है। वह हिप्नोटिज्म तो टूट गया। एक हिप्नोसिस थी, एक ड्रीम था, जिसमें हम जी रहे थे, हमारा बुजुर्ग जी रहा था, वह तो टूट गया। अब उसको पैदा करना हो तो या तो ड्रग से पैदा करो और या फिर तैयारी दिखाओ कि हम बिना ब्रिज के जीएंगे, हम ब्रिज की मांग ही नहीं करते। हम शून्य में जीएंगे, हम अब मूल्यों की मांग ही नहीं करते।
हुआ क्या है कि पुराना मूल्य तो टूट गया है, लेकिन पुराने मूल्य की मांग नहीं टूटी है। क्योंकि यह बच्चा पैदा तो हमसे हुआ है। इसके एक्सपेक्टेशन वही हैं जो हमारे हैं। लेकिन यह इस जगह जाकर खड़ा हो गया है जहां पुराना कोई मूल्य नहीं है। और मूल्य की मांग इसकी भी है। तो यह कठिनाई में पड़ गया है। यह जो पागल दिखाई पड़ रहा है, इसका पागलपन यह है कि इसकी मांग तो यही है कि वे पुराने मूल्य--भीतर से! आज भी यह अगर किसी लड़की के साथ रहेगा तो मांग तो पत्नी वाली ही है, लेकिन पत्नी होने वाला मूल्य खत्म हो गया है। मांग तो इसकी पति होने की है, लेकिन वह पति होने वाला मूल्य खत्म हो गया है। अब इसके सामने बड़ी दिक्कत हो गई है, या तो यह बिना पति हुए प्रेमी होने के लिए तैयार हो जाए यानी बिना किसी मूल्य के जीने को तैयार हो जाए, और या फिर नशा कर ले।
तो वह जो हिप्पी है, एक तरह से शुभ लक्षण है। वहां से आगे बढ़ना होगा, पचास-चालीस वर्ष लगेंगे, कुछ लोग हिम्मत करके छलांग लगाएंगे। और इसलिए उसमें से हिप्पीज में से जो ज्यादा विचारशील लोग हैं वे एकदम ध्यान और झेन और उस तरफ विचार करने में एकदम संलग्न हो गए हैं।

सो योर सेइंग इ.ज दैट वेस्टर्न सिविलाइजेशन हैज फार एडवांस्ड इन दि डायरेक्शन ऑफ शून्य?

बिल्कुल ही निश्चित। बिल्कुल निश्चित। बिल्कुल निश्चित। बिल्कुल निश्चित।

यू आर ए मैटीरियलिस्ट इन दैट सेंस।

न, इतनी जल्दी मत कह देना! क्योंकि मैंने वही कहा कि मैं एपीकुरस जैसा आदमी हूं जो बुद्ध हो जाए। मैटीरियलिस्ट मैं नहीं हूं। मैं मानता ही यह हूं कि मैटर और स्प्रिट की लड़ाई ही नासमझी की और बेवकूफी की है। एक ही चीज है, उसे मैटर कहो या स्प्रिट कहो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिए मैं मैटीरियलिस्ट नहीं कह सकता अपने को, स्प्रिचुअलिस्ट भी नहीं कह सकता। क्योंकि मैं मानता हूं कि वह डिवीजन ही नासमझी का था। उस डिवीजन में मैं कहीं खड़ा नहीं होता। मैं मानता हूं--चीज एक ही है, वही दिखाई पड़ रही है मैटर की तरह और नहीं दिखाई पड़ रही है आत्मा की तरह। एक ही चीज के दो छोर हैं। इसलिए मैं क्या कहूं अपने को, बहुत मुश्किल मामला हो गया। क्या कहना चाहिए, अभी कोई शब्द नहीं है सही में, अभी कोई शब्द नहीं है।

□□□□ □□!

नये समाज की खोज
सातवां प्रवचन

नये समाज का आधार--भय नहीं, प्रेम

नये समाज की खोज शायद मनुष्य की सबसे पुरानी खोज है। पुरानी भी है और
अब तक सफल भी नहीं हो पाई। कोई दस हजार वर्षों का इतिहास एक बहुत ही असफल कहानी का इतिहास है। प्रयास बहुत हुए कि नया समाज पैदा हो, लेकिन हर प्रयास के बाद पुराना समाज फिर नये रूप में स्थापित हो जाता है। नया समाज पैदा नहीं हो पाता है। क्रांतियां हुईं। क्रांति शब्द से पहले बहुत आशा बंधती थी, अब वह शब्द भी बहुत निराशाजनक हो गया है। क्योंकि कोई क्रांति सफल नहीं हो पाई है। चाहे फ्रांस में, चाहे रूस में, चाहे चीन में, क्रांतियां हुईं, रक्तपात हुआ, नये समाज को जन्म देने के लिए प्रसव की पूरी-पूरी पीड़ा सही गई, लेकिन नया समाज पैदा नहीं हुआ। पुराना समाज फिर नये रूप में स्थापित हो गया।
सब क्रांतियां असफल हो गई हैं। और इसलिए बहुत पूछना जरूरी है कि वह कौन सी भूल है जिसके कारण नया समाज पैदा नहीं हो पाता है?
बहुत से कारण हैं। एक छोटी सी कहानी से मैं शुरू करना चाहूं।
मैंने सुना है कि किसी एक बड़े देश में, उस देश का सबसे बड़ा धर्मगुरु, देश के सभी चर्चों का भ्रमण करने निकला था। कभी दस-पच्चीस वर्षों में वह भ्रमण के लिए निकलता था। और नियम था कि जिस चर्च में भी वह जाए, जब वह द्वार प्रवेश करे, तो उसके स्वागत में चर्च की घंटियां बजें।
एक गांव के चर्च में वह प्रविष्ट हुआ, लेकिन घंटियां नहीं बजीं। तो गांव के पादरी से उसने पूछा, जो उसके साथ था, कि मेरे स्वागत में घंटियां नहीं बज रहीं, क्या कारण है? तो उस पादरी ने कहा, इसके सौ कारण हैं। लेकिन पहला कारण यह है कि चर्च में घंटियां नहीं हैं।
तो उस बड़े धर्मगुरु ने कहा, पहला कारण ही काफी है, अब बाकी निन्यानबे कारण बताने की कोई जरूरत नहीं।
अब तक नया समाज पैदा नहीं हुआ, इसके भी सौ कारण हैं। लेकिन मैं भी पहला कारण ही बताना चाहूंगा, बाकी निन्यानबे जरूरी नहीं हैं। और पहला कारण यह है कि समाज जैसी कोई चीज ही नहीं है। वह एक झूठा शब्द है। और शब्द भ्रम पैदा करता है। व्यक्ति की तो एक सच्चाई है, समाज का कोई सत्य नहीं है। समाज एक मिथ, एक कहानी, एक कल्पना से ज्यादा नहीं है। असलियत है व्यक्ति की; समाज तो एक झूठी संज्ञा है, जो काम चलाती है। लेकिन हम नये समाज को जन्म देना चाहते हैं।
नये समाज को जन्म नहीं दिया जा सकता, क्योंकि समाज का कोई अस्तित्व ही नहीं है, अस्तित्व है व्यक्ति का। नये समाज को जन्म देने की चेष्टा व्यर्थ हो जाती है, क्योंकि नये समाज को जन्म देने की कोशिश में हम नये व्यक्ति को जन्म देने का ध्यान ही नहीं रखते हैं। नया व्यक्ति जन्मे तो नया समाज जन्म सकता है।
लेकिन समाज शब्द इतना व्यवहृत होता है कि हमें ख्याल भी नहीं आता कि समाज जैसी कोई चीज नहीं होगी। समाज जैसी कोई चीज नहीं है, राष्ट्र जैसी कोई चीज नहीं है, मनुष्यता जैसी कोई चीज नहीं है। ये सब शब्द झूठे हैं, एब्सट्रैक्ट हैं। असलियत है आदमी की, व्यक्ति की।
यहां हम इतने लोग इकट्ठे हैं; एक समाज इकट्ठा हो गया है। और मैं दरवाजे पर दो लोगों को खड़ा रख छोडूं और उनसे कहूं कि जब समाज यहां से निकले तो तुम पकड़ लेना। और वे एक-एक व्यक्ति को निकल जाने देंगे, क्योंकि कोई व्यक्ति समाज नहीं है। और जब इस हॉल से सारे लोग चले जाएं और उनसे मैं पूछूं कि समाज निकला हो, पकड़ा हो? तो वे कहें, व्यक्ति निकले थे, समाज निकला नहीं; समाज पीछे होगा। और पीछे यह भवन खाली रह जाए।
व्यक्ति है सच्चाई, और क्रांति सदा हम समाज में चाहते हैं, इससे भ्रांति हो जाती है। शब्द बड़े धोखे देते हैं। समाज शब्द भी बड़ा धोखा देता है।

एक भिक्षु हुआ नागसेन, उसे उस जमाने के सम्राट मिलिंद ने निमंत्रण दिया था। और जब निमंत्रण नागसेन के पास पहुंचा, तो नागसेन ने निमंत्रण लाने वाले वजीरों को कहा, सम्राट से क्षमा मांग लेना। आ जाऊंगा, लेकिन भिक्षु नागसेन जैसा कोई है नहीं!
वे बड़े चकित हुए। उन्होंने सम्राट को आकर कहा कि हमने निमंत्रण आपका
दे दिया है और नागसेन ने कहा है--आ जाऊंगा, लेकिन भिक्षु नागसेन जैसा कोई है नहीं!
सम्राट ने कहा, ये संन्यासी, ये फकीर अजीब बातें करते हैं, पहेलियों
की बातें करते हैं। अगर भिक्षु नागसेन नहीं है, तो आएगा कौन?
फिर सम्राट का रथ लेने गया। फिर नागसेन उस रथ पर बैठ कर आया भी। दरवाजे पर उतरा। सम्राट ने स्वागत किया और कहा कि मैं भिक्षु नागसेन का स्वागत करता हूं। नागसेन ने कहा, स्वागत स्वीकार है, लेकिन भिक्षु नागसेन जैसा कोई है नहीं! उस सम्राट ने कहा, आप पहेलियां न बूझें। अगर आप नहीं हैं, तो आप आए कैसे हैं? तो उस भिक्षु नागसेन ने कहा, यह रथ खड़ा है, यह रथ है? सम्राट ने कहा, है। उस भिक्षु ने कहा, आया भी। सम्राट ने कहा, आया भी। पर उस भिक्षु ने कहा, लेकिन रथ है नहीं!
उसने घोड़े अलग निकाल दिए और सम्राट से पूछा, ये घोड़े रथ हैं? सम्राट ने कहा, घोड़े कैसे रथ हो सकते हैं! घोड़ों को छुट्टी दे दी गई। उस भिक्षु ने उस रथ के चक्के निकलवा लिए और सम्राट से पूछा, ये चक्के रथ हैं? सम्राट ने कहा, चक्के कैसे रथ हो सकते हैं! चक्के अलग कर दिए गए। और फिर इस तरह रथ का एक-एक टुकड़ा निकाला जाता रहा और सम्राट इनकार करता रहा--यह भी रथ नहीं, यह भी रथ नहीं। और धीरे-धीरे पूरा रथ विदा हो गया, पीछे कुछ भी न बचा। फिर वह भिक्षु हंसने लगा और पूछने लगा, रथ कहां है? क्योंकि जो भी था, मैंने पूछा, वह रथ न था। अब रथ पीछे बचना चाहिए। उस सम्राट ने कहा, रथ तो एक जोड़ है। समाज भी एक जोड़ है। और जिसको हम व्यक्ति का अहंकार कहते हैं, ईगो कहते हैं, वह भी एक जोड़ है। यह सत्य नहीं है। लेकिन शब्द का निरंतर प्रयोग भ्रम पैदा करता है। और दुनिया में समाज शब्द से जितना भ्रम पैदा हुआ है और किसी बात से पैदा नहीं हुआ।
तो पहली तो बात यह कहना चाहता हूं कि समाज जैसी कोई चीज नहीं है, न पुराना समाज है, न नया समाज है। हां, पुराने व्यक्ति हैं और नये व्यक्ति हो सकते हैं। पुराना व्यक्ति का मन है और नये व्यक्ति के मन का जन्म हो सकता है।
लेकिन वे जो क्रांतिकारी हैं, बहुत जल्दी में होते हैं। और ध्यान रहे, जल्दी में और कुछ भी हो जाए, क्रांति नहीं हो सकती। लेकिन क्रांतिकारी जल्दी में होता है। वह कहता है, एक-एक व्यक्ति को बदलने बैठेंगे तो कब बदलाहट आएगी! इसलिए व्यक्ति की फिकर छोड़ो, हम समाज को बदल लें। समाज जल्दी बदला जा सकेगा, व्यक्ति को बदलेंगे तो कब बदल पाएंगे!
तो समाज को बदलने में क्रांतिकारी लगा रहा है, और समाज है नहीं; इसलिए क्रांतिकारी जितने धोखे में रहा है, उतना इस जमीन पर और कोई आदमी धोखे में नहीं है। समाजवादी जितना धोखे में है, उतना कोई व्यक्ति धोखे में नहीं है। क्योंकि समाज जैसा कोई सत्य ही नहीं है।
यह जो समाज है, यह व्यक्तियों का ही जोड़ है। और अगर व्यक्ति पुराना है
तो समाज पुराना होगा। चाहे हम कानून बदल दें, चाहे हम सरकारें बदल दें, चाहे हम व्यवस्था के ढंग बदल दें, मकान के रंग बदल दें, दीवालों पर नया रोगन कर दें, लेकिन अगर व्यक्ति पुराना है तो समाज भी पुराना होगा।
और व्यक्ति पुराना है। न तो रूस में नया व्यक्ति है, न चीन में नया व्यक्ति है, न अमेरिका में नया व्यक्ति है; नया व्यक्ति कहीं भी नहीं है। वह जो रूस में व्यक्ति है, वह उतना ही पुराना है जितना अमेरिका का। इसलिए रूस और अमेरिका की लड़ाई बचकानी है, वह बुनियादी लड़ाई नहीं है। क्योंकि उन दोनों के पास एक जैसे व्यक्ति हैं, उनमें कोई भी फर्क नहीं है।
अभी एक मित्र के घर में एक रूसी मेहमान था और मैं भी मेहमान था। जाने
के पहले उस रूसी मेहमान ने, जिस मकान में मैं भी ठहरा था, उस मकान के मालिक को कहा कि मुझे सोने का एक कड़ा अपनी पत्नी के लिए ले जाना है। लेकिन मैं ले जा नहीं सकता, क्योंकि वहां पूछताछ होगी--यह कहां से आया? कैसे आया? तो आप

कृपा करके पैसे तो मुझसे ले लें, लेकिन मुझे लिख कर दे दें कि आपने मुझे यह भेंट किया है। तो वे मेरे मित्र पूछने लगे, इस साधारण से कड़े के लिए कौन पूछताछ करेगा? उसने कहा, आपको पता नहीं है, रूस में बहुत पूछताछ होगी। लेकिन मैं अपनी पत्नी के लिए कुछ ले जाना चाहता हूं। और मेरी पत्नी के हाथ में यह कड़ा हो, यह कड़ा मास्को में किसी स्त्री के हाथ में न होगा, तो मेरी पत्नी भी खुश होगी और मैं भी खुश होऊंगा।
इस आदमी में और अमेरिका के आदमी में कोई फर्क है? यह भी अपनी पत्नी को देख कर खुश होगा कि उसने कड़ा पहना हुआ है। अमेरिका में भी कोई खुश होगा अपनी पत्नी को कड़ा पहने देख कर। भारत में भी कोई खुश होगा। और खुश क्यों होगा? क्योंकि पत्नी के हाथ में सोने का कड़ा पति के महत्वपूर्ण होने की खबर देता है। इसलिए पति अगर गरीब कपड़े भी पहने रहे तो चलता है, पत्नी को सजा कर निकालता है। वह उसका, जिसको कहना चाहिए शो केस है; वह उसे सजा कर निकालता है। लेकिन रूस में भी, मेरी पत्नी कड़ा पहने, और किसी की पत्नी न पहने, ऐसा कड़ा मूल्यवान मालूम पड़ता है। वहां भी सोने का कड़ा उतना ही मूल्य रखता है जितना कहीं और रखता होगा। और मेरी पत्नी भी उतना ही मूल्य रखती है जितना कहीं और रखती होगी। मेरा अहंकार भी उतना ही मूल्य रखता है। और आदमी का चोर मन भी वही है, जो कहीं और होगा। वह अपनी सरकार को धोखा देने के लिए तैयारी कर रहा है। वह हिंदुस्तान में ही कोई अपनी सरकार को धोखा देता हो, ऐसा नहीं है, सारी दुनिया में है।
आदमी एक जैसा है। अगर आज रूस में भी क्रोध वैसा है आदमी के पास, चिंता वैसी है, घृणा वैसी है, लोभ वैसा है, भय वैसा है, जैसा कहीं और है। आदमी वही है। ढांचे बदल देते हैं हम, आदमी नहीं बदलता; इसलिए समाज नहीं बदल सकता, क्योंकि समाज का जोड़ व्यक्ति है।
लेकिन यह बात दिखाई नहीं पड़ती। क्रांतिकारी जल्दी में होता है। और इसलिए क्रांतियां असफल हो गईं। क्रांति जैसा बड़ा कार्य बहुत धीरज से करने की जरूरत है। लेकिन जो धैर्यवान हैं वे क्रांति नहीं करते। संत हैं, फकीर हैं, संन्यासी हैं; उनका धीरज अनंत है। वे कहते हैं--होगा, कभी होगा; परमात्मा जब चाहेगा तब हो जाएगा। वे क्रांति नहीं करते, क्योंकि उनका धीरज बहुत लंबा है। और जो क्रांति करते हैं, उनके पास कोई धैर्य नहीं है। इसलिए दुनिया में क्रांति नहीं हो पाई। जो क्रांति कर सकते हैं, वे क्रांति नहीं करते; जो क्रांति नहीं कर सकते हैं, वे क्रांति करते हैं। और इसलिए हर क्रांति और नई मुसीबतें दे जाती है। पुरानी मुसीबतें अपनी जगह, नई क्रांति नई मुसीबतें जोड़ जाती है।
पहली बात समझ लेनी जरूरी है कि व्यक्ति को बिना बदले समाज नहीं बदल सकता है, क्योंकि समाज व्यक्तियों को छोड़ कर कहीं नहीं है। सारे युद्ध युद्ध की भूमियों पर नहीं लड़े जाते, मनुष्य के मन में लड़े जाते हैं। और सारे समाज आकाश और राजधानियों में पैदा नहीं होते, छोटे-छोटे मनुष्यों के हृदय में पैदा होते हैं। सारी व्यवस्थाएं, सारा विकास, सारी क्रांतियां किसी इतिहास की धारा से नहीं, व्यक्ति-चित्त से जन्म पाती हैं। कोई भाग्य नहीं है निर्धारक। न तो पुराने ढंग का भाग्य--जैसा कि हिंदुस्तान के मनीषी सोचते थे कि कोई भाग्य है जो निर्धारण करता है। और न नये ढंग का भाग्य-- जैसा कि कम्युनिस्ट, मार्क्स और एंजिल्स सोचते हैं--इतिहास, ऐतिहासिक प्रक्रिया का भाग्य। नहीं, कोई भाग्य निर्धारक नहीं है। निर्धारक है व्यक्ति का मन। और व्यक्ति के मन के साथ अब तक कोई क्रांति नहीं हो सकी। इसलिए चाहे हम कितनी ही आर्थिक व्यवस्था बदलें और चाहे हम कितने ही विधान बदलें और चाहे हम किसी भी ढंग का ढांचे में हेर-फेर कर लें, समाज वही होगा, उसमें कोई बुनियादी अंतर नहीं पड़ने वाले।
अभी उन्नीस सौ साठ के बाद रूस में व्यक्तिगत संपत्ति की मांग फिर से शुरू हो गई। चालीस साल के कठोर दमन के बाद भी वह व्यक्तिगत संपत्ति की मांग नहीं मिट गई है। उन्नीस सौ साठ के बाद वह मांग तीव्र होती चली गई। और अभी चार-पांच वर्ष पहले उन्हें व्यक्तिगत कार रखने का हक लोगों को देना पड़ा है। और यह तो शुरुआत है। फिर मकान भी व्यक्तिगत देना पड़ेगा और बगीचा भी व्यक्तिगत देना पड़ेगा। पचास साल तक निरंतर बंदूक के कुंदे के नीचे दबे रहने के बाद भी, एक करोड़ लोगों की हत्या करने के बाद भी, आदमी की व्यक्तिगत

संपत्ति की मांग नहीं छूटती। और ऐसा नहीं है कि बड़े धनपतियों की न छूटती हो। रूस में ऐसे लोग जिनके पास दस मुर्गियां थीं, उन्होंने भी अपनी मुर्गियों को बचाने की कोशिश की कि कहीं वे सामूहिक संपत्ति न हो जाएं। वह जो व्यक्ति है, उस व्यक्ति को ख्याल में लेना जरूरी है। उस व्यक्ति
के संबंध में कुछ दो-तीन बातें आपसे कहना चाहता हूं कि वह नया क्यों नहीं हो पाता। उसके आधार अगर पुराने हैं तो वह नया नहीं हो सकेगा। और यदि हम आधारों को पहचान लें तो नया किया भी जा सकता है। अब तक जो मनुष्य हमने निर्मित किया है उसके बहुत गहरे आधार समझ लेने जरूरी हैं।
पहला आधार तो है--फियर, भय। आज तक की सारी मनुष्य-जाति ने व्यक्ति को खड़ा करने के लिए भय का मकान दिया है। और इसमें कोई फर्क नहीं पड़ा, न माओ ने फर्क किया है, न मनु ने फर्क किया और न मोहम्मद ने फर्क किया और न मार्क्स ने फर्क किया। मनुष्य का भय का आधार अपनी जगह खड़ा है। और अगर स्टैलिन रूस में क्रांति लाते हैं तो आदमी को डरा कर लाते हैं। और अगर माओ क्रांति ला रहे हैं चीन में तो आदमी को डरा कर ला रहे हैं। और अगर दुनिया के धर्मगुरुओं ने क्रांति लानी चाही थी तो आदमी को डरा कर लानी चाही थी। किसी ने नरक का डर दिया था, किसी ने साइबेरिया का डर दिया है, किसी ने यहीं मार डालने का, किसी ने कनसनट्रेशन कैंप का, किसी ने मरने के बाद, लेकिन आज तक आदमी के सभी व्यवस्थापक आदमी को डरा कर बदलना चाहते हैं। इसमें कोई फर्क नहीं हुआ है, यह वैसे का वैसा है। बड़े से बड़ा क्रांतिकारी भी इस मामले में क्रांतिकारी नहीं है। और बड़े आश्चर्य की बात यह है कि जिनको हम कहें कि जो बहुत अहिंसात्मक हैं, वे भी नहीं हैं।
गांधी जी जैसे व्यवस्थापक भी लोगों को डरा कर ही बदलना चाहते हैं। हां, डराने की व्यवस्था बदल जाती है, लेकिन डर नहीं बदलता। अगर मैं आपकी छाती पर छुरी रख दूं और कहूं कि जैसा मैं कहता हूं वैसा मान लें, यह भी डर है। और मैं अपनी छाती पर छुरी रख लूं और आपसे कहूं कि जैसा मैं कहता हूं वैसा मान लें अन्यथा मैं छुरी मार लूंगा, यह भी डर है। इसमें कुछ फर्क नहीं है।
और मेरी अपनी समझ है कि पहले डर में आपकी थोड़ी इज्जत भी करता हूं, दूसरे डर में आपकी इज्जत भी बिल्कुल नहीं है। पहले डर से आप बच भी सकते हैं। अगर मैं आपकी छाती पर छुरी रखूं, तो अगर आप थोड़े हिम्मतवर आदमी हैं तो कहेंगे, ठीक है, छुरी मार दें, लेकिन मैं जैसा हूं वैसा ही रहूंगा। लेकिन दूसरे मौके पर जब मैं छुरी अपनी छाती पर रखता हूं और कहता हूं कि आप मानते हैं मेरी बात या नहीं मानते अन्यथा मैं छुरी मार लूंगा, तो आप अगर हिम्मतवर आदमी हैं तो सिर्फ इस वजह से मानने को तैयार हो जाएंगे कि नाहक एक आदमी न मर जाए। आदमी अपने मरने के लिए तो निर्णय भी ले सकता है, लेकिन दूसरे के मरने का निर्णय लेने में कठिनाई होती है।
अंबेदकर के खिलाफ गांधी जी ने अनशन किया, वह छाती पर छुरी रखना है कि
हम मर जाएंगे अगर हमारी बात नहीं मानते हो। अंबेदकर झुक गया और गांधी की बात मान ली, अनशन टूट गया। तब अंबेदकर ने कहा कि मेरा हृदय परिवर्तन नहीं हुआ है, मैं तो सिर्फ इसलिए राजी हो गया कि मैं गांधी को मारने के लिए जिम्मेवार नहीं होना चाहता हूं। लेकिन मैं जो कहता था वह ठीक है और गांधी जो कहते थे वह गलत है। और मैं यह अब भी कहूंगा कि वे जो कहते थे, गलत है। लेकिन उन्होंने गलत बात के लिए जान बाजी पर लगा दी और तब मुझे ऐसा लगा कि अपनी सही बात को भी छोड़ कर हट जाना उचित है, गांधी की हत्या करनी उचित नहीं।
इस मामले में बड़ी हैरानी की बात है। इसमें गांधी हिंसक और अंबेदकर अहिंसक सिद्ध होता है।
लेकिन सारी दुनिया के विचारक अब तक आदमी को भयभीत करने की दिशा में ही सोचते रहे। महावीर कहते हैं कि नरक है। बुद्ध, मनु, मोहम्मद, सब नरक की बात करते हैं। वे सोचते हैं कि आदमी को अच्छा बनाना है तो भयभीत करना पड़ेगा। लेकिन उन्हें पता नहीं है कि भय इतनी बड़ी बुराई है कि अगर उसके द्वारा किसी को अच्छा भी बना लिया तो वह अच्छा कैसे हो जाएगा? क्योंकि भयभीत आदमी से बुरा आदमी और क्या हो सकता है?

नरक की हमने योजनाएं की हैं। बड़ी आग की लपटों का इंतजाम किया है वहां। कड़ाहे जलाए हैं, आदमियों को कड़ाहों में डालने की बात की है। अंतहीन दुख और कष्ट का आयोजन किया है। सिर्फ एक ख्याल से कि इस भांति हम आदमी को बदल लेंगे।
आदमी नहीं बदला। सब नरक फिजूल गए, आदमी नहीं बदला। स्वर्ग का प्रलोभन दिया है। वह भी भय का ही रूप है। वह उलटा भय है। हमने कहा है कि अच्छा करोगे तो स्वर्ग मिलेगा। वह भी भय का उलटा रूप है। क्योंकि अगर अच्छा न करोगे तो स्वर्ग चूक जाएगा, वह भी भय है। प्रलोभन भय का उलटा रूप है। पद हैं, प्रतिष्ठाएं हैं, इज्जत है, आदर है, वह सब है।
राम जैसा हिम्मतवर आदमी भी जब सीता को छीन कर लौटता है रावण से, तो वह सीता से जो शब्द बोलते हैं वे राम के मुंह में शोभा नहीं देते। राम एकदम छोटे हो जाते हैं। क्योंकि राम सीता से यह कहते हैं कि तू यह मत सोचना कि मैंने तेरे लिए युद्ध किया है, यह तो मैंने कुल की प्रतिष्ठा के लिए युद्ध किया है। तो राम भी कुल की प्रतिष्ठा के लिए बहुत भयभीत मालूम होते हैं। और फिर एक धोबी कह देता है, तो सीता को जंगल में फेंक देते हैं, गर्भवती सीता को! राम भी बड़े भयभीत मालूम होते हैं कि कहीं उनकी मर्यादा, कहीं उनकी इज्जत, उनकी प्रतिष्ठा को चोट न लग जाए। सीता की परीक्षा लेते हैं, अग्नि- परीक्षा लेते हैं। वह भी भय है, वह भी प्रेम नहीं है। अग्नि-परीक्षा के बाद भी बात कुछ नहीं होती हल, फिर भी सीता को फेंका जाता है। और सीता से यह कहने की क्या जरूरत थी कि मैंने तेरे लिए युद्ध नहीं किया, मैंने युद्ध अपनी कुल-मर्यादा, अपनी प्रतिष्ठा के लिए किया है! मेरे वंश की इज्जत का सवाल है! बहुत भयभीत मालूम होते हैं।
यह भय आज तक की पूरी मनुष्य-जाति के नीचे, आधार में रखा हुआ है। हमने एक-एक व्यक्ति को भय पर खड़ा किया हुआ है। बाप बेटे को डरा रहा है, शिक्षक विद्यार्थी को डरा रहा है। फिर कभी-कभी मौके बदल जाते हैं। मौके बदल जाते हैं तो हमें बड़ी परेशानी होती है। बेटा कमजोर है तो बाप डरा रहा है, फिर बाप बूढ़ा होकर कमजोर हो जाता है तो बेटा डराना शुरू कर देता है। शिक्षक डराते रहे विद्यार्थी को अब तक, अब विद्यार्थी डराना शुरू कर रहा है तो शिक्षक परेशान हैं। पुलिस जनता को डराती रही है, अब जनता पुलिस को डराएगी तो हम कहते हैं बड़ी अव्यवस्था फैल रही है। लेकिन भय के आधार! अगर नेता जनता को डराते रहे हैं और जनता अब नेताओं का घेराव करेगी और उन्हें भयभीत करेगी और डराएगी, तो फर्क क्या है? कभी-कभी नदी पर नाव होती है, फिर कभी-कभी नाव पर नदी हो जाती है। लेकिन बात वही है।
हम कब तक मनुष्य को भय पर ही खड़े रखने का इरादा किए हुए हैं? हमारी सारी सरकारें, हमारी सारी व्यवस्थाएं भय का इंतजाम हैं। चौरस्ते पर खड़ा हुआ पुलिसवाला भी एक भय है, बैठी हुई अदालत भी एक भय है, कानून भी एक भय है, मिलिट्री भी एक भय है, पड़ोस का दुश्मन भी एक भय है, दूसरे राष्ट्र भी भय हैं, आकाश में बैठा हुआ परमात्मा भी सुप्रीम कांस्टेबल से ज्यादा नहीं मालूम पड़ता, वह भी एक भय है। उसके नरक हैं, स्वर्ग हैं, वे सारे भय के इंतजाम हैं। और आदमी को हमने इतना डराया है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। और हमने सब तरह का शोषण किया है डराने के लिए।
अभी एक युवक मेरे पास आया। एक बहुत बड़े संन्यासी हैं, उनके आश्रम में तीन महीने रह कर लौटा। तो जब वह मेरे पास आया, वह बिल्कुल थर-थर कांपती हुई हालत में था--शरीर से तो नहीं, मन से। क्योंकि उन संन्यासी के आश्रम में जो खास बात समझाई जाती है वह यह है कि मनुष्य जीवन बहुत दुर्लभ है। और अगर एक बार चूक गए तो चौरासी कोटि योनियों में भटकना पड़ेगा। कीड़े-मकोड़े होना पड़ेगा, फिर कहीं जन्मों-जन्मों के बाद दुबारा मनुष्य होने का स्थान मिलेगा। इसलिए एक भी दिन चूकने जैसा नहीं है। धर्म कर लो! क्योंकि नहीं तो चूक गए तो फिर भटकाव है।
तो उस युवक ने मुझे आकर कहा, क्या यह सच है कि मनुष्य जन्म बहुत दुर्लभ है, और एक दफा चूक जाने के बाद करोड़ों योनियों में मुझे भटकना पड़ेगा? अगर यह सच है तो फिर मुझे जल्दी से रास्ता बताइए, कहीं ऐसा न हो कि मैं चूक जाऊं और करोड़ों-करोड़ों योनियों में भटकूं! मैं बहुत डर गया हूं, मैं बहुत भयभीत हो गया हूं।

सारे धर्मगुरु डराते रहे हैं। मौत का डर बताया हुआ है, पाप का डर है, जन्मों का डर है, और सारे डर में आदमी को घेर कर खड़ा कर दिया है। ध्यान रहे, जितना व्यक्ति भय से घिर जाएगा, उतने ही उसके जीवन-स्रोत सूख जाते हैं। जितना भयभीत हो जाएगा, उतने ही उसके भीतर जीवन के रस पैदा होने बंद हो जाते हैं। जितना भयभीत हो जाएगा, उतना जीवन में आनंदित होने की क्षमता क्षीण हो जाती है। और इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि भय किस प्रकार का है। आप पुलिसवाले से डरते हैं कि ईश्वर से डरते हैं, कोई फर्क नहीं पड़ता; सवाल डरने का है।
साधु-संन्यासी समझाते हैं कि और किसी से मत डरो, लेकिन ईश्वर से जरूर डरो। गॉड-फियरिंग शब्द को बड़ी कीमत देते हैं, ईश्वर-भीरुता को बड़ा मूल्य देते हैं। लेकिन भय सदा एक जैसा है। और सब तरह का भय, मनुष्य के भीतर जो जीवन के फैलने की क्षमता है, उसको सिकोड़ देता है। और जब भीतर जीवन सिकुड़ जाता है तो ऐसे ही हो जाता है जैसे किसी वृक्ष में पत्ते न लगें, फूल न लगें, रस की धाराएं सब सूख जाएं। और जीवन जो कि फैल कर आनंदित हो सकता था, नाच सकता था, वह अपने में ही बंद फ्रस्ट्रेटेड, विषादयुक्त हो जाए, रुग्ण और बीमार हो जाए। भय ने मनुष्य को बीमार किया है।
मैंने सुना है, एक फकीर के पास एक स्त्री अपने छोटे बेटे को लेकर गई थी। चूंकि बेटा बहुत उपद्रवी है, बहुत ऊधम करता है और मां के कोई भी डर काम नहीं करते, तो उसने सोचा कि फकीर के पास ले जाना चाहिए। क्योंकि फकीरों ने सदा बड़े गहरे भय ईजाद किए हैं। उन्होंने ऐसे भय ईजाद किए हैं कि वे हिम्मतवर से हिम्मतवर आदमी को डरा देने में समर्थ हैं। बहादुर से बहादुर आदमी भी धार्मिक भय के सामने कंपित हो जाता है और डर जाता है। तो वह अपने बेटे को लेकर गई उस फकीर के पास। उसने कहा कि यह बेटा मेरी सुनता नहीं, आज्ञा नहीं मानता, उपद्रव करता है। आप इसे थोड़ा डरा दें, ताकि यह ठीक हो जाए।
वह फकीर बहुत अदभुत आदमी था। उसने बड़े जोर से चीख मारी और खड़े होकर अपने तख्त पर चिल्लाया, दोनों हाथ फैला कर उसने आंखें अपनी इतनी फैलाईं कि वह बच्चा तो भय के मारे भाग गया और स्त्री भय के कारण बेहोश हो गई। और जब स्त्री बेहोश हो गई तो भय के कारण फकीर भी भाग गया।
थोड़ी देर बाद बेटा वापस लौटा अपनी मां को देखने। फकीर ने भी दरवाजे से झांका कि क्या स्थिति है। मां होश में आ रही थी, तो वह भी वापस अपने तख्त पर आकर बैठ गया। तो उस मां ने पूछा, आपने तो हद कर दी, मैंने थोड़ा सा भय दिखाने के लिए कहा था! तो उस फकीर ने कहा, भय का कोई मापदंड नहीं है। जब भय दिखाया जाता है, तो कहां रुकें, इसका कोई पता नहीं चलता। और मुझे ही नहीं, मनुष्य-जाति को जब भी भय दिखाया गया, तो कहां रुका जाए, कुछ पता नहीं चला। वह एक्सट्रीम पर पहुंच जाता है, वह अति पर पहुंच जाता है, पहुंच ही जाता है। पता ही नहीं चलता कि कहां रुका जाए। तो उस स्त्री ने कहा, और मैंने इसे डराने को कहा था, मुझे डराने को नहीं कहा था। तो उस फकीर ने कहा, जब भय प्रकट होता है, तो वह एक को डराए और दूसरे को न डराए, ऐसा नहीं हो सकता। तेरा तो सवाल नहीं, मैं खुद ही डर गया।
समाज दस हजार वर्षों से भय की हवा के भीतर जी रहा है। उसमें जिन्हें
हम डराना चाहते थे वे डर गए हैं, जो डरवाना चाहते थे वे डर गए हैं, जो डरा रहे थे वे भी डर गए हैं। सारा समाज भयग्रस्त हो गया है। ऐसा नहीं है कि जिनको हमें डराना था वे ही डरे हों, कि चोर डरे हों और मजिस्ट्रेट न डरे हों। ऐसा नहीं है कि जो डरवाना चाहते थे वे न डरे हों, कि जिन्होंने डराया था वे न डरे हों। जब डर प्रकट होता है तो वह नहीं देखता, वह सबको डरा जाता है। वह सारे जीवन को कंपित कर गया है, सारी जड़ें कंप गई हैं।
और ध्यान रहे, जहां भय है, वहां कुछ चीजें पैदा नहीं हो पातीं। जैसे जहां भय है, वहां आनंद पैदा नहीं होता। वे कंट्राडिक्ट्री हैं, वे विरोधी हैं। अगर भय है तो आनंद कभी पैदा नहीं होगा। जहां भय है, वहां प्रेम पैदा नहीं होता। वे विरोधी हैं। जहां भय है, वहां प्रेम की फसल नहीं लगती। जहां भय है, वहां व्यक्ति सिकुड़ जाता है, फैलता नहीं। और जीवन का नियम फैलाव है। सिकुड़ाव मौत का नियम है। इसलिए ध्यान रहे, जहां भय है, वहां सुसाइडल, वहां आत्मघाती इच्छाएं पैदा होती हैं; जीवंत, लाइफ अफरमेटिव, जीवन को स्वीकार

करने वाली और जीवन को बड़ा करने वाली और जीवन को सींचने वाली इच्छाएं मर जाती हैं। जहां भय है, वहां जीवन के बीज सिकुड़ जाते हैं और मौत के बीज फैलने लगते हैं।
तो ध्यान रहे, चूंकि हमने भय पर मनुष्य को खड़ा किया, इसलिए हमने सारी मनुष्य-जाति को आत्मघाती बना दिया है। हर आदमी बहुत गहरे में मरने को आतुर है, जीने को आतुर नहीं है। हां, मरने को हमने अच्छे-अच्छे नाम दिए हैं, क्योंकि अच्छे-अच्छे नाम देने में मनुष्य बहुत कुशल है। हमने भय को भी अच्छे-अच्छे नाम दे दिए हैं, क्योंकि जब हम अच्छा नाम दे देते हैं तो बड़ी सुविधा हो जाती है।
जैसे समझ लें, एक अच्छा आदमी, हम कहते हैं, बहुत अच्छा आदमी है। और वह आदमी भी अपने को अच्छा समझता है। और हो सकता है कि उसके अच्छे होने में कुछ और बात न हो, सिर्फ अच्छा होने का नाम हो, बहुत गहरे में भय बैठा हो। सौ में से अट्ठानबे प्रतिशत अच्छे आदमी सिर्फ भयभीत आदमी होते हैं। इसलिए अच्छा आदमी सदा ही नपुंसक होता है आमतौर से, कभी एकाध व्यक्ति को छोड़ कर। और बुरा आदमी सदा ही हिम्मतवर होता है।
उसके कारण हैं। उसके कारण हैं कि बुरे आदमी ने भय स्वीकार नहीं किया, इसलिए हिम्मतवर हो सका; और जब हिम्मतवर हो सका तो पुरानी सारी नीति जो भय पर खड़ी थी, उसे तोड़ने की व्यवस्था उसके भीतर आ गई। अच्छे आदमी को भयभीत करके हमने अच्छा किया। चूंकि वह भयभीत होकर अच्छा हुआ, इसलिए बुराई से तो बच गया, लेकिन अच्छा नहीं हो सका। क्योंकि अच्छा होना एक बहुत विधायक दिशा है। सिर्फ बुराई से रुक जाना एक बात है, अच्छा हो जाना बिल्कुल दूसरी बात है।
इसलिए जिनको हम अच्छे आदमी कहते हैं, वे ऐसे आदमी हैं जो बुरे होने की
भी हिम्मत नहीं जुटा पाते। और ध्यान रहे, जो बुरा होने की हिम्मत नहीं जुटा पाता, वह अच्छे होने की हिम्मत तो कभी नहीं जुटा पाएगा। क्योंकि जो बुरा होने की ही हिम्मत नहीं जुटा पाता, वह अच्छे होने की हिम्मत कैसे जुटा पा सकता है! अच्छाई तो बड़ी चढ़ाई है, बुरा होना तो बहुत उतार है। जो उतरने तक की हिम्मत नहीं जुटा पाता, वह चढ़ने की हिम्मत कैसे जुटा पाएगा! तो ध्यान रखें, कभी बुरा आदमी जब अच्छा आदमी होता है तो अच्छा हो जाता है। लेकिन जो बुरा भी नहीं हो पाता, वह अच्छा भी नहीं हो पाता; वह सदा बीच में अटका रह जाता है। उसके पास हिम्मत नहीं है, उसके पास साहस नहीं है, उसके पास करेज नहीं है, उसके पास सिर्फ भय है। इसलिए अच्छा आदमी बुराई नहीं करता, लेकिन जो बुराई करते हैं उनसे ईर्ष्या करता हुआ मरता रहता है। इसलिए अच्छे आदमियों को सदा बुरे आदमी की बुराई करते हुए पाइएगा। वह निरंतर बैठ कर निंदा करता रहेगा कि कौन-कौन बुरा कर रहा है, कौन-कौन बेईमान है, समाज पतित हो रहा है, अनैतिक हो रहा है, सब बिगड़ा जा रहा है। वह इसकी बुराई करता रहेगा।
और उसका कारण है कि वह भी बुरा होना चाहता था, जो वह होने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। और जो हिम्मत जुटा लिए हैं उनसे वह ईर्ष्या अनुभव कर रहा है और पागल हुआ जा रहा है। वह यह भी कहेगा कि मैं अच्छा आदमी हूं, ईमानदार हूं, लेकिन बड़ा मकान नहीं बना पाता और बुरे आदमी बड़े मकान बना रहे हैं! वह यह चाहता है कि बड़ा मकान भी बन जाए, धन भी आ जाए, पद भी आ जाए और बुरे होने की हिम्मत भी न करनी पड़े। वह भी न करनी पड़े और यह भी आ जाए। वह ईर्ष्या से भरा हुआ है।
ध्यान रहे, जहां भय है, वहां ईर्ष्या अनिवार्य है। और यह भी ध्यान रहे
कि जहां भय है, वहां हिंसा है। भयभीत आदमी कभी अहिंसक नहीं हो सकता। हां, यह हो सकता है कि वह पानी छान कर पीए, रात खाना न खाए, यह हो सकता है। यह भी भय के कारण, अहिंसक होने के कारण नहीं। नरक का भय है, कहीं नरक में न सड़ना पड़े! इसलिए रात वह बिना पानी पीए रात भर गुजार देता है। यह भय के कारण। ये पानी में जो कीटाणु हैं, उनसे उसका कोई संबंध नहीं है। संबंध उसे अपने से है कि कहीं नरक में न पड़ जाना पड़े। वह पुण्य भी करता है, लेकिन भय के कारण-- कि स्वर्ग मिल जाए, नरक से बच जाए, दुख से बच जाए, सुख मिल जाए। लेकिन ध्यान रहे, भयभीत आदमी बहुत गहरे में कभी अच्छा नहीं हो पाता। और जो अच्छा नहीं हो पाता, वह अच्छे समाज का आधार नहीं बन सकता है।

तो एक बुनियादी बात आपसे कहना चाहता हूं वह यह कि हमें समाज--अगर नये समाज को जन्म देना हो, तो हमें व्यक्ति के नीचे से भय की सारी व्यवस्था को हटा लेना पड़ेगा। व्यक्ति को अभय बनाना जरूरी है।
इसका यह मतलब नहीं है कि हार्न बजाती हुई बस आ रही हो तो आप सामने खड़े रहें, आप हटें मत। हार्न बजाती हुई बस के सामने जो खड़ा रहता है वह अभय नहीं है, सिर्फ पागल है। इसका यह मतलब नहीं है कि मकान में आग लग गई हो तो आप भागें मत। आग लगे मकान में जो नहीं भागता है वह विक्षिप्त है। मकान में आग लगी हो तो जो भाग कर जाता है वह भयभीत नहीं है, सिर्फ विवेकपूर्ण है। सांप अगर रास्ता काटता हो, तो बुद्धिमान आदमी रास्ते से हट जाता है। इसलिए नहीं कि भयभीत है, बल्कि इसलिए कि जीवन से प्रेम करता है और जीवन को खोने के लिए, व्यर्थ खोने के लिए तैयार नहीं है।
जीवन में स्वाभाविक भय हैं, जो विवेकपूर्ण हैं। और जीवन में अस्वाभाविक भय थोपे हैं, जो विवेकहीन हैं। स्वर्ग है, नरक है, पुनर्जन्म है, पाप है, पुण्य है, उन सबके जो भय का जाल हमने खड़ा किया है, वह जाल बिल्कुल झूठा है।
सुकरात मर रहा था। तो उसके साथी रो रहे हैं। लेकिन सुकरात ने कहा कि तुम रोते क्यों हो? उन्होंने कहा, हम इसलिए रोते हैं कि तुम मर जाओगे। हम सब कंप रहे हैं भय से। सुकरात ने कहा, पागलो! मरने के बाद दो ही बातें हो सकती हैं। या तो जैसा कि नास्तिक कहते हैं कि मर ही जाऊंगा, या तो यह सही होगा कि मैं मर ही जाऊंगा। और अगर मैं मर ही जाऊंगा, तब तो दुख की कोई जरूरत नहीं है; क्योंकि जब मर ही जाऊंगा तो फिर दुख झेलने को कोई बचेगा नहीं। या दूसरी बात हो सकती है, जैसा आस्तिक कहते हैं कि सिर्फ शरीर ही मरेगा, मैं नहीं मरूंगा। तब भी भय की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि मैं तो रहूंगा ही; मेरे रहने में कोई अंतर नहीं पड़ने वाला। सुकरात ने कहा, नास्तिक सही हों कि आस्तिक, सुकरात मजे में है। क्योंकि दो ही बातें हो सकती हैं।
सुकरात भयभीत नहीं है, क्योंकि दोनों हालत में कोई भय का कारण नहीं है।
मृत्यु भय का कारण नहीं है। लेकिन हमने भय के कुछ कारण अपने आप ईजाद किए हैं। आदमी को बदलने, अच्छा बनाने, सुधारने के लिए हमने बहुत सी ईजादें की हैं। लेकिन अगर हम उनको भय कहते तो शायद आदमी उनको मानने को राजी न होता, इसलिए हमने नाम बहुत अच्छे रखे हैं। नाम अच्छे रखने की तरकीब मनुष्य-जाति की खतरनाक से खतरनाक आत्मवंचना है। हम सब चीजों के अच्छे नाम रख लेते हैं।
बाप कहता है अपने बेटे से कि मैं तुझे प्रेम करता हूं इसलिए तुझे पढ़ा रहा हूं कि तू इंजीनियर हो जाए, तू डाक्टर हो जाए, तू बड़े पद पर पहुंच जाए; मैं तुझे प्रेम करता हूं। लेकिन अगर बाप बहुत गौर से अपने भीतर झांक कर देखे, तो शायद उसे पता चले, उसने अपने बेटे से कभी प्रेम नहीं किया। वह प्रेम करता है अपने अहंकार को--मेरा बेटा डाक्टर हो, मेरा बेटा इंजीनियर हो, मेरा बेटा इस जगह हो, मेरा बेटा उस जगह हो। जो अहंकार बाप का अतृप्त रह गया है, वह बेटे के कंधे पर बंदूक रख कर उस अहंकार की गोली को चला लेना चाहता है।
लेकिन यह वह नहीं कहेगा। और इस तरह धोखा चलेगा। बेटा भी हैरान होगा कि
यह प्रेम कैसा है? बाप भी हैरान होगा कि यह प्रेम कोई आनंद नहीं दे रहा! लेकिन उसने गलत नाम दे रखा है। चीज कुछ और है, नाम उसने कुछ और दे रखा है, नाम उसने कुछ दूसरे दे रखे हैं।
हमने सारी मनुष्य की व्यवस्था में नाम झूठे दे रखे हैं। हमारी हालत ऐसी है, जैसे किसी किराने की दुकान में सब डिब्बों पर नाम बदल दिए गए हों। तो जहां काजू लिखा है वहां काजू न मिले और जहां किशमिश लिखा है वहां किशमिश न मिले। आप सारे डिब्बे खोज डालें, जो जहां लिखा है वह वहां नहीं है, इतना तय है। चीजें सब गड़बड़ हैं। सब हमने अलग-अलग जगह रख दी हैं। हमने गलत चीजों को अच्छे नाम दे दिए हैं। और हम नाम से ही जीते हैं, इसलिए हमें ख्याल में नहीं आता कि हम यह क्या नाम दे रहे हैं।
एक मित्र कुछ वर्ष पहले मेरे साथ सुबह घूमने जाते थे। हनुमान की मढ़िया पड़े, कि कोई मंदिर पड़े, कि कोई देवी-देवता पड़े, कि पीपल का झाड़ हो, जो

भी मिले वह उसको नमस्कार करते जाते थे। वे अपने को धार्मिक आदमी समझते थे। मैंने उनसे कहा, आपने डिब्बे पर गलत नाम लिख लिया मालूम होता है। धार्मिक आदमी का पीपल के झाड़ को नमस्कार करने से क्या संबंध है? फिर मैंने उनसे कहा कि आप हर पीपल के झाड़ को भी नमस्कार नहीं करते। एक पीपल के झाड़ पर एक आदमी ने एक धागा बांध दिया है, उसको वे नमस्कार करते थे। तो उन्होंने कहा कि नहीं, इस पीपल में देवता का वास होना चाहिए। और अगर देवता का वास भी हो तो--मैंने कहा--आपको नमस्कार का क्या मतलब है? देवता तो कभी आपको नमस्कार नहीं करता। उन्होंने कहा कि नहीं, जहां भी देवता का वास हो, वहां नमस्कार कर लेना चाहिए। देवता नाराज न हो जाए।
अब यह आदमी भयभीत है। मैंने उनको--कुछ दिन मेरे साथ जाते थे--मैं उनको रोज समझाते ही चला गया। मेरी बात उनकी समझ में तो आ गई--समझ में आ गई, लेकिन भय समझ से बहुत गहरा है। समझ में आ जाने से कुछ भी नहीं होता, भय बहुत अनकांशस है। समझ में बात आ गई, अब उनको दोहरे भय हो गए और कुछ न हुआ, एक मेरा भी भय शुरू हो गया। मैं उनके दरवाजे पर सांकल बजाता, तो अपनी पत्नी से कहते कि कह दो कि आज तबीयत खराब है। क्योंकि मेरे साथ जाते तो वह हनुमान जी को नमस्कार करने में मुश्किल पड़ती। तो मैंने उनकी पत्नी को कहा कि यह तो और बुरा हो गया, मैंने इसलिए नहीं समझाया था। उनको कहिए कि वे आ जाएं। क्योंकि उनकी पत्नी ने कहा, वे जाते तो जरूर हैं घूमने, लेकिन आपके साथ जाने में डरने लगे हैं। आप निकल जाते हैं, फिर वे जाते हैं। तो मैंने कहा, यह तो एक देवता की जगह दो देवता हो गए। एक भय दोहरा हो गया। मेरे भय की कोई जरूरत नहीं, आप नमस्कार करिए।
उन्होंने कहा कि एक दिन ऐसा हुआ कि आपके साथ गया और मैंने सोचा कि बात
तो ठीक ही है, तो मैंने हनुमान को नमस्कार नहीं किया। उस दिन मेरी दिन भर बड़ी बेचैनी रही। आखिर शाम को मुझे नमस्कार करने जाना ही पड़ा, ताकि कहीं वे नाराज न हो जाएं।
यह आदमी बेचारा अपने को धार्मिक समझ रहा है। और भयभीत लोगों के समूह में यह धार्मिक ही समझा जाएगा। लेकिन यह आदमी धार्मिक है? या इसने भय को धर्म का नाम दे दिया है?
एक आदमी मंदिर में घुटने टेके, हाथ जोड़े खड़ा है। वह अपने को समझ रहा है
कि मैं प्रार्थना कर रहा हूं। लेकिन प्रार्थना करने से घुटने टेकने का क्या संबंध है? घुटने टेकने से भय का तो संबंध है, प्रार्थना का कोई संबंध नहीं है। हाथ जोड़ने से प्रार्थना का क्या संबंध है? घुटने टेक कर गिड़गिड़ाने से प्रार्थना का क्या संबंध है? यह बार-बार दोहराने का कि तुम पावन हो, मैं पतित हूं; तुम महान हो, मैं क्षुद्र हूं; यह सब दोहराने से प्रार्थना का क्या संबंध है? भय से संबंध है। लेकिन वह भय को प्रार्थना कह रहा है। हमारी प्रार्थनाएं, सौ में निन्यानबे प्रतिशत भय की प्रार्थनाएं हैं, हमारी पूजाएं भय की पूजाएं हैं, हमारा सम्मान भय का सम्मान है। हमारी पूरी जिंदगी भय से भरी है, लेकिन हम नाम दूसरे चिपकाए हुए हैं। और जब हम नाम दूसरे दे देते हैं तो बड़ी कठिनाई हो जाती है।
और दस हजार सालों में हमने यही किया है कि आदमी को मिसगाइड करने में, आदमी को दिग्भ्रमित करने में, आदमी को कनफ्यूज्ड करने में, आदमी को सेल्फ-नालेज, आत्मज्ञान की तरफ जाने में जो सबसे बड़ी बाधा है वह यह है कि उसके भीतर किसी चीज का कोई ठीक नाम नहीं है, उसके भीतर सब चीजों के गलत नाम हैं। उसने कभी प्रेम नहीं किया है, लेकिन वह कहता है कि मैं प्रेम करता हूं। उसने कभी प्रार्थना नहीं की है, लेकिन वह कहता है कि मैं प्रार्थना करता हूं। प्रेम के नाम से उसने ईर्ष्या की है, प्रेम कभी नहीं किया। लेकिन वह कहता है, यह ईर्ष्या नहीं है, यह मेरा प्रेम है। उसने प्रेम के नाम से अहंकार को पोसा है। लेकिन वह कहता है, यह मेरा प्रेम है, यह मेरा अहंकार नहीं है। उसने धर्म के नाम से कुछ और पाला है, लेकिन नाम धर्म का लगा रखा है। और इसलिए भीतर पहुंचना बहुत मुश्किल हो गया आदमी का कि वह बदला कैसे जाए! इसलिए हर बार क्रांति हो जाती है और आदमी वही का वही रह जाता है, क्योंकि उसके भीतर चीजों का कोई पता-ठिकाना ही नहीं है।
मैंने एक कहानी सुनी है, मुझे प्रीतिकर लगी। और मुझे लगा कि ठीक ही है
यह बात, ऐसी भूल हो जाती है। मैंने सुना है, एक संन्यासी एक गांव में बोलने

गया। वह जब बोल रहा था, थोड़ी सी स्त्रियां, थोड़े से वृद्ध, थोड़े से बच्चे उसे सुनने आए थे। वृद्ध इसलिए आए थे कि अब उन्हें कोई काम नहीं है। स्त्रियां इसलिए आई थीं कि सिवाय संन्यासी के अतिरिक्त वे और कहीं जाने की आज्ञा नहीं पा सकती हैं। बच्चे स्त्रियों के साथ आ गए थे। वह वहां बोल रहा था।
एक छोटे बच्चे ने अपनी मां से कहा है कि मुझे पेशाब लगी है! तो लोग हंसने लगे। संन्यासी ने बाद में उस स्त्री को बुला कर कहा, अपने बच्चे को समझा दो, इस तरह नहीं बोलना चाहिए। इसे कुछ नाम बदल कर बता दो, कि जब पेशाब लगे तो यह पेशाब न कहे, कुछ और कह दे। कोड लैंग्वेज बना लो। तुम दोनों समझ जाओगे, किसी को पता नहीं चलेगा। उसने कहा, जैसे? तो संन्यासी ने कहा, इससे कह दो कि जब इसे अब ऐसा दुबारा हो तो यह कह दे कि मां, मुझे गाना गाना है। दो-चार दिन में बच्चे को सिखा दिया, वह बच्चा तैयार हो गया। सब बच्चे इसी भांति तैयार किए जाते हैं। हमारे डिब्बे के नाम बचपन में ही बदल दिए जाते हैं, फिर हमको बुढ़ापे तक पता नहीं चलता कि नाम कैसे बदल गए।
साल बीत गया, वह संन्यासी उस स्त्री के घर मेहमान हुआ। उस स्त्री को कहीं काम से जाना था शादी-विवाह में, वह गई और अपने बच्चे को उसके पास सुला गई। बारह बजे रात उसने कहा, स्वामी जी, मुझे गाना गाना है। उन स्वामी की नींद लग गई थी, दिन भर के थके थे। उन्होंने कहा, तू बिल्कुल पागल है, आधी रात कोई गाना गाता है, चुपचाप सो जा! थोड़ी देर चुप रहा, उसने कहा कि नहीं स्वामी जी, बहुत मुश्किल है, गाना गाना ही पड़ेगा। उन स्वामी ने कहा, कैसा पागल लड़का है, सोने देगा कि नहीं सोने देगा! यह कोई गाने का वक्त है, चुपचाप सो जाओ! सुबह गा लेना। उस लड़के ने कहा, सुबह फिर से गाएंगे, अभी तो गाना ही पड़ेगा।
लेकिन स्वामी ने डांटा तो लड़का फिर थोड़ी देर चुप पड़ा रहा। उसने आखिर में कहा कि स्वामी जी, सम्हालना बहुत मुश्किल है। तब स्वामी जी ने कहा कि अजीब मुसीबत यह औरत मेरे पास छोड़ गई आधी रात को। तो स्वामी ने कहा कि फिर नहीं मानता है तो धीरे-धीरे कान में गा दे!
पूरी मनुष्य-जाति के साथ ऐसा हुआ है कि चीजों को हमने कुछ और नाम दे दिए हैं। और धीरे-धीरे सारा मनुष्य अपने को पहचानने में असमर्थ हो गया है। अब वह किसी चीज को कुछ कहता है, किसी को कुछ कहता है, किसी को कुछ कहता है। अगर भय की बुनियाद को पहचानना हो तो भय को भय ही कहना पड़ेगा। और अगर बेटा बाप से डरता हो तो उसे बाप से कह देना चाहिए कि मुझे आपसे कोई प्रेम नहीं, कोई श्रद्धा नहीं, मैं सिर्फ डरता हूं। और आपके जो पैर छू रहा हूं, यह श्रद्धावश नहीं है, आदरवश नहीं है, सिर्फ भय के कारण छू रहा हूं। और अगर बाप अपने बेटे से डरता हो तो उसे कह देना चाहिए कि यह जो चाकलेट मैं खरीद कर लाया हूं, किसी प्रेम की वजह से नहीं, सिर्फ भय की वजह से खरीद कर लाया हूं। ये जो रुपये तुम्हें दे रहा हूं कि तुम जाओ और सर्कस देख आओ, ये किसी प्रेम की वजह से नहीं दे रहा हूं, सिर्फ भय की वजह से दे रहा हूं। अगर पति पत्नी से डरता हो तो उसे कह देना चाहिए कि मैं सिर्फ डरता हूं, प्रेम मैंने नहीं पहचाना। अगर पत्नी पति से डरती हो तो उसे कह देना चाहिए, हमारे बीच भय के अतिरिक्त कोई रिश्ता नहीं है।
हमें चीजें साफ कर लेनी चाहिए। हमें चीजें बिल्कुल स्पष्ट कर लेनी चाहिए, जैसी हैं। और तथ्यों को पकड़ लेना चाहिए। तो हम आदमी को बदल सकते हैं। क्योंकि बड़े मजे की बात यह है कि अगर मुझे यह पहचान पड़ जाए कि मेरे सारे संबंध भय के हैं--मैंने कभी प्रेम नहीं किया, मैंने कभी किसी से मैत्री नहीं बनाई, मैंने कभी प्रार्थना नहीं की, मैं कभी प्रभु के मंदिर में प्रविष्ट नहीं हुआ, मैंने कभी मेरे जीवन में श्रद्धा अनुभव नहीं की, मैंने मेरे जीवन में कभी भी कोई सहानुभूति नहीं पाई, मैं सिर्फ भयभीत हूं, मैं सिर्फ भयभीत हूं--अगर मुझे यह दिखाई पड़ जाए, तो इस दर्शन का बहुत अदभुत परिणाम होगा। और वह परिणाम यह होगा कि मुझे इस स्थिति से छलांग लगानी ही पड़ेगी, इस स्थिति में जीना असंभव हो जाएगा।
अगर मुझे पता चल जाए कि मेरे घर में आग लग गई है, तो मैं पूछने नहीं जाऊंगा किसी से कि मैं बाहर निकलूं या न निकलूं। अगर घर में आग लग गई है तो मैं एक किताब खोल कर यह न पूछूंगा कि मार्ग कहां है। अगर आग लग गई है तो मैं

यह न कहूंगा कि ठहरें, थोड़ी देर बाद चलते हैं, थोड़ा विश्राम कर लें, या कल निकलेंगे। आग लग गई है, यह मुझे दिखाई पड़ जाए, तो दूसरा काम--जो मुझे करना नहीं पड़ेगा, अपने से हो जाएगा--वह मेरा बाहर निकलना है। जब घर में आग दिखाई पड़ती है तो कोई बाहर निकलता नहीं, निकलने के लिए कुछ करना नहीं पड़ता, बस पाता है कि निकल गया है। उसके कारण हैं।
लेकिन आग की लपटों को किसी ने नाम दे रखा हो कि गुलमोहर के फूल खिले हैं, तो फिर बहुत मुश्किल हो गई! कि टेसू के फूल खिले हैं सुर्ख, बैठा है अपने घर के भीतर और घर में आग लग रही है और वह कह रहा है कि टेसू के फूल खिले हैं और घर के लोग फूलों की चर्चा कर रहे हैं। तो फिर नहीं निकलेगा। फिर अगर उससे कोई कहेगा भी कि चलो बाहर, तो वह कहेगा कि अभी तो बहुत अच्छे फूल खिले हैं, बाहर क्या जाना है!
लेकिन हमने ऐसा धोखा दिया है। भीतर हमने ऐसा ही किया है। जहां आग की लपट है, वहां हम टेसू के फूल समझ रहे हैं। जहां भय है, वहां प्रेम समझ रहे हैं। जहां घृणा है, ईर्ष्या है, प्रतिस्पर्द्धा है, प्रतियोगिता है, वहां हम विकास समझ रहे हैं, प्रगति समझ रहे हैं। और जहां कुछ भी नहीं है, वहां भी हमने कुछ समझ रखा है।
यह सारी की सारी स्थिति मनुष्य को नया नहीं होने देती। इस स्थिति को बनाए रखने में सबसे बड़ा हाथ दो तरह के लोगों का है। एक तो उन लोगों का है जिनका मनुष्य को भयभीत करने में कुछ न्यस्त स्वार्थ है, कुछ वेस्टेड इंट्रेस्ट है। समस्त सत्ताधारियों का लाभ है कि आदमी भयभीत रहे। क्योंकि जिस दिन आदमी निर्भय होगा, दुनिया से सत्ता विदा हो जाएगी। सत्ता जो है, वह भय का काउंटर पार्ट है। अथारिटी जो है, अधिकार जो है, मालकियत जो है, नेतृत्व, गुरुडम--सब तरह की जो सत्ता है, पावर जो है, सब तरह की शक्ति जो है--वह दूसरी तरफ आदमी भयभीत है तभी तक है। अगर दुनिया में निर्भय आदमी पैदा हो, तो समस्त सत्ताएं विदा हो जाएंगी।
एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि अगर किसी को बड़ा नेता होना हो, तो उसको अपने देश को उतना ही भयभीत करना जरूरी है। जितना मुल्क भयभीत होगा, उतना नेता बड़ा होता जाएगा।
लालबहादुर शास्त्री बहुत अदभुत आदमी नहीं थे। अच्छे आदमी थे, साधारण आदमी थे। लेकिन देश भयभीत था इसलिए लालबहादुर बहुत बड़े नेता हो गए। लालबहादुर जैसा व्यक्ति, देश अगर सामान्य स्थिति में होता, तो कभी भी खो जाता, हमें पता भी न चलता। अच्छे आदमी थे, लेकिन अति सामान्य आदमी थे। लेकिन देश बहुत भयभीत था, डरा हुआ था। उस भय और डर और युद्ध और घबराहट और दुश्मनी और असुरक्षा के बीच लालबहादुर बड़े नेता हो गए। दुनिया के सारे नेता भयपूर्ण स्थितियों में पैदा होते हैं। जिनको हम दुनिया के बड़े आदमी कहते हैं, वे तभी पैदा होते हैं जब समाज बहुत भयभीत होता है।
कृष्ण ने वायदा किया है कि जब समाज में बहुत ग्लानि होगी और धर्म का बहुत पतन होगा, तब मैं आऊंगा। इस वायदे का मुझे पक्का पता नहीं है कि यह कहां तक ठीक हो सकता है। लेकिन एक बात पक्की है कि अगर समाज में बहुत ग्लानि न हो और समाज बहुत भयभीत और दुख में न हो, तो बड़े आदमी के पैदा होने का उपाय नहीं होता है।
समस्त नेतृत्व, समस्त सत्ता और एक आदमी पर दूसरे आदमी का प्रभुत्व, भय
के कारण पैदा होता है। इसलिए दुनिया का कोई भी न्यस्त स्वार्थ मनुष्य को निर्भय बनाने में उत्सुक नहीं है। न तो गुरु चाहता है कि विद्यार्थी निर्भय हो जाएं, न सत्ता चाहती है, न राज्य चाहता है कि जनता निर्भय हो जाए, न बाप चाहता है कि बेटा निर्भय हो जाए, न पति चाहता है कि स्त्री निर्भय हो जाए, कोई किसी को निर्भय नहीं देखना चाहता। लेकिन ध्यान रहे, सत्ता तो बच जाती है, लेकिन जीवन खो जाता है। प्रभुत्व तो बच जाता है, लेकिन प्रेम खो जाता है।
अगर बाप चाहता है कि बेटा निर्भय न हो पाए, तो न तो बाप रहेगा, न बेटा रहेगा। दोनों के बीच प्रेम नहीं रहेगा, सिर्फ एक जड़ यंत्र रह जाएगा घर में, जिसमें बाप और बेटा मशीन के कलपुर्जे हो जाएंगे। अगर पति चाहता है कि पत्नी निर्भय न हो जाए...

इसलिए पतियों ने स्त्रियों को कभी आर्थिक रूप से सक्षम नहीं होने दिया। क्योंकि आर्थिक रूप से स्त्रियां सक्षम होंगी तो स्त्री उतनी भयभीत न रह जाएगी जितनी सदा भयभीत रही है। इसलिए पुरुष ने स्त्री को घर के भीतर बंद रखा, क्योंकि वह बाहर जाएगी, जगत से संबंधित होगी, तो उसका भय कम हो जाएगा। क्योंकि जितना ज्ञान बढ़ता है उतना भय कम हो जाता है। इसलिए शूद्रों को शिक्षित नहीं होने दिया। क्योंकि वे शिक्षित होंगे, ज्ञान बढ़ेगा, तो भय कम हो जाएगा। इसलिए दुनिया में हमने दीन को, दरिद्र को सब तरफ से बांध कर रखा है, इंतजाम करके रखा है कि वह निर्भय न हो जाए। क्योंकि वह निर्भय होगा तो बस सत्ता का यंत्र टूटना शुरू हो जाएगा।
लेकिन ध्यान रहे, भय रहे, गुलाम रहेगा, मालिक रहेगा, मनुष्य नहीं रहेंगे। और बड़े मजे की बात यह है कि जब कोई गुलाम गुलाम होता है तो उसकी मनुष्यता तो मर जाती है, लेकिन साथ ही जो मालिक बनता है उसकी मनुष्यता भी मर जाती है। सिर्फ गुलाम की मनुष्यता मरती होती तब भी ठीक था, मालिक जो बनता है उसकी मनुष्यता भी मर जाती है। अगर दबाने से बेटे का व्यक्तित्व मरता होता तो भी ठीक था, कम से कम बाप का बच जाता। लेकिन बेटे को दबाने से दबाने वाले बाप का व्यक्तित्व भी मर जाता है। क्योंकि जो दबाता है या दबाया जाता है, दोनों स्थितियों में भयभीत है। चाहे दबाए तो भयभीत है और चाहे दबे तो भी भयभीत है। दबाना जो है, वह भय की सुरक्षात्मक व्यवस्था है। मैक्यावेली ने कहा है--आक्रमण की तारीफ में कहा है--कि सुरक्षा का सबसे अच्छा उपाय आक्रमण है। डिफेंस की सबसे अच्छी व्यवस्था अटैक है।
तो बाप अगर बेटे को डरा रहा है, तो डरा हुआ है इसीलिए डरा रहा है। यह व्यवस्था है उसकी। कल बेटा न डराए, इसके पहले वह डरा लेना चाहता है। अगर पति पत्नी को डरा रहा है, तो वह पत्नी से डरा हुआ है। अगर शिक्षक विद्यार्थी को डरा रहा है, तो वह विद्यार्थी से डरा हुआ है। हमने जो सारी व्यवस्था की है, वह भय पर खड़ी है। भय ने मनुष्य की आत्मा को नष्ट कर दिया है।
अगर एक नये समाज को जन्म देना है, तो एक नये मनुष्य को जन्म देना पड़ेगा। नया मनुष्य अभय ही हो सकता है। हटा दो सब स्वर्ग और नरक! हटा दो भय का सारा इंतजाम! और व्यक्ति को, जिस भांति भी वह निर्भय हो सके, निर्भय करो!
डर लगता है लेकिन हमें। क्योंकि हमारा तो हजारों साल का पुराना डर है। हम कहते हैं कि अगर व्यक्ति निर्भय हो गया, तो अराजकता हो जाएगी। जैसे कि अभी अराजकता नहीं है। हमें डर लगता है कि अगर व्यक्ति निर्भय हो गया, तो स्वच्छंद हो जाएगा। जैसे कि अभी स्वच्छंदता नहीं है। डर लगता है कि अगर व्यक्ति ऐसा हो गया, तो ऐसा हो जाएगा। और जिन-जिन चीजों से हम डरते हैं, वे सब हो गई हैं। उनसे डरने का अब कोई भी कारण नहीं है।
और बड़े मजे की बात यह है कि जिन बातों से हम डरते हैं कि ये हो न जाएं,
और जिन बातों को उन डर के कारण हम व्यवस्थित करते हैं, उन्हीं बातों के कारण वे बातें हुई चली जाती हैं। जिसे हमने समझा है दवा है, वह दवा नहीं है, बीमारी की मूल जड़ वही है।
स्वच्छंद व्यक्ति कौन होता है? स्वच्छंद वह होता है जिसे परतंत्र बनाने की कोशिश की गई। जिसे परतंत्र बनाने की कभी कोशिश नहीं की गई वह स्वच्छंद कभी भी हो नहीं सकता है। स्वच्छंदता परतंत्रता की प्रतिक्रिया है, रिएक्शन है। स्वतंत्र व्यक्ति कभी भी स्वच्छंद नहीं होता। सिर्फ परतंत्र व्यक्ति स्वच्छंद होता है। असल में जब हम किसी को परतंत्र करते हैं, तब उसमें स्वच्छंद होने की वृत्ति को जन्म देते हैं। जब मैं किसी व्यक्ति को दबाता हूं, तो उस व्यक्ति के भीतर दबाव से बचने और भागने की प्रवृत्ति को जन्म देता हूं। जब मैं किसी व्यक्ति को दबाता हूं, तो मैं उस व्यक्ति के भीतर मुझे दबाने के लिए निमंत्रण भी भेजता हूं, कि कल जब वह शक्तिशाली हो जाए तब मुझे दबा ले। लेकिन अगर मैं दबाता ही नहीं हूं, तो मैं दूसरे के भीतर भी दबाव से बचने या दबाव का प्रतिकार करने की वृत्ति को पैदा नहीं करता हूं।
लेकिन हम या तो दबाए गए हैं या दबे हुए हैं, और दोनों एक ही भाषा में सोचते हैं। और हमारी समझ यह है कि दबाएंगे नहीं तो सब टूट जाएगा। और मजा यह

है कि हमने इतने दिन दबाया, और कुछ भी नहीं बचा है। आज कोई तीन हजार वर्ष से सारी दुनिया में कानून की व्यवस्था है, लेकिन चोर रोज बढ़ते चले जाते हैं। चोरों को सजा बढ़ती चली जाती है, चोर बढ़ते चले जाते हैं। हत्यारों को सजा मिलती है, हत्यारे बढ़ते चले जाते हैं। दुनिया में हम एक अपराध कम नहीं कर पाए, नये अपराध जरूर हमने जोड़े हैं। कानून का जाल बड़ा होता जाता है।
और एक विसियस सर्किल है, हमारे तर्क का एक दुष्टचक्र है। वह यह कहता
है कि कानून कम है इसलिए चोर बढ़ रहे हैं, कानून और बढ़ाओ! कानून और बढ़ जाता है, चोर और बढ़ जाते हैं। तब हम कहते हैं, कानून फिर भी कम पड़ रहा है, कानून और बढ़ाओ ताकि चोर कम हों। चोर और बढ़ जाते हैं, हम कानून बढ़ाए चले जाते हैं। हमें ख्याल ही नहीं है कि जो हम कर रहे हैं, उससे कुछ अपराध बंद नहीं होंगे, जो हम कर रहे हैं उससे आदमी बदला नहीं। कितने कारागृह हमने बना कर रखे हैं! और धीरे-धीरे करीब-करीब सारी दुनिया को भी हम कारागृह बना लेंगे, तब भी कोई फर्क नहीं पड़ता है। क्यों? क्योंकि जो हम कर रहे हैं वह मानसिक रूप से गलत है। दमन प्रतिरोध पैदा करता है।
मैं एक संन्यासियों की... अभी एक सभा थी कुछ वर्ष पहले दिल्ली में। आमतौर से संन्यासी मुझे बुलाने में थोड़ा सोच-विचार करते हैं। लेकिन सभा ऐसी थी कि उन्होंने सोचा कि इस संबंध में तो मेरा मतैक्य हो जाएगा। सभा थी अश्लील पोस्टरों के खिलाफ, कि अश्लील पोस्टर नहीं बनने चाहिए। तो उन्होंने सोचा कि इसमें तो मैं क्या करूंगा! इसमें तो मैं कम से कम साथ ही दूंगा कि अश्लील पोस्टर नहीं बनने चाहिए। उन्होंने मुझे बुला लिया। लेकिन वे कठिनाई में पड़ गए। क्योंकि मेरी समझ यह है कि अश्लील पोस्टर की वजह से कोई अश्लील नहीं होता। अश्लील चित्त की वजह से अश्लील पोस्टर लगाने पड़ते हैं। अश्लील पोस्टर बहुत मुर्दा चीज है।
मैंने उन संन्यासियों से कहा, तुम आत्मवादी हो, तुम मुर्दा अश्लील पोस्टर को आत्मा से ज्यादा कीमती समझते हो? तुम यह कहते हो कि लोग बिगड़ रहे हैं, क्योंकि दीवाल पर नंगी तस्वीर लगी है। तब तो तुम बहुत भौतिकवादी हो। क्योंकि दीवाल की नंगी तस्वीर, लोग जैसे जिंदा लोगों को, आत्मवान लोगों को बिगाड़ देती है। मैंने कहा, आत्मवादी को तो यह कहना चाहिए कि नंगी तस्वीर यह खबर दे रही है कि लोग बिगड़े हुए हैं, उन्हें नंगी तस्वीर की जरूरत है। और अगर नंगी तस्वीर न मिले तो खतरा बढ़ जाएगा, कम नहीं होगा। क्योंकि उनकी आकांक्षा नंगी तस्वीर को देखने की अतृप्त रह जाएगी। हो सकता है, स्त्रियों को सड़कों पर चलना मुश्किल हो जाए। अगर अश्लील पोस्टर बंद कर दिए जाएं, तो सड़कों पर स्त्रियों को नग्न किए जाने की संभावनाएं बढ़ जाएंगी, कम नहीं होंगी। क्योंकि वह जो नंगा देखने की वृत्ति है, वह दमन पाएगी, प्रतिशोध करेगी, इनकार करेगी और कहेगी कि हमें नंगा देखना है। उसको थोड़ी तृप्ति मिल रही है पोस्टर देखने में। पोस्टर जो है वह स्त्रियों के वस्त्रों की रक्षा है, वह स्त्रियों को सड़क पर वस्त्र सहित चलने दे रहा है, क्योंकि लोगों की तृप्ति वहां हो जाती है।
तो मैंने कहा कि सब संन्यासी मिल कर तुम तो यह मांग करो कि पोस्टर इतने सुंदर बनाओ कि कोई स्त्री इतनी सुंदर ही न हो! कि किसी स्त्री के वस्त्र उघाड़ने की कोई जरूरत पुरुषों को सड़क पर न पड़ जाए! नंगा पोस्टर इतना तृप्त कर दे कि नंगी स्त्री की फिकर ही छूट जाए! लेकिन तुम कह रहे हो कि पोस्टर बंद करो। पोस्टर बंद खतरनाक बात हो जाएगी।
अभी ऐसा हुआ। अभी एक लड़की लंदन से लौटी। उसने मुझे कहा कि वह हिप्पियों का एक नाटक देखने गई। तो स्टेज पर हिप्पी लड़के और लड़कियां नाचते-नाचते नग्न हो गए। वह तो बहुत घबराई कि अब कोई उपद्रव न हो जाए। क्योंकि जब... वह पहली दफा ही गई थी। लेकिन हॉल में सन्नाटा रहा। न तो किसी ने सीटी बजाई, न किसी ने पैसे फेंके। यहां हमारा तो फिल्म में भी पैसा फिंक जाता है और सीटी बज जाती है। तो उसे बहुत हैरानी हुई कि लोग सीटी क्यों नहीं बजा रहे हैं? लोग पैसे क्यों नहीं फेंक रहे हैं? और बड़ी हैरानी हुई, उसने चारों तरफ देखा तो उसने देखा कि जब वे भावविभोर होकर हिप्पी नाचने लगे, और उन्होंने सब कपड़े फेंक दिए, और पूरा का पूरा उनका समूह का समूह नग्न होकर नाचने लगा, तब तो वह इतनी हैरान हुई कि हॉल में कई लड़के और लड़कियों ने कपड़े फेंक दिए और नंगे हो गए। लेकिन उन नंगे लोगों के प्रति भी

बगल की कुर्सी वाला आदमी बिल्कुल उत्सुक नहीं है। बगल में एक लड़की नग्न होकर बैठ गई है, लेकिन उसके पास जो बैठा हुआ आदमी है वह उसे लौट कर भी नहीं देख रहा है, वह अपना नाटक देख रहा है।
वह लड़की बहुत हैरान है! वह घर आकर, जहां ठहरी थी, उसने पूछा कि कितना आश्चर्यजनक है कि बगल में एक लड़की नग्न हो गई है और पास में बैठा हुआ पुरुष उसकी तरफ देख भी नहीं रहा है!
तो उसके घर के लोगों ने कहा, उससे क्या प्रयोजन है? नग्न होना उसका शौक है। वह नाटक देखने आया है, वह नाटक देख रहा है। उसको उस लड़की से क्या मतलब है?
यह हमें कठिन मालूम पड़ेगा। कठिन इसलिए मालूम पड़ेगा कि हम बहुत दमित, सप्रेस्ड चित्त को लिए बैठे हैं। मेरी समझ है कि हमने जिन-जिन चीजों को दबाया है, वे विस्फोटक होकर प्रकट होती हैं। स्वच्छंदता है, क्योंकि परतंत्रता है। आज्ञा तोड़ी जाती है, क्योंकि आज्ञा मनाने का बहुत आग्रह है। अनादर किया जाता है, क्योंकि आदर की बहुत आकांक्षा है। श्रद्धा मांगी जाती है, अश्रद्धा पैदा होगी।
इस सबको हमें हटा देना पड़े। व्यक्ति को निर्भय करना जरूरी है और सारे
भय के मनोवैज्ञानिक तंतु-जाल को तोड़ देना जरूरी है। अगर व्यक्ति निर्भय हो जाए तो क्या होगा? अगर व्यक्ति निर्भय हो जाए तो जैसा मैंने कहा कि भय मृत्योन्मुख है, अभय जीवनोन्मुख है। जैसे ही कोई निर्भय होता है, वह जीना चाहता है। जैसे ही कोई भयभीत होता है, वह मरना चाहता है या मारना चाहता है। जैसे ही कोई निर्भय होता है, वह स्वयं भी जीना चाहता है और दूसरे को भी जीने देना चाहता है।
यह ध्यान रहे, जो खुद मरने से पीड़ित है, वही मारना चाहता है। और जो खुद जीने के लिए आतुर है, वह दूसरे को भी जीवन देना चाहता है।
ये दुनिया में जितने युद्ध हैं, इतनी हिंसा है, इतने युद्ध हैं, इन युद्धों के बहुत गहरे में व्यक्ति की जीवन की धारा सूख गई है, वह मरणोन्मुख हो गया है। जहां भय मिटा, अभय हुआ, वहां प्रेम के स्रोत अपने आप फूट पड़ते हैं। ऐसे ही जैसे कोई झरने के ऊपर पत्थर रखा हो और पत्थर की वजह से झरना दबा रहे, और पत्थर हटे और झरना फूट पड़े। प्रेम कहीं से लाना नहीं पड़ता। सिर्फ भय हट जाए तो व्यक्ति के जीवन में प्रेम की धारा फैलनी शुरू हो जाती है।
लेकिन हमने तो अजीब पागल व्यवस्था की है। वह व्यवस्था यह है कि हम भयभीत करते हैं कि प्रेम करो। हम कहते हैं कि भय होगा तो प्रेम होगा। हम पत्थर रखते हैं और कहते हैं अब झरना बहेगा। और पत्थर को बड़ा करते जाते हैं, झरने के प्राण सूख जाते हैं।
जहां भय है, वहां प्रेम संभव नहीं है। जहां भय हटा, वहां प्रेम अपने आप बहने लगता है। किसी मनुष्य को अहिंसक बनाने की जरूरत नहीं है, भय भर हट जाए व्यक्ति के ऊपर से, तो व्यक्ति अपने आप प्रेमपूर्ण हो जाता है। और ध्यान रहे, जो प्रेम से भर जाता है, वह किसी दिन प्रार्थना को भी उपलब्ध हो जाता है।
पुरानी दुनिया ने बहुत कम लोगों को प्रभु तक पहुंचाया। बात बहुत की है, भगवान तक पहुंचाने की जितनी चर्चा उन्होंने की है, शायद ही कोई कभी करेगा; आगे कभी कोई नहीं करेगा। पुराना समाज निरंतर परमात्मा की ही चर्चा करता रहा। लेकिन ध्यान रहे, अक्सर ऐसा होता है कि अगर अस्पताल में जाइए, तो वहां स्वास्थ्य की बहुत चर्चा होती है।...
प्रेम की धारा जब बहे, तो प्रेम की धारा व्यक्तियों की तरफ बहती है। लेकिन प्रेम इतना बड़ा है कि कोई भी व्यक्ति उसे पूरा झेलने में समर्थ नहीं है। अगर एक बार प्रेम की धारा बहनी शुरू हो जाए, तो कोई भी व्यक्ति उस प्रेम की पूरी धारा को झेलने में समर्थ नहीं है। अगर मैं एक व्यक्ति को प्रेम करना शुरू करूं और मेरा प्रेम बहता चला जाए, तो बहुत जल्दी मैं पाऊंगा कि वह व्यक्ति डूब गया और प्रेम आगे निकल गया।
अमेजान नदी निकलती है जिस जगह से अगर वहां आप खड़े हो जाएं तो कभी कल्पना न कर सकेंगे कि यहां से अमेजान निकल सकती है। अमेजान दुनिया की सबसे बड़ी नदी है। अमेजान नदी के पास दुनिया की सबसे बड़ी जलराशि है। लेकिन

जहां से वह निकलती है वहां एक-एक बूंद टपकती है। और दो बूंद के बीच बीस सेकेंड का फासला होता है। एक बूंद गिर जाती है, फिर बीस सेकेंड तक कोई बूंद नहीं गिरती, फिर बीस सेकेंड बाद दूसरी बूंद गिरती है। लेकिन वह एक-एक बूंद गिर-गिर कर अमेजान जैसा विस्तार बन जाता है। फिर जब अमेजान सागर के पास गिरती है तो सागर भी एक दफा सोचता होगा कि नदी गिर रही है या सागर ही गिर रहा है! इतनी बड़ी नदी है।
प्रेम तो बूंद-बूंद शुरू होगा, एक-एक व्यक्ति से शुरू होगा।
लेकिन शुरू ही नहीं हो पाता। और प्रेम जिनके जीवन में नहीं है वे भी प्रार्थना करने पहुंच जाते हैं। जिनका उदगम स्रोत ही नहीं है वे भी डेल्टा बनाने का ख्याल करते हैं सागर के पास जाकर। वह नहीं हो पाता। प्रेम तो एक-एक बूंद शुरू होगा, एक-एक व्यक्ति को बहना शुरू होगा। लेकिन प्रेम अनंत है। वह इतना ज्यादा है कि किसी व्यक्ति की उसे झेलने की सामर्थ्य नहीं है। व्यक्ति डूब जाएगा और प्रेम आगे बढ़ जाएगा। जिस दिन प्रेम फैलते- फैलते समस्त पर पहुंच जाता है, उस दिन वह प्रार्थना बन जाता है। घुटने टेके हुए मंदिर में खड़े लोग प्रार्थना नहीं कर रहे हैं। प्रार्थना को तो केवल वे ही लोग उपलब्ध होते हैं, जिनका प्रेम अनंत हो जाता है।
बुद्ध का अंतिम दिन, जिस घर में उन्होंने भोजन लिया, वह एक गरीब लुहार था। उसका नाम था चंद। उस गरीब लुहार ने बुद्ध को कहा था--आज मेरे घर भोजन ले लें। वर्षों से प्रतीक्षा करता हूं, लेकिन डरता हूं कि कैसे निमंत्रण दूं; क्योंकि मेरे घर तो साग-सब्जी भी नहीं है।
बुद्ध उसके घर गए। तो बिहार के जिस हिस्से में वह रहता था, वहां का गरीब आदमी आज भी, पच्चीस सौ साल बाद भी, कोई बहुत फर्क नहीं पड़ गया बिहार में, पच्चीस सौ साल बाद आज भी कुकुरमुत्ता ही खाता है। बरसात में लकड़ियों पर उगी हुई छतरी आपने देखी होगी सफेद, वह कुकुरमुत्ता, वही सुखा लेता है, रख लेता है वर्ष भर का इकट्ठा करके, उसको ही खा लेता है।
उस गरीब चंद के पास तो बुद्ध को खिलाने को भी सब्जी न थी, तो उसने कुकुरमुत्ते, सूखे कुकुरमुत्ते की सब्जी ही बनाई थी। बुद्ध ने उसे खाया, वह जहर जैसी कड़वी थी। लेकिन बुद्ध ने सोचा कि अगर मैं कहूं यह कड़वी है, तो यह बेचारा बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगा; क्योंकि इसके पास और कोई सब्जी नहीं है। तो बुद्ध उसकी सब्जी खाते रहे। यह सोच कर कि अगर मैं दुबारा सब्जी न लूं तो चंद सोचेगा कि मेरा भोजन पसंद नहीं आया। तो उन्होंने रोटी कम खाई, सब्जी ज्यादा खाई। और चंद ने कहा, क्या भगवान को बहुत अच्छी लगी सब्जी? बुद्ध ने कहा, बहुत ही अच्छी लगी चंद। तो वह और बहुत सी सब्जी ले आया। बुद्ध उसकी सारी सब्जी खा गए।
वह फूड पायजन हो गया, जहर हो गया; वे उसी से मरे। उनको जहर हो गया, जब वह पहुंचे वापस तो सारे शरीर पर जहर का प्रभाव हो गया। चिकित्सकों ने कहा कि जो सब्जी आपने खाई है उसमें जहर था, आपने रोका क्यों नहीं? तो बुद्ध ने कहा, मौत तो आने ही वाली थी, लेकिन मौत के लिए प्रेम को रोकता तो हानि ज्यादा होती। मैंने प्रेम को आने दिया, प्रेम को होने दिया; मौत को स्वीकार कर लिया। हानि कुछ ज्यादा होने वाली नहीं, क्योंकि मैं मरने ही वाला हूं--आज नहीं कल, कल नहीं परसों। लेकिन प्रेम की कीमत पर जीवन को नहीं बचा सकता हूं।
फिर बुद्ध की जब सांस टूटने लगी तो उन्होंने कहा कि सुनो भिक्षुओ! क्योंकि भिक्षुओं में खबर फैल गई कि यह चंद तो हत्यारा है। इसने तो बुद्ध के प्राण ले लिए। यह कैसा आदमी है। तो बुद्ध ने मरते वक्त जो आखिरी शब्द कहे, वे बहुत अदभुत हैं। वे उनकी प्रार्थना से निकले हुए शब्द हैं। उन्होंने कहा, भिक्षुओ सुनो! हजारों-करोड़ों वर्षों में बुद्ध जैसा व्यक्ति पैदा होता है। जिसको परम ज्ञान उपलब्ध हो, ऐसा बुद्धत्व को हजारों-करोड़ों वर्षों में कभी एक व्यक्ति उपलब्ध होता है। वह व्यक्ति अगर सौ साल जीए, तो सौ वर्ष में सिर्फ एक बार ऐसे आदमी को सौभाग्य मिलता है जो उसे प्रथम भोजन कराए, वह उसकी मां होती है। और जो उसे अंतिम भोजन कराए, वह भी मां से कम तो नहीं। तो चंद लुहार बहुत सौभाग्यशाली है। करोड़ों वर्षों में यह सौभाग्य दुबारा फिर कभी किसी व्यक्ति को मिलेगा कि बुद्धत्व को

प्राप्त व्यक्ति को अंतिम भोजन कराए। जाओ तुम चंद का स्वागत करो और चंद का अभिनंदन करो! और जाओ गांव में डुंडी पीटो और खबर करो कि चंद महाभागी है! भिक्षु तो बहुत हैरान हुए। आनंद ने पास आकर कहा कि आप यह क्या कह रहे हैं? हम और अभिनंदन करें उस दुष्ट का जिसके भोजन से आपकी मृत्यु हुई! बुद्ध ने आनंद से कहा, पागल आनंद, जो होना था वह हो गया है। और अगर मैं
यह न कहूं और मर जाऊं, हो सकता है लोग चंद की हत्या कर दें। उसका क्या कसूर है? गरीब होना कसूर नहीं। कुकुरमुत्ते की सब्जी खाना कसूर नहीं। बुद्ध को घर पर निमंत्रण देना कसूर नहीं। चंद का क्या कसूर है? कसूर है तो मेरा ही। जाओ खबर कर दो गांव में कि चंद महाभागी है! कि कोई मेरे मरने के बाद चंद को परेशान न करे, कोई हमला न बोल दे, कोई उसे मार न डाले, कोई उसे गालियां न दे, कोई उसे बुरा न कहे।
यह प्रार्थनापूर्ण व्यक्ति है, जो चंद के लिए चिंतित है मरते क्षण में कि कहीं कोई उसको नुकसान न पहुंचा दे।
जीसस मरते वक्त सूली पर कहते हैं, इन सबको प्रभु माफ कर देना जो मुझे सूली दे रहे हैं, क्योंकि इन्हें पता नहीं कि ये क्या कर रहे हैं।
मंसूर को जिस दिन काटा गया और लटकाया गया और जब उसकी जीभ काटी जाने लगी, तो उसने कहा, रुको एक क्षण! मैं प्रार्थना तो कर लूं। उसके पैर काट डाले गए, हाथ काट डाले गए। तो उसने ऊपर आकाश की तरफ मुंह उठा कर कहा कि इन सबको क्षमा कर देना।
तो एक आदमी ने पूछा, यह क्या कह रहे हो?
तो मंसूर ने कहा, मैं इसलिए कह रहा हूं ताकि तुम देख सको कि प्रेम के अतिरिक्त और कोई प्रार्थना नहीं है और प्रार्थना के अतिरिक्त और कोई परमात्मा नहीं है। मैं मरते वक्त... मेरी मृत्यु तुम्हें याद न रह जाए, लेकिन मेरा प्रेम तुम्हारे ख्याल में रह जाए, तो शायद किसी दिन तुम भी प्रेम को उपलब्ध हो सको।
प्रार्थना का अर्थ है इतना विस्तीर्ण प्रेम कि वह समस्त सीमाओं को पार कर जाए। जिस दिन वह असीम तक पहुंचने लगता है, उस दिन प्रेम प्रार्थना बन जाती है। और जिस दिन वह सबको डुबा कर अपने को भी डुबा लेता है, जब न करने वाला बचता, न किया जाने वाला बचता, तब जो शेष रह जाता है वह परमात्मा है। प्रेम के तीन चरण हैं।
प्रेम! जब करने वाला है, प्रेमी है; और जिसको प्रेम किया, प्रेम-पात्र है।
प्रार्थना! जब करने वाला है; लेकिन प्रेम-पात्र फैल गया, एक नहीं रहा, अनेक हो गया।
और परमात्मा! जब कि प्रेमी भी मिट गया और प्रेम-पात्र भी मिट गया, सिर्फ प्रेम ही रह गया।
लेकिन भय के आधार पर खड़ा हुआ मनुष्य धार्मिक नहीं हो सकता। और धार्मिक मनुष्य के पैदा हुए बिना नये समाज का कोई जन्म संभव नहीं है।
तो अंतिम बात! अब तक जो मनुष्य था, वह अधार्मिक था। अब तक जो समाज था, अधार्मिक था। अगर नये समाज को जन्म देना है, नये समाज की खोज करनी है, तो एक रिलीजस, एक धार्मिक व्यक्ति को जन्म देना जरूरी है। और धार्मिक व्यक्ति भय के आधार पर नहीं, अभय के आधार पर ही पैदा होता है। क्योंकि भय अप्रेम है, अभय प्रेम है। और भय घृणा है, हिंसा है, ईर्ष्या है। अभय प्रार्थना है, परमात्मा है।
तो मेरे सामने यह सवाल ऐसा नहीं है कि नया समाज हम कैसे खोजें? मेरे सामने सवाल ऐसा है कि नया व्यक्ति हम कैसे खोजें?
और इसलिए किसी दूसरे की फिकर ही मत करना, क्योंकि वह नये व्यक्ति की खोज अपने से ही शुरू हो सकती है। जिनको मैं क्रांतिकारी कहता हूं, उनको नहीं जो दूसरे को बदलने को बहुत आतुर हैं, क्योंकि वे ऐसे लोग भी हो सकते हैं जो खुद बदलने से बचने की कोशिश में लगे हैं और दूसरे को बदलना चाह रहे हैं। क्रांतिकारी मैं उसे कहता हूं जो अपने बदलने को उत्सुक है। और जब कोई अपने को बदलता है और उसका दीया जल जाता है, तो आस-पास के बुझे दीये अपने आप जलने की चेष्टा में संलग्न हो जाते हैं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे मैं बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नये समाज की खोज
आठवां प्रवचन

मैं पूंजीवाद के समर्थन में हूं

मेरे प्रिय आत्मन्!
"समाजवाद से सावधान", इस संबंध में थोड़ी सी बातें कल मैंने आपसे कही थीं। उस बाबत कुछ प्रश्न मित्रों ने पूछे हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि जो व्यक्ति समझता है कि उसकी आवश्यकताएं जितनी हैं, वह उनको ठीक तरह से पूरी कर रहा है, तो क्या उसे भी असंतुष्ट होने की आवश्यकता है?

इस संबंध में दो-तीन बातें समझ लेनी जरूरी हैं। पहली बात तो यह कि जो व्यक्ति ऐसा समझता है कि उसकी आवश्यकताएं पूरी हो रही हैं, वह व्यक्ति स्वयं के या अन्य के विकास के क्रम से रुक जाता है। ऐसा व्यक्ति जो समझता है कि जो उसे मिल गया वह पर्याप्त है, वह आगे बढ़ने से रुक जाता है। और हो सकता है कि उसे स्वयं को तो इससे बहुत ज्यादा नुकसान न पहुंचे, लेकिन जिस समाज का वह हिस्सा है उस समाज को जरूर नुकसान पहुंचता है। उसे स्वयं भी बहुत नुकसान पहुंचेगा।
लेकिन साधारणतः हमें ऐसा ही समझाया गया है कि अपनी आवश्यकताओं को एक जगह रोक कर हमें समझना चाहिए कि वे पूरी हो गई हैं। धार्मिक आदमी की हम ऐसी ही परिभाषा करते रहे हैं कि वह अपनी आवश्यकताओं को कम कर लेता है और संतुष्ट हो जाता है।
सच्चाई बहुत उलटी है। मेरी दृष्टि में धार्मिक आदमी और ही प्रकार का आदमी है। मैं उस आदमी को धार्मिक कहता हूं, जिसकी आवश्यकताएं इस पृथ्वी को छोड़ कर आकाश को भी छूने लगती हैं। मैं उस व्यक्ति को धार्मिक कहता हूं, जिसकी आवश्यकताएं शरीर से भी ऊपर उठ कर आत्मा की आवश्यकताएं बन जाती हैं। मैं उस आदमी को धार्मिक कहता हूं, जो पदार्थ की ही आवश्यकताओं को पर्याप्त न मान कर, परमात्मा को भी अपनी आवश्यकता बना लेता है।
धार्मिक आदमी मैं उसे नहीं कहता, जो कहीं आवश्यकताओं को पूरा मान कर ठहर गया; धार्मिक आदमी मैं उसे कहता हूं कि जो जब तक परमात्मा को ही न पा ले, तब तक आवश्यकताएं पूरी हो गईं, ऐसा मानने को राजी नहीं हो सकता है। धार्मिक आदमी को मैं संतुष्ट आदमी नहीं कहता, धार्मिक आदमी को मैं दिव्य-रूप से असंतुष्ट आदमी कहता हूं--डिवाइन डिसकंटेंटमेंट। उसके भीतर इतना असंतोष है कि यह पूरी पृथ्वी भी उसे मिल जाए तो संतुष्ट नहीं कर सकती है। उसे तो स्वयं परमात्मा ही मिले तो ही वह संतुष्ट हो सकता है।
नहीं, धार्मिक आदमी वह नहीं है, जो थोड़े में संतुष्ट हो गया है। धार्मिक आदमी वह है कि उसे सारे जगत का सब कुछ भी मिल जाए तो भी संतुष्ट नहीं हो सकता। उसे तो जगत का परम अर्थ, जीवन का परम रहस्य, स्वयं प्रभु ही मिले तभी संतुष्ट हो सकता है।
तो मैं नहीं कहूंगा कि आप अपनी आवश्यकताओं को थोड़ा सा पूरा कर लें और वहां रुक जाएं। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि आप सदा दुखी रहें। असल में असंतुष्ट होने का मतलब दुखी होना नहीं है। असंतुष्ट होने का क्या अर्थ है, इसे थोड़ा ठीक से समझ लेना चाहिए। आपके पास जो है, उसे तो पूरे आनंद से भोगें; लेकिन जो नहीं है, उसके लिए भी श्रम करते रहें। आपके पास जो है, उसके लिए परमात्मा को धन्यवाद दें; और आपके पास जो नहीं है, उसके लिए मेहनत जारी रखें।
लेकिन साधारणतः हम समझते हैं, असंतुष्ट आदमी वह है कि उसके पास जो है उससे वह बिल्कुल दुखी है। नहीं! ठीक रूप से, सम्यक रूप से, राइट डिसकंटेंट, ठीक रूप से असंतुष्ट आदमी वह है कि जो उसे मिला है उसे तो परमात्मा को धन्यवाद देकर भोगता है, लेकिन जो नहीं मिला है उसे पाने के लिए भी प्रयासरत रहता है।

हां, धार्मिक और अधार्मिक असंतुष्ट आदमी में थोड़ा सा फर्क होगा। जैसा
कि कृष्ण ने कहा है कि तुम प्रयत्न करो, प्रयास करो, कर्म करो, लेकिन फल की आकांक्षा मत करो। धार्मिक आदमी श्रम करेगा, जो नहीं है उसे पाने के लिए; लेकिन अगर न मिले, अगर न पा सके जिसे पाने के लिए उसने श्रम किया था, तो पागल नहीं हो जाएगा, विक्षिप्त नहीं हो जाएगा। धार्मिक आदमी अभीप्सा करेगा, जो नहीं है उसे पाने की; लेकिन फल सदा परमात्मा के हाथ में ही समझेगा।
अधार्मिक और धार्मिक में संतोष और असंतोष का फर्क नहीं है, अधार्मिक
और धार्मिक में असंतोष के ही दो रूपों का फर्क है। अधार्मिक आदमी असंतुष्ट होगा जब, तो जो उसके पास है उसमें आनंद नहीं लेगा और जो उसके पास नहीं है उसमें आनंद की कामना करेगा। फिर जब उसे वह भी मिल जाएगा तो उसमें भी आनंद नहीं लेगा और जो नहीं है उसमें आनंद की कामना करेगा। अगर नहीं मिलेगा तो दुखी होगा और मिल जाएगा तो सुखी कभी भी नहीं होगा। यह अधार्मिक रूप से असंतुष्ट आदमी है।
धार्मिक रूप से असंतुष्ट आदमी वह है कि उसके पास जो है उसे प्रभु की कृपा मान कर पूरी तरह से भोगेगा और जो नहीं है उसे प्रभु की शक्ति मान कर पाने का प्रयत्न करेगा। अगर मिल जाएगा तो खुश होगा और परमात्मा को धन्यवाद देगा; और अगर नहीं मिलेगा तो समझेगा कि मेरे प्रयास में कमी है और प्रयास को जारी रखेगा। अगर नहीं पाएगा तो समझेगा कि परमात्मा की अनुकंपा नहीं है, फल नहीं मिल रहा है, मेरे पूरे प्रयास में, मेरी पूरी शक्ति में कोई कमी है। अपने प्रयास को बढ़ाएगा, श्रम को बढ़ाएगा।
असंतुष्ट होने का अर्थ दुखी होना नहीं है। असल में कोई आदमी पूरी तरह सुखी होकर भी असंतुष्ट हो सकता है। सुखी होने का मतलब हैः जो है उसे आनंद से भोगना। और असंतुष्ट होने का अर्थ हैः जो नहीं है उसे आनंद से पैदा करने का श्रम करना। जब अधिकतम लोग समाज में इस भांति श्रम करते हैं, तो समाज संपन्न और समृद्ध होता है। और जब अधिक लोग ऐसा सोचते हैं कि जो है बस ठीक है, वहीं रुक जाना है, तो फिर पूरा समाज धीरे-धीरे दरिद्र हो जाता है। जिंदगी का सारा विकास, जो नहीं है, उसे पाने से ही होता है।
इसलिए मैं तो कहूंगा कि ऐसा किसी जगह मानने की जरूरत नहीं है कि अब सब पूरा हो गया, अब मुझे क्या करना है! यह मरने के ढंग हैं। यह अपने भीतर जिंदा रहते हुए मर जाना है। जब तक श्वास है, तब तक एक भी श्वास व्यर्थ नहीं जानी चाहिए। और फिर भी अगर किसी व्यक्ति को ऐसा लगता हो कि मेरी तो सच में ही सारी आवश्यकताएं पूरी हो गईं, तो फिर ऐसे व्यक्ति को दूसरों की आवश्यकताएं पूरा करने में लग जाना चाहिए। अगर किसी व्यक्ति को ऐसा पक्का लगता है कि मेरी तो सभी आवश्यकताएं पूरी हो गईं, मैं क्यों श्रम करूं? तो उसे चारों तरफ देखना चाहिए कि अब मेरा काम तो जमीन पर खत्म हो गया, लेकिन दूसरों की आवश्यकताएं पूरी नहीं हुई हैं, उनके लिए मैं श्रम करने में लग जाऊं।
लेकिन श्रम से नहीं बचा जा सकता। अगर आपकी आवश्यकताएं पूरी हो गई हैं,
तो अपने चारों तरफ देखिए, बहुत लोगों की पूरी नहीं हुई हैं, उनके लिए श्रम करने में लग जाइए। लेकिन खाली बैठने का हक किसी को भी नहीं है। संन्यासी को भी खाली बैठने का हक नहीं है। क्योंकि उतनी हमारी शक्ति व्यर्थ जाए तो फिर देश संपन्न नहीं हो सकता। देश को संपन्न करना है तो सभी को श्रम में लगना ही चाहिए। और श्रम में हम तभी लगेंगे जब कोई आवश्यकता पूरी करनी हो। चाहे अपनी, चाहे किसी दूसरे की, लेकिन आवश्यकता पूरी करने की दौड़ जारी रहनी चाहिए।
यह दौड़ शांत हो, यह दौड़ आनंदपूर्ण हो, इतना तो मैं कहूंगा। यह दौड़ पागल
की नहीं होनी चाहिए, विक्षिप्त की नहीं होनी चाहिए। यह दौड़ नींद को हराम कर देने वाली नहीं होनी चाहिए। यह दौड़ ऐसी नहीं होनी चाहिए कि आदमी बिल्कुल होश खो दे और दौड़ता रहे, और उसे पता भी न हो कि कहां दौड़ रहा है। यह दौड़ बहुत आनंदपूर्ण होनी चाहिए, यह दौड़ बहुत शांत होनी चाहिए, यह दौड़ बहुत स्वस्थ होनी चाहिए।
यह हो सकती है। लेकिन हमने इस तरफ सोचा नहीं। धार्मिक आदमी समझाता रहा कि संतोष रखो और अधार्मिक आदमी दौड़ता रहा, तो धीरे-धीरे असंतोष

अधार्मिक आदमी का लक्षण बन गया और संतोष धार्मिक आदमी का लक्षण बन गया, जो कि सही नहीं है। धार्मिक आदमी को भी असंतुष्ट होना चाहिए। और सच बात यह है कि सभी अच्छे धार्मिक आदमी असंतुष्ट होते हैं। उनके असंतोष के तल बदल जाते हैं, यह दूसरी बात है। वे इस जमीन पर मकान नहीं बनाना चाहते बहुत बड़ा; लेकिन वे मोक्ष में जरूर कुछ बनाना चाहते हैं। वे इस जमीन का धन नहीं कमाना चाहते; लेकिन वे आत्मा का धन जरूर कमाना चाहते हैं। वे आदमी के प्रेम के प्रति अब बहुत आतुर नहीं हैं; लेकिन परमात्मा के प्रेम को पाने के लिए उनकी आतुरता बहुत बढ़ गई है। अब वे किसी आदमी के सामने हाथ जोड़ कर खड़े न होंगे, याचक न बनेंगे, अब वे किसी द्वार पर भीख मांगने न जाएंगे; लेकिन प्रभु के मंदिर के सामने उनके हाथ चौबीस घंटे जुड़े हैं और उनका याचक वहां चौबीस घंटे प्रभु के सामने प्रार्थना लिए खड़ा है। यह सिर्फ आवश्यकताओं का बदल जाना है, आवश्यकताओं का अंत हो जाना नहीं है। यह आवश्यकताओं का और भी ऊंचा हो जाना है।
लेकिन जिनकी जिंदगी की नीचे की आवश्यकताएं ही पूरी नहीं हुईं और जो
उन पर ही ठहर कर रह गए हैं, शायद वे जिंदगी की बड़ी आवश्यकताओं की खोज पर भी नहीं निकलेंगे।
अब हमारा ही देश है। हमारे देश में अधिक लोग जहां हैं वहां ठहरे हुए हैं और सोचते हैं सब ठीक है। लेकिन इनके सब ठीक होने के ख्याल से इनकी कोई आध्यात्मिक जिज्ञासा पैदा नहीं हो गई है और न ही ये कोई परमात्मा की खोज पर निकल गए हैं।
मेरी दृष्टि उलटी है। मेरी अपनी समझ यह है कि इस जगत की आवश्यकताओं में ठहरने की जरूरत नहीं है, इस जगत से ऊंची आवश्यकताओं तक जाने की जरूर जरूरत है। और जिस दिन कोई आदमी की आकांक्षा ऊपर चली जाती है, उसकी नीचे की आकांक्षा समाप्त हो जाती है। वह बहुत दूसरी बात है। उस बात को मुर्दा संतोष नहीं कहा जा सकता, वह बहुत जीवंत असंतोष है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि समाजवाद में प्रत्येक को समान अवसर, ईक्वल ऑपरच्युनिटी मिलती है, जो कि पूंजीवाद में नहीं है। इस संबंध में आपके क्या ख्याल हैं?

पहली बात तो यह समझ लेनी जरूरी है कि समाजवाद सबकी स्वतंत्रता छीन लेता है। और जहां स्वतंत्रता छिन जाती है वहां समानता कभी भी नहीं हो सकती है। समाजवाद का अर्थ शायद हमारी आंखों में, हमारे कानों में, हमारे हृदय में बहुत स्पष्ट नहीं है। समाजवाद शब्द के मोह से हम बहुत ज्यादा घिरे हैं। समाजवाद में सबको समान अवसर मिलता है, इससे ज्यादा झूठी कोई बात नहीं हो सकती।
रूस में सभी को समान अवसर नहीं है। रूस में पचास वर्षों में पचास आदमियों का छोटा सा गैंग हुकूमत कर रहा है। स्टैलिन बदल जाता है, ख्रुश्चेव बदल जाता है, लेकिन पचास-साठ आदमियों की जो ऊपर ताकत है, वही काम कर रही है। रूस में कम्युनिस्ट पार्टी के सिवाय दूसरी पार्टी का कोई अस्तित्व नहीं है। और जहां एक ही पार्टी हो वहां स्वतंत्रता नहीं रह सकती। रूस में इलेक्शन का कोई मतलब नहीं है, चुनाव का कोई मतलब नहीं है। स्टैलिन को निन्यानबे प्रतिशत वोट मिलते थे। लेकिन कोई भी यह नहीं पूछता कि उसके खिलाफ कौन खड़ा होता था। उसके खिलाफ कोई भी खड़ा नहीं होता था। अकेली पेटी में वोट डाले जाते थे। यह बड़े मजे की बात है। अगर एक ही आदमी खड़ा है तो वोट डालने की जरूरत क्या है? यह सारी दुनिया को धोखा देने का प्रयास है। निन्यानबे परसेंट वोट तो मिल ही जाएंगे। निन्यानबे परसेंट वोट मिलने में बहुत आश्चर्य नहीं है, आश्चर्य यह है कि वह सौवां आदमी कौन है जिसने वोट नहीं डाला! वह शायद जिंदा नहीं बच सकेगा, उसका जिंदा बचना बहुत मुश्किल है।
मैंने ख्रुश्चेव के संबंध में एक कहानी सुनी है। मैंने सुना है कि ख्रुश्चेव जब ताकत में आया तो उसने स्टैलिन के संबंध में बहुत सी बातें जाहिर कीं। उसने कम्युनिस्ट पार्टी की विशेष सभा में यह सब बताया कि स्टैलिन ने कितने लोगों की हत्या की और कितने जुल्म किए। तो एक आदमी ने

पीछे से खड़े होकर कहा कि महाशय ख्रुश्चेव, जब स्टैलिन ये हत्याएं कर रहा था लाखों लोगों की तब आप भी स्टैलिन की कमेटी के एक मेंबर थे, तब आपने विरोध क्यों नहीं किया? ख्रुश्चेव एक सेकेंड के लिए चुप रह गया, तब तक वह आदमी बैठ चुका था। फिर ख्रुश्चेव ने कहा कि अच्छा मेरे मित्र, दुबारा खड़े हो जाइए! आपका नाम क्या है, कम से कम इतना तो बता दीजिए! लेकिन दुबारा वह आदमी खड़ा नहीं हुआ। ख्रुश्चेव ने बहुत कहा कि आप खड़े हों और अपना नाम बता दें! लेकिन न वह आदमी खड़ा हुआ, न नाम बताया, न सवाल पूछा। तब ख्रुश्चेव ने कहा कि जिस वजह से आप खड़े होकर नाम नहीं बता रहे हैं, इसी वजह से स्टैलिन की कमेटी में मैं जरूर था, लेकिन इसी वजह से मैं भी चुप था। अगर आप नाम बताएंगे तो कल आप पाएंगे नहीं कि आप जिंदा हैं। तो मैं भी अपने को जिंदा रखने के लिए चुप था।
स्वतंत्रता की इतनी बुरी तरह से हत्या की गई है, जिन्हें हम समाजवादी मुल्क कहते हैं, सिर्फ स्टैलिन ने अंदाजन एक करोड़ लोगों की हत्या की। जहां स्वतंत्रता की इस भांति हत्या हुई हो, वहां समानता कैसे हो सकती है? हां, इतना हो सकता है कि सभी लोग समान रूप से गुलाम हैं। बस इतना ही हो सकता है-- ईक्वल ऑपरच्युनिटी टु बी स्लेव्ड। रूस में सभी लोग समान रूप से गुलाम हैं, इतनी समानता के सिवाय और कोई समानता नहीं है। और रूस में जो लोग ताकत में हैं, वे लोग अलग वर्ग बन गया है; और जो ताकत में नहीं हैं, वे नीचे के सामान्यजन रह गए हैं।
हिंदुस्तान या किसी पूंजीवादी मुल्क में कोई गरीब आदमी कभी अमीर भी
हो सकता है। इसमें बहुत कठिनाई नहीं है। क्योंकि कोई अमीर आदमी कभी गरीब भी हो जाता है। लेकिन रूस में, सामान्य जनता से सत्ता अधिकारियों के वर्ग में प्रवेश करना सर्वाधिक कठिन है। रूस में कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्यता पाना ही बहुत कठिन मामला है। रूस दो हिस्सों में बंट गया है। एक सामान्य जनता है और एक सत्ताधिकारियों का वर्ग है। यह सत्ताधिकारियों का वर्ग सुनिश्चित और फिक्स्ड हो गया है। यह नीचे की जनता को कोई समान अवसर नहीं है। लेकिन ख्याल सारी दुनिया में यही पैदा किया जाता है कि समाजवाद समान अवसर देगा।
मैं आपसे कहना चाहता हूं, पूंजीवाद ने सर्वाधिक अवसर देने की सुविधा
दी है। और इसको हमें कई तरह से समझ लेना जरूरी होगा।
अगर रूस में मैं जाकर रूस के खिलाफ कोई बात बोलना चाहूं, तो रूस में मैं नहीं बोल सकता हूं। रूस में स्वतंत्रता है रूस के पक्ष में बोलने के लिए, विपक्ष में बोलने के लिए समान अवसर नहीं है। रूस में एक पत्र रूस की सरकार के खिलाफ नहीं छप सकता; एक किताब नहीं छप सकती; एक लेख नहीं छप सकता; एक कविता नहीं छप सकती। तो रूस में जिसे सरकार के खिलाफ कविता लिखनी है, उसे कौन सा अवसर है? हां, वे कहेंगे कि सरकार के पक्ष में कविता लिखने का समान अवसर है, जिसको भी लिखना हो लिख सकता है। लेकिन इस समान अवसर का क्या मतलब होता है?
यहां कविता की तो बात छोड़ दें, रूस में कोई वैज्ञानिक ऐसी खोज नहीं कर सकता जो सरकारी नीति के प्रतिकूल पड़ती हो। आश्चर्यजनक मामला है! अब वैज्ञानिक कोई कविता तो बनाता नहीं, वह तो जिंदगी के नियम खोजता है। लेकिन रूस में रूसी सरकार यह भी तय करती है कि जिंदगी के कौन से नियम खोजे जाएं और कौन से न खोजे जाएं। कोई ऐसी बात जो कम्युनिज्म के खिलाफ पड़ती हो, नहीं खोजी जा सकती। अगर रूस का मनोवैज्ञानिक यह कहना चाहे कि प्रत्येक आदमी अलग-अलग है, समान नहीं है। तो रूस में यह बात नहीं कही जा सकती, क्योंकि यह समाजवाद के खिलाफ न पड़ जाए। रूस में किसी आदमी को संपत्ति कमाने का अधिकार नहीं है, संपत्ति इकट्ठा करने का भी अधिकार नहीं है।
ध्यान रहे, दुनिया में कुछ लोगों की प्रतिभा संपत्ति कमाने की होती है, सबकी नहीं होती। न तो दुनिया में कवि होते हैं सब, न संगीतज्ञ होते हैं सब, न सब वैज्ञानिक होते हैं, और न सभी बिरला, टाटा, या राकफेलर या फोर्ड की तरह धन कमाने में समर्थ होते हैं। कुछ लोगों के पास धन कमाने की पैदाइशी क्षमता होती है। कुछ लोगों के पास गीत लिखने की पैदाइशी क्षमता होती है। समाजवाद में, किसी आदमी के पास, जिसके पास धन कमाने की पैदाइशी क्षमता है, उसे कोई मौका नहीं होगा। इसलिए समान अवसर का क्या मतलब है?

एक कहानी मुझे याद आती है। यहूदियों के बाबत कहा जाता है कि उनमें पैदाइशी धन कमाने की क्षमता होती है। मैंने सुना है कि एक यहूदी एक नाव से यात्रा कर रहा है। बहुत तूफान आ गया और एक बहुत बड़ी मछली, एक बहुत बड़ा मच्छ, उस छोटी सी नाव पर हमला करने लगा। उस मछली से बचने के लिए सिवाय इसके कोई रास्ता न था कि मछली के मुंह में कुछ फेंका जाए। तो जो भी खाने का सामान था, मछली के मुंह में फेंक दिया गया। मछली थोड़ी देर में उसे पचा कर फिर हमला करती है।
आखिर नौबत यह आ गई कि अब आदमियों को फेंकने के सिवाय कोई रास्ता नहीं रहा, अन्यथा वह पूरी नाव को उलट देगी। एक यहूदी भी नाव पर सवार था, सारे लोगों ने उसे उठा कर मछली के मुंह में फेंक दिया। लेकिन वह हमला करती चली गई मछली और एक-एक आदमी को फेंका जाता रहा। जब धीरे-धीरे और लोग भी भीतर पहुंच गए, तब बड़ी हैरानी की बात लोगों ने देखी कि वह यहूदी मछली के पेट में, एक पहले फेंकी गई कुर्सी पर बैठा हुआ है। और उसके पहले संतरों की एक पोटली फेंकी गई थी, वह संतरों की पोटली रखे हुए है और बाकी यात्री जो मछली के पेट में पहुंच गए हैं, उनको एक-एक आने में संतरा बेच रहा है।
यह तो मजाक ही है, लेकिन यहूदी अगर मछली के पेट में भी पहुंच जाए तो कुछ न कुछ बेचने का उपाय खोज लेगा। उसके पास पैदाइशी क्षमता है।
जिन लोगों के पास धन कमाने की पैदाइशी क्षमता है, उनको समाजवादी समाज में कोई अवसर न होगा। जिनके पास विद्रोह की क्षमता है, उनके पास समाजवादी समाज में कोई अवसर न होगा। जिनके पास चिंतन की क्षमता है, उनको चिंतन का कोई मौका न होगा। समाजवादी समाज बहुत तरह का विश्वासी समाज है। सरकार सब तरह के विश्वास और श्रद्धा की मांग करती है, वह विपरीत चिंतन का मौका नहीं देना चाहती।
अब तक दुनिया में ऐसी कोई बात नहीं है जिस पर एकमत हुआ जा सके। इसलिए जिस मुल्क में एकमत होने की मजबूरी हो, उस मुल्क में मनुष्य के मस्तिष्क को संघातक नुकसान पहुंचता है। दुनिया में एक भी बात ऐसी नहीं है जिस पर सब आदमियों को राजी किया जा सके। जब ऐसी स्थिति है, तो सरकार के साथ सबको राजी होने की मजबूरी बहुत खतरनाक है।
इसलिए मैं नहीं मानता हूं कि समान अवसर है। हां, इतनी बात जरूर है कि प्रत्येक व्यक्ति को असमान होने की स्वतंत्रता नहीं है, समान होने की मजबूरी है। सबको एक जैसा होना ही पड़ेगा। और जहां एक जैसा होने पड़ने की मजबूरी हो, वहां आत्मा का बहुत दमन हो जाता है।
पूंजीवाद समाज अब तक के विकसित समाजों में सर्वाधिक स्वतंत्र समाज है
और प्रत्येक व्यक्ति को एक अर्थों में समान अवसर है। जो भी व्यक्ति जो करना चाहता है, अगर उसके पास क्षमता है, शक्ति है, साहस है, बुद्धि है, तो बराबर कर सकता है, उसे कोई रोकने को नहीं है।
हां, सिर्फ एक चीज रोकने को है कि दूसरे लोग भी प्रतियोगी हैं। स्वभावतः अगर मुल्क में पचास करोड़ लोग हैं और मैं धन कमाने निकलूं, तो मैं अकेला नहीं हूं, पचास करोड़ लोग भी धन कमाने की कोशिश कर रहे हैं। पचास करोड़ लोगों की प्रतिभा में संघर्ष होगा। पचास करोड़ लोगों की क्षमता में संघर्ष होगा। फिर जो विजयी होगा वह होगा। मैं विजयी हो जाऊंगा, यह पक्का नहीं है। पूंजीवादी समाज प्रतियोगिता का समाज है, वहां प्रत्येक व्यक्ति को प्रतियोगिता का मौका है।
लेकिन यह बात जरूर सच है कि सब बराबर स्थितियों में नहीं हैं। कोई अमीर का बेटा है, कोई गरीब का बेटा है। इसलिए गरीब का बेटा कह सकता है कि मुझे उतना अवसर नहीं है जितना अमीर के बेटे को है। यह बात स्वाभाविक है। असल में अमीर के बेटे का अर्थ इतना है कि उसके बाप ने संपत्ति पैदा करने के प्रयास किए और गरीब के बेटे का अर्थ इतना है कि उसके बाप ने संपत्ति का प्रयास नहीं किया। इसमें कसूर किसी का भी नहीं है। हम अपने बाप के ही हकदार हो सकते हैं, दूसरे के बाप के हकदार नहीं हो सकते।
और अगर गरीब को ऐसा लगता है कि मेरे बेटे को समान अवसर नहीं होगा, तो गरीब को बेटे कम पैदा करने चाहिए ताकि वह मुसीबत में न पड़े। लेकिन गरीब ज्यादा बेटे पैदा करता चला जाता है। अगर गरीब के बेटे को तकलीफ है, तो अपने बाप से शिकायत करनी चाहिए कि जब तुम्हारे पास सुविधा नहीं थी मुझे पूरी

देने की तो मुझे पैदा क्यों किया? लेकिन गरीब अपने बाप से शिकायत नहीं करेगा। वह यह कह रहा है कि दूसरों के बेटों को ज्यादा अवसर क्यों है? उनके बाप ने ज्यादा श्रम किया। या उनके बाप ने दस बेटे नहीं किए, दो बेटे पैदा किए। अगर एक बाप ने दो बेटे पैदा किए, तो उनके पास संपत्ति ज्यादा हो गई। और एक ने बारह पैदा किए, तो उनके पास बारह में बंट गई, संपत्ति कम हो गई। और गरीब आदमी ज्यादा से ज्यादा बच्चे पैदा करने में कुशल रहा है। यह बहुत हैरानी की बात है कि अमीर आदमी कम बच्चे पैदा करता है। अक्सर अमीर आदमी को बच्चे गोद लेने पड़ते हैं। और गरीब आदमी बच्चों की कतार लगाए चला जाता है।
एक गरीब बाप जब दस बेटों को पैदा करता है, तो दस गुनी गरीबी अपने बेटों
को दे जाता है। सच बात तो यह है कि वह आदमी बाप होने का हकदार नहीं है जो अपने बेटों को सुविधाएं न दे सकता हो; सिर्फ बच्चे पैदा करने से कोई आदमी योग्य बाप नहीं बन जाता। इसके पहले कि बेटा पैदा करना हो, चारों तरफ इंतजाम कर लेना चाहिए कि मेरे बेटे को मैं कितनी सुविधाएं दे पाऊंगा। वह बाप कठोर है जो बिना सुविधाओं के अपने बेटों को जमीन पर खड़ा कर देता है। इसमें किसी दूसरे का कोई कसूर नहीं है। निश्चित ही, जिसने श्रम किया है उसके बेटे को थोड़ी सुविधा मिलेगी, मिलनी चाहिए। जिसने श्रम नहीं किया है उसके बेटे को उतनी सुविधा नहीं मिलेगी, नहीं मिलनी चाहिए।
पूंजीवाद समाज सीधा प्रतियोगिता का समाज है। जो प्रतियोगिता में जितना संघर्ष करेगा, उस प्रतियोगिता में जितना श्रम करेगा, उतना आगे बढ़ जाएगा।
लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि मैं यह कह रहा हूं कि सभी पूंजीपति न्यायोक्त ढंग से पैसा कमा लेते हैं। नहीं, मैं यह नहीं कह रहा हूं। गलत पूंजीपति भी हैं। लेकिन गलत पूंजीपतियों की वजह से पूंजीवाद खराब नहीं हो जाता। अगर गलत हिंदू हों, तो सारे हिंदू खराब नहीं हो जाते। और अगर काली चमड़ी के चोर हों, तो सभी काली चमड़ी के लोग चोर नहीं हो जाते। और अगर लुधियाना में किसी को टी.बी. हो जाए, तो सारे लुधियाना के लोगों को टी.बी. होने की वजह से मार नहीं डालना चाहिए। और न सबका इलाज किया जाना चाहिए। पूंजीवाद में भी ऐसे पूंजीपति हैं जो अन्याय-युक्त ढंग से पैसा कमा रहे हैं। यह पूंजीवाद का विरोध नहीं है, ये गलत पूंजीपति हैं। गलत पूंजीपति को रोकने का इंतजाम जरूर किया जा सकता है, पूंजीवाद की हत्या की कोई जरूरत नहीं है। गलत लोगों की वजह से कोई भी व्यवस्था खराब नहीं होती। जब हम व्यवस्था की बात करते हैं, तो समाजवाद और पूंजीवाद, दोनों व्यवस्थाओं में मुझे पूंजीवाद ज्यादा श्रेष्ठ और ज्यादा विकसित व्यवस्था मालूम पड़ती है। जहां तक गलत पूंजीपतियों का संबंध है, उन्हें रोकने का इंतजाम किया जा सकता है।
और बड़े मजे की बात है, यह भी समझ लेने जैसी है कि जैसे एक मित्र ने पूछा
है कि कितने पूंजीपति रिश्वतखोरी करते हैं, ब्लैक मार्केट करते हैं, स्मगलिंग करते हैं, सब तरह की धोखाधड़ी करते हैं, क्या आप उनके भी समर्थन में हैं?
मैं पूंजीवाद के समर्थन में हूं। धोखाधड़ी, बेईमानी, रिश्वतखोरी के समर्थन में नहीं हूं। लेकिन आपसे मैं यह कहना चाहता हूं कि यह रिश्वतखोरी, धोखाधड़ी, बेईमानी गरीब समाज की पैदाइश है। इसमें पूंजीपति का बहुत कम हाथ है। इसमें गरीब समाज का बहुत ज्यादा हाथ है।
हम यहां इतने लोग बैठे हैं। अगर यहां पचास आदमियों के खाने लायक भोजन
हो और पांच हजार आदमी मौजूद हों, तो आप यह पक्का समझ लीजिए कि बहुत मुश्किल है कि यहां चोरी और उपद्रव शुरू न हो जाए। क्योंकि जहां पचास लोगों के लिए भोजन उपलब्ध हो और पांच हजार लोग भोजन पाने के लिए तैयार हों, वहां बहुत प्रतीक्षा नहीं की जा सकती; लोग बेईमानी, चालबाजी, हर तरह से भोजन को पाने की कोशिश में लग जाएंगे। अगर इन पांच हजार लोगों को ईमानदार बनाना हो तो कम से कम पांच हजार लोगों के लायक भोजन चाहिए। अन्यथा यह ईमानदारी बहुत मुश्किल है, यह अपेक्षा नहीं की जा सकती।
अगर लुधियाना में पानी की कमी हो जाए, तो लोग पानी को रात में चोरी करके ले जाने लगेंगे। अभी कोई पानी को चोरी करके नहीं ले जा रहा है। कल तक

कोई पानी को नहीं चुरा रहा था, आज पानी की कमी हो गई है और लोग पानी को चुराने लगे हैं।
इसका क्या मतलब है? लोग चोर हैं या पानी की कमी है?
आदमी जिंदा रहना चाहता है। जब उसके जिंदा रहने के लिए ईमानदारी आसान नहीं रह जाती, तो वह बेईमानी करने को मजबूर हो जाता है। यह जितनी बेईमानी हमें चारों तरफ दिखाई पड़ रही है, इस बेईमानी का बुनियादी कारण आदमी की खराबी कम, हमारी गरीबी की अधिकता ज्यादा है।
अगर आज यूरोप और अमेरिका के मुल्कों में सड़क पर अखबार रख दिया जाता है
और पेटी रख दी जाती है, लोग पैसा डालते हैं और अखबार ले जाते हैं। तो इसका यह मतलब नहीं है कि वे बहुत ईमानदार हो गए हैं, इसका कुल मतलब इतना है कि एक आने की चीज चुराने की किसी को भी कोई जरूरत नहीं रह गई है। वे कोई हमसे ज्यादा ईमानदार हो गए हैं, इस भ्रम में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। वे भी हमारे जैसे लोग हैं। लेकिन एक आने का अखबार कौन चुराएगा? एक आने का अखबार चुराने योग्य हैसियत किसी की भी नहीं रह गई है। तो आदमी एक आने को डाल जाता है, अपना अखबार ले जाता है।
अगर लुधियाना में हम पेटी रख दें बाजार में सुबह पांच बजे और अखबार रख दें, तो पहला ही आदमी अखबार भी ले जाएगा और पेटी भी ले जाएगा। दूसरे आदमी को पैसे डालने की मुसीबत नहीं आएगी। इसका कारण यह नहीं है कि लुधियाना के लोग चोर हैं, इसका कारण सिर्फ इतना है कि एक आना भी इतनी मुश्किल चीज है कि उसके लिए आदमी चोर हो जाता है।
असल में जिंदगी अगर बहुत कठिन हो जाए तो हम बेईमानी को रोक नहीं सकते।
और जिंदगी बहुत कठिन हो गई है। और इस जिंदगी के कठिन होने में कौन जिम्मेवार है? पूंजीपति जिम्मेवार हैं?
इतनी आसानी से यह बात नहीं कही जा सकती।
अभी हिंदुस्तान-पाकिस्तान का बंटवारा हुआ था। बंटवारे से हम शायद सोचते थे कि हम कम हो गए। हमने गलती की थी। बीस साल में हमने उतने बच्चे फिर पैदा कर लिए हैं जितने लोग पाकिस्तान में कट गए थे। अब हम फिर बावन करोड़ की संख्या हो गए हैं--ज्यादा हो गए हैं। पाकिस्तान बंटा था जब, तो हिंदुस्तान-पाकिस्तान मिल कर जितनी हमारी संख्या थी, उससे ज्यादा हमारे अकेले की हो गई है। अब हम दुनिया भर से कह सकते हैं कि कितने ही पाकिस्तान काटो, तुम हमें कम न कर सकोगे।
मुल्क के पास शक्ति कम रह गई है, भोजन की, कपड़े की सुविधाएं कम रह गई हैं और लोग बढ़ते जा रहे हैं। अभी तो आसान है, अभी तो इतनी चोरी और बेईमानी नहीं हो गई है। अगर दस साल हमने इसी तरह बच्चे पैदा किए, तब आपको चोरी और बेईमानी की शिकायत करने का मौका भी नहीं रहेगा, क्योंकि चोरी और बेईमानी ही रह जाएगी। अगर एक-एक पैसे के लिए आदमी की हत्या न होने लगे बीस साल में इस मुल्क में, तो आप समझना कि आश्चर्य की बात है! वह होने लगेगी। क्योंकि जब इतने लोग बढ़ जाएंगे और जिंदगी मुश्किल हो जाएगी, तो फिर जिंदगी को जीने की हर आदमी दम तोड़ कर कोशिश करता है। और जहां जिंदगी दांव पर लगी हो, वहां फिर वह ईमानदारी वगैरह की फिकर नहीं करता। ईमानदारी वगैरह सब लग्जरी.ज हैं, सुविधा-संपन्न लोगों की बातें हैं, असुविधा से भरे हुए लोगों की बातें नहीं हैं।
असल में किसी कौम को अगर ईमानदार, भला और सज्जन होना हो, तो संपन्न होना पहली शर्त है। अगर संपन्नता को हम पूरी न कर पाएं, तो यह हो सकता है कि लाख दो लाख आदमी में एकाध आदमी ईमानदार सिद्ध हो जाए। लेकिन एकाध आदमी से कोई जिंदगी नहीं चलती, वह आदमी अपवाद है। यह हो सकता है कि पूरे मुल्क में दस-पच्चीस लोग शीर्षासन करने में कुशल हो जाएं। यह ठीक है, हो सकता है। लेकिन सारे लोग सिर के बल खड़े नहीं हो सकते। सारे लोग तो पैर के बल ही चलते रहेंगे। जिंदगी के सामान्य नियम यह कहते हैं कि हमारी हालतें इतनी बुरी हैं कि हमें इस पर हैरानी नहीं होनी चाहिए कि इतनी बेईमानी क्यों है, हमें इस पर हैरानी होनी चाहिए कि और ज्यादा बेईमानी क्यों नहीं है! इतनी चीजें बुरी स्थिति में खड़ी हो गई हैं। इस स्थिति को बदलने के लिए संपत्ति पैदा करने के प्रयास में लगना जरूरी है।

एक मित्र ने पूछा है कि अडल्ट्रेशन हो रहा है, दूध में पानी मिलाया जा रहा है, सब चीजों में सब चीजें मिलाई जा रही हैं। इसके लिए क्या पूंजीवाद जिम्मेवार नहीं है?

नहीं, पूंजीवाद इसके लिए जिम्मेवार नहीं है। इसके लिए जिम्मेवार हम हैं, हम सब। उसमें पूंजीपति भी सम्मिलित है, उसमें गरीब भी सम्मिलित है। आज हिंदुस्तान में सबसे ज्यादा गाय-भैंसें हैं जमीन पर, और सबसे कम दूध है। स्वीडन या नार्वे, जिनके पास बहुत कम गाय-भैंसें हैं, लेकिन उनके पास दूध इतना इफरात है जिसका कोई हिसाब नहीं है। साधारण सी गाय भी कम से कम चालीस सेर दूध देती है। और हमारी गाय अगर आधा सेर दूध दे दे, तो भी भगवान की कृपा से देती है, हमारे कारण नहीं।
लेकिन हम गऊमाता वाले लोग हैं, हम गऊमाता की पूजा करते हैं। इस बात की बिना फिकर किए कि हमारी गऊ कितना पैदा कर रही है और हमारी पूजा से क्या परिणाम हो रहा है। और हम आंदोलन चलाए जाते हैं कि गऊ-हत्या बंद होनी चाहिए। बिना इस बात की फिकर किए कि जो गऊएं जिंदा हैं, वे मरे से भी बदतर हालत में जिंदा हैं।
सारी दुनिया में दूध में कहीं पानी नहीं मिलाया जाता, सिवाय हिंदुस्तान को छोड़ कर।
मेरे एक मित्र पटना यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर हैं, वे स्वीडन गए हुए थे। सुबह पहले ही दिन उन्होंने, होटल में जो आदमी उनके लिए दूध लेकर आया, उससे उन्होंने कहा कि प्योर मिल्क है न, शुद्ध दूध है न! तो उस बैरा ने कहा, शुद्ध दूध हमने पहली दफा सुना। यह शुद्ध दूध क्या बला है? हमने तीन-चार तरह के दूध सुने हैं, पैश्चुराइज्ड मिल्क होता है, पाउडर मिल्क होता है। मगर यह शुद्ध दूध कौन सी चीज है, यह हमने कभी सुना नहीं। मैं अपने मैनेजर को बुला लाता हूं, शायद मैं ज्यादा आपकी भाषा नहीं समझता।
मैनेजर आया, वह भी घबराया हुआ आया, लिस्ट लेकर आया, पांच-छह किस्म के दूध लिखे थे, लेकिन शुद्ध दूध कुछ भी नहीं था उसमें। उसने कहा, शुद्ध दूध हमने कभी सुना नहीं, यह कौन सी चीज है? तो वे मेरे मित्र बहुत घबरा गए। उन्होंने कहा कि इतनी सी बात आपकी समझ में नहीं आती! मैं ऐसा दूध मांग रहा हूं जिसमें पानी न मिलाया गया हो। तो उस मैनेजर ने कहा, आप अजीब आदमी हैं! हम पानी मिलाएंगे किसलिए, हम पागल हो गए हैं? दूध में पानी किसलिए मिलाएंगे! क्या कोई ऐसी जगह भी है जहां दूध में पानी मिलाया जाता है? तो वे प्रोफेसर बेचारे मुश्किल में पड़ गए। उन्होंने कहा, माफ करिए, मैं अपने मुल्क के ही ख्याल में रहा। मैं समझा कि शायद यहां भी पानी मिलाया जाता होगा।
वे मित्र जब मुझे मिले, कहने लगे, मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया।
मैंने कहा, मुश्किल में आप पड़ गए! और आपको मालूम होता है जानकारी बहुत पुरानी है। ऐसा बीस-पच्चीस साल पहले हिंदुस्तान में दूध में पानी मिलाया जाता था, अब तो पानी में दूध मिलाया जा रहा है। अब कोई दूध में पानी नहीं मिलाता, नासमझ कोई मिलाता हो तो बात अलग, अन्यथा पानी में ही दूध मिलाया जा रहा है, अब दूध में पानी मिलाने की हालत बहुत पुरानी पड़ गई है।
सारी दुनिया हैरान होती है कि आप दूध में किसलिए पानी मिलाते होंगे! लेकिन हम सोच ही नहीं सकते कि दूध और बिना पानी के मिल सकता है। कारण क्या है? कारण है हमारे ये बावन करोड़ मुंह, और दूध बिल्कुल नहीं है। अब अगर ठीक से समझें तो पानी मिलाने वाले की कृपा से आप सबको थोड़ा-बहुत दूध बहाने के लिए मिल रहा है, नहीं तो वह भी नहीं मिलेगा। इसलिए पानी मिलाने वाले पर नाराज न हों, उसको धन्यवाद दें कि तेरी कृपा से कम से कम दूध पीने का ख्याल तो होता है कि दूध पी रहे हैं! नहीं तो ख्याल भी नहीं कर सकते, फिर पानी ही पीना पड़ेगा।
नहीं, समाज की व्यवस्था जो है उसमें ये सारे अडल्ट्रेशन और भ्रष्टाचार, असल में एक अर्थ में जिंदगी को चलाने का काम करते हैं। जब जिंदगी बहुत मुश्किल हो जाती है, तो इन उपायों का हमें काम करना पड़ता है। हमने सुना है कि अश्वत्थामा के लिए, उनके घर में दूध न होने पर, पानी में आटा मिला कर मां धोखा दे देती थी। मां तकलीफ में पड़ती होगी, लेकिन कम

से कम बेटे को इतना भरोसा भी क्या कम है कि दूध मिल गया! कम से कम रोने से तो रुक जाता है। करीब-करीब वैसी हालत पूरे मुल्क की हो गई है। वह द्रोणाचार्य की पत्नी हम सब के लिए आदर्श माता है। अब हम सब थोड़ा सा वहम अपने बच्चों को पैदा कर देते हैं कि तुम्हें दूध मिल रहा है। न मिलने से तो वहम भी अच्छा है।
लेकिन क्या आप सोचते हैं कि अगर दूध में पानी मिलाना बंद कर दिया जाए
तो कुछ हल हो जाएगा! क्या हल होगा? इतना ही है कि वहम टूट जाएगा, कुछ लोगों को दूध नहीं मिलेगा और।
लेकिन असली सवाल हमारे ख्याल में नहीं आता कि दूध कम है और लोग ज्यादा हैं। दूध ज्यादा करने के लिए हम क्या कर रहे हैं? दूध ज्यादा किया जा सकता है। लेकिन हम उसकी हिम्मत नहीं जुटा पाते। अगर इतनी गाय और भैंसें हमें रखनी हैं तो दूध ज्यादा नहीं हो सकता, क्योंकि इतनी गायों और भैंसों के लिए भोजन नहीं हो सकता। असल में नार्वे या स्वीडन, जहां भी दूध ज्यादा है, वहां उन्होंने बहुत चुने हुए जानवर बचा लिए हैं, शेष जानवरों को विदा कर दिया है।
अब हम कहते हैं कि हम गऊमाता को बचाएंगे। तो आप बचाएं, गऊमाता बचेगी
तो अडल्ट्रेशन भी चलेगा। क्योंकि इतनी गायों के लिए चारा जुटाना असंभव है, पानी जुटाना असंभव है। और अगर इतनी गायों के लिए चारा और पानी जुटाना है, तो ठीक है, आधा-आधा सेर, पाव-पाव दूध आप उनसे निकाल लें, इससे ज्यादा नहीं निकाल सकते। अगर थोड़ी सी अच्छी गायों की नस्ल पर मेहनत करनी है, जिनसे चालीस सेर, पचास सेर दूध मिल सके, तो हमें कुछ गायों को विदा करनी पड़ेगी। चाहे कितना ही दुख हो, लेकिन उस दुख को सहना पड़ेगा। वह कितना ही कठोर मालूम पड़े, लेकिन उस कठोरता को समझना पड़ेगा। यह मजबूरी है। और या फिर हमको पानी मिले दूध पर भरोसा करना चाहिए।
और अभी तो पानी मिला मिल रहा है, दस साल बाद वह भी नहीं मिलेगा। क्योंकि हम आदमी के लिए भोजन नहीं जुटा पा रहे, इतनी गायों के लिए कहां से भोजन जुटाएंगे? लेकिन हमारे महात्मा समझाते हैं कि गाय को तो बचाना जरूरी है, चाहे आदमी मरे तो मर जाए।
अब मैं यह सोचता हूं कि आदमी को मर जाने दो, गाय को बचा लो, लेकिन अगर आदमी मर जाएगा तो गाय कैसे बचेगी, यह जरा संदिग्ध है। आदमी बचे तो गाय भी बच सकती है। गाय नहीं बच सकती आदमी के बिना, वह आदमी के साथ मर जाएगी। लेकिन हम जिंदगी के संबंध में वैज्ञानिक नहीं हैं। हम जिंदगी के संबंध में बहुत अंधविश्वास की तरह बातचीत करते हैं। हमारा सारा सोचने का ढंग अंधा है। हम चीजों के संबंध में साफ और स्पष्ट नहीं हैं, इसलिए हम बड़ी कठिनाई में हैं। और कोई आदमी अगर साफ और स्पष्ट बात करे, तो मालूम पड़ता है अधार्मिक है।
अब मुझसे लोग पूछते हैं आ-आ कर कि आपका, गऊ-हत्या बंद होनी चाहिए कि नहीं, इस संबंध में क्या ख्याल है? वे सोचते हैं, अगर मैं कह दूं कि नहीं, बंद नहीं होनी चाहिए, तो चिल्लाएं वे कि मैं अधार्मिक हूं। जुलूस निकालें, काले झंडे दिखा दें। अगर मुझे काले झंडों से बचना है, तो मुझे कहना चाहिए कि बिल्कुल ठीक बात है, गऊ-हत्या बंद होनी चाहिए।
बस ठीक है, मैं तो निपट गया, लेकिन यह मुल्क मरेगा। इस मुल्क में सच्ची
और सीधी बात कहना भी कठिन हो गई है। आप इतनी गायों को नहीं बचा सकते हैं। यह कितना ही हमें दुखद मालूम पड़े, लेकिन हमें इतनी गायों को विदा करना पड़ेगा। हमें थोड़ी सी गायों पर ज्यादा श्रम लेना पड़ेगा कि उनसे ज्यादा दूध पैदा हो सके, नहीं तो यह संभव नहीं हो पाएगा।
हम इतने आदमियों को भी नहीं बचा सकते हैं।
लेकिन हमारे महात्मा समझा रहे हैं कि आदमी तो भगवान देता है, बच्चे तो भगवान देता है, इसलिए बर्थ-कंट्रोल मत करना। गांधी जी से लेकर पुरी के शंकराचार्य तक सब महात्मा हमसे कह रहे हैं कि बर्थ-कंट्रोल मत करना! ब्रह्मचर्य साधो, अगर बच्चे रोकना है।
कितने लोग ब्रह्मचर्य साध पाते हैं? हमारे ऋषि-मुनियों में से भी कितनों ने ब्रह्मचर्य साध पाया है, इसका हम जरा पता लगा लें। कितने लोग ब्रह्मचर्य को साधते हैं? बावन करोड़ लोग ब्रह्मचर्य कब साधेंगे? और ये

बावन करोड़ लोग जब तक ब्रह्मचर्य साधेंगे तब तक इस मुल्क की आबादी इतनी हो चुकी होगी कि फिर ब्रह्मचर्य साधने की कोई जरूरत न रह जाएगी।
लेकिन महात्मा कहते हैं, ब्रह्मचर्य साधो! वे कहते हैं, कृत्रिम साधन
का उपाय भगवान के खिलाफ है। बच्चे रोके नहीं जा सकते, बच्चे भगवान दे रहा है।
लेकिन इन्हीं महात्माओं से पूछो कि अगर जन्मते बच्चों को रोकने में भगवान का विरोध है, तो मरते हुए आदमी को बचाने में भी भगवान का विरोध है, फिर उसको भी मत बचाओ। जब अकाल पड़ता है तो क्यों चिल्लाते हो कि अब बचाओ इनको, यह अकाल पड़ गया। जब कोई आदमी बीमार है, तो अस्पताल बनाने की क्या जरूरत है? भगवान की दुश्मनी कर रहे हैं आप? मरने दो लोगों को! क्योंकि भगवान मारना चाहता होगा तो मरेंगे। आपके बचाने से बचने वाले हैं?
नहीं, मरते वक्त तो महात्मा आ जाता है कि सेवा करो! और जन्म लेते वक्त
वह कहता है, बैंड-बाजे बजाओ! क्योंकि भगवान ने बच्चे को भेजा है। ये दोहरी बातें नहीं चल सकतीं।
जन्म-दर ज्यादा हो गई है और मृत्यु-दर घटती जा रही है। महामारी से कुछ लोग मर जाते थे, हमने महामारियां रोक दीं। प्लेग से मर जाते थे, प्लेग रोक दी। हैजे से मरते थे, हैजा रोक दिया। मच्छरों से मरते हों, तो मच्छरों को खत्म करो। बीमारियों से मरते हों, तो नई दवाएं ले आए। सारे पश्चिम ने मौत को रोकने का जो इंतजाम किया है, वह हमने भी कर लिया। तो मौत के दरवाजे तो हमने संकीर्ण कर दिए और जन्म के दरवाजे उतने के ही उतने हैं। तो अब हम मुसीबत में पड़ गए हैं।
पश्चिम ने दोनों उपयोग एक साथ किए। एक तरफ उन्होंने जन्म-दर कम कर ली है, दूसरी तरफ मृत्यु-दर कम की है, इसलिए वे मुसीबत में नहीं हैं। हम मुसीबत में पड़ गए हैं। जन्म-दर उतनी की उतनी है। अब बच्चे भी कम मरते हैं, क्योंकि दवाइयां भी ज्यादा हैं, इलाज भी ज्यादा हैं; लोग ज्यादा जी रहे हैं, औसत उम्र बढ़ गई है। यह सारा का सारा है, जमीन उतनी की उतनी है। भगवान बच्चे भेजता है, साथ में जमीन भेजता नहीं! अगर वह एक आदमी के साथ थोड़ा जमीन का टुकड़ा भी भेज दे तो आसानी पड़े, लेकिन उसका उसे कोई ख्याल नहीं है। और ये महात्मा इतनी प्रार्थना वगैरह करते हैं, ये भी कोई जमीन बुलवा नहीं पाते। तो यह मुल्क तो सड़ता जाएगा। इस मुल्क की सड़ांध को और इसकी कुरूपता को, इसकी गंदगी को, इसकी बेईमानी और चोरी को रोकने का अर्थ, एक ही रास्ता है और वह यह है कि हम मुल्क में जन्म की संख्या कम करें और उत्पादन बढ़ाएं।
लेकिन हम एक ही उत्पादन जानते हैं--बच्चों का उत्पादन। और कोई दूसरा उत्पादन हमें पता नहीं है। जो आदमी कुछ भी पैदा नहीं कर सकता वह भी कम से कम बच्चे तो पैदा कर ही सकता है। बच्चे पैदा करके वह प्रसन्न हो लेता है कि हमने भी कुछ पैदा किया, दुनिया में काफी काम कर दिया।
लेकिन अब इस काम से काम नहीं चल सकेगा। रोज हम इतने बच्चे पैदा कर रहे हैं कि कल उनके लिए हम इंतजाम न कर सकेंगे। तो फिर दूध में पानी बढ़ता चला जाएगा। कुछ दिन में दूध बिल्कुल नदारद हो जाएगा। बच्चों की आंखों पर पट्टी बांध देना और पानी पिला देना। पानी भी कितने दिन पूरेगा, यह भी कहना मुश्किल है। पानी में क्या मिलाइएगा, अगर पानी कम पड़ जाएगा तो? पानी में कुछ भी नहीं मिलाया जा सकता।
सारी दुनिया के समझदार लोग कह रहे हैं कि दस साल के भीतर हिंदुस्तान में महा-अकाल की हालत पैदा हो जाएगी। उन्नीस सौ अठहत्तर में हिंदुस्तान महा-अकाल में प्रवेश करेगा। और उस महा-अकाल में दस करोड़ लोगों से लेकर बीस करोड़ लोगों तक के मरने की संभावना है। सारी दुनिया में चर्चा है, हिंदुस्तान भर में कोई चर्चा नहीं है। हिंदुस्तान बेवकूफी की बातों में लगा रहता है कि यह जिला पंजाब में हो कि हरियाणा में, कि यह गांव गुजरात में हो कि महाराष्ट्र में, कि यह कारखाना लुधियाना में बने कि अमृतसर में, हम इन गंवारियों की बातों में लगा देते हैं। सारी दुनिया चिंतित है कि हिंदुस्तान में आठ साल में महा-अकाल आ जाएगा। दस करोड़ से बीस करोड़ लोग अगर किसी दिन मरे, तो बाकी जो बचेंगे वे जिंदा हालत में रहेंगे? अगर मुल्क में दस करोड़ लोगों की एकदम से मरने की हालत हो गई, तो हम जो जिंदा रहेंगे उनकी क्या हालत होगी? लेकिन हमें इसकी कोई फिकर नहीं।

मैं दिल्ली में एक बड़े नेता से बात कर रहा था। उनसे मैंने कहा कि आपको पता है, ये पश्चिम के लोग कह रहे हैं कि उन्नीस सौ अठहत्तर में हिंदुस्तान मुश्किल में पड़ेगा?
उन्होंने कहा, उन्नीस सौ अठहत्तर बहुत दूर है। अभी तो हम उन्नीस सौ बहत्तर के चुनाव की चिंता में पड़े हुए हैं। देखेंगे उन्नीस सौ अठहत्तर जब आएगा।
उन्नीस सौ अठहत्तर, वे नेता कहते हैं, बहुत दूर है। उनके लिए उन्नीस
सौ बहत्तर के आगे इतिहास ही खत्म हो जाता है, उसके आगे कुछ होना नहीं है। असली सवाल इस बात पर है--कौन इलेक्शन जीतता है, इसके लिए नेता उत्सुक है, उसे कोई मतलब नहीं है। महात्मा भगवान में उत्सुक है। और यह जो विराट जनता खड़ी है, इसमें कोई उत्सुक नहीं है।
इस विराट जनता की तकलीफों को जड़ से पकड़ने की जरूरत है। अगर हिंदुस्तान ने दस साल के भीतर अपने बच्चों को पैदा करने का विराट कारखाना बंद नहीं किया, तो आप किसी भ्रष्टाचार से बच नहीं सकते; भ्रष्टाचार बढ़ता चला जाएगा। यह कोई पूंजीपति नहीं बढ़ा रहा है, यह हम सब मिल कर बढ़ा रहे हैं।

एक और मित्र ने पूछा है। एक मित्र ने पूछा है कि भारत इतना गरीब है, इतना भूखा है, तो इसमें उत्पादन की पूंजीवादी व्यवस्था कैसे पैदा की जा सकती है?

असल में दो-तीन बातें समझ लेनी चाहिए। एक तो बड़ी कठिनाई है जो वह यह है
कि हम सदा पीछे की तरफ देख कर जीते हैं, इसलिए आगे की तरफ का हमें कोई ख्याल नहीं होता। अब जैसे, अब तक हम जमीन से ही भोजन प्राप्त करते रहे हैं, इसलिए हम जमीन से ही भोजन प्राप्त करना चाहते हैं। हम इस बात की फिकर नहीं करते कि और तरह के भोजन भी हैं, जो जमीन के अलावा मिल सकते हैं।
जैसे समुद्र के पानी से भोजन मिल सकता है, सीधा समुद्र का पानी भी भोजन में रूपांतरित किया जा सकता है। हमें इसका कोई ख्याल नहीं है कि सीधी हवाओं से भी भोजन मिल सकता है। सूरज की किरणों से भी सीधा भोजन मिल सकता है। हमें इसका भी कोई ख्याल नहीं है कि भोजन पेट में बहुत सेर दो सेर डाला जाए, यह जरूरी नहीं है। अब तो सिंथेटिक फूड भी हो सकता है, एक छोटी सी गोली भी भोजन का पूरा काम कर सकती है।
हमें इन सारी दिशाओं में श्रम करना पड़े। हमारे लाखों बच्चे विज्ञान
पढ़ रहे हैं, हमारे लाखों बच्चे विज्ञान के स्नातक हो रहे हैं, उन सारे बच्चों को मिल कर इसकी फिकर करनी चाहिए कि भोजन के हम नये साधन खोजें। जरूरी नहीं है कि हम पुराने साधनों पर ही निर्भर रहें। पुराने साधनों पर निर्भर रहे तो अब हम जिंदा न रह सकेंगे। लेकिन हम पुरानी आदत से ही सोचे चले जाते हैं, हम कुछ नये ढंग से सोचते ही नहीं।
अब कपड़ा कपास से ही बने, यह जरूरी नहीं रहा है। जमाने गए जब कपड़ा कपास
से ही बनता था। अब कपड़े को कपास से बनाने की ही कोई पक्की जरूरत नहीं है। कपड़ा रबर से भी बन सकता है, प्लास्टिक से भी बन सकता है, सिंथेटिक भी बन सकता है। अब हम कपास के ही कपड़े पर निर्भर क्यों रहें? अब कपड़ा हम ऐसा बना सकते हैं जो जमीन से पैदा नहीं होता, कारखाने में बनता है। लेकिन हमारी बुद्धि में वह ख्याल नहीं आता।
अब जो हम मकान बना रहे हैं, वह हम पुराने ढंग से ही बनाए चले जाते हैं।
अब इतने मजबूत मकान बनाने की जरूरत नहीं है। अब इतनी ईंटें रखने की जरूरत नहीं है। अब मकान सस्ते बन सकते हैं। जापान भी मकान बनाता है, बहुत सस्ते मकान बना लेता है, हमसे बहुत सुंदर मकान बनाता है। लेकिन हम दुनिया में आंख खोल कर नहीं देखते। हम अपने वे ही मकान खड़े किए चले जा रहे हैं। चाहे वे ज्यादा जगह घेर रहे हों, कम सुविधा दे रहे हों, ज्यादा पैसा लग रहा हो, लेकिन हम पुराने ढंग का मकान बनाए चले जाते हैं।
हमारे मुल्क की बड़ी से बड़ी तकलीफ यह है कि हमारी पुरानी आदतें छूटती नहीं और नये उपाय हम नहीं करते, कि हम नये उपाय कुछ करें। नये भोजन खोजें, नये कपड़े खोजें, नये मकान खोजें। और एक बार हम खोजने में लग जाएं, तो इतना

बड़ा मुल्क है, इतने बुद्धिशाली हमारे बच्चे हैं, वे सब खोज लेंगे, कोई अड़चन नहीं है, कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन आदतें पुरानी काम करती हैं।
अब जैसे उदाहरण के लिए, हम सब काम पुराने ढंग से ही किए चले जाते हैं। अगर हम मकान बनाते हैं तो अब भी मकान का मुंह सड़क की तरफ रखते हैं, सब मकान का मुंह सड़क की तरफ रखते हैं। अब यह बिल्कुल गलत बात है। अगर आठ-दस मकान एक-दूसरे की तरफ मुंह रख कर बनें तो उनके बीच में एक छोटा बगीचा बन सकता है, जिसमें उनके बच्चे खेल सकते हैं, दौड़ सकते हैं। और वे सारे घर के लोगों के मकान के मुंह अगर एक-दूसरे की तरफ हों तो उनको अलग-अलग बगीचे की जरूरत न पड़े, एक छोटी जमीन में अच्छा खूबसूरत बगीचा हो सकता है। वे सारे लोग उस बगीचे में थोड़ी सब्जी भी पैदा कर सकते हैं। उनके बच्चे खेल भी सकते हैं। सड़क पर मोटर के नीचे दब कर मरने की संभावना भी कम हो जाती है।
लेकिन बस हमारी पुरानी आदत है कि मुंह सड़क की तरफ होना चाहिए। सड़क की तरफ होने का कोई ठेका है मकान के मुंह का! कोई जरूरत नहीं है। लेकिन पुरानी आदत कहती है कि बस ऐसा होना चाहिए। पुरानी आदत के वश हम वैसा ही किए चले जाते हैं, हम नये ढंग से कुछ भी नहीं सोचते।
अगर एक मोहल्ला, एक पड़ोस अपना एक किचन बना ले, तो भी काम चल सकता है। सस्ते में काम चलेगा। अगर पच्चीस घरों में भोजन बनता है, तो पच्चीस गुना खर्च होता है। अगर पच्चीस घर अपने मकान एक-दूसरे की तरफ मुंह करके बना लें और बीच में एक किचन बना लें, तो कम खर्च में पच्चीस लोगों का काम चलेगा। पच्चीस औरतों को भोजन बनाने की जरूरत न रह जाएगी; पांच औरतें भोजन बना लें, बीस औरतें दूसरा काम करें, जिससे उत्पादन बढ़ जाए।
लेकिन हम सोचते नहीं--मैं सिर्फ उदाहरण के लिए कह रहा हूं--हम कुछ सोचते नहीं कि नया कैसे करें! जो हो रहा है पुराना, हम वही किए चले जाते हैं।
अब जमीन पर जगह कम पड़ गई है, अब जमीन पर मकान बनाना ठीक नहीं है। नदियों में मकान बनाए जा सकते हैं, समुद्र में मकान बनाए जा सकते हैं। लेकिन हम उस तरफ न सोचेंगे। जमीन के नीचे भी मकान बनाए जा सकते हैं। हम उसकी तरफ न सोचेंगे। अगर जमीन मकानों से भर गई तो पैदावार कहां करिएगा? अगर सड़कें ही सड़कें जमीन पर फैल गईं और ट्रेनें ही ट्रेनें जमीन पर फैल गईं और कारखाने और रहने वाले लोग जमीन पर फैल गए तो जमीन पर उत्पादन कहां करिएगा?
हमें जमीन से हटना पड़ेगा। हमें उन जगहों पर हटना पड़ेगा जो गैर-उत्पादक हों। यह सब हो सकता है। लेकिन इस संबंध में चिंतन की कमी है और इस संबंध में हमारा मुल्क कोई चिंतन नहीं करता। जिन लड़कों से आशा की जानी चाहिए कि वे चिंतन करें, वे सब तोड़-फोड़ में लगे हुए हैं। वे कहीं बस जला देंगे, सोचते हैं कि बस जलाने से कोई क्रांति हो जाएगी। वे कहीं किसी दफ्तर के कांच तोड़ देंगे, सोचते हैं कि कांच तोड़ने से कोई क्रांति हो जाएगी। इस मुल्क के लड़कों से आशा की जा सकती है, क्योंकि वे सुशिक्षित हो रहे हैं, उनके ऊपर ठीक से खर्च किया जा रहा है शिक्षा का। लेकिन वे लड़के बहुत ठीक ढंग का बदला दे रहे हैं, वे मुल्क को तोड़ने में लगे हुए हैं। और उन लड़कों को सब तरफ से भड़काया जा रहा है कि तुम मुल्क को तोड़ने में लग जाओ। अगर हिंदुस्तान के जवान, सुशिक्षित लड़के तय कर लें, तो इस मुल्क के भाग्य को बदल सकते हैं। हजार नई बातें खोजी जा सकती हैं, भोजन बढ़ाया जा सकता है, मकान अच्छे बनाए जा सकते हैं, कपड़े अच्छे पैदा किए जा सकते हैं, कम खर्च में ज्यादा लोगों की जिंदगी को फैलाव दिया जा सकता है। लेकिन हमारे बच्चों को कोई फुर्सत नहीं है। उनको कहां फुर्सत है! वे सड़क पर नारेबाजी करें, हड़ताल करें, घेराव करें, वे इसमें लगे रहेंगे। नेताओं को भी इसी में सुख है कि लड़कों से वे इस तरह की बेवकूफियां करवाते रहें। और मुल्क मर जाएगा, मुल्क नष्ट हो जाएगा।
सारी दुनिया में जो काम इधर पचास वर्षों में हुआ है, वह उन मुल्कों के लड़कों ने किया है। इजरायल में उनके लड़कों ने पैदावार भी की है, पत्थर तोड़ कर भी पैदावार कर ली है। जापान जैसे मुल्क को उन्होंने, जो पिछले महायुद्ध में नष्ट हो गया था, फिर से जमीन पर स्वर्ग बना दिया है। जो लोग बीस साल पहले जापान देखने गए थे, और अभी जापान देख कर लौटे हैं, वे कहते हैं कि हम

तो सोचते थे कि दूसरे महायुद्ध के बाद जापान अब कभी भी बढ़ न सकेगा। जमीन पर मिल गया था, सब मकान धूल-धूसरित हो गए थे, आग लग गई थी, सब नष्ट हो गया था। अब वहां फिर नई बस्तियां खड़ी हो गई हैं, नये मकान खड़े हो गए हैं।
आखिर सारी दुनिया के लोग कैसे जिंदगी को फैला लेते हैं, हम क्यों सिकुड़ते चले जाते हैं? हम कोई विशेष तरह का इंतजाम लेकर आए हुए हैं भगवान के यहां से? सिर्फ एक कमी है, हम जिंदगी को बदलने का विचार नहीं करते; हम जिंदगी में नई तरकीबें नहीं खोजते; हम पुरानी ही तरकीबों पर निर्भर करते हैं। और उन पर निर्भर होने की वजह से--जब पुरानी तरकीबें छोटी पड़ जाती हैं और हम ज्यादा हो जाते हैं--तो मुसीबत खड़ी हो जाती है। वह मुसीबत खड़ी हो गई है।
अब जैसे मैं उदाहरण के लिए कहूं, दूध की कमी है, मशीनें बनाई जा सकती हैं जिनको घास खिला कर सीधा दूध तैयार किया जा सके। अगर वेजिटेबल घी बन सकता है, तो वेजिटेबल मिल्क क्यों नहीं बन सकता? अगर हम वनस्पति से घी बना सकते हैं, तो वनस्पति से दूध क्यों नहीं बना सकते? आखिर गाय के पेट में कोई बहुत बड़ा काम थोड़े ही होता है। गाय के पेट में जो काम होता है वह मशीन के पेट में भी हो सकता है। गाय घास को चर कर दूध निकालती है, मशीन में भी घास को डाल कर दूध निकाला जा सकता है।
लेकिन इस मुल्क के बच्चे जब इस दिशा में मेहनत लेंगे तो यह संभव हो जाएगा। फिर गाय को तो बचाना भी पड़ता है, खिलाना भी पड़ता है, बीमारी होती है तो इलाज भी करना होता है। मशीन अगर घास से सीधा दूध दे सके, तो हम इस सारे उपद्रव से बच जाते हैं, सारे बच्चों को दूध भी मिल सकता है।
यह सब संभव है। लेकिन संभव यह आसमान से नहीं हो जाएगा। यह हमारे भाग्य
से नहीं हो जाएगा। यह हमारे पुरुषार्थ से होगा!
इसलिए आखिरी बात आपसे कहना चाहता हूं और वह यह कि यह देश हजारों साल
से भाग्यवादी रहा है, इसलिए यह गरीब है। हम हजारों साल से यही सोचते हैं कि भगवान जो करेगा! अभी भी पानी नहीं गिरता तो हमारे नासमझ लोग इकट्ठे होकर यज्ञ और हवन करने लगते हैं। वे कहते हैं कि हम यज्ञ और हवन से पानी गिरा लेंगे।
पांच हजार साल हो गए इन्हें यज्ञ-हवन करते! मुल्क की गरीबी नहीं मिटती, न खेत की पैदावार बढ़ती है, रोज अकाल खड़ा रहता है। कब तक यह पागलपन करते रहोगे? लेकिन हम करते चले जाएंगे, क्योंकि हमारी किताब में लिखा है। वह जो हमारा पंडित है वह कहता है कि हां, इससे हो जाएगा, पानी गिर जाएगा। हम कभी नहीं प्रयोग करवाते कि तुम एकाध बार तो पानी गिरा कर दिखा दो! पर बार-बार हम यज्ञ और हवन किए जाते हैं, लाखों रुपये फूंके चले जाते हैं और सोचते हैं कि जब... ।

एक मित्र ने पूछा भी है। उन्होंने पूछा है कि रामचंद्र जी ने भी यज्ञ किया, कृष्ण जी ने भी यज्ञ किया, रावण ने भी यज्ञ किया, तो क्या उन सबने गलत किया?

अब उन्होंने गलत किया या सही किया, पहले तो यही पता लगाना मुश्किल है
कि उन्होंने किया कि नहीं। यह भी पता लगाना मुश्किल है कि वे कभी हुए कि नहीं। और यह भी पता लगाना मुश्किल है कि उनके यज्ञ से कुछ फायदा हुआ कि नहीं। लेकिन हम तो यज्ञ करके देख रहे हैं रोज, कुछ होता नहीं है! एक नल की टोंटी में से तो पानी गिरा कर दिखा दो अगर पानी न आ रहा हो तो, बादल से गिराना तो बहुत दूर की बात है। अगर नल सूख गया हो, तो जरा यज्ञ-हवन करके उसकी टोंटी में से पानी गिरा दो! अगर कुआं सूख गया हो, तो यज्ञ करके उसमें पानी ला दो! बादल तो जरा दूर की बात है।
लेकिन ऐसा नहीं है कि बादल से पानी नहीं गिराया जा सकता। यज्ञ-हवन से कभी भी नहीं गिरेगा, क्योंकि बादलों को आपके यज्ञ-हवन का कोई पता नहीं है, बादलों को आपसे कोई मतलब भी नहीं है। लेकिन रूस में वे बादलों से पानी गिरा रहे हैं। यज्ञ-हवन से नहीं गिरा रहे हैं, लेकिन उन्होंने वैज्ञानिक तरकीब निकाल ली है। हम भी गिरा सकते हैं।

रूस में वे पानी गिराते हैं बादलों से, जहां उनको पानी गिराना है वहां गिरा लेते हैं। अगर बादल लुधियाना के ऊपर से गुजर रहे हैं और पानी नहीं गिर रहा है, तो वे हवाई जहाज से ऊपर जाकर बर्फ का छिड़काव कर देते हैं बादलों के ऊपर। जब बर्फ बादलों पर गिरती है, ठंडक बढ़ जाती है, भाप को मजबूरी में पानी बनना पड़ता है, भाप पानी बन जाती है, लुधियाना पर पानी गिर जाता है। वे जिस गांव पर पानी गिराना है उस गांव के बादलों के ऊपर बर्फ का छिड़काव कर देते हैं।
अब यह कोई बड़ी कठिन बात नहीं है। हवाई जहाज भी हमारे पास हैं, बर्फ भी हमारे पास है, हवाई जहाज में उड़ने वाले लोग भी हमारे पास हैं। लेकिन वह जो हवाई जहाज का पायलट है, वह भी यज्ञ के पास बैठा हुआ यज्ञ करवा रहा है। वह जो बर्फ की फैक्ट्री वाला मालिक है, वह भी दान दे रहा है यज्ञ में। और वे जो लड़के बर्फ गिराते ऊपर बादलों पर जाकर, वे भी यज्ञ में जाकर बैंड-बाजा पीट रहे हैं। तो ठीक है, पानी गिर जाएगा! अगर गिरना होता तो बहुत दिन पहले गिर गया होता!
रूस में जिस गांव पर बादल न गुजरे, उस गांव में भी बादल को ले जाने का उन्होंने इंतजाम कर लिया है। क्योंकि हवा के नियम पता चल चुके हैं। बादल आपके गांव पर क्यों आता है? अगर आपके गांव में बहुत गर्मी पड़ जाए... आज सुबह ही कोई कह रहा था कि बहुत गर्मी है, कहीं वर्षा न हो जाए! कभी आपने सोचा कि बहुत गर्मी होती है तो वर्षा क्यों हो जाती है?
बहुत गर्मी जब आपके गांव में होती है तो आपके गांव की हवा गर्मी के कारण फैल जाती है। हवा के फैल जाने की वजह से हवा में गड्ढे पैदा हो जाते हैं। और चारों तरफ जहां बादल हैं, उन गड्ढों की वजह से खिंच कर आपके गांव पर आ जाते हैं। हवा आपके गांव की अगर गर्मी से पिघल गई और फैल गई, तो आपके गांव की हवा विरल हो गई और आस-पास की सघन हवा में जो बादल हैं, वे खिंच कर आपके गड्ढों की तरफ चले आएंगे। इतनी सीधी सी बात है।
तो रूस में वे, अगर उनको जरूरत हो इस गांव पर बादल लाने की, तो ऊपर जाकर हवाई जहाज से गर्मी का इंतजाम करते हैं कि हवा को गर्म कर दें। हवा गर्म हो जाती है, आस-पास के बादल दौड़े हुए गांव के ऊपर आ जाते हैं। यह इतना ही सरल है सब कुछ, लेकिन एक बार हमारे ख्याल में ठीक बात आनी जरूरी है। लेकिन गलत बातें बैठी हों तो ठीक के आने में बहुत मुसीबत हो जाती है। ठीक का आना उतना कठिन नहीं, जितना गलत का निकालना कठिन हो रहा है। अब हम यज्ञ कर रहे हैं, तो दूसरी बात हमें कैसे ख्याल में आए।
एक आदमी था यूरोप में हाऊदिनी। वह आदमी एक अदभुत आदमी था। वह किसी भी तरह के ताले खोल कर बाहर निकल जाता था। उसको बड़े से बड़े पुलिस के कैदखानों में बंद किया गया हाऊदिनी को, और वह पंद्रह-बीस मिनट के भीतर, कैसी भी हथकड़ी हो, खोल कर बाहर निकल जाता था। उसने सब तरह के ताले खोलने की तरकीब बना रखी थी। उसके पास उसने कुछ इंतजाम कर रखा था, जिसका आज तक पता नहीं चल सका कि वह कैसे ताले खोल लेता था। स्कॉटलैंड यार्ड ने, लंदन की पुलिस ने बड़ी मेहनत की; न्यूयार्क ने मेहनत की; दुनिया भर के बड़े-बड़े नगरों में अदभुत-अदभुत ताले खोजे गए; लेकिन सब तालों को खोल कर वह बाहर निकल जाता था। एक बार दिक्कत में पड़ गया। एक गांव के--छोटे से गांव में--एक आदमी ने उसे अपने घर में बंद कर दिया, और वह नहीं निकल पाया और उसको माफी मांगनी पड़ी। मामला यह था कि उस आदमी ने जो ताला लटकाया, वह ताला खुला हुआ था, लगा हुआ नहीं था। उसको वह खोल कर बाहर नहीं आ पाया। क्योंकि लगा हुआ होता तो वह कोई तरकीब लगा लेता। वह बेचारा तरकीब खोजता रहा कि इसको खोलें कैसे? वह लगा ही नहीं था, वह सिर्फ अटका था। कोई चाबी जो उसकी कल्पना में हो सकती थी, कोई भी काम नहीं की; क्योंकि खुले हुए ताले पर कोई चाबी काम नहीं कर सकती; बंद ताला हो तो काम कर जाती।
जिंदगी भर का तालों को खोलने का माहिर कारीगर एक खुले हुए ताले को खोलने में हार गया। क्या, कठिनाई क्या आ गई? असल में वह मान कर चल रहा था कि ताला बंद है, बस यही मुश्किल हो गई। यह मान्यता ही दिक्कत में डाल दी।
हम इस मुल्क में इसी तरह की उलझन में पड़े हैं। हम कुछ बातें मान कर चल रहे हैं, जैसा कि नहीं है। जैसा हम मान कर चल रहे हैं, वैसा नहीं है। उस मान्यता की वजह से, जैसा है, उसका हम पता नहीं लगा पाते। अब हम मान रहे हैं

कि यज्ञ करने से पानी गिरेगा। ऐसा नहीं है। यज्ञ से कोई संबंध पानी के गिरने का नहीं है, कोई संबंध ही नहीं है। अगर कोई आदमी कहने लगे कि हम अपने जूते को जमीन पर घिसेंगे, इससे पानी गिरेगा; जितना संबंध इसका है, उतना ही यज्ञ का है, इससे ज्यादा कोई संबंध नहीं है। कोई आदमी कहने लगे कि हम सीटी बजाएंगे तो पानी गिरेगा, जितना इसका संबंध है, उतना ही यज्ञ का संबंध है, इससे ज्यादा नहीं है। लेकिन हम मान कर चल रहे हैं कि उससे पानी गिरेगा। बस फिर दिक्कत खड़ी हो गई। फिर पानी कैसे गिरेगा इसकी हम खोज नहीं कर पाते। लेकिन हमें यह यज्ञ वगैरह का भरोसा क्यों आ गया? हमारे मन में एक बात बैठी है और वह यह बैठी है कि जो होने वाला है वह होगा, जो नहीं होने वाला है वह नहीं होगा।
यह गलत से गलत बात है। असल में जो हम करेंगे वही होगा और जो हम नहीं करेंगे वह कभी नहीं होगा। भाग्य नहीं, हमारा पुरुषार्थ ही भगवान के हाथ है। भगवान हमारी खोपड़ी में कुछ नहीं लिखता, हमारे हाथों में लिखता है जो भी लिखता है। हमारे श्रम की क्षमता ही भगवान के इशारे लेती है।
लेकिन हमने एक ऐसी व्यवस्था कर रखी है कि जो होना है वह होगा। अगर मरना है भूखे, तो मरेंगे, कोई उपाय नहीं है। अगर जीना है, तो वर्षा हो जाएगी। कहीं न कहीं से कुछ हो जाएगा, जरूर कुछ हो जाएगा। हजारों साल से हमारा मुल्क यह मान कर चल रहा है कि जो होना है वह हो जाएगा। इस बात से हम पिछड़ गए हैं। यह बात हमें तोड़ कर फेंक देनी है। और अगर हमने ज्यादा देर लगाई तो हम टूट जाएंगे, बात बची रह जाएगी।
नहीं, जो होने वाला है, कुछ भी होने वाला नहीं है। जो भी हम करते हैं, वही हो रहा है। यह भी जो हो रहा है, यह भी हमारा किया हुआ हो रहा है। अगर यह मुसीबत है तो हम कर रहे हैं। अगर यह गरीबी है तो हम कर रहे हैं। अगर यह गरीबी मिटानी है, तो हम कुछ कर सकते हैं। रेगिस्तान तोड़ डाले हैं लोगों ने और फसलें पैदा कर ली हैं। और हमारा मुल्क जो फसलों से भरा था, वह रेगिस्तान हुआ जा रहा है। कोई दुनिया में ऐसा मुल्क नहीं है, जिसमें अब बाढ़ों का डर रह गया हो, सिर्फ पूरब के मुल्कों को छोड़ कर। सारी दुनिया ने अपनी नदियों के पानी का उपयोग कर लिया है।
लेकिन हम कैसे उपयोग करें! नर्मदा के मामले को लेकर मध्यप्रदेश और गुजरात में, जब से मुल्क आजाद हुआ, झगड़ा चल रहा है। चौथाई सदी हो गई, वह मध्यप्रदेश यही झगड़ा करता है और गुजरात यही झगड़ा करता है कि नर्मदा का पानी किसका है? क्योंकि नर्मदा निकलती तो है मध्यप्रदेश से और गिरती है गुजरात में, तो पानी किसका है? यही पच्चीस साल में तय नहीं होता। वह पानी गिरता ही जा रहा है, वह किसी के लिए नहीं रुका हुआ है। यह पच्चीस साल में यह नर्मदा का जो अरबों-खरबों रुपये की कीमत का पानी समुद्र में चला गया, इसके लिए कौन जिम्मेवार है?
इसके लिए राजनैतिक बैठे लड़ रहे हैं। वे दिल्ली में विवाद करते रहते हैं कि पानी किसका है। और पानी बहा जा रहा है, वह पानी समुद्र का हुआ जा रहा है। न वह गुजरात का रहता है, न वह मध्यप्रदेश का रहता है। वह पानी उपयोग में आ सकता है, उसके उपयोग की हमें कोई फिकर नहीं है। तो हर साल बाढ़ आएगी, हर साल गांव डूबेंगे, हर साल लोग मरेंगे। लेकिन हमें कोई फिकर नहीं है कि यह बाढ़ रोकी जाए। यह बाढ़ रोकी जा सकती है। यह सारा पानी जो विध्वंस बनता है, यह सृजन बन सकता है।
लेकिन कौन करेगा यह? यह भगवान करने नहीं आएगा। भगवान ने आपको करने की ताकत दे दी, अगर आप नहीं करते तो आप जिम्मेवार हैं, भगवान को शिकायत करने की कोई जरूरत नहीं है। असल में नपुंसकों के अतिरिक्त भगवान से शिकायत करने कोई भी नहीं जाता। हिम्मतवर तो काम करते हैं और भगवान को चढ़ाने जाते हैं। वे कहते हैं, हमने इतना काम किया, इसे स्वीकार कर लो; बड़ी कृपा है कि इतना हम कर पाए। कमजोर भगवान के पास जाते हैं कि इतना काम कर दो तो बड़ी कृपा होगी। अब तक कमजोरों की भगवान ने नहीं सुनी। भगवान सिर्फ शक्तिशालियों की सुनता है। और अगर हम चाहते हैं कि भगवान हमारी सुने, तो हमें अपनी शक्ति के प्रमाण देने अत्यंत जरूरी हैं।
अंत में, मैं नहीं मानता हूं कि समाजवाद को ले आने से हमारी मुसीबतें मिट जाएंगी, मैं मानता हूं कि हमारी मुसीबतों के कारण और हैं, उन्हें हम

दूर करेंगे तो वे मिट सकती हैं। मैं यह भी नहीं मानता हूं कि समाजवाद के आने से संपत्ति के पैदा करने में कोई सहयोग मिलेगा। उलटा, समाजवाद के आते ही संपत्ति पैदा करने की प्रेरणा मर जाएगी। पूंजीवाद की प्रतियोगी व्यवस्था हमें संपत्ति पैदा करने की प्रेरणा देती है, संघर्ष देती है, आकांक्षा देती है। और जो पिछड़ जाता है, वह खुद जिम्मेवार होता है। जो आगे बढ़ जाता है, वह पुरस्कृत होता है। पूंजीवाद जोखिम है और पुरस्कार है। जो पुरस्कृत होता है, वह दूसरों को भी जोखिम लेने की हिम्मत देता है। जो हारता है, वह फिर हिम्मत जुटा कर आगे बढ़ता है।
असल में पूंजीवाद, एक-एक व्यक्ति को अपनी शक्ति के परीक्षण का मौका है।

एक मित्र ने कहा है कि सरकार के हाथ में सब चला जाए तो बहुत अच्छा होगा। समाजवाद में बच्चे भी तो सरकार ले लेगी, तो मां-बाप की जिम्मेवारी कम हो जाएगी।

बड़े मजे की बात है, मां-बाप बनना तो आप चाहते हैं, लेकिन जिम्मेवारी नहीं लेना चाहते हैं। मित्र ने पूछा है कि मां-बाप की जिम्मेवारी कम हो जाएगी, अगर बच्चे सरकार ले लेगी। मां-बाप बनने का मजा आपको लेना है और सरकार जिम्मेवारी लेगी।
लेकिन ध्यान रहे, जिस दिन सरकार बच्चों की जिम्मेवारी लेगी, उस दिन बच्चों को कटवाने और मारने का हक भी सरकार का हो जाएगा, आपका नहीं रह जाएगा। और जिस दिन सरकारी हो जाएंगे बच्चे, उस दिन आप मां-बाप नाम को रहेंगे, जिसका कोई मतलब नहीं होगा। सिर्फ दफ्तर में लिखा होगा, और कोई मतलब नहीं रह जाएगा मां-बाप होने का।
असल में मां-बाप होने का मतलब बच्चे पैदा करना नहीं है। मां-बाप होने
का मतलब बच्चों को बड़ा करना, उनको जिंदगी देना है। और जो मां-बाप अपने बच्चों को जिंदगी देने की जिम्मेवारी से भी बचना चाहते हैं, अच्छा है कि वे मां-बाप बनने की जिम्मेवारी से बचें, बजाय मां-बाप की जिम्मेवारी से बचने के। मां-बाप न बनें तो उनकी बड़ी कृपा होगी। लेकिन सरकार बच्चों को पाले, यह ख्याल अगर आपके दिमाग में है तो बड़ा गलत ख्याल है। सरकार क्यों आपके बच्चे पाले?
और अगर सरकार बच्चे पालने लगेगी किसी दिन... पाल सकती है किसी दिन। अगर हम इसी तरह बच्चे पैदा करते चले गए तो आखिरी में यही परिणाम होगा! तो बड़े-बड़े अनाथालय गांव-गांव में बनाने पड़ेंगे, और तो कोई उपाय नहीं है। और उन अनाथालयों में जो बच्चों के साथ होगा, वह हम समझ सकते हैं कि क्या हो सकता है। सरकारी बच्चे किस मतलब के होंगे, वह भी हम समझ सकते हैं। जो भी सरकार के हाथ में चला जाता है, बेमानी हो जाता है। बच्चे भी बेमानी हो जाएंगे।
नहीं, इस तरह की जिम्मेवारियों से बचने का मत सोचें। जिंदगी जिम्मेवारी का नाम है। और जो आदमी जितना हिम्मतवर है, उतनी जिम्मेवारी उठाने की तैयारी दिखलाता है। जिंदगी जिम्मेवारी से भागने का नाम नहीं है, जिंदगी जिम्मेवारी लेने और संघर्ष करने का नाम है। घबराएं मत, भागें मत, जिंदगी के बोझ से डरें मत, जिंदगी के बोझ से लड़ें; तो जिंदगी हलकी हो सकती है।
इस संबंध में और दो-चार प्रश्न रह गए हैं। आपके कोई और प्रश्न होंगे
तो आप लिख कर दे देंगे, तो कल सांझ हम बात कर सकेंगे।
सुबह के संबंध में एक सूचना, फिर मैं अपनी बात पूरी करूं। सुबह जो मित्र ध्यान के लिए आ रहे हैं, वे ठीक छह बजे पहुंच जाएं। स्नान करके पहुंचें और धुले कपड़े पहन कर पहुंचें। और घर से चुपचाप चले जाएं और वहां कोई बात न करें, चुपचाप बैठ जाएं। ठीक छह बजे पहुंच जाएं ताकि धूप न हो जाए और छह और सात के बीच ध्यान का प्रयोग पूरा हो सके। यहां सांझ को तो मैं आपसे कह रहा हूं कि आप अपनी शक्ति से कुछ खोजें जगत में, सुबह जो लोग परमात्मा के जगत में कुछ खोजना चाहते हैं--वह भी अपनी शक्ति से--उनके लिए

सुबह बुलाया हुआ है। जिन्हें संसार की खोज करनी है, वे सांझ की बात सुन लें; और जिन्हें परमात्मा की खोज करनी है, वे सुबह की बात भी जरूर सुन लें।
मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नये समाज की खोज
नौवां प्रवचन

अध्यात्म की आधारशिला है भौतिकवाद

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक मित्र ने पूछा है कि आपने पहले दिन की चर्चा में कहा कि समाजवाद मनुष्य को पशु बना देता है। तो उन मित्र का कहना है कि आदमी तो आज पशु से भी बदतर हो गया है, इसलिए अगर आदमी पशु भी बन जाए तो हर्ज क्या है?

इस संबंध में दो-तीन बातें समझनी उपयोगी हैं। पहली बात तो यह है कि आदमी पशु से भी बदतर बन जाए, तब भी आदमी है। और पशु से बदतर बनने की क्षमता भी आदमी की क्षमता है, पशु की क्षमता नहीं है। और आदमी क्योंकि पशु से बदतर बन सकता है, इसलिए देवताओं से श्रेष्ठ भी बन सकता है। ये दोनों उसकी क्षमताएं हैं। पशु के पास दोनों क्षमताएं नहीं हैं। जो सीढ़ी ऊपर ले जाती है, वह नीचे भी ला सकती है। सीढ़ी दोनों तरफ चढ़ी जा सकती है। कोई आदमी चाहे तो सीढ़ी से ऊपर चला जाए और कोई आदमी चाहे तो सीढ़ी से नीचे आ जाए। लेकिन ये सीढ़ी की दोनों क्षमताएं एक ही साथ होती हैं।
अगर हम ऐसा सोचते हों कि मनुष्य सिर्फ ऊपर ही चढ़ सके, अगर ऐसी सीढ़ी हो,
तो फिर मनुष्य की स्वतंत्रता न रह जाएगी। वह नीचे भी उतर सकता है, यह भी उसकी स्वतंत्रता है।
पशु परतंत्र है; अच्छा है तो परतंत्र है, बुरा है तो परतंत्र है। पशु
के जीवन में न तो कुछ अच्छा है, न कुछ बुरा है। अच्छा और बुरा वहां होता है जहां चुनाव है, जहां चुनाव करने की शक्ति है। अगर कोई मनुष्य पशु से भी बदतर है, तो वह मनुष्य देवताओं से श्रेष्ठ हो सकता है इसीलिए पशुओं से बदतर हो सका है।
मैं किसी मनुष्य का पशु बनना पसंद न करूंगा, क्योंकि पशु बनने का मतलब
यह है कि फिर न तो पशु से बदतर बन सकेंगे आप और न फिर देवताओं से श्रेष्ठ बन सकेंगे आप।
फिर तो पशु से और बेहतर मशीन है। पशु बुरा तो नहीं कर सकता, अच्छा नहीं
कर सकता; लेकिन पशु अपने को दुख पहुंचाने योग्य कुछ कर सकता है, सुख पहुंचाने योग्य कुछ कर सकता है। मशीन वह भी नहीं कर सकती। अगर हमें सारी ही दिक्कतों के बाहर हो जाना है तो हमें मशीन हो जाना अच्छा है। समाजवाद पशु ही नहीं बनाएगा, समाजवाद मूलतः आदमी को मशीन बनाने की कोशिश है।
मैं इस बात से राजी नहीं हो सकता हूं। मैं मानता हूं कि मनुष्य के पशु होने की क्षमता उसकी बहुत बड़ी आध्यात्मिक शक्ति है। उससे विपरीत भी वह कर सकता है, दोनों के लिए स्वतंत्र है। और दोनों के लिए सदा स्वतंत्र रहना चाहिए। जिस दिन आदमी अच्छा ही हो सकेगा, बुरा न हो सकेगा, उस दिन अच्छे होने में भी आनंद समाप्त हो जाएगा।
एक छोटा बच्चा सरल दिखाई पड़ता है, निर्दोष दिखाई पड़ता है। लेकिन मैं
इस छोटे बच्चे की निर्दोषता और सरलता की तारीफ नहीं कर सकता, क्योंकि बच्चा अभी जवान होगा और बुरे होने की क्षमता उसमें आएगी। लेकिन जब कोई बूढ़ा आदमी सरल और निर्दोष हो जाता है, तब मैं उसकी तारीफ जरूर करता हूं, क्योंकि उसने बुराई के मौके को छोड़ कर वह अच्छा बना। बच्चे को बुराई का मौका ही नहीं मिला है, इसलिए बच्चे की कोई कीमत नहीं है।
अगर कोई बूढ़ा बच्चे जैसा हो जाए तो हम कहते हैं, वह परमात्मा का स्वरूप हो गया। लेकिन किसी बच्चे को नहीं कह सकते। क्योंकि बच्चे को अभी स्वतंत्रता का मौका नहीं मिला, चुनाव का मौका नहीं मिला, अभी बुरे होने के मौके नहीं आए, जहां उसकी परीक्षा होती कि वह बुरा होता है या अच्छा होता है। परीक्षा तय करती है, परीक्षा कसौटी है। आदमी की जिंदगी में सिर्फ कसौटी है, बाकी और किसी प्राणी की जिंदगी में कसौटी नहीं है। इसलिए परमात्मा की तरफ का रास्ता भी आदमी के चौराहे से गुजरता है और पशु की तरफ

का रास्ता भी आदमी के चौराहे से गुजरता है। आदमी एक चौराहा है, जहां से दोनों तरफ रास्ते जाते हैं--आगे भी और पीछे भी।
मैं कभी राजी न होऊंगा कि आदमी को हम इस चौराहे से हटा कर पीछे कर दें।
हो सकता है पशु की जिंदगी में अशांति कम हो जाए, हो जाएगी कम; लेकिन शांति भी कम हो जाएगी। हो सकता है पशु की जिंदगी में दुख कम हो जाएं; लेकिन सुख भी कम हो जाएंगे। जिस मात्रा में दुख कम होते हैं, उसी मात्रा में सुख कम हो जाते हैं।
जिन मित्र ने यह कहा है, उनकी बात थोड़ी सी विचार करने योग्य जरूर है। उनकी बात में महत्वपूर्ण यही है कि उन्हें लगता है कि आदमी आज पशु से भी बदतर हो गया है। इस बात में थोड़ी सच्चाई है। लेकिन यह ठीक से समझ लें कि आज बदतर हो गया है, इससे यह भ्रांति पैदा होती है कि पहले शायद ठीक रहा होगा। वह गलत ख्याल है। आदमी सदा से ऐसा ही रहा है। जिन्हें हम बुराइयां कहते हैं, वे आदमी में सदा से हैं; और जिन्हें हम अच्छाइयां कहते हैं, वे भी आदमी में सदा से हैं। और अच्छाई और बुराई का चुनाव प्रत्येक आदमी को अपनी जिंदगी में स्वयं ही करना पड़ता है। इसलिए एक ऐसे समाज की व्यवस्था चाहिए जो स्वतंत्रता का मौका देती हो।
अगर कोई हमें जबरदस्ती अच्छा भी बना दे, तो वह बुरे होने से भी बदतर होगा। जेलखाने में कोई चोरी नहीं कर सकता, जेलखाने में कोई हत्या नहीं कर सकता, जेलखाने में कोई भी बुराई करने की स्वतंत्रता नहीं है। फिर भी हम जेलखाने में जाना पसंद नहीं करेंगे। बाहर की जिंदगी में बुराई की स्वतंत्रता है, उसी के साथ अच्छाई की स्वतंत्रता भी है। जेलखाने में अगर कोई चोरी नहीं कर सकता, तो जेलखाने में कोई जीवन को ऊपर ले जाने का उपाय भी नहीं खोज सकता। जेलखाना एक परतंत्रता है।
समाजवाद कोशिश कर सकता है पूरे मुल्क को एक बड़ा जेलखाना बना देने की। उसने जेलखाने बनाए। और जेलखाने बनाने से कई बातों में सुविधा हो जाती है। लेकिन वे सुविधाएं बड़े कीमती सौदे हैं, उनमें हम बहुत कुछ खोते हैं और पाते कुछ भी नहीं हैं।
इसलिए मैं तो कहूंगा कि आदमी पशु होने की क्षमता को स्वीकार करे, स्वतंत्रता को कायम रखे, फिर भी पशु न हो, इसकी दिशा में हमें कोशिश करनी चाहिए।
और आदमी पशु क्यों हो जाता है, यह भी थोड़ा सोचने जैसा है। जैसी जिंदगी है, उस जिंदगी में आदमी होना बहुत मुश्किल और कठिन मालूम होता है। जिंदगी में ऐसे अवसर नहीं मालूम पड़ते, जिनमें आदमी होने की सरलता हो; पशु होने की सरलता मालूम पड़ती है, सुविधा मालूम पड़ती है। ऐसा लगता है कि पशु होकर हम ज्यादा सफलता से जी सकेंगे, इसलिए आदमी पशु होने की दिशा में झुक जाता है। अगर कोई आदमी झूठ बोल रहा है या बेईमानी कर रहा है या हिंसा करने पर उतारू हुआ है, तो ऐसा नहीं है कि कोई भी आदमी हिंसा करने के लिए उत्सुक पैदा होता है, न ही कोई क्रोध करने को उत्सुक पैदा होता है। बुरा होना बुरे से बुरा आदमी भी नहीं चाहता है, बुरे से बुरे आदमी के भीतर भी भले होने की आकांक्षा का बीज निरंतर मौजूद रहता है। लेकिन चारों तरफ की जिंदगी अगर ऐसी हो कि बुरे होने को मजबूर कर दे, तो बहुत कम लोग इतने हिम्मतवर होते हैं कि उस चुनौती को झेल सकें और अच्छे रह जाएं। अधिक लोग बुरे हो जाते हैं।
इसलिए समाज हमें एक ऐसा चाहिए जो स्वतंत्रता पूरी देता हो और बुरे होने के लिए मजबूर न करता हो, इतना ही काफी है। किसी आदमी को भले होने के लिए मजबूर करने की जरूरत नहीं है, सिर्फ बुरे होने के लिए मजबूर न करे समाज, इतना ही काफी है। ऐसा समाज जो बेईमान होने के लिए मजबूर न करता हो। लेकिन आज हमारा समाज सब तरफ से हमें बेईमान होने को मजबूर अगर करता हो, तो बहुत कम लोग रुक पाएंगे, अधिक लोग बेईमान हो जाएंगे। अगर जीना है, तो उन्हें बेईमान हो ही जाना पड़ेगा। फिर हम उनकी बेईमानी को कितना ही दोष दें, इससे कुछ हल नहीं होता। और जो दोष देने वाले हैं, वे भी करीब-करीब बेईमान होंगे। सिर्फ फर्क इतना होगा कि कुछ सफल बेईमान होंगे जिनकी बेईमानी का पता नहीं चलेगा और कुछ असफल बेईमान होंगे जिनकी बेईमानी पकड़ ली गई होगी।

जिन्हें हम नेता कहते हैं, जो लोगों को समझाते हैं कि बेईमानी मत करो, नेता होने तक की यात्रा बिना बेईमानी के बहुत मुश्किल है। लेकिन एक दफे जो मंच पर पहुंच जाता है, वह लोगों को समझाने लगता है कि बेईमानी बहुत बुरी चीज है। लोग भी जानते हैं कि यह वही आदमी है, बेईमानियों की सीढ़ियों से चढ़ा हुआ! लेकिन जो सफल हो गया, उसकी सब बुराइयां दब जाती हैं और समाप्त हो जाती हैं। और जो असफल हो गया, उसकी सब बुराइयां दिखाई पड़ने लगती हैं और प्रकट हो जाती हैं।
ऐसा मालूम पड़ता है कि जिसे हम समाज कहते हैं, उसमें असफलता ही एकमात्र बुराई है और सफलता ही एकमात्र शुभ है। जो सफल हो जाए वह सब तरह ठीक हो जाता है, जो असफल हो जाए वह सब तरह बुरा हो जाता है।
हमें ये समाज की जिंदगी के मूल्य और ये वैल्यूज बदलनी चाहिए। हमें इस बात की फिकर करनी चाहिए कि हम समाज ऐसा निर्मित करें... और वह समाज कैसे निर्मित होगा, उस संबंध में मैंने दो दिन बहुत सी बातें आपसे कही हैं। एक बात तो मैंने यह कही है कि गरीबी सब पापों की जड़ है। और जब तक गरीबी है तब तक आप धर्म की बात कर सकते हैं, धर्म को ला नहीं सकते। गरीबी इतने पापों को पैदा करती है कि अगर हम सिर्फ गरीबी को मिटाने में लग जाएं तो नब्बे प्रतिशत पाप गिर जाएंगे।
लेकिन हम गरीबी मिटाने में नहीं लगते, हम पापों को मिटाने में लगते हैं, यह बड़ी बुनियादी भूल की बात है। पापों को हम नहीं मिटा सकेंगे, जब तक हम गरीबी को नहीं मिटाते; क्योंकि पाप तो सिर्फ फूल हैं, जड़ में गरीबी है। हम ऐसे ही लोग हैं कि अगर किसी को घर में बुखार आ जाए और उसका शरीर गर्म हो जाए, तो हम उसके शरीर की गर्मी मिटाने में लग जाते हैं।
गर्मी बीमारी नहीं है, बीमारी तो शरीर में कहीं भीतर है, जिस बीमारी
की वजह से शरीर गर्म हो गया है। गर्म हो जाना तो सिर्फ सिम्पटम है, लक्षण है, खबर दे रहा है कि शरीर के भीतर कोई बीमारी है। आप ठंडे बर्फ का पानी डालते रहें मरीज पर, मरीज भी मर जाएगा, बीमारी भी चली जाएगी, लेकिन मरीज को लेकर जाएगी। गर्मी कम करना इलाज नहीं है, गर्मी तो केवल खबर है कि भीतर बीमारी है। उस बीमारी को ठीक करें, बुखार अपने आप उतर जाएगा।
समाज में हमें जो आज इतना अनाचार, इतना व्यभिचार, इतना भ्रष्टाचार, इतनी बेईमानी, इतनी पशुता दिखाई पड़ती है, इसके बहुत गहरे में गरीबी बीमारी है। वह बीमारी घाव की तरह भीतर है, मवाद बाहर फिंक रहा है। हम मवाद को पोंछ-पोंछ कर मलहम-पट्टी करते रहते हैं, कोई फर्क नहीं पड़ता। हमारी सब मलहम-पट्टियां टूट जाती हैं, भीतर से मवाद फिर आ जाता है। जब तक हम भीतर से ही उस कैंसर को गरीबी के न मिटा दें, तब तक हमें आशा नहीं करनी चाहिए कि हम समाज को धर्म और नीति, शुभ और पुण्य सिखा पाएंगे। वह हम नहीं सिखा पाएंगे। हमारा महात्मा इसीलिए असफल हुआ जा रहा है। क्योंकि वह सिर्फ पाप से लड़ने के लिए कहे चला जाता है, पाप की जड़ को उखाड़ने की उसके पास कोई योजना नहीं है। पाप की जड़ को मिटाना होगा, तो पाप अपने आप मिट जाएंगे।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सभी पाप मिट जाएंगे। लेकिन गरीबी से पैदा होने वाले पाप मिट जाएंगे। और गरीबी से पैदा होने वाले पाप इतने दीन कर जाते हैं मन को जिसका कोई हिसाब नहीं है।
फिर हम यह भी समझ नहीं पाते... यह भी एक मित्र ने पूछा है।

एक मित्र ने पूछा है कि गरीब आदमी तो बहुत कम बेईमान होते हैं; आमतौर
से तो अमीर आदमी ही बेईमान होते हैं।

इस बात को भी थोड़ा समझ लेना जरूरी है। गरीब आदमी अगर बेईमान होता तो
वह भी शायद अमीर हो गया होता, एक। लेकिन अगर वह अमीर नहीं हो सका है, तो इसका मतलब यह नहीं है कि वह बेईमान नहीं है। इतना ही हो सकता है कि उसकी बेईमानी सफल न हो पाई हो। यह भी हो सकता है कि वह बेईमानी उसने की हो, लेकिन पड़ोसी उससे ज्यादा बेईमानी कर गया हो। यह भी हो सकता है कि बेईमानी वह करना चाहता हो, लेकिन साहस न जुटा पाता हो। बहुत से अच्छे आदमी सिर्फ कमजोर, कमजोरी की वजह से अच्छे मालूम होते हैं।

अगर हम लोगों के दिल में उतर सकें तो हम बहुत हैरान हो जाएंगे। जिनको
हम अच्छे आदमी कहते हैं, अक्सर वे ऐसे आदमी होते हैं जो बुरा करने की हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं। बुरा करने के लिए भी हिम्मत चाहिए, करेज चाहिए, डेयरिंग चाहिए; बुरा करने के लिए फंसने की तो कम से कम हिम्मत चाहिए, दांव पर लगने की हिम्मत चाहिए।
अक्सर इस मुल्क में जिसको हम अच्छा आदमी कहते हैं वह कमजोर आदमी है।
और जिस मुल्क में कमजोर आदमी अच्छे होते हैं और ताकतवर आदमी बुरे हो जाते हैं, उसके दुर्भाग्य के सिवाय उस मुल्क में और कुछ भी घटित नहीं होता। आज जो आदमी हिम्मतवर है वह बुरा हो जाता है और जो कमजोर है वह अच्छा हो जाता है। नपुंसक अच्छे आदमियों से कोई समाज नहीं बदल सकता; जब तक हम ताकतवर लोगों को अच्छे होने की दिशा में न लगाएं, तब तक यह नहीं हो सकेगा।
लेकिन ताकतवर आदमी अच्छे होने की दिशा में क्यों जाए? क्योंकि अच्छे होने की दिशा में असफलता के सिवाय कुछ भी हाथ अगर लगने को न हो, तो अच्छा आदमी फिर सफलता की दिशा में जाना शुरू हो जाता है। सारे समाज की व्यवस्था ऐसी है कि सफलता एकमात्र आकर्षण है। आप भी उसको पूजते हैं जो जीत जाता है। पुरानी कहावत है कि सत्य सदा जीतता है। लेकिन उस कहावत में मुझे भ्रांति मालूम पड़ती है, मुझे ऐसा लगता है कि जो जीत जाता है उसी को हम सत्य कहने लगते हैं। हम सफलता को आदर देते हैं, सफलता किसी भी भांति आ जाए।
अगर हमें यह स्थिति बदलनी है, तो हमें अपने आदर के मूल्य बदलने पड़ेंगे। हम आदर के मूल्य जिनको देंगे, समाज उसी तरफ दौड़ना शुरू हो जाता है।
उदाहरण के लिए, हमने हिंदुस्तान में संन्यासी को बहुत आदर दिया तो हिंदुस्तान में लाखों संन्यासी हो गए। किसी दूसरे मुल्क में इतना संन्यासी को आदर नहीं मिला, इसलिए दूसरे मुल्क में इतने संन्यासी पैदा नहीं हुए। फ्रांस में लाखों चित्रकार पैदा हो जाते हैं, क्योंकि चित्रकार को बहुत आदर मिलता है। इतने चित्रकार दुनिया में और कहीं पैदा नहीं होते, क्योंकि इतना आदर चित्रकार को नहीं मिलता है।
हिंदुस्तान में जब तक हम बेईमान लोगों को आदर दिए चले जाएंगे, तब तक हिंदुस्तान में ईमानदारी की धारा का फूटना बहुत मुश्किल है। लेकिन आज आप सबसे ज्यादा आदर किसको दे रहे हैं?
आज राजनीतिज्ञ सारे आदर के केंद्र पर बैठ गया है। जब तक हिंदुस्तान में राजनीतिज्ञ को उतार कर जमीन पर नहीं खड़ा किया जाता, तब तक हिंदुस्तान में ईमानदारी की कोई संभावना नहीं हो सकती है। अखबार है तो राजनीतिज्ञ का, अखबार की खबरें हैं तो राजनीतिज्ञ की, चर्चा है तो राजनीतिज्ञ की, रेडियो है तो राजनीतिज्ञ है, सब तरफ राजनीतिज्ञ छाया हुआ है। अगर मंदिर का भी उदघाटन करना है तो कोई मिनिस्टर करेगा और अगर यज्ञ का भी उदघाटन करना है तो कोई राष्ट्रपति करेंगे। राजनीतिज्ञ को ही चारों तरफ जिंदगी में छाने की अगर हमने फिकर की, तो आप यह पक्का समझिए, इस मुल्क में ईमानदारी के रास्ते खुलने मुश्किल हो जाएंगे। क्योंकि राजनीति सबसे ज्यादा चालाक धंधा है।
लेकिन यह राजनीतिज्ञ कह रहा है कि धन पर भी हम ही काबू चाहते हैं। समाजवाद के मेरे विरोध में एक कारण यह भी है। राजनीतिज्ञ के हाथ में राज्य की ताकत है, वह भी काफी नुकसान पहुंचा रही है। अब हम राजनीतिज्ञ के हाथ में धन की ताकत भी दे दें, तब तो फिर उससे मुक्ति पाने का कोई उपाय न रह जाएगा। राज्य के हाथ में दोनों ताकत! फिर तो राज्य बिल्कुल अनचैलेंजेबल, चुनौती के बाहर हो जाएगा। फिर तो राज्य से लड़ना और राज्य से बगावत करना या राजनीतिज्ञ की खिलाफत करने की कोई संभावना और कोई उपाय न रह जाएगा।
आज तो राजनीतिज्ञ से लड़ा जा सकता है। इसलिए मैं लोकतंत्र और पूंजीवाद
के समर्थन में हूं कि राजनीतिज्ञ से लड़ने का हमारे पास एक उपाय तो है। लेकिन अगर राज्य का धन और देश की सारी संपत्ति भी राज्य के हाथ में चली जाती है, तो फिर राज्य से लड़ने का कोई उपाय नहीं रह जाता। और जिस दिन हम व्यक्तियों के हाथ से उनकी संपत्ति का अधिकार छीन लेंगे, उस दिन हम उनके जीवन की सारी शक्ति छीन लेंगे; उनके व्यक्तित्व का सारा सार छीन लेंगे; उस

दिन राजनीतिज्ञ भगवान हो जाएगा। राजनीतिज्ञ भगवान होने की कोशिश में लगा हुआ है।
अगर हमें राज्य को भगवान बना देना है और राजनीतिज्ञ को भगवान बना देना है, तो हमें फिर बेईमानी वगैरह का विरोध करना बंद कर देना चाहिए। क्योंकि राजनीति में बेईमानी, चोरी, धोखा, जाल, सब सीढ़ियां हैं। लेकिन इन सीढ़ियों से जो आदमी गुजरता है, वे सब आदर के पात्र हो जाते हैं।
अगर इस मुल्क को कभी भी ईमानदारी की दिशा में कदम उठाना हो, तो राजनीतिज्ञ के प्रति बहुत सावधान हो जाना चाहिए। राजनीतिज्ञ को इतना आदर देने की कोई भी जरूरत नहीं है, कोई कारण भी नहीं है। अगर आपके पंजाब का कोई मंत्री, खाद्य मंत्री या फूड मिनिस्टर है, तो उसका आदर वैसे ही होना चाहिए जैसे घर में एक अच्छे रसोइए का होता है। वह पूरे प्रदेश का रसोइया है, इससे ज्यादा कोई कीमत देने की जरूरत नहीं है। वह पूरे प्रदेश के लिए भोजन की फिकर करता है, पूरे प्रदेश का बड़ा रसोइया है। अगर अच्छी फिकर करता है तो धन्यवाद दे देना चाहिए, अच्छा काम नहीं करता है तो निकाल बाहर करना चाहिए। इससे ज्यादा आदर का कोई कारण नहीं है।
राजनीतिज्ञ को इतने आदर की समझ नहीं कि क्यों इतना आदर हम दे रहे हैं! लेकिन इस मुल्क में पिछले बीस-पच्चीस वर्षों में हमने राजनीतिज्ञ को भगवान बना दिया है। अब राजनीतिज्ञ का यह मन होता है कि वह धन पर भी कब्जा पा ले। धन से ही उसे एक चिंता है। अगर कभी राजनीतिज्ञ को कोई धक्का पहुंचा सकता है, तो देश का धन उसे धक्का पहुंचा सकता है। अब वह चाहता है उस पर भी उसका हाथ हो जाए।
मेरी अपनी समझ यह है कि जब तक बहुत लोगों के पास धन बंटा हुआ है, तब तक बहुत लोग बहुत तरह की पार्टियों के लिए सहायता पहुंचा सकते हैं और उन्हें जिंदा रख सकते हैं। लेकिन जिस दिन राज्य के पास सारे कारखाने, सारी जमीनें, सारे उद्योग चले जाएंगे, उस दिन राज्य की पार्टी को कोई दूसरी पार्टी विरोध करने की स्थिति में नहीं रह जाएगी। इससे सावधान हो जाने की जरूरत है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है, उन्होंने पूछा है कि आप समाजवाद और साम्यवाद--सोशलिज्म और कम्युनिज्म--में क्या फर्क करते हैं?

वही फर्क करता हूं मैं जो टी.बी. की पहली स्टेज में और तीसरी स्टेज में होता है, और कोई फर्क नहीं करता हूं। समाजवाद थोड़ा सा फीका साम्यवाद है, वह पहली स्टेज है बीमारी की। और पहली स्टेज पर बीमारी साफ दिखाई नहीं पड़ती इसलिए पकड़ने में आसानी होती है। इसलिए सारी दुनिया में कम्युनिज्म ने सोशलिज्म शब्द का उपयोग करना शुरू कर दिया है। कम्युनिज्म शब्द बदनाम हो गया है। और कम्युनिज्म ने पिछले पचास सालों में दुनिया में जो किया है, उसके कारण उसका आदर क्षीण हुआ है। पचास वर्षों में कम्युनिज्म की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल गई है। इसलिए अब कम्युनिज्म सोशलिज्म शब्द का उपयोग करना शुरू किया है। अब वह समाजवाद की बात करता है और यह भी कोशिश कर सकता है कि हम समाजवाद से भिन्न हैं। लेकिन समाजवाद और साम्यवाद में कोई बुनियादी भेद नहीं है, सिर्फ शब्द का भेद है। लेकिन शब्द के भेद पड़ने से हमें बहुत फर्क मालूम पड़ने लगते हैं। शब्द को भर बदल दें तो ऐसा लगता है कोई बदलाहट हो गई।
कोई बदलाहट नहीं हो गई है। समाजवाद हो या साम्यवाद हो, सोशलिज्म हो या कम्युनिज्म हो, एक बात पक्की है कि व्यक्ति की हैसियत को मिटा देना है, व्यक्ति के व्यक्तित्व को पोंछ डालना है, व्यक्ति की स्वतंत्रता को समाप्त कर देना है, संपत्ति का व्यक्तिगत अधिकार छीन लेना है और देश की सारी जीवन-व्यवस्था राज्य के हाथ में केंद्रित कर देनी है।
लेकिन हमारे जैसे मुल्क में, जहां कि राज्य निकम्मे से निकम्मा सिद्ध
हो रहा है, वहां अगर हमने देश की सारी व्यवस्था राज्य के हाथ में सौंप दी, तो सिवाय देश के और गहरी गरीबी, और गहरी बीमारी में गिरने के कोई उपाय न रह जाएगा।

आज मेरे एक मित्र मुझे एक छोटी सी कहानी सुना रहे थे, वह मुझे बहुत प्रीतिकर लगी। वे मुझे एक कहानी सुना रहे थे कि एक आदमी ने रास्ते से गुजरते वक्त, एक खेत में एक बहुत मस्त और तगड़े बैल को काम करते देखा। वह पानी खींच रहा है और बड़ी शान से दौड़ रहा है। उसकी शान देखने लायक है। और उसकी ताकत, उसका काम भी देखने लायक है। वह जो आदमी गुजर रहा था, बहुत प्रशंसा से भर गया, उसने किसान की बहुत तारीफ की और कहा कि बैल बहुत अदभुत है।
छह महीने बाद वह आदमी फिर वहां से गुजर रहा था, लेकिन बैल अब बहुत धीमे-धीमे चल रहा था। जो आदमी उसे चला रहा था, उससे उसने पूछा कि क्या हुआ? बैल बीमार हो गया? छह महीने पहले मैंने उसे बहुत फुर्ती और ताकत में देखा था! उस आदमी ने कहा कि उसकी फुर्ती और ताकत की खबर सरकार तक पहुंच गई और बैल को सरकार ने खरीद लिया है। जब से सरकार ने खरीदा है तब से वह धीमा चलने लगा है, पता नहीं सरकारी हो गया है।
छह महीने और बीत जाने के बाद वह आदमी फिर उस जगह से निकला तो देखा कि बैल आराम कर रहा है। वह चलता भी नहीं, उठता भी नहीं, खड़ा भी नहीं होता। तो उसने पूछा कि क्या बैल बिल्कुल बीमार पड़ गया, मामला क्या है? तो जो आदमी उसके पास खड़ा था उसने कहा, बीमार नहीं पड़ गया है, इसकी नौकरी कन्फर्म हो गई है, अब यह बिल्कुल पक्का सरकारी हो गया है, अब इसे काम करने की कोई भी जरूरत नहीं रह गई है।
बैल अगर ऐसा करे तब तो ठीक है, आदमी भी सरकार में प्रवेश करते ही ऐसे
हो जाते हैं। उसके कारण हैं, क्योंकि व्यक्तिगत लाभ की जहां संभावना समाप्त हो जाती है और जहां व्यक्तिगत लाभ निश्चित हो जाता है, वहां कार्य करने की इनसेंटिव, कार्य करने की प्रेरणा समाप्त हो जाती है। सारे सरकारी दफ्तर, सारा सरकारी कारोबार मक्खियां उड़ाने का कारोबार है। पूरे मुल्क की सरकार नीचे से ऊपर तक आराम से बैठी हुई है। और हम देश के सारे उद्योग भी इनको सौंप दें! ये जो कर रहे हैं, उसमें सिवाय हानि के कुछ भी नहीं होता। मेरा अपना सुझाव तो यह है कि जो चीजें इनके हाथ में हैं वे भी वापस लौटा लेने योग्य है। अगर हिंदुस्तान की रेलें हिंदुस्तान की व्यक्तिगत कंपनियों के हाथ में आ जाएं, तो ज्यादा सुविधाएं देंगी, कम टिकट लेंगी, ज्यादा चलेंगी, ज्यादा आरामदायक होंगी और हानि नहीं होगी, लाभ होगा। जिस-जिस जगह सरकार ने बसें ले लीं अपने हाथ में, वहां बसों में नुकसान लगने लगा। जिस आदमी के पास दो बसें थीं, वह लखपति हो गया। और सरकार जिसके पास लाखों बसें हो जाती हैं, वह सिवाय नुकसान के कुछ भी नहीं करती। बहुत आश्चर्यजनक मामला है!
मैं अभी मध्यप्रदेश में था, तो वहां मध्यप्रदेश ट्रांसपोर्टेशन, बसों
की व्यवस्था के जो प्रधान हैं--अब तो वे सब सरकारी हो गई हैं--उन्होंने मुझे कहा कि पिछले वर्ष हमें तेईस लाख रुपये का नुकसान लगा है। उन्हीं बसों से दूसरे लोगों को लाखों रुपये का फायदा होता था, उन्हीं बसों से सरकार को लाखों का नुकसान होता है। लेकिन होगा ही, क्योंकि सरकार को कोई प्रयोजन नहीं है, कोई काम्पिटीशन नहीं है।
दूसरा सुझाव मैं यह भी देना चाहता हूं कि अगर सरकार बहुत ही उत्सुक है धंधे हाथ में लेने को, तो काम्पिटीशन में सीधा मैदान में उतरे और बाजार में उतरे। जो दुकान एक आदमी चला रहा है, ठीक उसके सामने सरकार भी अपनी दुकान चलाए और फिर बाजार में मुकाबला करे। एक कारखाना आदमी चला रहे हैं, ठीक दूसरा कारखाना सरकार खोले और दोनों के साथ समान व्यवहार करे और अपना कारखाना चला कर बताए। तब हमको पता चलेगा कि सरकार क्या कर सकती है।
सरकार कुछ भी नहीं कर सकती है। असल में सरकारी होते से सारे काम की प्रेरणा विदा हो जाती है और जहां सरकार प्रवेश करती है वहां नुकसान लगने शुरू हो जाते हैं।
समाजवाद और साम्यवाद दोनों ही, जीवन की व्यवस्था को राज्य के हाथों में दे देने का उपाय हैं। जिसे हम आज पूंजीवाद कहते हैं, वह पीपुल्स कैपिटलिज्म है, वह जन-पूंजीवाद है। और जिसे समाजवाद और साम्यवाद कहा जाता है, वह स्टेट कैपिटलिज्म, राज्य-पूंजीवाद है। और कोई फर्क नहीं है। जो चुनाव करना है वह चुनाव यह है कि हम पूंजीवाद व्यक्तियों के हाथ में चाहते

हैं कि राज्य के हाथ में चाहते हैं, यह सवाल है। व्यक्तियों के हाथ में पूंजीवाद बंटा हुआ है, डिसेंट्रलाइज्ड है। राज्य के हाथ में पूंजीवाद इकट्ठा हो जाएगा, एक जगह इकट्ठा हो जाएगा।
और ध्यान रहे, बीमारी है अगर पूंजीवाद, तो बंटा हुआ रखना ही अच्छा है। कनसनट्रेटेड बीमारी और खतरनाक हो जाएगी, और कुछ भी नहीं हो सकता।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है, उन्होंने पूछा है कि पूंजीवाद मजदूर का शोषण क्यों करता है?

कुछ बातें निरंतर प्रचारित होती रहें तो हम उन्हें पकड़ लेते हैं और भूल जाते हैं कि वे सच भी हैं या झूठ हैं। पूंजीवाद मजदूर का शोषण नहीं करता है। असल में पूंजीवाद में प्रत्येक चीज की कीमत उसकी मांग और उसकी सप्लाई से तय होती है, डिमांड और सप्लाई से तय होती है।
अगर एक गांव में दस मजदूर हैं और पंद्रह मजदूरों की जरूरत है, तो मजदूरों को ज्यादा दाम मिल जाएंगे, क्योंकि दस मजदूर हैं और पंद्रह मजदूरों की जरूरत है। लेकिन अगर गांव में पचास मजदूर हैं और दस मजदूरों की जरूरत है, तो मजदूरों को दाम कम मिलेंगे, क्योंकि बाजार में ज्यादा श्रम उपलब्ध है और सस्ते में खरीदा जाएगा। पूंजीवाद प्रत्येक चीज का भाव तय करता है उसकी कमी के आधार पर, उसकी न्यूनता के आधार पर। और कोई उपाय भी नहीं है चीजों के दाम तय करने का।
भगवान किसी चीज के ऊपर दाम लिख कर भेजता नहीं कि गेहूं के कितने दाम हैं। या कोहिनूर हीरे के कितने दाम हैं, इस हीरे पर कहीं लिखा हुआ नहीं है। एक ही कोहिनूर हीरा है, तो उसके दाम करोड़ों हो सकते हैं। अगर कल एक लाख कोहिनूर हीरे मिल जाएं, तो दाम तत्काल नीचे गिर जाएंगे और लाखों पर आ जाएंगे। और कल अगर करोड़ों कोहिनूर हीरों की खदान मिल जाए, तो दाम कौड़ी के नहीं रह जाएंगे और हर आदमी दो-दो पैसे में कोहिनूर हीरा खरीद लेगा।
चीजों के दाम आसमान से तय नहीं हैं, चीजों के दाम उनकी न्यूनता से तय होते हैं। कोई पूंजीपति किसी मजदूर का शोषण नहीं कर रहा है। लेकिन मजदूर ज्यादा हैं और जरूरत कम है, इसलिए इनको दाम कम मिल रहे हैं। दाम कम मिलने का और कोई भी कारण नहीं है। अगर बाजार में कपड़े खरीदने वाले कम हो जाएं और कपड़े ज्यादा हो जाएं, तो क्या आप कहेंगे कि कपड़े खरीदने वाले कपड़े के दुकानदारों का शोषण कर रहे हैं, क्योंकि दाम कम दे रहे हैं। नहीं, शोषण का कोई सवाल नहीं है। चीजों के दाम तय करने का एक ही नियम है कि कितनी जरूरत है और कितनी सप्लाई है। कितनी मौजूद है चीज और कितने लोग मांगने वाले हैं। श्रम बहुत ज्यादा मौजूद है, इतने श्रम की कोई जरूरत ही नहीं है। इतना ज्यादा श्रम मौजूद है कि उसे खरीद कर भी कोई क्या करेगा? और जब एक आदमी श्रम खरीदने निकलता है, तो अगर उसे पांच रुपये में मजदूर मिलता हो तो दस रुपये में मजदूर को लेने के लिए वह राजी नहीं होगा। वह पागल नहीं है, जरूरत भी नहीं है उसको लेने की।
अगर आपको बाजार में कोई चीज पांच रुपये में मिलती हो, तो आप दस रुपये में लेने को क्यों राजी होंगे? अगर आपको चार में मिलती है तो आप चार में राजी होंगे, तीन में मिलती है तो तीन में राजी होंगे। जो हमें शोषण दिखाई पड़ता है, वह शोषण नहीं है, वह मजदूर की अधिकता का परिणाम है। पूरे मुल्क के पास श्रम की ताकत तो बहुत ज्यादा है, बावन करोड़ लोग हैं, काम बहुत कम है, इसलिए काम के दाम कम हैं।
अगर आप चाहते हैं काम के दाम बढ़ें, तो पूंजीपति को मिटाने से काम के दाम नहीं बढ़ जाएंगे। काम के दाम बढ़ेंगे काम के बढ़ने से; काम के दाम बढ़ेंगे ज्यादा काम की जरूरत पैदा होने से; काम के दाम बढ़ेंगे ज्यादा लोगों के श्रम के उपयोग में आने से। लेकिन मुल्क में लोग ज्यादा हैं, काम बिल्कुल कम है। और काम हमने कभी पैदा नहीं किया, हम काम के विरोधी रहे हैं। हम कहते हैं--आवश्यकताएं कम, जरूरतें कम, नीड्स कम, सादा जीवन, शुद्ध विचार। आप सादा जीवन शुद्ध विचार रखिए, काम बढ़ेगा नहीं। काम नहीं बढ़ेगा, तो लोग भूखे मरेंगे, उनको खरीदने वाला कोई भी नहीं मिलेगा।
पूंजीपति शोषण नहीं कर रहा है, लेकिन हमें दिखाई पड़ता है।

अभी मैं निकल रहा था कहीं से, दिल्ली आ रहा था, तो एक बहुत बड़े मकान के पास ही दो-चार छोटे झोपड़े बने थे। मेरे कंपार्टमेंट में जो सज्जन थे, उन्होंने कहा, देखते हैं आप, इस बड़े मकान वाले ने शोषण करके कैसी खराब हालत पैदा कर दी है! ये नीचे के झोपड़ों का शोषण करके यह बड़ा मकान बन गया है। मैंने उन सज्जन से कहा कि आप एक बार फिर से सोचिए, शायद आप बिना सोचे कोई बात कह रहे हैं। अगर हम इस बड़े मकान को हटा दें, तो क्या आप समझते हैं, ये छोटे मकान बड़े मकान हो जाएंगे? अगर यह बड़ा मकान इस जमीन पर न होता, तो ये छोटे मकान इस जमीन पर बिल्कुल नहीं हो सकते थे। एक बड़ा मकान बनाते वक्त दस छोटे मकान अपने आप बन जाते हैं। दस छोटे मकानों को छोटा करके कोई बड़ा मकान बड़ा नहीं बनता। बड़ा मकान बनता है इसलिए दस छोटे मकान भी पृथ्वी पर बन जाते हैं, अन्यथा बनेंगे नहीं!
हमें ख्याल में नहीं है यह बात कि अगर एक आदमी करोड़पति होता है, तो उसके आस-पास दस आदमी लखपति हो जाते हैं। और उन दस लखपतियों के आस-पास हजारों आदमी हजारपति हो जाते हैं। और उन हजारों आदमियों के आस-पास कुछ लोगों के पास सैकड़ों रुपये हो जाते हैं। एक आदमी जब शिखर पर चढ़ता है करोड़ के, तो अकेला नहीं चढ़ सकता, पिरामिड की तरह सारी जीवन की व्यवस्था है। अगर हमें एक मकान बनाना है बहुत ऊंचा, तो नींव भी भरनी पड़ती है, नींव के पत्थर भी भरने पड़ते हैं। एक अमीर आदमी अपने आस-पास सैकड़ों मध्यवर्गीय लोगों के लिए जिंदगी का कारण बनता है। सैकड़ों मध्यवर्गीय लोग अपने आस-पास हजारों गरीब मजदूरों के लिए जीवन का कारण बनते हैं। लेकिन अंत में दिखाई ऐसा पड़ता है कि जैसे शोषण हो गया।
शोषण किसी का भी नहीं हुआ। आदिवासियों में तो कोई बिरला नहीं है। बस्तर रियासत में जाएं, वहां तो कोई बिरला नहीं है, कोई टाटा नहीं है, कोई फोर्ड नहीं है। तो आदिवासियों को तो बहुत अमीर होना चाहिए, उनका तो शोषण किसी ने भी नहीं किया है। लेकिन आदिवासियों में तो कोई अमीर दिखाई नहीं पड़ता। दुनिया में पहाड़ों पर रहने वाली गरीब कौमें, उनका तो शोषण किसी ने भी नहीं किया, कभी नहीं किया। उनमें वे अमीर क्यों नहीं हो गए? उनको तो दुनिया का सबसे ज्यादा अमीर हो जाना चाहिए था, उनका शोषण किसी ने भी नहीं किया।
लेकिन यह बड़े मजे की बात है कि बंबई में, जहां कि शोषण सबसे ज्यादा हो रहा है, वहां मजदूर के पास ज्यादा हैसियत है, बजाय पहाड़ पर एक जंगली आदमी के। और इसका शोषण हो रहा है, उसका शोषण नहीं हुआ। थोड़ा सोचने जैसा है कि शोषण का मतलब क्या है? किसी आदमी को काम देने का मतलब शोषण है? तो सारा काम छीन लेना चाहिए, सब कारखाने बंद कर देना चाहिए, सब उद्योग तोड़ देने चाहिए। फिर शोषण किसी का भी नहीं होगा। फिर आप मजे से अपनी अमीरी में जीना। अगर अमीर आपका शोषण कर रहा है, तो आप शोषण क्यों करवा रहे हैं? मत करवाइए! अपनी संपत्ति को घर में बचाइए, जिससे आप अमीर हो जाएं। कौन आपको कह रहा है आप शोषण करवाने जाइए?
लेकिन मर जाएंगे अगर बाजार में अपने श्रम को बेचने नहीं गए। श्रम बेचना ही पड़ेगा, श्रम को बेचने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। और श्रम के दाम बढ़ें, यह मैं भी चाहता हूं। लेकिन ये दाम पूंजीपति को मिटाने से नहीं बढ़ जाएंगे, ये दाम बढ़ेंगे नया काम खोजने से, नये काम निर्मित करने से, नये कारखाने डालने से, नये ढंग खेती के निकालने से, नये उद्योग, नई इंडस्ट्री बनाने से। पूरे मुल्क को इंडस्ट्रलाइज करने से काम बढ़ेगा। काम बढ़ेगा तो मजदूर को ज्यादा मिल सकेगा।
अगर काम बहुत ज्यादा बढ़ जाए, मजदूर कम पड़ जाएं, काम ज्यादा हो जाए, तो मजदूर को बहुत ज्यादा मिल सकेगा। अगर काम इतना ज्यादा बढ़ जाए कि मजदूर तब तक राजी ही न हो काम करने को जब तक उसको पार्टनर न बनाया जाए, तो उसको पार्टनर भी बनाना पड़ेगा, उसके सिवाय भी कोई उपाय नहीं है। लेकिन यह होगा काम के बढ़ने से।
शोषण नहीं हो रहा है। लेकिन हमारे दिमाग में यह बात न मालूम कैसे इधर पिछले सौ साल के प्रचार से बिठा दी गई है कि अमीर आदमी गरीब का शोषण कर रहा है।

अमीर आदमी पूंजी पैदा कर रहा है, गरीब का शोषण नहीं कर रहा है। शोषण तब
हो सकता है जब आपके पास पूंजी पहले से रही हो। आज जो पूंजी फोर्ड के पास या राकफेलर के पास है, वह किसी के पास थी नहीं, यह पूंजी पैदा की गई है। पूंजीवाद पूंजी को पैदा करता है, शोषण नहीं करता। किसी की जेब नहीं काट रहा है, बल्कि जब आपसे काम लेता है तो आपकी जेब भी थोड़ी भर देता है। आपकी जेब खाली थी पहले काम लेने के, अब उसमें दो रुपये पड़ गए हैं, तो आपको और अकड़ आती है और दस का ख्याल आता है कि दस भी होने चाहिए।
बुरा नहीं है यह ख्याल, दस होने की कोशिश करिए, लेकिन यह मत सोचिए कि आपके आठ रुपये किसी ने चुरा लिए हैं। क्योंकि जब किसी ने नहीं चुराए थे, तब आपकी जेब में दो रुपये भी नहीं थे।
शोषण की पूरी की पूरी जो दृष्टि मार्क्स ने दुनिया को दी है और कम्युनिस्टों ने दी है, वह बुनियादी रूप से गलत है। अगर ये थोड़े से लोग, जिनको हम धनपति कहते हैं, अगर ये सारा कारोबार बंद कर दें, इनका कारोबार मिटा दिया जाए, तो हम सब अमीर नहीं हो जाएंगे। हां, लेकिन एक राहत जरूर मिलेगी कि हम सब समान रूप से गरीब हो जाएंगे और कोई अमीर दिखाई नहीं पड़ेगा तो दिल को बड़ी शांति मिलेगी। हमारी गरीबी नहीं मिट जाएगी। लेकिन आदमी का दिमाग ऐसा है। उसे खुद के दुख से उतना दुख नहीं होता, जितना दूसरे के सुख से दुख होता है। आदमी के दिमाग की बनावट बहुत अजीब है!
मैंने एक कहानी सुनी है। मैंने सुना है कि एक आदमी ने कभी भगवान की बड़ी पूजा की, बड़ी प्रार्थना की। और कहानी कहती है कि भगवान ने फिर उसे वरदान मांगने के लिए कहा, कि तू कोई वरदान मांग ले! तो उस आदमी ने कहा कि मैं जो भी मांगूं--मैं एक ही वरदान मांगता हूं, क्योंकि एक अभी मांग लूंगा, फिर दुबारा तो नहीं मांग सकूंगा, इसलिए मैं ऐसा वरदान मांगता हूं कि जब भी मैं कुछ मांगूं तो मुझे मिल जाए। भगवान ने कहा, जब भी तू कुछ मांगेगा, तुझे मिल जाएगा। लेकिन एक और तुझे वरदान मैं अपनी तरफ से देता हूं कि तेरे पड़ोसियों को तुझसे दुगना मिल जाएगा।
उस आदमी की छाती पर वजन गिर गया, वरदान बेकार हो गया, बड़ी मुश्किल में
पड़ गया। घर आकर लाख रुपये उसने मांगे, लेकिन बड़े रोते मन से। लाख रुपये तत्काल उसके घर पर गिर गए, लेकिन पड़ोसियों के घर पर दो-दो लाख गिर गए। जब उसके पास लाख नहीं थे तब जितना गरीब था, उससे ज्यादा गरीब वह हो गया, क्योंकि पड़ोसी दुगने अमीर हो गए। लाख तो उसके पास आ गए, लेकिन एकदम गरीब हो गया। इतना दुखी वह कभी भी न था, जब लाख नहीं थे तब भी नहीं था। लेकिन अब उसके दुख की कोई सीमा न रही। उसने महल बनवाया वरदान से, पड़ोसियों के मकान दुगने बड़े हो गए। वह अपनी छाती पीट कर रोने लगा। उसकी पत्नी ने उससे कहा कि इतना अच्छा मकान बन गया! उसने कहा, पागल, अपना मकान देख रही है? पड़ोसियों के दुगने हो गए! इस भगवान ने मुझे बहुत धोखा दे दिया।
उसने रात तरकीब निकाली बहुत सोच-विचार कर। शायद खुद निकाली हो या किसी राजनीतिज्ञ से जाकर पूछ ली हो। उसने तरकीब निकाली या राजनीतिज्ञ ने शायद उसे बताया कि तू ऐसा वरदान मांग कि पड़ोसी मुश्किल में पड़ जाएं। तू भगवान से कह कि हमारी एक आंख फोड़ दो। उसने कहा, यह बात जंचती है। उसने घर आकर रात कहा कि भगवान बड़ी कृपा होगी, मेरी एक आंख फोड़ दें। उसकी एक आंख फूट गई, वह नाचता रहा रात भर। पड़ोसियों की दोनों आंखें फूट गईं। उसने भगवान से कहा, मेरे घर के सामने एक कुआं बना दें, इतना गहरा कि गिरूं तो मर जाऊं। उसके घर के सामने एक कुआं बन गया, पड़ोसियों के घर के सामने दो कुएं और दुगने गहरे कुएं बन गए। और जब पड़ोसी, अंधे पड़ोसी, कुओं में गिरने लगे, तो उसके सुख की कोई सीमा न रही।
आदमी का मन बहुत अजीब है। यह जो समाजवाद की बातचीत है, यह समानता की इच्छा कम है, यह ईर्ष्या की इच्छा ज्यादा है, यह जेलेसी है। यह जो समाजवाद के नाम से लोगों को भड़काया जा रहा है, इसमें यह मत समझ लेना कि सब आदमी समान होने के लिए उत्सुक हैं। यह भी मत समझ लेना कि सब आदमी अमीर होने के लिए उत्सुक हैं। यह भी मत समझ लेना कि सब आदमी श्रम करने को, धन पैदा करने के लिए तैयार हैं। नहीं, आदमी के मन को भड़काया जा सकता है। दूसरे के पास ज्यादा है, उसे छीनने के लिए भड़काना बहुत आसान है। आज जमीन छीनी जा रही है,

कल मकान छीने जाएंगे, परसों कपड़े छीने जाएंगे। और आदमी को सदा राजी किया जा सकता है दूसरे को मिटाने के लिए।
समाजवाद विध्वंसक, डिस्ट्रक्टिव फिलासफी है। उसके पास कोई क्रिएटिव, कोई सृजनात्मक दृष्टिकोण नहीं है। वह सिर्फ दूसरे के खिलाफ भड़काने का उपाय है। सदा आसान है। किसी आदमी को कहो कि तुम मेहनत करो तो तुम अमीर हो जाओगे, तो वह राजी न होगा। उससे कहो कि थोड़ी मेहनत करो, पड़ोस का आदमी गरीब हो जाएगा; वह मेहनत करने को राजी हो जाएगा। आदमी का मन रुग्ण है और इस रुग्ण मन को यह बात बहुत जंचती है कि अमीर बांट दिए जाएं।
अभी हिंदुस्तान में हम सोचते हैं कि अमीर बांट दिए जाएं। जरूर बांट दें हम, इससे कुछ भी फर्क नहीं पड़ेगा। दस-पांच अमीर खत्म हो जाएंगे और गरीबों में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। हां, दस-पांच गरीब और ज्यादा हो जाएंगे, जितने गरीब थे उसमें दस गरीब और मिल जाएंगे।
अमेरिका में एक बहुत बड़ा करोड़पति हुआ, रथचाइल्ड। उसके पास एक समाजवादी मिलने गया। और उसने रथचाइल्ड से कहा कि तुमने सारी दुनिया का शोषण कर रखा है। हम सबकी संपत्ति तुमने हड़प ली है। रथचाइल्ड ने कहा, मैंने तो कभी आपको देखा ही नहीं, आपकी संपत्ति कैसे हड़पी होगी! फिर भी मैं पूछता हूं, कितनी संपत्ति आपके पास थी जो मैंने हड़प ली है? कितनी संपत्ति आपके पास थी? आप वापस ले जाइए मुझसे। हालांकि मैंने आपकी कभी शक्ल भी नहीं देखी, जो मैं आपको हड़पने आया होऊं। फिर भी आपकी कितनी संपत्ति थी? उस आदमी ने कहा, नहीं, मेरे पास थी तो नहीं कुछ भी, लेकिन आपने सबकी हड़प जरूर ली है। रथचाइल्ड ने कहा कि छोड़ो यह भी बात, तुम्हारे पास नहीं थी। लेकिन सारी दुनिया में जितने लोग हैं, मेरी संपत्ति में भाग दे दो और जितना तुम्हारे हिस्से में आता हो उतना ले जाओ। छह आने उस आदमी के हिस्से में आए। रथचाइल्ड ने वे छह आने उसे दे दिए और उससे कहा कि जिन-जिन को अपना हिस्सा लेना हो, वे आकर मुझसे ले जाएं। लेकिन क्या मैं तुम से पूछ सकता हूं कि छह आने कितनी देर चलेंगे? और छह आने का कितना परिणाम होगा? और छह आने से तुम रथचाइल्ड हो जाओगे? छह आने से तुम अरबपति हो जाओगे?
अगर हिंदुस्तान के सारे पूंजीपतियों को मिला कर हम बांटें, तो शायद
छह आना भी एक आदमी के हाथ में नहीं पड़ेगा। उस छह आने का क्या करिएगा? सिगरेट पीजिएगा कि एक दिन सिनेमा देखिएगा, क्या करने का इरादा है? एक दिन सिनेमा देख लीजिए बस और मुल्क समाजवादी हो जाएगा। फिर हम सब समान हो जाएंगे।
और वे जो लाखों रुपये एक आदमी के पास इकट्ठे थे, उनके द्वारा कुछ पैदा
हो रहा था, आपके पास छह आने से कुछ भी पैदा नहीं होगा। और यह भी ध्यान रखिए कि अगर आप पैदा ही करने वाले होते तो आपने पैदा कर लिया होता, छह आने की भीख और हिस्सा बंटवाने के लिए आप न गए होते।
लेकिन हम बड़े अजीब हैं। हमारे मन को ऐसा लगता है कि बड़ा अच्छा होगा; पड़ोस का महल तो कम से कम गिर जाए, हमारी झोपड़ी उठेगी कि नहीं उठेगी, कोई हर्ज नहीं। एक फायदा जरूर होगा, महल गिर जाए तो झोपड़ी फिर झोपड़ी मालूम नहीं पड़ेगी, क्योंकि झोपड़ी रिलेटिवली महल की अपेक्षा में ही झोपड़ी मालूम पड़ती है।
अभी मैं बंबई में था, एक जगह से गुजर रहा था, तो स्लम्स--बंबई के गंदे झोपड़े, पानी और कीचड़ में बने हुए--जिन्हें देख कर हृदय घबराता है, तो जो गाड़ी में मेरे साथ थे उन्होंने कहा कि देखिए कितनी गंदगी! कितने झोपड़े! हमारे मन में तत्काल यही ख्याल आता है कि जिन्होंने बड़े मकान बना लिए उन्होंने ये झोपड़े बना दिए, तत्काल यही ख्याल आता है।
यह बात गलत है। जिस दिन ये महल नहीं थे तब भी ये झोपड़े थे। बंबई मछुओं
की छोटी सी बस्ती थी। बंबई का नाम भी मछुओं की एक छोटी सी देवी, मुंबा देवी के ऊपर है। एक छोटी सी मछुओं की बस्ती, जो मछली मारते और अपने झोपड़े में रहते। बंबई में जब महल नहीं थे तब ऐसा नहीं था कि बंबई में मछुए कोई महलों में रह रहे थे, तब मछुए इसी तरह गंदगी से रह रहे थे। लेकिन यह गंदगी दिखाई नहीं पड़ती थी, क्योंकि गंदगी दिखाई पड़ने के लिए कहीं पास में सफाई दिखाई पड़नी जरूरी है, अन्यथा गंदगी दिखाई नहीं पड़ सकती।

बंबई में ये जो महल बन गए हैं, इन महलों ने ये झोपड़े पैदा नहीं किए हैं। इन महलों ने सारी बंबई से झोपड़े खत्म कर दिए हैं, थोड़ी सी जगह झोपड़े रह गए हैं। उन जगहों को भी खत्म किया जा सकता है। लेकिन इन महलों को मिटाने से झोपड़े नहीं मिट जाएंगे, इन महलों को मिटाने से झोपड़े और बढ़ जाएंगे। मेरी अपनी समझ यह है कि पूंजीवाद ने किसी को गरीब नहीं किया; हम सब गरीब थे, पूंजीवाद ने हमें पहली दफा अपनी गरीबी के प्रति कांशस किया है, हमें गरीबी के प्रति सचेतन बनाया है। यह अच्छा लक्षण है। अगर हम गरीबी के प्रति होश से भर जाएं तो उसे मिटाया जा सकता है। लेकिन मिटाने के दो रास्ते हैं--या तो हम अमीर को मिटा दें, तो फिर हम सब बराबर गरीब हो जाएं, दिक्कत खत्म हो जाए; और या हम अपनी गरीबी मिटाने की कोशिश में लगें।
मैं मानता हूं कि अमीर को मिटाना कोई रास्ता नहीं है, गरीब को मिटाना रास्ता है, हमें गरीब को मिटाने की कोशिश में लग जाना चाहिए। तो एक दिन ऐसा आ सकता है कि मुल्क में गरीब न रह जाए, अमीर न रह जाए, दोनों न रह जाएं, मुल्क में एक संपन्न, समृद्ध मिडिल क्लास रह जाए।
मार्क्स ने अपनी घोषणाओं में ऐसा कहा था कि एक दिन आएगा कि दुनिया में तीन क्लासेस हैंः रिच क्लास है, अमीर का वर्ग है; मध्यमवर्ग है, मिडिल क्लास है; और प्रोलेटेरिएट है, मजदूर का वर्ग है; ये तीन क्लास हैं दुनिया में, मार्क्स ने कहा था। और उसने कहा था कि जैसे-जैसे पूंजी का शोषण बढ़ेगा, तो अमीर और अमीर हो जाएंगे, गरीब और गरीब हो जाएंगे और मध्यमवर्ग दोनों हिस्सों में टूट जाएगा। थोड़े से मध्यमवर्गीय यात्रा करके अमीर हो जाएंगे, बाकी मध्यमवर्गीय नीचे गिर कर गरीब हो जाएंगे। समाज दो वर्गों में बंट जाएगा। एक तरफ अमीर, एक तरफ गरीब, मध्यमवर्ग टूट जाएगा। जिस दिन ऐसा हो जाएगा उस दिन दुनिया में गरीब अमीर पर कब्जा कर लेगा और समाजवाद या साम्यवाद की स्थापना हो जाएगी।
यह बात गलत सिद्ध हुई है। आज अमेरिका में जहां पूंजीवाद ठीक से विकसित हुआ है, एक नई ही घटना हो गई है। वह घटना यह हो गई है कि ऊंचे बड़े करोड़पति भी कम होते जा रहे हैं और नीचे के मजदूर भी कम होते जा रहे हैं, बीच का मिडिल क्लास बड़ा होता जा रहा है। और ऐसा लग रहा है कि पचास साल में मिडिल क्लास एकमात्र क्लास रह जाएगी अमेरिका में। हां, मिडिल क्लास में हायर मिडिल क्लास, लोअर मिडिल क्लास, ऐसे फासले रह जाएंगे। अमेरिका में मध्य वर्ग बड़ा होता जा रहा है और दोनों छोर के वर्ग छोटे होते जा रहे हैं। इसलिए अमेरिका में कम्युनिज्म और सोशलिज्म का कोई प्रभाव नहीं है, क्योंकि अमेरिका में किसी को भड़काना मुश्किल हो गया है। गरीब के पास भी कुछ है, गरीब भी अमेरिका का गरीब नहीं है। और जब आप उससे कहते हैं कि सब संपत्ति छीनी जाएगी, तो उसको बहुत मजा नहीं आता। क्योंकि उसके पास अपनी संपत्ति भी है, वह भी छीनी जाएगी।
अगर हिंदुस्तान को नक्सलाइट्स से, कम्युनिस्टों से, समाजवादियों से,
इन सारी बीमारियों से बचाना हो, तो हिंदुस्तान के गरीब को तत्काल थोड़ी सी संपत्ति और संपन्नता देनी जरूरी है। जब तक गरीब के पास कुछ भी नहीं है तब तक गरीब बहुत खतरनाक फोर्स है। जिसके पास कुछ भी नहीं है, उसको खोने का कोई भी डर नहीं है, उसे छीनने का पूरा मजा है।
मार्क्स ने कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो की अपनी आखिरी पंक्ति में एक बहुत बढ़िया बात लिखी है। उसने लिखा है कि दुनिया के गरीबो, एक हो जाओ! क्योंकि तुम्हारे पास खोने के लिए सिवाय जंजीरों के और कुछ भी नहीं है।
निश्चित ही जिसके पास खोने के लिए कुछ भी नहीं है, उसे कोई भय भी नहीं है। लड़ने में उसका कोई नुकसान नहीं होना। नुकसान उसका होगा जिसके पास कुछ है। हिंदुस्तान में गरीब की हालत खतरनाक है। हिंदुस्तान के गरीब को भड़काया जा सकता है, आग लगवाई जा सकती है, क्योंकि उसके पास कुछ भी नहीं है। उसके पास कुछ भी न होना कम्युनिज्म के लिए बड़ी ताकत है। कम्युनिज्म हिंदुस्तान के गरीब को अपने साथ खड़ा कर लेगा। वह कहेगा, तेरे पास कुछ भी नहीं है, जिनके पास है उनसे हम छीन कर बांट देंगे।
हिंदुस्तान के अमीरों को भी सोचना पड़ेगा, हिंदुस्तान के मध्यवर्गीय लोगों को भी सोचना पड़ेगा, उन्हें समझना पड़ेगा कि हम हिंदुस्तान के नीचे के गरीब को अगर बहुत देर तक गरीब रखते हैं, तो हिंदुस्तान का कोई भविष्य नहीं

है। हिंदुस्तान के गरीब के पास कुछ खोने को जरूर होना चाहिए। उसके पास भी कुछ होना चाहिए, कि जब यह कहा जाए कि सारी संपत्ति राज्य की हो जाएगी, तो उसको भी ख्याल उठे कि मेरी जमीन राज्य की हो जाएगी, कि मेरे पास जो छोटी सी तिजोरी है वह भी राज्य की हो जाएगी, कि मैंने वह जो थोड़ा सा पैसा जमा किया है वह भी राज्य का हो जाएगा।
इस मुल्क में कम्युनिज्म की ताकत कम्युनिज्म की ताकत नहीं है। इस मुल्क में कम्युनिज्म की ताकत गरीब की गरीबी है। और गरीबी इतनी ज्यादा है कि उसे भड़काया जा सकता है। और गरीबी इतनी ज्यादा है कि वह करीब-करीब इनफ्लेमेबल है। जैसा कि हम पेट्रोल की टंकी पर लिख छोड़ते हैं कि आग लग सकती है, वैसी ही इस मुल्क की गरीबी है, उसमें आग लग सकती है। आग करीब-करीब लगनी शुरू हो गई है। जहां-जहां आग भड़केगी वहां सम्हालना मुश्किल हो जाएगा।
और मजे की बात यह है कि उस आग लगने से गरीब को जितना नुकसान होगा, उतना किसी को भी नहीं होगा। अमीर को तो नुकसान होगा, लेकिन अमीर कितने हैं? सबसे कम नुकसान अमीर को होगा, क्योंकि अमीर बहुत कम हैं। उनकी गिनती अंगुलियों पर गिनी जा सकती है। हिंदुस्तान में बहुत ही थोड़े लोग हैं जिनको हम अमीर कह सकें, उनका नुकसान कोई बड़ा भारी नुकसान नहीं है। एक बिरला रहे कि न रहे, इससे कोई बहुत बड़ा फर्क नहीं पड़ता। बहुत बड़ा नुकसान मध्यवर्ग का होगा, मिडिल क्लास का होगा। उससे भी बड़ा नुकसान गरीब के क्लास का होगा, क्योंकि सबसे बड़ा क्लास वही है।
लेकिन यह उसे कौन समझाए? उसे भड़काना आसान है, समझाना हमेशा कठिन है। अगर किसी आदमी को--आप सब जानते हैं--लड़वाना हो तो लड़वाना बहुत आसान है। दो लड़ते आदमियों को रुकवाना हो तो बहुत मुश्किल है। दो आदमियों को लड़ाना हो तो छोटी सी बात काफी है। लेकिन दो आदमियों में प्रेम करवाना हो तो बहुत लंबा मामला है, बहुत मुश्किल मामला है। और दो आदमी लड़ना शुरू कर दिए हों तो उनमें दोस्ती खड़ी करनी बहुत कठिन है।
हिंदुस्तान के लिए भविष्य बहुत खतरनाक है। और उसका बड़े से बड़ा खतरा
यह है कि हिंदुस्तान के गरीब और हिंदुस्तान के मध्यवर्गीय और हिंदुस्तान के संपन्न वर्गों के बीच में एक दुश्मनी का भाव पैदा कर दिया गया है। अब ऐसा लग रहा है कि किसी भी तरह दूसरे को मिटा दें, तो सब ठीक हो जाएगा। दूसरे को मिटाने से कभी भी कुछ ठीक नहीं हुआ है।
इसलिए मैं, चाहे सोशलिज्म हो, चाहे कम्युनिज्म हो, नाम उनके कुछ भी हों, बीमारी एक मानता हूं। और मेरी समझ यह है कि हिंदुस्तान को अभी सौ वर्षों तक पूंजीवाद का तीव्रतम विकास करने की चेष्टा में लगना चाहिए। क्या इसका यह मतलब है कि मैं यह कहता हूं कि पूंजीवाद सदा रहे?
नहीं! पूंजीवाद का एक ऐतिहासिक काम है कि वह इतनी संपत्ति पैदा कर जाए
कि संपत्ति की कमी समाप्त हो जाए। जिस दिन संपत्ति की कमी समाप्त हो जाएगी, उस दिन व्यक्तिगत संपत्ति रखने का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। हवा इतनी ज्यादा है कि कोई नहीं कहता कि मेरी है। अभी कार को हम कहते हैं कि मेरी है। कल अगर कारें ज्यादा हो जाएं, तो मेरी कहने का मजा खत्म हो जाएगा। जो चीज ज्यादा हो जाएगी उसको मेरा कहने का मजा समाप्त हो जाता है। कम होना जरूरी है।
अब यह बड़े मजे की बात है। आज हिंदुस्तान में कोई कार में निकले--बड़ी कार में निकले--तो लोग उसको झांक कर देखते हैं कि कौन जा रहा है! और वह भी कुछ कार में दूसरे ही ढंग से बैठता है कि कोई खास आदमी बैठा हुआ है। लेकिन अमेरिका में? अमेरिका में कार में बैठे आदमी को कोई देखता भी नहीं, न कार में बैठा हुआ आदमी अकड़ा दिखाई पड़ता है। क्योंकि कार में सभी बैठे हैं। वह जो सामने कार का ड्राइवर है, वह भी अपनी कार पर ही मालिक के घर पर सुबह आता है। दिन भर कार की ड्राइवरी करता है, शाम को अपनी कार में वापस लौट जाता है।
मेरे एक मित्र अमेरिका प्रोफेसर होकर चले गए थे। हिंदुस्तानी आदमी हैं, पैसा तो वहां बहुत मिलने लगा, लेकिन बुद्धि तो एकदम से नहीं बदल जाती है। एक पुरानी सी कार उन्होंने खरीद ली। अब अमेरिका में जाकर कोई पुरानी कार खरीदे तो पागल है। एक पुरानी सी कार खरीद ली। कभी कार तो खरीदी नहीं

थी, यहां तो जब तक थे, वे पैदल ही यूनिवर्सिटी आते थे। वहां पैसा बहुत मिला, एक कार खरीद ली। लेकिन कार चलाना जानते नहीं थे, और अमेरिका में कार चलाना खतरनाक भी कम नहीं है, तो एक ड्राइवर रखा। और जब दूसरे दिन सुबह ड्राइवर अपनी कार पर बैठ कर आया, तो वे मुझसे कह रहे थे शर्म से मेरी आंखें नीचे झुक गईं। उसके पास तो बहुत चमकदार, बहुत शानदार, नये माडल की गाड़ी थी। उसने मेरे गैरेज में अपनी गाड़ी रख दी और मेरी पुरानी गाड़ी दिन भर चलाई। शाम को मैंने उससे कहा कि हाथ जोड़ता हूं भई, अब तू मत आना। क्योंकि तेरी गाड़ी देख कर मेरे प्राणों में बड़ी तकलीफ होती है। तू आना ही मत। अब या तो मैं ड्राइवर रखूंगा तब जब अच्छी गाड़ी खरीद लूं या गाड़ी ही नहीं रखूंगा, इससे तो किराए की गाड़ी में चल लेना अच्छा है।
अब ड्राइवर भी नये माडल की गाड़ी पर सुबह बैठ कर जिस मुल्क में आता हो, उसमें मालिक को गाड़ी में बैठ कर अकड़ने की कोई जरूरत नहीं रह जाती।
आज हालत उलटी हो गई है अमेरिका में। आज बड़ा आदमी करीब-करीब सड़क पर पैदल घूमने निकलता है। तब लोग उसको झांक कर देखते हैं कि यह कौन चल रहा है! जो आदमी पैदल सड़क पर घूमने निकला है वह जरूर अमीर आदमी होना चाहिए, गरीब आदमी तो अब सड़क पर चलता ही नहीं पैदल। अब तो गरीब आदमी कार पर चल रहा है। अब तो सिर्फ अमीर आदमी ही सड़क पर पैदल चल सकता है। जिंदगी बड़ी अजीब है, जिंदगी बहुत ही अजीब है। आज अमेरिका में जब सबसे ज्यादा भोजन इकट्ठा हो गया है, तो अमेरिका में फास्ट की कल्ट जोर से फैल रही है, हजारों लोग उपवास करने जाते हैं। जगह-जगह उपवास केंद्र बने हुए हैं नेचरोपैथी के फलां-ढिकां, और जगह-जगह लोग उपवास कर रहे हैं। कोई पूछे कि तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है? हम इधर भूखे मर रहे हैं, तुम काहे के लिए उपवास के लिए परेशान हो?
लेकिन जब ज्यादा खाना मुल्क में हो जाए तो अमीर आदमी उपवास करना शुरू
कर देते हैं। उससे पता चलता है कि आदमी अमीर है, अफोर्ड कर सकता है, उपवास भी कर सकता है। ज्यादा खा गया है, उपवास कर सकता है। ज्यादा कार में बैठ गया है, अब पैदल चल सकता है। ज्यादा आराम कर लिया है, सुबह एक्सरसाइज भी करता है, दौड़ता भी है।
जिंदगी बहुत उलटी है। इस मुल्क में अगर हमें संपत्ति के पैदा करने की दिशाएं खोजनी हों, तो हमें सौ वर्ष तक पूंजीवाद का निरंतर उपयोग करना पड़ेगा। और अगर हम जिस दिन पूंजी पूरी पैदा कर लेंगे... । और अमेरिका कर सकता है, तो हम क्यों नहीं कर सकते? इंग्लैंड कर सकता है, तो हम क्यों नहीं कर सकते? बेल्जियम कर सकता है, हम क्यों नहीं कर सकते? सारी दुनिया पूंजी पैदा कर सकती है, तो हम ही कोई गरीब होने का ठेका लिए बैठे हैं?
लेकिन हमें पूंजी पैदा करने की व्यवस्था बदलनी पड़ेगी। चरखे-तकली से पूंजी पैदा नहीं होती। हमें टेक्नालॉजी लानी पड़ेगी, नई से नई टेक्नालॉजी का उपयोग करना पड़ेगा, नई से नई मशीन का उपयोग करना पड़ेगा। अकेला आदमी ज्यादा से ज्यादा रोटी-रोजी कमा सकता है, पूंजी पैदा नहीं कर सकता। मशीन जब जुड़ती है आदमी से तो पूंजी पैदा होती है। जब तक हम बड़ी मशीनों से मुल्क को न भर देंगे, तब तक हम पूंजी पैदा नहीं कर सकते।
लेकिन हमारे मुल्क में अजीब लोग हैं। हमारे मुल्क में ऐसा समझाने वाले लोग हैं कि बड़ी मशीनें चाहिए ही नहीं। गांधी जैसे बड़े अदभुत आदमी हुए, वे तो रेलगाड़ी के भी खिलाफ हैं। वे कहते हैं, रेलगाड़ी भी नहीं चाहिए। वे तो कहते हैं, टेलीग्राफ के भी खिलाफ हैं, वह भी नहीं चाहिए। टेलीफोन भी नहीं चाहिए। वे तो कहते हैं, बड़ी मशीन चाहिए ही नहीं, चरखा-तकली आखिरी मशीनें हैं, इन पर आदमी को रुकना चाहिए। न केवल वे यह कहते हैं कि बड़ी मशीनें नहीं चाहिए, वे यह भी कहते हैं कि बड़ी मशीनें पाप हैं।
हद का पागलपन है! वे कितने ही बड़े कोई आदमी हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। ये पागलपन की बातें हैं, ये मुल्क को मरवा डालेंगी। तो गांधी जी के चरखे ने मुल्क को इतना नुकसान पहुंचाया है जिसका कोई हिसाब नहीं! और गांधी जी के पाले हुए आस-पास के लोग मुल्क की छाती पर बैठ गए हैं। वे न मालूम नासमझी की बातें किए चले जा रहे हैं।
मुल्क को अगर संपत्ति पैदा करनी है, तो सिवाय मशीन के, बड़ी मशीन के, संपत्ति पैदा नहीं हो सकती। हमें अपनी सारी ताकत, अपनी सारी क्षमता, मुल्क को मशीनों के जाल में डुबा देने में लगाने की जरूरत है, मुल्क को पूरे

मशीनों में डुबा देने की जरूरत है। जितनी हमारे पास जो भी सुविधा है, सब मशीन पर लगा देने की जरूरत है। तो कोई कारण नहीं कि बीस साल में हम भी संपत्ति के ढेर लगाने में समर्थ न हो जाएं।
लेकिन हम उलटी बातें कर रहे हैं। हम संपत्ति को पैदा करने की फिकर ही छोड़ दिए, हम संपत्ति बांटने की फिकर कर रहे हैं, बिना इस बात को पूछे कि संपत्ति है कहां जिसको बांटिएगा! समाजवाद बांटने की योजना है, पूंजीवाद बनाने की योजना है। पूंजीवाद संपत्ति को पैदा करने का ख्याल है।
और ध्यान रहे, पूंजीवाद संपत्ति इसलिए पैदा कर पाता है कि वह प्रतियोगिता है, काम्पिटीटिव है। अगर गांव में दस आदमी संपत्ति पैदा करने में प्रतियोगिता में लग जाएं, तो वे जी-जान से लग जाते हैं।
एक बहुत मजे की बात मैंने फोर्ड की जिंदगी में पढ़ी। फोर्ड खुद तो गरीब था, लेकिन अरबों रुपये उस आदमी ने पैदा किए। हेनरी फोर्ड एक दफा इंग्लैंड आया। तो स्टेशन पर आकर उसने पूछा क्लर्क को, इंक्वायरी आफिस में, कि लंदन में सबसे सस्ती होटल कहां है? तो उस क्लर्क ने आंख उठा कर देखा, चेहरा पहचाना हुआ मालूम पड़ा, अखबारों में फोटो देखे हैं कि यह हेनरी फोर्ड है, यह दुनिया का सबसे बड़ा अरबपति है। उसने कहा, चेहरा देख कर ऐसा लगता है कि आप हेनरी फोर्ड हैं और आप सस्ती होटल पूछ रहे हैं! आपके लड़के जब आते हैं तब तो वे पूछते हैं कि लंदन में सबसे ज्यादा लग्जूरियस होटल कौन सी है? सबसे बढ़िया होटल कौन सी है? सबसे कीमती होटल कौन सी है? हेनरी फोर्ड ने कहा कि मैं गरीब बाप का बेटा हूं, मेरे लड़के हेनरी फोर्ड के लड़के हैं। मेरी हिम्मत अभी भी नहीं पड़ती कि मैं अमीर होटल में ठहर जाऊं। मैं जरा सस्ती होटल खोज लेता हूं, गरीब का बेटा हूं।
हेनरी फोर्ड, गरीब का बेटा, अरबों रुपये कमा सका। उसने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि मेरे सेक्रेटरी ने एक बार मुझसे पूछा कि बड़े आश्चर्य की बात है! आपके दफ्तर के चपरासी दस बजे आते हैं, आपके क्लर्क साढ़े दस बजे आते हैं, आपके मैनेजर ग्यारह बजे आते हैं, आपके डायरेक्टर एक बजे आते हैं। आपके डायरेक्टर तीन बजे चले जाते हैं, मैनेजर चार बजे चले जाते हैं, चपरासी, क्लर्क पांच बजे चले जाते हैं। आप सुबह नौ बजे आ जाते हैं और सात बजे रात तक दफ्तर में रहते हैं। आपकी हालत तो ये क्लर्क, चपरासी, मैनेजर और डायरेक्टर सबसे गई-बीती है। तो हेनरी फोर्ड ने कहा कि वे सब नौकर हैं, मैं मालिक हूं। और उनके लिए किसी से काम्पिटीशन नहीं है, मेरा काम्पिटीटर बगल में बैठा हुआ है। वह नौ बजे आ जाता है, तो मुझे भी नौ बजे आना पड़ता है। वह सात बजे जाता है, तो मैं भी सात बजे के पहले नहीं जा सकता हूं, अन्यथा दौड़ में पिछड़ जाऊंगा।
पूंजीवाद एक प्रतियोगी दौड़ है।
और जब हजारों लोग प्रतियोगिता करते हैं, तब संपत्ति पैदा होती है।
आज रूस में संपत्ति पैदा नहीं हो रही है। रूस पिछले दस साल में रोज पिछड़ता चला गया है। दस साल में रूस में काम करने को अब कोई भी राजी नहीं है। क्योंकि किसलिए राजी हो? कोई प्रतियोगिता नहीं है। रूस में पिछले चालीस-पचास वर्षों में बहुत से मामलों में कोई विकास नहीं हुआ। क्योंकि विकास प्रतियोगिता से होता है। अगर एक कंपनी साबुन बनाती है और दूसरी कंपनी उससे सस्ता साबुन बना देती है, तो प्रतियोगिता होती है और विकास होता है। अब रूस में एक ही साबुन चल सकता है पचास साल तक, विकास का कोई सवाल नहीं, क्योंकि सरकारी फैक्टरी है। एक ही टुथपेस्ट चल सकता है पचास साल तक। आप जान कर हैरान होंगे कि रूस आज भी चांद तक तो पहुंचाने में सफल हो सका है आदमी को, कोशिश कल की उसने, दौड़ लगाई, लेकिन आज भी कार के मामले में अमेरिका से चालीस साल पिछड़ा हुआ है। अभी फोर्ड को निमंत्रण दिया रूस ने कि आप हमारे यहां कारखाने, कार बनाने की फिकर करें। और आखिर इटली के साथ समझौता किया है और इटली से कारें बनवाने का इंतजाम कर रहा है। सोचने जैसा मामला है कि जो मुल्क आकाश में उतर सका, वह कार क्यों नहीं बना सका?
कारण साफ है। आकाश के मामले में प्रतियोगिता है अमेरिका से इसलिए वह आकाश के मामले में तो दौड़ लगाता रहा, लेकिन घर के भीतर किसी से कोई प्रतियोगिता नहीं है इसलिए कार बनाने का मामला बिल्कुल पिछड़ गया। रूस में अच्छी कार नहीं बन सकी, लेकिन रूस अच्छा अंतरिक्ष-यान बना सका, क्योंकि

अंतरिक्ष-यान के मामले में अमेरिका से काम्पिटीशन है। अंतरिक्ष-यान के मामले में रूस का मन पूंजीवादी है और भीतर कार बनाने के मामले में समाजवादी है इसलिए वहां कोई विकास नहीं हो सका।
जिस देश के भीतर समाजवाद स्थापित होगा, प्रतियोगिता समाप्त हो जाती है। जहां प्रतियोगिता समाप्त होती है, वहां विकास समाप्त हो जाता है। सब विकास काम्पिटीशन है। अधिकतम लोग काम्पीट करें, अधिकतम लोग प्रतियोगी हों, अधिकतम लोग एक-दूसरे से आगे निकलने की कोशिश करें, अधिकतम लोग सस्ती चीज बाजार में लाएं, अधिकतम लोग अच्छी चीज बाजार में लाएं, तो विकास का पहाड़ टूट पड़ता है। लेकिन यह समाजवाद में संभव नहीं हो सकता।
इसलिए हिंदुस्तान जैसे गरीब देश को समाजवादी बनाने की बातें सुसाइडल हैं, आत्मघातक हैं। अगर यहां समाजवाद आ गया तो हम वैसे ही सुस्त मरे हुए लोग हैं, हम और सुस्त होकर मर जाएंगे। हम जहां बैठे हैं वहीं बैठे रह जाएंगे, अपनी तकली और चरखा कातते रहेंगे। लेकिन अब सारी दुनिया बदल गई है, चरखे-तकली का कोई इंतजाम भविष्य के लिए नहीं है। भविष्य में तो बड़ी से बड़ी टेक्नालॉजी संभावी हो गई है। और अगर मुल्क को जिंदा रहना है, तो बड़ी टेक्नालॉजी के अतिरिक्त मुल्क को कोई जिंदा नहीं रख सकेगा। अब न तो जमीन से भोजन पैदा होगा, वह भोजन भी मशीन से पैदा करना पड़ेगा। अब दूध भी गाय से पैदा नहीं होगा, वह भी मशीन से पैदा करना पड़ेगा। अब कपड़े भी खेत में पैदा नहीं होंगे, वे भी मशीन से पैदा करने पड़ेंगे। अब दवा भी वनस्पतियों से पैदा नहीं होगी, मशीन से पैदा करनी पड़ेगी। अब सिवाय मशीन के मनुष्य का कोई भविष्य नहीं है।
और बड़े मजे की बात है, मशीन जितनी बढ़ जाए, मनुष्य उतना मुक्त हो जाता है। मशीन जितनी ज्यादा हो जाए, मनुष्य उतने श्रम के भार से बाहर हो जाता है। मशीन जिस दिन सारा काम करने लगेगी, उस दिन आदमी के मस्तिष्क पर जो बोझ है काम का, वह बहुत कम होता चला जाएगा। और दुनिया में सारी संस्कृतियां तब पैदा होती हैं, धर्म तब पैदा होता है, जब मनुष्य के ऊपर से काम का बोझ हट जाता है।
एक आखिरी बात, फिर मैं अपनी चर्चा पूरी करूंगा।
यह सोचने जैसी बात है कि दुनिया में जो भी कीमती है, चाहे सितार हो, चाहे संगीत हो, चाहे काव्य हो, चाहे धर्म हो, चाहे मोक्ष हो, यह सारे उन लोगों से पैदा होते हैं जो बेकार हैं। बेकार अनएंप्लायड के मतलब में नहीं, बेकार लग्जूरियस के अर्थ में, जिनके पास कोई काम नहीं है और सुविधा है। अकबर के दरबार में तानसेन पलता है, और महावीर राजा के घर में पैदा होते हैं, बुद्ध राजा के घर में पैदा होते हैं, राम राजा के घर में पैदा होते हैं, कृष्ण, ये सारे के सारे शाही परिवार के लोग हैं। इनके पास काम बिल्कुल नहीं है और सुविधा बहुत है। ये करें क्या? रोटी पैदा नहीं करनी है, कपड़ा बनाना नहीं है। तो ये संगीत पैदा करेंगे, चित्र बनाएंगे, मूर्ति बनाएंगे, भगवान की खोज करेंगे, ध्यान करेंगे, प्रार्थना करेंगे, पूजा करेंगे, धर्म की खोज करेंगे, मोक्ष की यात्रा करेंगे--ये कुछ तो करेंगे, आदमी बेकार नहीं हो सकता। तो जब आदमी की नीचे की जरूरतें पूरी हो जाती हैं, तब उसकी ऊपर की खोज शुरू होती है। और जब तक नीचे की जरूरतें पूरी न हों, तब तक ऊपर की खोज कभी शुरू नहीं होती।
इसलिए हम इस मुल्क में धर्म की कितनी ही बातें भला करते रहें, हम धार्मिक नहीं हैं। हम धार्मिक हो नहीं सकते। क्योंकि धार्मिक होने के लिए सुविधा चाहिए, धार्मिक होने के लिए लग्जरी चाहिए। असल में धार्मिक होना आदमी की आखिरी लग्जरी है, वह आदमी का आखिरी विलास है। जिसके पास अब कुछ भी करने को इस पृथ्वी का शेष नहीं रह गया, अब वह आकाश के कामों में उलझ सकता है।
इसलिए जैनियों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के बेटे हैं, हिंदुओं के सब अवतार राजाओं के बेटे हैं, बुद्ध राजा के बेटे हैं। इसका कारण है। इसका कारण है कि सब मिल गया है, अब इसमें कुछ खोजने जैसा नहीं रह गया।
तो मैं आपसे कहता हूं कि हिंदुस्तान में नहीं, धर्म की अगली जो किरण
है वह अमेरिका में उतरेगी। उतरेगी ही! क्योंकि अमेरिका अब बेकार हुआ जा रहा है--दूसरे अर्थों में। अब उसके पास सब है और काम करने की भी जरूरत रोज

कम होती जा रही है। अमेरिका का अर्थशास्त्री चिंतित है कि बीस साल बाद अगर कोई आदमी काम मांगेगा तो हम काम कहां से देंगे, क्योंकि काम तो सब मशीन कर देगी। बड़ी अजीब दुनिया है हमारी! इधर हम चिंतित हैं कि आदमी को काम कैसे दें? अमेरिका में वे चिंतित हैं कि अगर आदमी काम मांगेगा तो हम सबको काम न दे सकेंगे! इसलिए अमेरिका के अर्थशास्त्री कह रहे हैं कि अब हमें लोगों को राजी करना पड़ेगा कि तुम बिना काम के तनख्वाह लेने को राजी हो जाओ। तनख्वाह तुम ले लो, लेकिन काम न मांगो।
एक अर्थशास्त्री ने तो यह कहा है कि यह भी संभव है इस सदी के पूरे होते-होते कि जो आदमी काम न मांगे उसको तनख्वाह ज्यादा मिल जाए और जो आदमी काम मांगे उसको तनख्वाह कम मिले। इसलिए कि वह दो चीजें एक साथ मांग रहा है, तनख्वाह भी मांग रहा है और काम भी मांग रहा है। अगर सारा काम मशीनें ले लेंगी तो बहुत थोड़े लोग, जहां दस हजार आदमी काम करते थे, वहां दस आदमी बटन दबा कर काम कर सकेंगे। बाकी नौ हजार आदमी जो बाहर हो जाएंगे, इन आदमियों का क्या होगा? इनको काम नहीं है। तनख्वाह तो इनको देनी पड़ेगी, क्योंकि चीजें पैदा होंगी उनको कोई खरीदेगा कैसे? अगर इनको तनख्वाह नहीं दोगे तो कारखाना चलेगा कैसे? इनको तनख्वाह देनी पड़ेगी। इनको बेकारी की तनख्वाह देनी पड़ेगी कि तुम तनख्वाह लो और घर पर रहो।
निश्चित ही जिस दिन ऐसी हालत आ जाएगी--रोज आ रही है--उस दिन अमेरिका में धर्म का पहली दफा विस्तार होगा, लोग पहली दफा पूरी फुर्सत में होंगे। जैसा कभी-कभी किसी राजा के बेटे हुए थे, ऐसे पूरी जनता के बेटे इतनी फुर्सत में हो जाएंगे। तब वे साहित्य भी रचेंगे, कविता भी लिखेंगे, चित्र भी बनाएंगे, फुर्सत के काम करेंगे, जिनमें कि कोई उलझन नहीं है। वे धर्म की भी खोज करेंगे।
मेरी दृष्टि में, अगर हिंदुस्तान पूंजीवाद के मामले में पिछड़ गया, तो धर्म के मामले में भी पिछड़ जाएगा। और समाजवाद अधार्मिक व्यवस्था है। और पूंजीवाद अगर पूरी तरह विकसित हो जाए तो अनिवार्य रूप से धर्म उसमें से जन्मता है। लेकिन हमने एक भूल कर ली है अतीत में, हम भौतिकवाद के विरोधी हो गए हैं, बिना इस बात को समझे हुए कि भौतिकवाद परमात्मा की जिंदगी का आधार है, आधारशिला है।
हम एक मंदिर तो ऐसा बना सकते हैं जिसमें सिर्फ नींव हो और शिखर न हो, लेकिन हम ऐसा मंदिर नहीं बना सकते जिसमें सिर्फ शिखर हो और नींव न हो। हम एक ऐसा पौधा तो लगा सकते हैं जिसमें सिर्फ जड़ हो और फूल न हों, लेकिन हम एक ऐसा पौधा नहीं लगा सकते जिसमें सिर्फ फूल हों और जड़ न हो। यह बड़े मजे की बात है! ऊंची चीजें नीची चीजों पर निर्भर होती हैं, नीची चीजें ऊंची चीजों पर निर्भर नहीं होतीं। अगर आप नींव के पत्थर न भरें तो मंदिर के सोने के शिखर को नहीं चढ़ा सकते, सोने के शिखर को चढ़ाने के लिए नींव के पत्थर भरने ही पड़ेंगे। हां, आप चाहें तो नींव भर कर छोड़ सकते हैं, सोने का शिखर मत चढ़ाएं तो भी चल जाएगा।
अकेला मैटीरियलिज्म चल सकता है, लेकिन अकेला स्प्रिचुएलिज्म नहीं चल सकता। अकेला भौतिकवाद चल सकता है, लेकिन अकेला अध्यात्मवाद नहीं चल सकता। इस मुल्क में हमने ऐसी भूल कर ली, अकेले अध्यात्मवाद की चेष्टा करके हम परेशानी में पड़ गए। हमने सोचा कि हम सिर्फ आत्मा ही आत्मा रहेंगे, शरीर की हम फिकर नहीं करेंगे। हमने समझा कि हम तो सिर्फ परमात्मा को मानेंगे, संसार को माया कहेंगे। इससे हम बहुत मुश्किल में पड़ गए।
यह संसार, यह माया जिसको हम कहते हैं, यह भी सत्य है, यह झूठ नहीं है।
और यह शरीर उतना ही सत्य है जितनी आत्मा सत्य है। और यह तो हो सकता है कि कोई आदमी सिर्फ शरीर में रहे, आत्मा की फिकर छोड़ दे। लेकिन कोई आदमी सिर्फ आत्मा में नहीं रह सकता शरीर की फिकर छोड़ कर। शरीर की फिकर तो करनी ही पड़ेगी। शरीर आधार है, बुनियाद है। नीचा है, लेकिन आधार है।
हिंदुस्तान को सौ साल अपने शरीर को मजबूत करने में, अपनी संपत्ति को बढ़ाने में, अपने भौतिकवाद को फैलाने में लगाने की जरूरत है। इससे घबराने की जरूरत नहीं है।
लोग मुझसे पूछते हैं, एक मित्र ने पूछा है कि आप सदा तो धर्म की बात करते हैं। आप तो ये भौतिकवाद की, मैटीरियलिज्म की बातें कर रहे हैं!

मेरे लिए धर्म मैटीरियलिज्म का विरोधी नहीं है। और जो धर्म मैटीरियलिज्म का विरोधी है, वह जिंदगी का विरोधी धर्म होगा। वह धर्म जिंदगी के काम का नहीं है। जो धर्म कहता है कि हम भौतिकवाद को नहीं मानते, उस धर्म को जिंदा रहने का मौका भी नहीं है, हक भी नहीं है, उसको मर जाना चाहिए। क्योंकि जिंदा रहने के लिए भौतिकवाद के बिना कोई रास्ता नहीं है। श्वास लो तो भी भौतिक है, पानी पीओ तो भी भौतिक है, रोटी खाओ तो भी भौतिक है, जिंदगी भौतिक है।
इसका यह मतलब नहीं है कि जिंदगी भौतिक ही है। जिंदगी का मकान भौतिक है, उसका निवासी आत्मिक है। जिंदगी का घर भौतिक है, उसके भीतर का रहने वाला जो मेहमान है, अतिथि है, वह अभौतिक है। लेकिन मेहमान को भी रखना हो तो उसको भी रोटी खिलानी पड़ती है। अगर घर में मेहमान आए और आप अध्यात्मवादी हैं, तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगा मेहमान, ज्यादा दिन घर में नहीं रुक सकेगा। क्योंकि आप कहेंगे, रोटी हम दे नहीं सकते, क्योंकि यह तो भौतिक है; पानी हम दे नहीं सकते, यह तो भौतिक है; बिस्तर हम दे नहीं सकते, यह तो माया है; छप्पर हम दे नहीं सकते, क्योंकि यह सब संसार तो झूठा है, सपना है। तो मेहमान ज्यादा देर नहीं टिक सकता।
हिंदुस्तान की आत्मा मुश्किल में पड़ गई है इसके अत्यधिक अध्यात्मवाद
के कारण। यह टू मच ऑफ स्प्रिचुएलिज्म हमारे लिए जहर सिद्ध हो गया। जिंदगी में हर चीज का अनुपात है। और अगर अमृत भी ज्यादा पी जाएं तो मारने वाला हो जाता है और जहर भी अगर अनुपात से पीएं तो जिलाने वाला हो जाता है। जिंदगी में हर चीज की एक सीमा है, एक मात्रा है। हम कुछ ज्यादा मात्रा खा गए अध्यात्मवाद की, उससे हम परेशान रहे। पांच हजार साल हम गुलामी में, गरीबी में मरे, वह अध्यात्मवाद की दवाई हम जरा ज्यादा पी गए। ऋषि-मुनियों को हम घोल कर इस बुरी तरह पी गए कि मरने के सिवाय रास्ता नहीं रहा।
नहीं, जिंदगी अध्यात्मवाद के विपरीत नहीं होनी चाहिए, लेकिन भौतिकवाद
के विपरीत होने की भी कोई जरूरत नहीं है। जिंदगी का असली धर्म भौतिक और अध्यात्म दोनों का जोड़ है।

नये समाज की खोज
दसवां प्रवचन

जिंदगी निरंतर चुनाव है

मेरे प्रिय आत्मन्!
तीन दिन की चर्चाओं के संबंध में बहुत से प्रश्न इकट्ठे हो गए हैं। शायद सभी प्रश्नों के उत्तर देना संभव न हो पाए। फिर भी मैं ज्यादा से ज्यादा प्रश्नों को लेने की कोशिश करूंगा। इसलिए थोड़े संक्षिप्त में ही थोड़ी-थोड़ी बात की जा सकेगी।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या आप बूढ़ी गायों को मारने के पक्ष में हैं? उनकी हिंसा के पक्ष में हैं?

मैं किसी की भी हिंसा के पक्ष में नहीं हूं। लेकिन यदि मनुष्य मरने को
हो जाए, तो मजबूरी की हालत में मनुष्य को अपने जीने के लिए बहुत सी हिंसाओं को स्वीकार करना पड़ेगा। हिंसा तो बुरी है, लेकिन अहिंसा पूरी तरह हो सके, इसके लिए पृथ्वी पर हम अभी तक इंतजाम नहीं कर पाए हैं। यदि आदमी की जिंदगी मुश्किल में पड़ जाए तो हमें बूढ़ी गायों को विदा करना ही पड़ेगा!

उन मित्र ने यह भी पूछा है कि जब बूढ़ी गायों को विदा करने के लिए आप कहते हैं, तो कल तो यह भी हो सकता है कि बूढ़े बाप या बूढ़ी मां को भी विदा करना पड़े!

यह हो सकता है। और अगर आप बच्चे ज्यादा पैदा किए गए तो यह होकर रहेगा!
यह बहुत कठोर सत्य है। यह बहुत दुखद है। लेकिन इसके सिवाय शायद कोई रास्ता न बचे।
जैसे आज हम पचपन साल के या अट्ठावन साल के आदमी को नौकरी से रिटायर करते हैं। किसलिए करते हैं?
इसलिए करते हैं कि पीछे आने वाले बच्चों को काम मिले, अन्यथा बच्चों
को काम न मिल सकेगा। जरूरी नहीं है कि पचपन साल का आदमी काम के लायक न रहा हो। सच तो यह है कि पचपन साल के अनुभवी आदमी को काम से अलग करना और बीस साल के गैर-अनुभवी आदमी को काम देना, बहुत आर्थिक रूप से नुकसान की बात है, फायदे की बात नहीं है। लेकिन मजबूरी है। पचपन साल के आदमी को अलग करना पड़ेगा, अन्यथा बच्चों को काम कैसे मिलेगा!
जैसे ही स्थिति और बिगड़ जाएगी, आपको नौकरी से ही रिटायर नहीं, हो सकता
है हमें तय करना पड़े कि पैंसठ साल या सत्तर साल के आदमी को जिंदगी से रिटायर होना पड़े! इसकी जिम्मेवारी उन लोगों पर नहीं होगी जो पचपन या साठ या पैंसठ या सत्तर साल के आदमी को हटाने के लिए कहें, इसकी जिम्मेवारी उन लोगों पर होगी जो ज्यादा बच्चों को पैदा किए चले जाएं। जमीन पर रहने के लिए अगर जगह बनानी मुश्किल हो गई... आपको ख्याल में नहीं है, जिस अनुपात से संख्या रोज बढ़ रही है, अगर सौ साल--सिर्फ सौ साल--इस अनुपात से संख्या बढ़ी, तो एक आदमी के पास एक वर्गफीट जमीन बचेगी सारी दुनिया में। एक वर्गफीट जमीन में खड़े हो लें, चाहे सो लें, चाहे बैठ लें, चाहे जी लें, चाहे काम कर लें। सौ साल बाद सभा करने की कोई जरूरत नहीं होगी। जहां आप होंगे वहीं सभा हो रही होगी।
अगर इतनी संख्या जमीन पर हो गई, तो कोई आश्चर्य न होगा कि बूढ़े आदमी को हमें विदा करने के लिए मजबूर होना पड़े। और यह भी जान कर आपको हैरानी होगी कि इतिहास में ऐसे मौके थे और ऐसी कौमें थीं, जिन्होंने अपने बूढ़ों को मारा है, मारना पड़ा है। ऐसी कौमें थीं इतिहास में, जो एक उम्र के बाद बूढ़े की हत्या कर देंगी। और ऐसी भी कौमें थीं, जो अपने बच्चों को पैदा होने के बाद मार डालेंगी; क्योंकि उनके जिलाने का कोई उपाय न था।
बच्चों को मारने के लिए तो हम तैयार हो गए हैं। जापान ने गर्भपात का नियम बना लिया है। कोई भी स्त्री अपने गर्भपात को करना चाहे, तो उसके लिए

कोई कानूनी रोक नहीं रह गई, बल्कि सरकारी सुविधा दी है। गर्भपात का क्या मतलब होता है? गर्भपात का मतलब होता है कि जो बच्चा अब जिंदगी पा रहा था, उसको हम समाप्त करते हैं।
अगर बच्चे मारे जा सकते हैं तो बूढ़ों को मारने में कितनी देर लगेगी?
और अगर बच्चे और बूढ़ों के बीच चुनाव का सवाल उठा, तो मैं भी कहूंगा कि बच्चों को बचाना चाहिए, बूढ़ों को मारना चाहिए। बूढ़े भी यही कहेंगे कि हम मर जाते हैं, बच्चे बचें! इसके सिवाय रास्ता क्या रहेगा!
तो आपने तो शायद व्यंग्य में पूछा होगा कि क्या बूढ़े बाप को भी विदा
कर दें?
अगर ये गऊमाता वाले लोगों की बात चली, तो बूढ़े बाप को भी विदा करना पड़ेगा! जिंदगी निरंतर चुनाव है। मच्छर को भी मारना ठीक नहीं है, लेकिन आदमी को जिलाए रखने के लिए मच्छर को मारना पड़ता है। जानवरों को मार कर खाना उचित नहीं है, लेकिन जमीन पर इतनी साग-सब्जी नहीं है कि आदमी जिंदा रह सके, उसे जानवर को मारना पड़ता है। किसी दिन हम ऐसी आशा करें कि सब ऐसा इंतजाम हो सकेगा कि किसी जानवर को न मारना पड़ेगा। लेकिन अभी वह इंतजाम हो नहीं सका है। इसलिए गाय के साथ भी विशेष बर्ताव नहीं किया जा सकता।
और गाय के साथ विशेष बर्ताव करने का कारण क्या है? हिंसा अगर बुरी है
तो बुरी है। चाहे बकरी को काटो, चाहे गाय को काटो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर हिंसा बुरी है तो बुरी है। और जो लोग बहुत समझदार हैं, जिन्होंने बहुत इस संबंध में अनुभव किए हैं, वे तो कहेंगे, वृक्ष को काट रहे हो, वह भी हिंसा है। है तो हिंसा! वृक्ष में भी जीवन तो है! और अब तो विज्ञान स्वीकार करता है कि प्रत्येक पौधे में जीवन है। तो वृक्ष को भी काट रहे हो, हिंसा तो हो ही रही है।
ऐसे लोग रहे हैं जिन्होंने वृक्षों को काटने की मनाही की। महावीर हुए, जिन्होंने कहा कि वृक्ष को काटने में हिंसा है। इसलिए जैनियों ने खेती करनी बंद कर दी। इसलिए सारे जैनी दुकान करने लगे, खेती से हट गए। क्योंकि खेती करेंगे तो वृक्ष को काटना पड़ेगा।
लेकिन तुम्हारे हटने से क्या होता है? दूसरे के कटे हुए वृक्षों को तो खाओगे ही, इससे फर्क क्या पड़ता है? वृक्ष में भी प्राण हैं, उसको भी काटना तो पड़ता है। असल में आदमी के भोजन का मामला तब तक हल नहीं होगा, जब तक हम सिंथेटिक फूड पर नहीं आ जाते। जब तक हम फैक्ट्री में बनाई हुई गोली को ही खाकर जीवन नहीं चलाते, तब तक हमें किसी न किसी तरह की हिंसा जारी रखनी पड़ेगी। मजबूरी है, नेसेसरी ईविल है। लेकिन मजबूरी है और उसे झुठलाया नहीं जा सकता।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या आप मांसाहार के पक्ष में हैं?

मैं मांसाहार के पक्ष में क्यों होने लगा, मांस ने मेरा कुछ बिगाड़ा नहीं है। लेकिन आदमी की संख्या है साढ़े तीन अरब पृथ्वी पर, और अगर हम सिर्फ साग-सब्जी और फल से आदमी को जिंदा रखना चाहें, तो करीब-करीब तीन अरब आदमियों को मरना पड़ेगा! सिर्फ पचास करोड़ आदमी जिंदा रह सकते हैं! तो या तो जानवरों को बचा लें या तीन अरब आदमियों को मर जाने दें। दो में से कुछ एक कर लें।
अगर हम कसम खा लें कि मांस न खाएंगे, मछली न खाएंगे, तो तीन अरब आदमियों के मरने की हिंसा किसके ऊपर होगी? वे तीन अरब आदमी मरेंगे! क्योंकि इस पृथ्वी पर पचास हजार आदमियों के लिए भी शुद्ध शाकाहारी भोजन जुटाना मुश्किल है।
और आप शायद समझते हों कि दूध शाकाहार है, तो आप बड़ी गलती में हैं। दूध मांसाहार का ही हिस्सा है, दूध खून है। और जो शुद्ध शाकाहारी है उसको दूध नहीं पीना चाहिए। आदमी के खून में दो तरह के कण होते हैं, सफेद और लाल। मादाओं के स्तन में यंत्र होता है जो सफेद कणों को अलग कर देता है, चाहे वे स्त्रियां हों, और चाहे और जानवरों की स्त्रियां हों। उनके स्तन का यंत्र खून के सफेद कण को अलग कर देता है, लाल को अलग कर देता है--वही सफेद कण दूध

बन जाता है। इसलिए दूध पीने से आपका खून बढ़ जाता है। वह खून ही है, कुछ और नहीं है।
तो शुद्ध शाकाहारी दूध नहीं पी सकता। नहीं पीना चाहिए। अब दूध को भी अलग कर दो, सिर्फ साग-सब्जी और फल पर आदमी को अगर जिंदा रहना पड़े, तो कितने आदमियों को जिंदा रखिएगा? यह पूरी जमीन लाशों से भर जाएगी।
जैन साधु दूध बड़े मजे से पीता है, बिना इसकी फिकर किए कि वह हिंसा कर रहा है, खून पी रहा है। लेकिन मजबूरी है, इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं है। दूध जो लोग भी पी रहे हैं, वे सब खून पी रहे हैं। इसलिए बहुत मन में ऐसा मत सोचें कि बड़ा शुद्ध आहार कर रहे हैं। दिन भर उपवास किया और शाम को दूध की मिठाई खा रहे हैं, तो सोच रहे हैं कि फलाहार कर रहे हैं। फलाहार नहीं कर रहे, मांसाहार कर रहे हैं!
आदमी की जिंदगी को बचाने के लिए कुछ भोजन तो करना पड़ेगा। गाय नहीं बचाई जा सकती। गाय को बचाइएगा तो आदमी को मरना पड़ेगा। और जानवर भी नहीं बचाए जा सकते, मछली भी नहीं बचाई जा सकती। हां, लेकिन भविष्य में हम आशा कर सकते हैं कि अगर विज्ञान ठीक से विकास करे... और धर्म के विकास से नहीं होगा यह फर्क, न गुरुओं के समझाने से मांसाहार रुकेगा! विज्ञान के विकास से किसी दिन रुक सकता है। जिस दिन विज्ञान सीधी गोली आपको खाने को दे दे, उस दिन मांसाहार रुक सकता है, उसके पहले नहीं रुक सकता।
खाने के साथ तो मुसीबत यह है कि जीवन जीवन को ही खाता है--चाहे फल का जीवन खाएं, चाहे पौधे का जीवन खाएं, चाहे पशु का जीवन खाएं--जीवन जीवन को ही खाता है। और मजे की बात यह है कि जब आप उपवास करते हैं, कुछ भी नहीं खाते, तब भी मांसाहार करते हैं, अपना खुद का मांस पच जाता है। दो पौंड एक दिन में आदमी खा जाता है। जिस दिन आप उपवास करते हैं, उस दिन खुद का मांसाहार कर रहे हैं, और कुछ भी नहीं कर रहे हैं। आपका दो पौंड वजन कहां खो गया? एक दिन के उपवास में दो पौंड वजन आप अपना पचा गए, अपनी चर्बी खा गए दो पौंड। ये जीवन की सच्चाइयां हैं। इन सच्चाइयों को समझे बिना बातचीत करने से कुछ हो नहीं सकता।
मेरी अपनी समझ यह है कि बड़ा अच्छा होगा वह दिन जिस दिन हम न गाय को मारेंगे, न मच्छर को मारेंगे, न कुत्ते को मारेंगे, न बिल्ली को मारेंगे, न हिरन को मारेंगे, न बकरी को मारेंगे, बहुत अच्छा दिन होगा। लेकिन वह दिन आपके जगदगुरु शंकराचार्य और गौ-माता का आंदोलन चलाने वाले लोगों से आने वाला नहीं है। वह दिन आएगा विज्ञान की खोज से, धर्म की बकवास से नहीं आने वाला है। जिस दिन हम भोजन की जगह सिंथेटिक फूड दे सकेंगे, उस दिन वह दिन आएगा, उसके पहले नहीं आ सकता है।
और दूसरी बात भी ध्यान में रख लें। और वह दूसरी बात यह जान लेनी जरूरी
है कि जिंदगी में सब नियम जरूरत से तय होते हैं। आज जरूरत... आदमी की इतनी मुश्किल हो गई है आज कि आदमी को बचाने के लिए अब मछलियों को बचाने की हम बात नहीं सोच सकते। दुखद है यह बात कि आदमी को जीने के लिए मछली मारनी पड़े! दुखद है यह बात कि कोई जानवर मारना पड़े! लेकिन यह असलियत है, आदमी को जीने के लिए इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं है। इसका जिम्मा किस पर है?
दुनिया में जो लोग शाकाहार और वेजीटेरियन होने की बातें करते हैं, उन्होंने दुनिया को कितने शाकाहार के नये उपाय दिए? एक उपाय नहीं दिया। उन्होंने, शाकाहार के द्वारा आदमी बच सके, इसके लिए कौन सी रिसर्च की है, कौन सी खोज की है? कोई खोज नहीं की, कोई रिसर्च नहीं की। और सिर्फ शाकाहारी आदमी शरीर से कमजोर हो ही जाता है, वह कभी स्वस्थ नहीं हो सकता पूरा। जब तक कि शाकाहार के साथ कुछ और दवाइयां, कुछ और विटामिन्स न जोड़े जाएं, तब तक शाकाहारी आदमी स्वस्थ नहीं हो सकता। उसका मस्तिष्क भी कमजोर हो जाता है, शरीर भी कमजोर हो जाता है, उम्र भी कमजोर हो जाती है।
पश्चिम के लोग हमसे हर हालत में आगे बढ़ गए हैं। उसमें उनके मांसाहार
का हाथ है। उनकी उम्र ज्यादा है, उनका स्वास्थ्य अच्छा है। हम पिछड़ गए हैं। यह समझने जैसी बात है कि हिंदुस्तान हजारों साल से शाकाहार की बातों में विश्वास करता रहा है। और हिंदुस्तान पर जब भी किसी मांसाहारी कौम ने हमला किया, तो हिंदुस्तान ने घुटने टेक दिए। शाकाहारियों ने अब तक

मांसाहारियों को हराया नहीं है किसी भी मामले में, घुटने टेक दिए। ये सारे सत्य हैं, इन सारे सत्यों को झुठलाना आसान नहीं है।
और कोई कहता है कि गऊ तो माता है। गऊ ने तो कभी नहीं बताया कि आप उसके बेटे हैं! आप ही कहे चले जाते हैं, आप ही लगाए चले जाते हैं--गऊ माता है।
आपकी किताब में लिखने से गऊ माता हो जाएगी? गऊ की तो किसी किताब में नहीं लिखा हुआ है। और मैं नहीं सोचता कि गऊ राजी होगी आपको बेटा मानने के लिए।
इतनी योग्यता मैं नहीं समझता कि हम में है कि गऊ भी राजी हो जाए कि मान ले कि बेटा हैं हम उसके।
और अगर किसी और अर्थ से सोचते हों तो सभी जानवर हमारे माता-पिता हैं। विज्ञान की दृष्टि से भी, अध्यात्म की दृष्टि से भी। अध्यात्म कहता है कि आदमी की आत्मा पिछली योनियों से विकसित होकर आई है। जिस योनि से भी हम गुजरे हैं, उस योनि में हमारे माता-पिता होंगे। जरा दूर का संबंध हो गया, बाकी होंगे तो ही। विज्ञान कहता है, डार्विन कहता है कि आदमी का शरीर बंदरों से आया है, और बंदरों का शरीर और पिछले जानवरों से, और आखिर में मछली से सारे लोगों का आना हुआ है। तो डार्विन के हिसाब से भी मछली आदि माता है। फिर बाद में और माताएं होंगी और पिता होंगे।
तो अब अगर माता-पिताओं को बचाने में लग गए आप सबको, तो आप मर जाएंगे इतना पक्का है। तो या तो यह तय कर लेना चाहिए कि माता-पिताओं को बचाना है-- मछली को, गऊ को, फलां को, ढिकां को--सबको बचाना है। बचा लीजिए! तो आप मर जाइए, हम मना न करेंगे। लेकिन आप कहें कि हमको भी बचाओ और गऊ माता को बचाओ! अब ये दोनों अभी संभव नहीं हो सकते।
लेकिन मुल्क का राजनीतिज्ञ हिम्मतवर नहीं है। वह जानता तो है कि गऊ माता को बचाया नहीं जा सकता, लेकिन डरता भी है कि वोट देने वाला गऊ माता का भक्त है। तो वह ऊपर से कहे चला जाता है--बचाएंगे, जरूर बचाएंगे! और वह गऊ माता का आंदोलन चलाने वाले भी सब चालाक हैं। वे भी समझते हैं कि आदमी को फिजूल की बातों से भड़काया जा सकता है कि गऊ माता खतरे में है।
इधर मनुष्य खतरे में है, इसकी उन्हें फिकर नहीं है। आदमी मर जाए, इसकी फिकर नहीं है। गऊ माता खतरे में है, इसकी फिकर है। और आदमी की जिंदगी के असली सवालों से डेविएट करते हैं, ये सारे लोग बहुत खतरनाक हैं। आदमी की जिंदगी में जब असली सवाल हैं, उनको हल करने का तो उपाय नहीं खोजेंगे, बेकार की बातें उठाएंगे। घर में आग लगी है और वे फर्नीचर जमाने की बात कर रहे हैं कि फर्नीचर इस तरह का होना चाहिए, यह हिंदू विधि है। और यह गैर-हिंदू विधि है, इस ढंग का फर्नीचर हम नहीं जमने देंगे। और घर में आग लगी है! अब फर्नीचर तुम कैसे ही जमाओ, सब जल जाएगा, जब घर में आग लगी हो।
तो हमें यह भी समझ होनी चाहिए कि जिंदगी के सामने प्रिआरिटी क्या है? पहला महत्वपूर्ण सवाल क्या है? महत्वपूर्ण सवालों का भी हमें ख्याल नहीं है। सारी दुनिया हम पर हंसती है। जब उसको पता चलता है कि हम गऊ माता को बचाने का आंदोलन चला रहे हैं, तो सारी दुनिया के लोग हैरान होते हैं कि ये खुद को बचाने का आंदोलन कब चलाएंगे! बीस साल में तो ये खत्म हो जाएंगे! नहीं लेकिन, आदमी से हमें कोई मतलब नहीं है। न हमारे शंकराचार्य को मतलब है, न हमारे साधुओं को मतलब है, न हमारे धार्मिकों को मतलब है। उन्हें अपनी किताबों से मतलब है कि उनकी किताब में क्या लिखा हुआ है! बस उस किताब के हिसाब से सब चलना चाहिए।
नहीं, किताबें आदमी से ज्यादा कीमती नहीं हैं। और जरूरत पड़ेगी तो सारी किताबों को अलग फेंक देना पड़ेगा, आदमी को बचाना पहली बात है। आदमी किताबों के लिए नहीं है, किताबें आदमी के लिए हैं। और आदमी सबसे पहली बात है।
इसका यह मतलब नहीं है कि मैं कह रहा हूं कि गऊ की हत्या आप करें। मैं
यह कह रहा हूं, ऐसी व्यवस्था बनाएं, जिसमें आप भी बच सकें, गऊ भी बच सके, मच्छर भी बचे, मछली भी बचे, बहुत अच्छा है। लेकिन जब तक यह व्यवस्था नहीं बन गई है, तब तक आदमी पहली प्रिफरेंस है, आदमी को पहले बचाना होगा! इसके बाद किसी और को बचाया जा सकता है। और हम कभी गौर से सोचें तो हमें ये चीजें साफ हो सकती हैं।

लेकिन सोचने की हमारी तैयारी नहीं है। और हम सोचने से कतराते हैं और डरते हैं।

आज एक सज्जन आए। उन्होंने कहा कि आपने यज्ञ को बेकार कहा, इससे बड़ा दिल को धक्का पहुंच गया।

आपका दिल बड़ा कमजोर है, इसमें मेरा क्या कसूर! अपने दिल को ताकतवर बनाने के लिए थोड़ी दवाइयां खाइए! मैंने यज्ञ को बेकार कहा, आप उसे काम का है यह सिद्ध करें, तब तो मेरी समझ में आता है। आप कहें कि बेकार कह देने से हमारे दिल को धक्का पहुंच गया, तब तो बड़ी मुश्किल बात है। आप अपने दिल के लिए इलाज का इंतजाम करिए। लेकिन यज्ञ सार्थक है अगर यह सिद्ध करिए, तो मैं मानने वाला पहला आदमी हो जाऊंगा जो स्वीकार कर लूं कि सार्थक है। अगर यज्ञ से पानी गिर सकता हो तो मैं पागल हो गया हूं जो पानी गिरवाने के लिए राजी न हो जाऊं! बिल्कुल राजी हो जाऊंगा। लेकिन आप विज्ञान की प्रयोगशाला में सिद्ध तो नहीं कर पाते।

अब एक मित्र ने पूछा है कि क्या ऐसा नहीं हो सकता कि यज्ञ से कुछ ऐसा वातावरण पैदा होता हो कि वैज्ञानिक आधार से पानी गिर जाता हो?

यह सिद्ध करके बताइए। ऐसा हो नहीं सकता का सवाल नहीं है, अब तक ऐसा हुआ नहीं है। आप, विज्ञान की प्रयोगशालाएं मुल्क भर में खड़ी हैं, हर कालेज, हर यूनिवर्सिटी में विज्ञान की लेबोरेट्री है, वहां जाइए और यज्ञ करके अपना सिद्ध कर दीजिए। अगर आप यज्ञ करके सिद्ध कर देंगे, सारी दुनिया आपके पैर छुएगी और कहेगी कि आपने बड़ी ऊंची तरकीब खोज ली। हमको बहुत परेशानी उठानी पड़ती है, आपका फार्मूला बहुत आसान है। लेकिन सिद्ध करिए! आपकी किताब में लिखा है, इससे कोई सिद्ध नहीं होता। आप मानते हैं, इससे कुछ सिद्ध नहीं होता। आपके दिल को चोट पहुंचती है, इससे कुछ सिद्ध नहीं होता।

एक सज्जन दोपहर में मुझे लिख कर दे गए कि आपने बेकार कहा, वहां तक भी ठीक था। आपने यह भी कह दिया कि कोई आदमी जमीन पर जूता घिस रहा है, जिस तरह उससे पानी गिरने का कोई संबंध नहीं है, इसी तरह यज्ञ से कोई संबंध नहीं है। इससे बड़ा अनुचित हो गया।

मैं फुर्सत में नहीं था, जल्दी में था, वे सज्जन चले गए, मैं उनसे पूछ नहीं पाया कि वे यज्ञ को प्रेम करने वाले आदमी थे कि जूते को प्रेम करने वाले आदमी थे--अन्याय किसके साथ हुआ? पीछे मैंने सोचा तो मुझे ख्याल आया कि जूते के साथ अन्याय हो गया। यह उदाहरण मुझे देना नहीं चाहिए था। क्योंकि जूते का तो कुछ काम भी है, यज्ञ का उतना भी काम नहीं है। जूते का तो कुछ उपयोग भी है, यज्ञ का उतना भी उपयोग नहीं है।
लेकिन हमारे मन में भावनाएं घर किए बैठी हैं। हम बौखला उठते हैं, बस सुनते से ही बौखला उठते हैं। सोचने-समझने की तैयारी नहीं है। सोचने-समझने की कमजोरी अगर आप दिखाएंगे तो दुनिया आपके इस हृदय की कमजोरी से कोई लाभ उठाने वाली नहीं है। आप सिर्फ नासमझ समझे जाते हैं। प्रयोग करके बताइए! विज्ञान की प्रयोगशालाएं सामने पड़ी हैं, बड़े मजे
से आ जाइए, प्रयोग करिए, पानी गिरा कर बता दीजिए। हम सब आदर करेंगे, स्वीकार करेंगे, यज्ञ की साइंस बन जाएगी। लेकिन वह तो कुछ बनता नहीं, लाखों रुपये जलवा देते हैं गरीब और नासमझ लोगों के। लाखों रुपये फुंकवा देते हैं, घी फुंकवा देते हैं, अन्न जलवा देते हैं, और कोई भी यह नहीं पूछता कि यज्ञ तो हो गया, पानी कहां है? यज्ञ तो हो गया, विश्व-शांति कहां हुई इससे? यह यज्ञ तो हो गया, इससे दुनिया में शांति कहां आई? यह कोई भी नहीं पूछता।
बड़े मजे की बात है, इतने यज्ञ हमने किए, परिणाम कहां हैं? और जमीन पर हिंदुस्तान ने जितने यज्ञ किए हैं, और किसी ने तो नहीं किए। अगर यज्ञों का कोई फल हो सकता था तो हम सबसे ज्यादा समृद्ध होते। लेकिन हमारी शक्लें

कहती हैं कि हम सबसे ज्यादा गरीब हालत में हैं दुनिया में आज। और उन्होंने कोई यज्ञ नहीं किए--न रूस ने कोई यज्ञ किए, न अमेरिका ने कोई यज्ञ किए। भगवान मालूम होता है यज्ञ न करने वाले लोगों से बड़ा प्रसन्न है। और हम यज्ञ करते-करते मर गए, हमसे कोई प्रसन्नता नहीं मालूम होती। ऐसा लगता है कि भगवान हमारी बुद्धि पर भी बहुत नाराज है।
असल में अबुद्धि पर भगवान को भी नाराज होना ही चाहिए। वह भी हैरान होगा हमारे यज्ञों को देख-देख कर। अगर कहीं है तो वह भी सोचता होगा कि इनके दिमाग कब सुधरेंगे? पांच हजार साल से करते-करते इनमें अक्ल आएगी कभी कि नहीं आएगी?
मैं नहीं कहता हूं कि यज्ञ गलत है। मैं कहता हूं, सिद्ध करके बताइए! प्रयोगशालाएं खुली पड़ी हैं। अपने पंडितों को लिवा लाइए, अपने वेद के करने वालों को लिवा लाइए, अपने यज्ञ-हवन करने वालों को लिवा लाइए, और वहां प्रयोग करके सिद्ध कर दीजिए! विज्ञान तो खुली दुनिया है, वहां जो सिद्ध कर देता है वह स्वीकृत हो जाता है। वहां कोई आग्रह नहीं है।
तो मैंने तो सिर्फ एक वैज्ञानिक बात आपसे कही है, इसमें दुख मनाने की जरूरत नहीं है। और जूता और यज्ञ में न कोई छोटा है, न कोई बड़ा है। जितना यज्ञ में भगवान है, उतना ही जूते में भी भगवान है। उधर यज्ञ भगवान, इधर जूता भगवान। सभी चीजें समान हैं, यहां कोई मूल्य-भेद नहीं है। इसलिए परेशान होने की कोई जरूरत नहीं है।

एक मित्र ने पूछा है कि आपने अमेरिका की समृद्धि और अमेरिका की संपन्नता और अमेरिका के वैभव के संबंध में बहुत सी बातें कहीं। अमेरिका में हिप्पी बढ़ रहे हैं, उसके संबंध में आपका क्या ख्याल है?

असल में जहां भी बहुत संपन्नता बढ़ती है, वहां संपन्नता से ऊब भी पैदा
हो जाती है। जिस दिन आप ठीक से धनी हो जाएंगे, उस दिन आपको पता चलता है धन बेकार है। असल में धन का अर्थ सिर्फ गरीब को बहुत ज्यादा मालूम पड़ता है, अमीर को बहुत ज्यादा मालूम नहीं पड़ता। जिंदगी का नियम यह है कि जो चीज हमें मिल जाती है वह बेकार हो जाती है; जब तक नहीं मिलती तभी तक हम परेशान होते हैं। बड़े महल में जो रह रहा है, उसे बड़े महल में रहने का कोई मतलब नहीं रह गया है। वह तो सड़क से निकलने वाले आदमी को लगता है कि बड़े महल का आदमी बड़े मजे में रह रहा होगा। बड़े महल का आदमी महल में आकर पाता है कि बहुत मेहनत की, लेकिन महल से कुछ तृप्ति नहीं हो जाने वाली है।
असल में धन पा लेने का सबसे बड़ा फायदा यही है कि धन पाकर पता चलता है
कि धन से सब कुछ नहीं मिल सकता; कुछ शेष रह जाता है जो धन से मिल ही नहीं सकता! जिस दिन यह पता चलता है कि कुछ शेष रह जाता है जो धन से नहीं मिलता, उसी दिन बेचैनी शुरू होती है। वह बेचैनी आध्यात्मिक बेचैनी है, वह स्प्रिचुअल अनरेस्ट है।
आज अमेरिका पहली दफा उस जगह आया है, जहां व्यक्तिगत परिवार कभी-कभी आए थे। पूरा समाज पहली दफा संपन्न हुआ है, पूरा समाज पहली दफा एफ्लुएंट हुआ है। इसलिए अमेरिका के बच्चे बहुत बेचैन हो गए हैं। उनको पहली दफा यह पता चला... । आज अमेरिका के बच्चे की कोई जरूरत नहीं है, जो भी उसे चाहिए उसको मिला हुआ है। इसलिए अमेरिका के बच्चे को बड़ी तकलीफ हो रही है कि अब वह क्या करे? धन तो मिल गया है, मकान मिल गए हैं, कारें मिल गई हैं, रेडियो मिल गए हैं, खाने के लिए सब है, कपड़े हैं। अब कोई लड़ाई नहीं रही जिंदगी में, अब क्या करना है?
तो लड़के बगावती हो गए हैं! अगर उनके बाप उनसे अब कहते हैं कि तुम कालेज में पढ़ने जाओ। तो वे कहते हैं, कालेज में पढ़ने से क्या होगा? बाप कहते हैं, तनख्वाह अच्छी मिलेगी। बेटे कहते हैं, आपको अच्छी तनख्वाह मिल रही है, लेकिन जिंदगी में कोई शांति तो मालूम नहीं पड़ती! तो अच्छी तनख्वाह पाकर क्या करेंगे?
अगर गरीब बाप अपने बेटे से कहता है--पढ़ो! तो बेटे की समझ में आता है, क्योंकि गरीब बाप को वह देखता है कि बिना पढ़े बड़ी मुसीबत में जी रहा है। और गरीब बाप जब अपने बेटे को कहता है--कालेज जाओ, नहीं तो भूखों मरोगे! तो

बेटे की समझ में आता है। लेकिन अमेरिका में कोई बाप अपने बेटे से यह भी नहीं कह सकता है कि अगर नहीं पढ़ोगे तो भूखे मरोगे। क्योंकि जो नहीं पढ़ रहा है वह भी भूखा नहीं मर रहा है। आज अमेरिका में मैनुअल लेबर की, साधारण श्रम की इतनी कीमत हो गई है जिसका हिसाब नहीं है। एक आदमी सात दिन काम कर ले, तो इक्कीस दिन आराम करे, फिर कोई काम की जरूरत नहीं है।
तो लड़के यह कहते हैं, हम पढ़ कर क्या करेंगे? बाप अगर कहते हैं कि बड़ी कार तुम्हारे पास होगी, बड़ा मकान तुम्हारे पास होगा। तो लड़के कहते हैं, आपके पास सब है, आपको क्या मिल गया, वह आप हमें बता दें! हमारे पास भी होगा तो क्या मिल जाएगा?
इसलिए अमेरिका में एक नई स्थिति बन गई है, वह यह है कि धन अत्यधिक होने
की वजह से धन के प्रति ऊब पैदा हो गई है। वे जो हिप्पीज हैं, वह धन के खिलाफ बगावत है। असल में मेरे हिसाब में हिप्पीज उसी हालत में हैं जिसमें बुद्ध और महावीर थे। बाप से बगावत है। वह बाप की जो इस्टैब्लिशमेंट की दुनिया है, जहां सब चीजें ठहरी हुई थीं--लड़के कह रहे हैं, बेकार है तुम्हारी दुनिया! क्या करेंगे? क्या फायदा है? क्या करोगे बड़ा मकान बना कर? बड़ा मकान बना तो लिया, बड़ी कार भी है, सब कुछ है, फायदा क्या है? लड़के पूछ रहे हैं कि सब है, लेकिन तुम्हारी जिंदगी में भीतर तो कुछ भी नहीं है!
इसलिए हिप्पी को मैं बहुत सूचक मानता हूं, सिंबालिक मानता हूं। वह इस बात की खबर है कि अमेरिका के बच्चों ने अमेरिका की समृद्धि को पाकर एक नई दुनिया की खोज शुरू कर दी है। जब यह खोज शुरू होती है, तो पहले तो दुर्घटनाएं घटती हैं। क्योंकि एकदम से कोई आदमी आध्यात्मिक नहीं हो सकता; वैक्यूम पैदा हो जाता है। अमेरिका के बच्चे की जिंदगी में एक शून्य पैदा हो गया है। बाप की दुनिया बेकार हो गई और उस बेटे को कुछ पता नहीं है कि अब वह क्या करे!
तो वह शराब पी रहा है, मेस्कलीन ले रहा है, एल एस डी ले रहा है, नशा कर रहा है, नाच रहा है, वेश्याओं के घर पड़ा है, ढोल पीट रहा है, जंगलों में लेटा है। वह बाप की दुनिया बेकार हो गई और बेटे के लिए कोई रास्ता नहीं है। लेकिन ज्यादा दिन ऐसा नहीं चलेगा, क्योंकि ये बेटे सोचना शुरू कर रहे हैं कि अब हम क्या करें? इसलिए अमेरिका में आज योग, ध्यान, धर्म, इनके बाबत बड़ा विचार है। तो अगर आपके महर्षि महेश योगी अमेरिका में जाकर गुरु बन जाते हैं, तो उनमें उनकी खुद की खूबी बहुत ज्यादा नहीं है। क्योंकि यहां वे दस शिष्य नहीं खोज सकते। उनकी खुद की खूबी नहीं है। वह असली बात दूसरी है। अमेरिका में सिचुएशन बहुत ऐसी है कि हर आदमी बेचैन है। धन पा लिया और कुछ नहीं मिला। तो अब वह खोज रहा है कि कोई और रास्ता मिल जाए, शायद ध्यान से मिल जाए, शायद प्रार्थना से मिल जाए।
तो आप जान कर हैरान होंगे कि न्यूयार्क और लंदन की सड़कों पर लड़के और लड़कियां हरि-भजन और हरि-कीर्तन करते हुए घूम रहे हैं। लड़के और लड़कियों ने सिर घुटा लिए हैं, बड़ी-बड़ी चोटियां रख ली हैं, ढोल पीट रहे हैं, तिलक लगा लिए हैं, "हरे कृष्ण, हरे राम," लंदन में और न्यूयार्क की सड़क पर भी लड़के और लड़कियां नाच कर "हरे कृष्ण, हरे राम" कर रहे हैं। शायद हमारे मन को बड़ी तृप्ति मिलेगी यह जान कर। हम कहेंगे, अच्छा! तब तो हम ठीक ही कर रहे हैं। इस गलती में मत पड़ जाना आप। अमेरिका के बच्चे अगर हरे कृष्ण और हरे राम कर रहे हैं तो उसका कारण बिल्कुल भिन्न है। उसका कारण यह है कि संसार पा लिया गया है और पाया गया कि बेकार है, बहुत कुछ उसमें मिलता नहीं। और अगर आप हरे राम और हरि-भजन करते हैं तो आप इसलिए नहीं करते कि संसार बेकार है। वह हरि-भजन भी इसलिए करते हैं कि जिस लड़की से मेरा प्रेम है, उससे विवाह हो जाए। अदालत में मुकदमा चल रहा है, वह पूरा हो जाए। लड़के को नौकरी नहीं लग रही, नौकरी लग जाए। पत्नी बीमार पड़ी है, ठीक हो जाए। वह हरि-भजन और हरि-कीर्तन सांसारिक चीजों के लिए है--हमारा हरि-भजन और हरि-कीर्तन। उनका हरि-भजन और हरि-कीर्तन संसार के बाहर ले जा रहा है। इसलिए आप बहुत प्रसन्न मत हो जाना। हमारा मन बड़ा प्रसन्न होता है कि शायद आ गए हमारे रास्ते पर वे लोग।
वे हमारे रास्ते पर नहीं हैं, उनकी स्थिति हमसे बहुत भिन्न है। वे हमारे रास्ते पर नहीं हो सकते। हम गरीब हैं, हमारा भगवान की तरफ जाना भी

हमारी गरीबी ही कारण बनती है। अगर मंदिर में चले जाएं और लोगों की खोपड़ियों में खिड़कियां बनाई जा सकें, उनमें झांक कर देखें, तो मंदिर में जाने वाले सौ में से निन्यानबे आदमी किसी सांसारिक चीज को मांगने के लिए मंदिर में जाते हैं।
अमेरिका का संसार बेकार हो गया है। यह बड़ी सुखद स्थिति है कि संसार बेकार हो जाए। किसी दिन मैं चाहता हूं कि हमारा भी सौभाग्य होगा और संसार इसी तरह बेकार हो जाएगा, तो हम फिर भगवान के पास बिना कुछ मांगे जा सकेंगे-- बेशर्त, अनकंडीशनल। तब हमारी प्रार्थना सीधी होगी, हम यह न कहेंगे कि रोटी मिल जाए। तब हम भगवान से कहेंगे कि अब तो तुझी को चाहते हैं, रोटी-वोटी की कोई चिंता नहीं है। तुझे जरूरत हो तो हम दे सकते हैं, बाकी हमें रोटी की कोई जरूरत नहीं है।
हिप्पी बहुत कीमती घटना है। जब भी कोई समाज समृद्ध होगा तो ऐसी घटनाएं घटनी शुरू होती हैं। अब तक कोई समाज समृद्ध नहीं था। कभी-कभी कोई परिवार समृद्ध होता था--कभी बुद्ध का घर, महावीर का घर। ये समृद्ध घर थे। इन घरों में से कोई लड़का बगावती हो जाता था। वह अपने बाप को कह देता था-- बेकार है तुम्हारा राज्य, बेकार है तुम्हारा धन, बेकार हैं तुम्हारे महल, बेकार हैं ये औरतें जो तुमने इकट्ठी कर दीं, इनसे अब कुछ मतलब नहीं है। वह निकल भागता था।
असल में यह बड़े मजे की बात है कि जो चीजें हमें मिल जाएं वे सदा बेकार
हो जाती हैं। इसलिए अगर किसी प्रेमी को उसकी प्रेयसी मिल जाए तो फिर वह मिल कर पछताता है, न मिले तो जिंदगी भर प्रेम जारी रहता है।
मैंने सुना है, एक पागलखाने में ऐसा हुआ कि एक आदमी पागलखाने का अध्ययन करने गया और पागलखाने के सुपरिनटेंडेंट ने उसे एक आदमी को दिखाया जो सींकचों के भीतर बंद था। उस आदमी ने सुपरिनटेंडेंट से पूछा कि यह आदमी क्यों पागल हो गया? आदमी बड़ा भला मालूम पड़ता है। एक तस्वीर लिए है, आंख से आंसू बह रहे हैं और कुछ कविता कर रहा है। तो उस सुपरिनटेंडेंट ने कहा कि यह आदमी बड़ा प्रेमी है। इसकी प्रेयसी इसको नहीं मिली, इसलिए यह पागल हो गया। समझ में आने वाली बात थी। वे दोनों आगे बढ़ गए। दूसरे कटघरे में एक दूसरा आदमी बंद है और छाती पीट रहा है और बाल नोंच रहा है। उस आदमी ने पूछा, इस आदमी को क्या हो गया? इसको भी इसकी प्रेयसी नहीं मिली? उसने कहा कि नहीं, इसको इसकी प्रेयसी मिल गई इसलिए पागल हो गया। और सुपरिनटेंडेंट ने बताया कि एक ही औरत दोनों की प्रेयसी थी। वह जिसको नहीं मिली, वे न मिलने से पागल हो गए! ये सज्जन मिलने से पागल हो गए!
जिंदगी बहुत अजीब है! धन न मिले तो धन को पागलपन रहता है पाने का। मिल जाए तो पता चलता है कि ठीक है। धन की एक जरूरत है, लेकिन धन जिंदगी का अंत नहीं है। लेकिन जब पेट भूखा हो तो अंत मालूम पड़ता है। रोटी की जरूरत है, लेकिन रोटी जीवन का अंत नहीं है। लेकिन जब पेट खाली हो तो रोटी ही लक्ष्य मालूम होती है। जब पेट भर जाए तब रोटी बिल्कुल भूल जाती है। किसको याद रही है रोटी! भरे पेट आदमी को रोटी कभी याद नहीं रही, रोटी भूल जाती है। और तब भरा पेट आदमी दूसरी बातें सोचता है--शतरंज खेलूं? मछली मारूं? वीणा बजाऊं? बांसुरी फूंकूं? ध्यान करूं? क्या करूं? दूसरी मुसीबतें तत्काल शुरू हो जाती हैं।
असल में आदमी बिना मुसीबत के नहीं रह सकता। वह नई मुसीबतें खोजता है। मैं इसमें बुरा भी नहीं मानता, मुसीबतें खोजनी ही चाहिए। जिंदगी का मतलब ही यह है कि नई चुनौती, नया चैलेंज। लेकिन मुसीबतें ऊंचे किस्म की हों, इतनी आकांक्षा तो की ही जा सकती है। गरीब मुल्क की आकांक्षाएं बड़ी नीचे किस्म की होती हैं, वे रोटी-रोजी के आस-पास घूमती रहती हैं।
अब एक सज्जन आज मेरे पास आए। उन्होंने कहा कि मन बड़ा अशांत है, तो शांति का कोई उपाय बता दें!
मैंने कहा, पहले अशांति का कारण तो बता दें।
तो उन्होंने कहा कि कोई बीस हजार रुपये का कर्ज हो गया।
अब बीस हजार का कर्ज ध्यान से तो मिट नहीं सकता, कोई उपाय नहीं है। बीस हजार का कर्ज तो बीस हजार से ही मिटेगा। अब अगर वे अपनी अशांति मुझे न बताएं और मैं उनको बताऊं कि भई मन को शून्य कर लो, निर्विचार कर लो। तो वह

कैसे निर्विचार होने वाला है, वह बीस हजार का आंकड़ा तो घूमता ही रहेगा! और वे मुझे अगर न बताएं तो मैं भी गलती में पडूंगा, मैं समझूंगा कि मन में अशांति है। मन में अशांति नहीं है, परिस्थिति में अशांति है।
जिस दिन परिस्थिति की अशांति समाप्त होती है, उस दिन मनःस्थिति की अशांति शुरू होती है। वह बड़ी ऊंची बात है। हमारे मन अशांत नहीं हैं, हमारे शरीर अशांत हैं। अमेरिका का मन अशांत है।
लेकिन हिंदुस्तान के साधु-संन्यासी हिंदुस्तान में समझाते हैं कि देखो, अमेरिका को क्या मिल गया! उनके मन तो बहुत अशांत हैं। वे तो पागल हो जाते हैं। मनोवैज्ञानिक से चिकित्सा करवाते हैं। मन के डाक्टरों की संख्या बढ़ती जाती है। तो हमें बड़ी खुशी होती है।
लेकिन ध्यान रहे, शरीर के डाक्टर की संख्या से मन के डाक्टर की संख्या जितनी ज्यादा होती है, समझना आदमी शरीर के ऊपर मन की तरफ चला गया। शरीर का डाक्टर कम होता जाना चाहिए, मन का डाक्टर बढ़ना चाहिए। यह ऊंचाई है, यह एवोल्यूशन है, यह विकास है। अब आदमी को शरीर की तकलीफ नहीं, अब मन की तकलीफ है। और इससे भी ऊपर जब आदमी उठता है तब आत्मा की तकलीफ शुरू होती है। आत्मा की तकलीफ ही मनुष्य को धार्मिक बनाती है।
अभी अमेरिका आत्मा की तकलीफ की तरफ एक कदम हमसे आगे है। हम एक कदम पीछे हैं। हमारी तकलीफ शरीर की है। अभी हमारी शरीर की तकलीफ मिटे तो मन की तकलीफ शुरू होती है, नहीं तो नहीं होती।

एक मित्र ने पूछा है कि आप इतनी तारीफ कर रहे हैं संपन्न मुल्कों की, लेकिन वहां तो चरित्रहीनता, भ्रष्टाचार। नैतिकता नहीं है। और लोग इतने अशांत, तनाव से भरे, मेंटल टेंशन है।

उसके कारण हैं। और मैं कहूंगा कि आप भी उस जगह पहुंच जाएं तो अच्छा है। उसके दो-तीन कारण हैं। पहली बात तो यह है कि जैसे ही व्यक्ति का शरीर तृप्त होता है, वैसे ही उसका मन अतृप्त होता है। स्वाभाविक है। अगर आपको जिंदगी में सब सुविधा मिल जाए तो आपको सुविधा से भी परेशानी शुरू हो जाएगी।
आप एक महल में बिठा दिए गए हैं, सब सुविधा है। खाना है, पीना है, सब जो आपको चाहिए, तत्काल मौजूद है। बस अब आप परेशान होने शुरू हो जाएंगे कि अब मैं क्या करूं? अब करने को कुछ नहीं बचा। आपका मन अशांत होना शुरू हो जाएगा।
अमेरिका में मन अशांत है। लेकिन मन अशांत हो तो अच्छा है। मन को शांत करना बहुत आसान है, क्योंकि मन को शांत करना समझ से हो जाता है। लेकिन शरीर को शांत करना समझ से नहीं होता, शरीर को शांत करने के लिए सुविधा जरूरी है। इसलिए अमेरिका बहुत जल्दी अपने मन को शांत करने के करीब ले आएगा, उसमें बहुत अड़चन नहीं है।
दूसरी बात, अमेरिका में हमें अनैतिकता दिखाई पड़ती है और हम अपने को, अपने आपको नैतिक मालूम पड़ते हैं, यह बड़ी भ्रांति है। असल में कठिनाई क्या है कि हमारी नैतिकता की परिभाषाएं बड़ी अलग-अलग हैं। अगर एक आदमी सिगरेट पीता है, तो हम कहते हैं अनैतिक हो गया।
अब सिगरेट पीने से अनीति का कोई भी संबंध नहीं है, दूर का भी संबंध नहीं है। एक आदमी धुआं भीतर ले जाता है, बाहर निकालता है, इससे अनीति कैसे हो जाएगी? हां, अगर किसी के मुंह पर निकालता हो या किसी की आंख पर धुआं फेंकता हो, तो अनीति हो सकती है। अपने ही फेफड़े में बेचारा धुआं भरे और निकाले, तो बेवकूफी हो सकती है, अनीति नहीं हो सकती। यह नासमझी हो सकती है। यह आदमी, दिमाग इसका थोड़ा ढीला है कि धुआं भीतर ले जाता है और बाहर निकालता है। इस पर पैसा खर्च करता है--धुआं निकालने, ले जाने पर। मगर इसमें अनीति नहीं है, इसमें इम्मारेलिटी बिल्कुल नहीं है। इसमें इम्मारेलिटी क्या है? बल्कि खतरा यह है कि इस आदमी को अगर कसम दिलवा दी जाए मंदिर में कि तुम धुआं निकालने का काम बंद करो, नहीं तो नरक जाना पड़ेगा! तो यह आदमी है तो बुद्धू, नहीं तो धुआं निकालने का काम न करता, इसका बुद्धूपन नहीं बदलेगा,

यह धुआं निकालना बंद कर देगा, लेकिन कोई दूसरा बुद्धूपन शुरू करेगा जो ज्यादा खतरनाक हो सकता है।
आप यह जान कर हैरान होंगे कि हिटलर सिगरेट नहीं पीता था, हिटलर मांस नहीं खाता था, हिटलर अंडा नहीं खाता था, हिटलर शराब नहीं पीता था, बड़ा अच्छा आदमी था। लेकिन सारी दुनिया में जितनी हत्या उसने की, उतनी दुनिया में कभी किसी आदमी ने नहीं की। अब मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हिटलर अगर थोड़ी सिगरेट पीता होता, थोड़ा मांस खाता होता, शराब पीकर किसी नाचघर में थोड़ा नाच आता, तो दुनिया का बड़ा हित होता। क्योंकि उसके बहुत से रोग इस तरह निकल जाते, उसकी बेवकूफियां गिर जातीं, इकट्ठी न होतीं।
तो हमारी परिभाषा क्या है नैतिकता की? मैं नहीं मानता कि सिगरेट पीने वाला आदमी अनैतिक है। इतना मैं मानता हूं कि यह आदमी बेचैन है, नासमझ है। और इस आदमी को अकेले में रहने में परेशानी होती है तो सिगरेट की दोस्ती उसने खोज ली--धुआं निकालने का काम--यह आकुपेशन है इनोसेंट, बिल्कुल निर्दोष व्यस्तता है। इसमें क्या बुराई है?
हां, अगर कुछ भी बुराई है तो इस आदमी को खुद थोड़ा-बहुत नुकसान पहुंचता है। एक आदमी बीस साल अगर दिन में रोज बारह सिगरेट पीए, तो बीस साल में जितनी सिगरेट पीता है, उतनी सिगरेट का इकट्ठा जहर अगर दिया जाए तो कोई आदमी मर सकता है। हालांकि एक सिगरेट पीने से कोई नहीं मरता। बीस साल एक आदमी बारह सिगरेट रोज पीए, इतनी सिगरेटों का निकोटिन इकट्ठा निकाल लिया जाए और किसी आदमी को दिया जाए तो कोई मर सकता है। लेकिन बीस साल पीने से भी कोई नहीं मरता। हां, शायद साल-छह महीने की उम्र कम हो जाती हो। लेकिन यह नुकसान उसका अपना है। और आदमी को अपने को नुकसान पहुंचाने का हक है। सिर्फ दूसरे को नुकसान पहुंचाने का हक नहीं है। अनीति वहां से शुरू होती है, जहां से हम दूसरे को नुकसान पहुंचाते हैं।
अब एक आदमी अगर रोज एक प्याली शराब पीकर रात सो जाता है, तो अनैतिक क्यों हो गया? असल में सारी दुनिया में जहां शराब पीना साधारण पेय है, वहां शराब के नुकसान बहुत कम होते हैं। जिन मुल्कों में शराब साधारण पेय नहीं है, वहां नुकसान बहुत ज्यादा होते हैं। जिन मुल्कों में शराब लोग घर में साधारणतः पीते हैं, सो जाते हैं, खाने के साथ लेते हैं, वहां सड़कों पर शराब पीकर गिरा हुआ आदमी नहीं मिलेगा। सिर्फ उन मुल्कों में शराब पीकर सड़कों पर गाली बकते हुए, गिरे हुए लोग मिलेंगे, जहां लोगों ने शराब को साधारण पेय नहीं बनाया है। असल में जो चीज साधारण हो जाती है, उसका आकर्षण कम हो जाता है। और जो चीज साधारण नहीं होती, उसका आकर्षण बहुत बढ़ जाता है। हिंदुस्तान में शराब का इतना ज्यादा जो दुष्परिणाम होता है, उसका कारण शराबी नहीं है, हिंदुस्तान के महात्मा हैं--जो समझा रहे हैं कि शराब बहुत बुरी चीज है, बहुत बुरी चीज है, बहुत... । तो आदमी रोकता, रोकता, रोकता, एक दिन जब पीता है तो फिर पूरी तरह पीकर सड़क पर ही गाली बकने लगता है। जो चीज बहुत बुरी है उसे थोड़ी-थोड़ी मात्रा में सबको देते रहना चाहिए ताकि ज्यादा मात्रा में लेने की स्थिति न बने। और ऐसे शराब बुरी है भी नहीं, थोड़ी-बहुत शराब शरीर के लिए स्वास्थ्यपूर्ण है। अच्छे किस्म की शराब शरीर के लिए हितकर है, बुरे किस्म की शराब अहितकर है।
तो अगर मुझसे कोई पूछने आए तो उससे मैं कहूंगा, पीना हो तो अच्छे किस्म की शराब पीना और थोड़ी मात्रा में पीना जो फायदा पहुंचाए। ज्यादा मात्रा में बुरे किस्म की शराब नुकसान पहुंचाती है। लेकिन यह कोई अच्छा आदमी कहने को राजी नहीं है। अच्छे आदमी चिल्लाए चले जाते हैं--शराब पीना बुरा है। बुरे आदमी पीए चले जाते हैं। इन दोनों के बीच कोई तालमेल नहीं बैठ पाता।
सरकारें चिल्लाती रहती हैं--शराब बंद करेंगे। जहां शराब बंद होती है वहां रद्दी शराब बिकनी शुरू हो जाती है। मुल्क को ज्यादा नुकसान पहुंचता है।
सरकार का कर्तव्य होना चाहिए कि अच्छी से अच्छी शराब कम से कम दामों में अधिकतम सुविधा से अधिकतम लोगों को मिल सके। तो शराब के सारे नुकसान खत्म हो जाते हैं। शराब में ऐसा कोई नुकसान नहीं है। और अगर फिर भी कोई

नुकसान हो तो विज्ञान इतना विकसित हो गया है कि हम शराब से वे तत्व बाहर कर सकते हैं जिनसे नुकसान होता है।
आदमी को थोड़ी दूर अपने को भूल जाने की सुविधा देना बुरा नहीं है। क्योंकि आदमी इतना बेचैन और परेशान है कि अगर वह चौबीस घंटे अपने को याद रखे तो पागल हो सकता है। थोड़ी-बहुत देर के लिए अपने को भूल जाता है तो अच्छा है।
आप जान कर यह हैरान होंगे कि आमतौर से थोड़ी-बहुत शराब लेने वाले लोग अच्छे किस्म के होते हैं। जो लोग न सिगरेट पीते, न पान खाते, न बीड़ी पीते, न गाली बकते, न शराब पीते, न होटल में जाते, न नाचते, आमतौर से इस तरह के आदमी बहुत बुरे किस्म के आदमी होते हैं। इस तरह के आदमियों से दोस्ती तक बनाना मुश्किल हो जाता है। इस तरह के आदमी दोस्त नहीं बन सकते। इस तरह के आदमी भीतर से बहुत कठोर और दुष्ट किस्म के होते हैं। और उनकी दुष्टता से बहुत दुष्परिणाम होते हैं।

आपने पी है?

बिल्कुल चौबीस घंटे पीए हुए बैठा हूं। लेकिन जरा शराब मैंने बहुत अच्छे किस्म की खोज ली, उसको बाजार से खरीदना नहीं पड़ता!

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मेरी बात सुन लें, मेरी बात सुन लें, आपको न पीनी हो तो आप मत पीना।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मेरी पूरी बात सुन लें। यहां मालूम होता है, दो-चार शराबी आ गए हैं, तो उनको तकलीफ हो गई है। उनको थोड़ी बात समझ लेने दें।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

आप लिख कर दे दें, भेज दें जो भी बात करनी हो। इतने लोगों के साथ अनैतिक व्यवहार न करें। आप लिख कर भेज दें। इतने लोगों के साथ दुर्व्यवहार न करें।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मैं अपनी बात पूरी कर लूं, फिर आप बोलें।
मैं आपसे कह रहा था कि आदमी की जिंदगी में इतनी चिंताएं हैं, आदमी की जिंदगी में इतने तनाव हैं कि यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि आदमी इन तनावों और इन परेशानियों और इन चिंताओं को थोड़ी देर के लिए भूलना चाहे। अगर आदमी इन चिंताओं और परेशानियों को न भूल सके, तो ये चिंताएं और परेशानियां इतनी इकट्ठी हो सकती हैं कि इनके परिणाम घातक हों। तो दो ही उपाय हैं। एक उपाय तो यह है कि आदमी अपनी जिंदगी में चिंता और परेशानियों को पैदा न होने दे। ऐसे लोग बहुत कम हैं, उनको शराब पीने की दुनिया में कभी कोई जरूरत नहीं पड़ी है। किसी नानक को शराब पीने की जरूरत न पड़ेगी। लेकिन कारण दूसरा है, नानक ने कोई और गहरी शराब पी ली है जो इस बाजार में नहीं मिलती है और इसलिए उनकी जिंदगी में अब कोई चिंता नहीं रह गई है।
लेकिन साधारण जो आदमी हैं, इनको उस शराब का तो कोई पता नहीं है। उस शराब का इन्हें पता चल जाए, तब तो इन्हें किसी बेहोशी की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन यह जो साधारण आदमी है, सारे यूरोप में, सारे अमेरिका में-- हिंदुस्तान को छोड़ कर सारी दुनिया में--सहजता से शराब पी रहा है। इसके सहजता से शराब पीने को मैं अनैतिकता नहीं कहता! अनैतिकता इसलिए नहीं कहता कि एक आदमी को अपने को भूलने का हक है!

हां, अगर मैं अपने को भूल कर आपको नुकसान पहुंचाऊं तो अनीति शुरू हो जाती है। अनीति का मतलब ही यह है कि जहां मैं ट्रेसपास करता हूं, जहां मैं अपनी जिंदगी से हट कर दूसरे की जिंदगी में प्रवेश करता हूं और नुकसान पहुंचाता हूं, वहां से अनीति शुरू हो जाती है। वहां तक जहां तक मैं अपने भीतर सीमित हूं, मैं कोई अनीति नहीं करता हूं। जो मैं समझा रहा था, वह आपको यह समझा रहा था कि पश्चिम में अनीति है या नहीं है, यह हमारी व्याख्या पर निर्भर करेगा कि हम किस चीज को अनीति कहते हैं।
अब यह बात हमें अनीति मालूम पड़ती है कि पश्चिम के अधिक लोग शराब पीते हैं। यह हमें अनीति मालूम पड़ती है, क्योंकि हमारी व्याख्या ऐसी है कि जो आदमी शराब पीता है वह अनैतिक है। लेकिन हमें अंदाज नहीं है कि दुनिया के सारे ठंडे मुल्कों में बिना शराब के तो जिंदा रहना भी असंभव है। अगर कोई तिब्बत में बिना शराब के जिंदा रहना चाहे, तो मुश्किल है मामला! अगर कोई साइबेरिया में बिना शराब के जिंदा रहना चाहे, तो जिंदा नहीं रह सकता! क्योंकि साइबेरिया में शराब नशा लाती ही नहीं, सिर्फ शरीर को थोड़ी सी कुनकुनाहट और थोड़ी सी गर्मी देती है, और कुछ भी नहीं करती। हमारे जैसे मुल्क में, गर्म मुल्क में, ठंडे मुल्क की शराब जरूर नुकसान करती है। और उसका कारण यह नहीं है कि शराब नुकसान करती है। उसका कुल कारण यह है कि हम गर्म मुल्क के योग्य शराब विकसित नहीं कर सके। अगर हम गर्म मुल्क के योग्य शराब विकसित कर सकें, तो शराब का सारा नुकसान समाप्त हो जाता है।
आप जान कर हैरान होंगे कि शायद ही कोई टॉनिक हो जिसमें बीस परसेंट, पंद्रह परसेंट, दस परसेंट शराब न हो। लेकिन आप टॉनिक पीते वक्त कभी ख्याल नहीं करते कि शराब पी रहे हैं। सारी शराब टॉनिक बन सकती है। जो मैं कह रहा हूं, वह यह नहीं कह रहा कि आप शराब पीने लगें। मेरे मित्रों को जो तकलीफ हुई वह इसीलिए हो गई कि शायद मैं लोगों को शराब पीना समझा रहा हूं।
मेरे समझाने की जरूरत नहीं है, लोग मेरे बिना समझाए मजे से पी रहे हैं। रोकने की ताकत भी नहीं है किसी में, कोई रोक भी नहीं पा रहा है। जो मैं कह रहा हूं वह तो यह कह रहा हूं कि अगर मेरी बात समझ में आ जाए, तो शराब के पीने का नुकसान कम हो सकता है, शराब के पीने की हानि कम हो सकती है। हम ऐसी शराब भी विकसित कर सकते हैं जो स्वास्थ्यप्रद हो और हानि न पहुंचाती हो। और जिनको पीना है, अगर वे अपने से अतिरिक्त किसी को नुकसान पहुंचाने नहीं जाते हैं, तो किसी को कोई हक नहीं है कि उनको पीने से रोके। हक वहीं शुरू होता है जहां वे किसी को नुकसान पहुंचाते हैं।
यह नुकसान बहुत तरह का हो सकता है। एक आदमी किसी को जाकर शराब के नशे में चोट मार दे सिर पर, तो भी नुकसान होता है। अगर एक आदमी अपनी पत्नी के साथ शराब पीकर दुर्व्यवहार करे, तो भी दूसरे को नुकसान होता है। एक आदमी अगर शराब पीकर नौकरी छोड़ दे और उसके बच्चे भूखे मरने लगें, तो भी दूसरे को नुकसान होता है। इन सारी स्थितियों में यह शराब पीना अनैतिक हो गया। लेकिन एक आदमी की शराब अगर उसके स्वास्थ्य को नुकसान न पहुंचाए, अगर उसकी पत्नी और उसके बीच संबंध बिगड़ने की बजाय अच्छे बनें, अगर उसका काम दूसरे दिन दफ्तर जाकर वह और आराम से कर सके, तो मैं नहीं मानता हूं कि ऐसी शराब ने किसी तरह का अनैतिक काम किया। अनीति का अर्थ ही यह है कि हम अपने द्वारा दूसरे को कोई हानि पहुंचाएं। अगर हमारे द्वारा किसी को कोई हानि नहीं पहुंच रही, तो अनीति का कोई अर्थ नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मैं आपसे कह रहा था कि किस बात को हम अनैतिक कहें, नीति और अनीति की हमारी परिभाषाएं हैं। मेरी दृष्टि में अनीति वहां से शुरू होती है, जहां से हम किसी आदमी को नुकसान पहुंचाना शुरू करते हैं। असल में नीति और अनीति के दो तरह के सोचने के ढंग हो सकते हैं।
एक ढंग तो यह हो सकता है कि हम व्यक्ति को रोकने के लिए नियम बनाएं। ऐसी नीति का मैं पक्षपाती नहीं हूं। मैं नीति का इतना ही अर्थ लेता हूं कि जिससे किसी व्यक्ति को अहित न हो, अमंगल न हो, किसी व्यक्ति को नुकसान न पहुंचे। हमें नीति की धारणा ऐसी बनानी चाहिए।

पश्चिम में नीति की धारणा पाजिटिव हो गई है। पूरब में नीति की धारणा अभी भी निगेटिव है। अभी भी हम सोचते हैं कि यह काम नहीं करना चाहिए, यह नैतिक हो गया। पश्चिम और तरह से सोचता है। पश्चिम सोचता हैः कौन सा काम करना चाहिए जो नैतिक हो। एक आदमी शराब नहीं पीता, एक आदमी सिगरेट नहीं पीता, एक आदमी मांस नहीं खाता, ये सब नकारात्मक बातें हैं। इससे कुछ पता नहीं चलता कि वह आदमी क्या करता है। इससे इतना ही पता चलता है कि वह आदमी क्या नहीं करता है।

नये समाज की खोज
ग्यारहवां प्रवचन

विश्व-शांति के तीन उपाय

मेरे प्रिय आत्मन्!
मनुष्य का इतिहास अशांति का और युद्धों का इतिहास रहा है। मनुष्य के अतीत की पूरी कथा दुख, पीड़ा, हिंसा और हत्या की कथा है।
आज ही यह कोई सवाल खड़ा नहीं हो गया है कि विश्व में शांति कैसे स्थापित हो, यह सवाल हमेशा से रहा है। यह सवाल आधुनिक नहीं है, यह मनुष्य का चिरंतन और सनातन का सवाल है। तीन हजार वर्षों में पंद्रह हजार युद्ध मनुष्य ने किए हैं। मनुष्य लड़ता ही रहा है। अब तक कोई शांति का समय नहीं जाना जा सका है! जो थोड़े-बहुत दिन के लिए शांति होती है वह भी शांति झूठी होती है। उस शांति में भी युद्ध की तैयारी चलती है। युद्ध के समय में हम लड़ते हैं और शांति के समय में हम आगे आने वाले युद्ध की तैयारी करते हैं। एक छोटे से बच्चे से उसके एक पड़ोसी ने पूछा कि मैंने देखा है कि तुम एक छोटी सी पेटी में हमेशा पैसे इकट्ठे करते हो, ये पैसे तुम्हें किस बात के मिलते हैं और फिर इकट्ठा करके तुम क्या करते हो? तो उस बच्चे ने कहा, मुझे रोज रात को लीवर ठीक रखने की दवाई और तेल पीना पड़ता है। और जब मैं एक खुराक पी लेता हूं तो मुझे चार आने ईनाम के मिलते हैं, वह पैसे मैं पेटी में इकट्ठा करता हूं।
उस पड़ोसी ने पूछा कि फिर तुम उन इकट्ठे पैसों का क्या करते हो? उसने कहा, उनसे मेरे पिताजी फिर दवाई खरीद लेते हैं, फिर तेल खरीद लेते हैं। उन पैसों से पिताजी फिर लीवर ठीक करने की दवाई खरीद लेते हैं। पड़ोसी बहुत हैरान हुआ। उसने कहा, यह कैसा चक्कर हुआ!
हम थोड़े दिन शांति में रहते हैं, उस शांति में हम युद्ध का फिर इंतजाम
कर लेते हैं। फिर हम युद्ध करते हैं। और युद्ध हम इसलिए करते हैं ताकि हम शांति पा सकें। और फिर हम जब शांत हो जाते हैं तो हम युद्ध की तैयारी करते हैं। युद्ध के समय हम मांग करते हैं कि शांति चाहिए और शांति के समय हमारी मांग चलती रहती है कि युद्ध चाहिए। बड़ी अदभुत, बड़े चक्कर की कथा है!
और अगर यह आज का कोई सवाल होता, अगर यह कोई कंटेम्प्रेरी सवाल होता, तो शायद आज की दुनिया में कोई भूल-चूक हम निकाल लेते और उसको ठीक कर लेते। यह सवाल हमेशा का है। यह कोई ऐसा नहीं है कि कोई यह कहने लगे कि दुनिया भौतिकवादी हो गई है इसलिए युद्ध हो रहे हैं। युद्ध हमेशा रहे हैं। चाहे राम का जमाना हो और चाहे कृष्ण का जमाना हो, चाहे राम-राज्य हो और चाहे कोई राज्य हो, युद्ध हमेशा रहे हैं। ये कोई भौतिकवाद के कारण युद्ध नहीं हो रहे हैं। या कोई कहता हो कि लोग ईश्वर पर अविश्वासी हो गए हैं, लोगों ने आत्मा-परमात्मा को मानना बंद कर दिया है इसलिए युद्ध हो रहे हैं, तो यह बात झूठी है, क्योंकि युद्ध हमेशा होते रहे हैं। और आत्मा और परमात्मा को मानने वाले लोग भी युद्ध करते रहे हैं।
इसलिए पहली बात तो मैं यह कहना चाहता हूं कि यह समस्या सनातन है। अब
तक की पूरी मनुष्यता का यह सवाल रहा है। यह आधुनिक प्रश्न नहीं है। और इसलिए जो इसे आधुनिक प्रश्न समझेगा वह इसका हल भी नहीं खोज सकता। यह बीमारी पुरानी है। और इसलिए मनुष्य-जाति के पूरे इतिहास में इस बीमारी का कारण खोजना जरूरी है। क्या कारण हो सकता है? युद्धों से सिवाय पीड़ा के कुछ भी उपलब्ध नहीं होता; फिर युद्धों में क्या कारण हो सकता है? कौन सा रस है आदमी को युद्ध के लिए, अशांति के लिए, हत्या के लिए, कौन सा आनंद है? दो-तीन बातें इस संबंध में समझ लेनी जरूरी हैं।
पहली बात, एक सुबह टोकियो के हवाई अड्डे पर एक हवाई जहाज उड़ा। हवाई जहाज जब उड़ा तब उसके भीतर बैठे हुए यात्री तभी कुछ परेशान से हुए, क्योंकि हवाई जहाज बड़ा बेतरतीब भाग रहा था। फिर वह एकदम झटके के साथ ऊपर उठा। और जब वह ऊपर उठ गया तब उन्हें जोर से पायलट के कमरे से हंसने की आवाज सुनाई पड़ी। पायलट इतने जोर से हंस रहा था जिसका कोई हिसाब नहीं। एक यात्री ने पायलट के कमरे में झांका और पूछा कि इतने जोर से हंसने की बात क्या है? हंस-हंस

कर लोट-पोट हुए जा रहे हो, मामला क्या है? उसने कहा, बड़ी मजाक हो गई है! मुझे एक पागलखाने में बंद कर दिया गया था, मैं वहां से निकल कर भाग खड़ा हुआ हूं। और मुझे यह जान कर हंसी आ रही है कि पागलखाने के अधिकारी बड़ी दिक्कत में पड़ गए होंगे। समझ भी न पा रहे होंगे कि मैं कहां निकल गया हूं! उन बेचारों के साथ बड़ी मजाक हो गई है!
उन हवाई जहाज के यात्रियों के साथ क्या हुआ होगा, आपको समझ में आता है?
वह पायलट पागल है और पागलखाने से निकल भागा है, और हवाई जहाज लेकर उठ गया है ऊपर! और वह पागल यह कह रहा है कि पागलखाने के अधिकारियों के साथ बड़ी मजाक हो गई है। और उनका क्या हो रहा होगा, यह सोच कर वह हंसी से लोट-पोट हुआ जा रहा है।
पागलखाने के अधिकारियों को छोड़ दें एक तरफ, उस हवाई जहाज में बैठे हुए आदमियों का क्या हुआ होगा? उनके साथ तो और भी गहरी मजाक हो गई है!
आदमियत करीब-करीब इसी हालत में रही है आज तक। राजनीतिज्ञों के हाथ में समाज की पतवार है और राजनीतिज्ञ आज तक पागल आदमी रहा है, विक्षिप्त, न्यूरोटिक आदमी रहा है। दुनिया में लाख कोशिश करें हम शांति की, लेकिन जब तक राजनीतिक दिशा का आमूल परिवर्तन नहीं हो जाता है, दुनिया में कोई शांति स्थापित नहीं हो सकती। राजनीतिज्ञ बुनियादी रूप से पागल है। यह जो पोलिटीशियन है, यह कुछ बुनियादी रूप से विक्षिप्त है। इसका इलाज होना चाहिए और स्वस्थ राजनीतिज्ञ का जन्म होना चाहिए। अन्यथा कोई प्रार्थना, कोई सुझाव दुनिया में शांति नहीं ला सकता है। पागलों के हाथ में पतवार है समाज की! पागलों के हाथ में समाज की बागडोर है!
और राजनीतिज्ञ क्यों पागल है, यह समझ लेना जरूरी है। लेकिन हजारों साल से राजनीतिज्ञ की हम पूजा करते रहे हैं, इसलिए हमें समझना भी बहुत कठिन होगा कि राजनीतिज्ञ को पागल मैं क्यों कह रहा हूं। असल में दूसरे लोगों के ऊपर हावी हो जाने की इच्छा पागल मन का सबूत है। सबकी छाती पर सवार हो जाने की आकांक्षा विक्षिप्त मन का सबूत है। स्वस्थ आदमी न तो किसी का मालिक होना चाहता है और न किसी के सिर पर बैठना चाहता है।
दुनिया भर के सभी पागल दुनिया की अलग-अलग राजधानियों में इकट्ठे हो जाते हैं। और उन पागलों के हाथ में सारी ताकत है दुनिया की। थोड़ा पीछे लौट कर देखें--नादिर, चंगीज, तैमूरलंग, स्टैलिन या हिटलर या मुसोलिनी या तोजो या माओत्से तुंग--अगर दुनिया किसी भी दिन समझदार होगी तो क्या इन लोगों को पागल के अतिरिक्त कुछ और कहा जा सकेगा? हिटलर और मुसोलिनी को पागल के अतिरिक्त कुछ और कहा जा सकता है--या नेपोलियन और सिकंदर को? ये सारे पागल लोगों ने आज तक मनुष्य-जाति को आक्रांत कर रखा है। वे युद्ध में नहीं ले जाएंगे, तो शांति में कैसे ले जा सकते हैं?
राजनीतिज्ञ की आकांक्षा क्या है? राजनीतिज्ञ चाहता क्या है?
शक्ति चाहता है, पावर चाहता है, दूसरे लोगों की गर्दन पर मुट्ठी चाहता है। जितने लोगों के ऊपर वह सवार हो जाए, जितने लोगों की मालकियत उसके हाथ में आ जाए, उतनी उसे तृप्ति मिलती है। यह बहुत रुग्ण आकांक्षा है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के ऊपर मालिक हो जाए, यह बात ही खतरनाक है, यह बात ही अशोभन है। और इस तरह की जिसकी आकांक्षा है वह आदमी स्वस्थ नहीं है। लेकिन जो आदमी जितने ज्यादा लोगों का मालिक हो जाता है, जितने बड़े पदों पर हो जाता है, हमारे सिर उसके चरणों में उतने ही झुक जाते हैं।
जब तक मनुष्य-जाति राजनीतिज्ञ के चरणों में झुकती रहेगी तब तक दुनिया में शांति की कोई आशा नहीं है, कोई संभावना नहीं है। अगर दुनिया को युद्ध से बचाना है तो दुनिया को राजनीतिज्ञ के संबंध में अपने मूल्य परिवर्तित कर लेने होंगे। जिनके कारण युद्ध खड़े होते हैं, जिनके कारण अशांति खड़ी होती है, जिनके कारण हिंसा खड़ी होती है, अगर उनका ही हम आदर करते चले जाएंगे तो युद्ध कैसे बंद हो सकते हैं? हमारी वैल्यूज गलत हैं, हमारा सम्मान गलत है। और हमारा सम्मान सिर्फ राजनीतिज्ञों को मिलता है, और किसी को भी नहीं। राजनीति का इतना आदर होने का कारण क्या है? जरूरत क्या है? अर्थ क्या है?
एक घर में एक रसोइया है। वह घर के खाने-पीने की फिकर करता है। बाजार से खाने का सामान खरीद कर लाता है, अच्छे से अच्छा खाना बना कर घर के लोगों को

खिलाने की कोशिश करता है। ठीक है, वह रसोइया है और रसोइया का आदर उसे मिलना चाहिए। घर छोटा सा घर है। एक बड़ी होटल है, उसमें पांच सौ लोग रोज भोजन करते हैं। उसमें भी सबसे बड़ा रसोइया है, वह सबकी देख-भाल करता है, खाने की फिकर करता है। ठीक है, वह अच्छा खाना बनाता है, उसका आदर होना चाहिए। पूरे प्रांत में एक खाद्य मंत्री है, यह पूरे प्रांत का बड़ा रसोइया है। इसके पैरों में सिर झुकाने की जरूरत क्या है? एक रसोइये को जो आदर मिलना चाहिए वह इसको भी मिलना चाहिए। लेकिन इसके पीछे दीवाने हो जाने की और पागल हो जाने की कौन सी आवश्यकता है?
जिस दिन मनुष्य-जाति थोड़ी स्वस्थ होगी, प्रांत के खाद्य मंत्री को उतना ही आदर होगा जितना प्रांत के बड़े रसोइये को होना चाहिए, इससे ज्यादा की कोई भी जरूरत नहीं है। इससे ज्यादा बिल्कुल गलत है। और यही बात दूसरे मंत्रियों के बाबत भी। एक स्वास्थ्य मंत्री को उतना आदर होना चाहिए जितना गांव के डाक्टर को होता है। ठीक है कि वह पूरे प्रांत की चिकित्सा और स्वास्थ्य का ध्यान रखता है। एक स्वच्छता के मंत्री का उतना ही आदर होना चाहिए जितना गांव के बड़े मेहतर का होता है। वह पूरे प्रांत का मेहतर है, वह पूरे प्रांत की स्वच्छता की फिकर करता है। उसको आदर मिलना चाहिए, क्योंकि वह एक काम कर रहा है।
लेकिन हमारा आदर तो सब तरह के प्रपोर्शन के बाहर चला गया है। वह प्रांत का सबसे बड़ा रसोइया अगर थोड़ा छींक दे तो सारे अखबारों में खबर छपनी चाहिए। उसकी जूती गुम जाए तो सारे अखबारों में फोटो छपना चाहिए। सारे मुल्क में चर्चा होनी चाहिए कि मंत्री महोदय की जूती गुम गई है, कि मंत्री महोदय के बच्चे को सर्दी हो गई है, कि मंत्री महोदय का चपरासी आज मोटर के नीचे आ गया है। यह सारा का सारा आदर राजनीतिज्ञ की दिशा में पागल लोगों को आकर्षित कर देता है। जो भी पागल महत्वाकांक्षी होते हैं, उनको एक ही दिशा मिल जाती है--कि चलो राजधानी! दिल्ली जाना चाहिए!
मैंने सुना है, बनारस का एक कुत्ता भी इसी तरह पागल हो गया था। आदमियों की देखा-देखी जानवर भी पागल हो जाते हैं। आदमियों के साथ रहते- रहते जानवरों में भी बुरी आदतें आ जाती हैं। एक कुत्ता एक नेता के घर में कुछ दिन तक निवास किया, उसका दिमाग खराब हो गया। वह नेता के साथ रहते-रहते और नेता की अखबार में फोटो देखते-देखते उसका भी मन होने लगा कि मेरी फोटो भी अखबार में होनी चाहिए। उसने गांव के दो-चार कुत्तों को जाकर कहा कि मुझे नेता बनाओ और मुझे दिल्ली भेजो!
कुत्ते हंसने लगे। कुत्तों ने कहा कि ये आदमियों की बुरी आदतें तुममें कब से आ गईं? उसने दस-पांच कुत्तों को कहा। लेकिन कुत्ते मजाक उड़ाने लगे कि इसका दिमाग खराब हो गया!
वह बड़ा परेशान हुआ। क्योंकि दिल्ली वह जाना चाहता था एक साधारण यात्री की हैसियत से नहीं, एक नेता की हैसियत से। और अगर कुत्ते उसको चुन कर भेज देते तो आदर होता उसका दिल्ली में, सम्मान होता। लेकिन कुत्ते हंसते हैं।
एक रात नेता जब गहरी नींद में सो रहा था उसका मालिक, तो वह नेता के पास गया और उसने कहा कि मेरे मालिक! मेरा दिल भी दिल्ली जाने का होता है, नेता बनने की तरकीब मुझे बता दो तो मैं भी दिल्ली पहुंच जाऊं। मैं कुत्तों से कहता हूं तो कुत्ते हंसते हैं।
नींद में उस नेता ने सुना और उस नेता ने कहा कि बेटे, अगर दिल्ली जाना
है तो यह काम आसान नहीं है। इसकी कुछ तरकीबें हैं, इसके कुछ ट्रेड सीक्रेट हैं। हर कोई दिल्ली नहीं जा सकता। यह कोई मजाक नहीं है कि तुम समझे कि तुम दिल्ली पहुंच जाओगे! अरे दिल्ली जाना बड़ी कठिन यात्रा है! आदमी मोक्ष पहुंच जाए आसानी से, दिल्ली पहुंचना बहुत कठिन है। लेकिन अगर तू जाना ही चाहता है, तो तू कोई साधारण कुत्ता नहीं है, बड़े नेता का कुत्ता है, मेरा कुत्ता है, मैं तुझे तरकीब बताए देता हूं।
पहली तो बात, कुत्तों में जाकर यह खबर फैलाना शुरू करो कि कुत्तों की जाति खतरे में है। जैसा कुछ लोग कहते हैं इस्लाम खतरे में है, कोई कहता है हिंदू धर्म खतरे में है, कोई कहता है हिंदुस्तान खतरे में है, कोई कहता है चीन खतरे में है। राजनीति का पहला सूत्र है कि लोगों में खतरे की हवा पैदा

करो। जाओ कुत्तों को समझाओ कि कुत्तों की जाति बड़े खतरे में है।
म्युनिसिपल कमेटी का मेयर सोच रहा है कि कुत्तों को जहर की गोली दिलवा कर मरवा दिया जाए। कुत्तों के दुश्मन कुत्तों के पीछे पड़े हैं। जाओ कुत्तों में प्रचार करो।
उसने कहा, यह तो बात ठीक है। यह तो मुझे ख्याल में नहीं था।
और फिर कुत्तों को समझाना कि मैंने यह संकल्प कर लिया है कि चाहे मेरी जान रहे या जाए, लेकिन मैं कुत्तों की जाति को बचा कर रहूंगा। यह भी समझाना।
अगर कुत्तों के छोटे-छोटे बच्चे मिल जाएं, कालेज में पढ़ने वाले पिल्ले मिल जाएं, तो उनसे कहना कि बच्चो, तुम्हारा भविष्य खतरे में है! तुमको नौकरी नहीं मिलेगी पढ़-लिख कर निकल आओगे तो भी! बड़े-बूढ़ों से ताकत छीननी जरूरी है, उन बच्चों को समझाना, पिल्लों को समझाना। और कहना कि मैंने कस्त कर लिया है कि मैं तो आने वाली पीढ़ी की सेवा करके रहूंगा, मैं तुम्हारा सेवक हूं। बच्चों को उलझाना बड़ों के खिलाफ।
अगर कुत्तों की स्त्रियां मिल जाएं तो उनसे कहनाः देवियो, तुम्हें भी कुत्तों के बराबर समान अधिकार चाहिए। तुम पीछे मत रहो। ईक्वलिटी है; सारी दुनिया में स्त्रियों ने पुरुषों के बराबर अधिकार ले लिए। तुम कब तक पीछे पड़ी रहोगी! विद्रोह करो, क्रांति करो! मैं तो इस नारी-जाति का सेवक हूं, मैं सेवा करना चाहता हूं।
अगर गरीब कुत्ते मिल जाएं तो उनको अमीर कुत्तों के खिलाफ भड़काना, उनको कम्युनिज्म का पाठ पढ़ाना। और अगर अमीर कुत्ते मिल जाएं तो उनसे कहना कि आप सावधान रहो! गरीब कुत्ते बगावत करने को आमादा हो रहे हैं। लेकिन घबराओ मत, जब तक मैं हूं तब तक मैं तुम्हारी इज्जत पर आंच नहीं आने दूंगा। उस कुत्ते ने कहा, यह तो आप ठीक कह रहे हैं, लेकिन अगर गरीब और अमीर कुत्ते दोनों एक साथ मिल जाएं तो उस वक्त मैं क्या कहूंगा?
उसने कहा, तू पागल है, उस वक्त सर्वोदय की बात शुरू कर देना कि हम तो सबका उदय चाहते हैं। हम गरीब का भी उदय चाहते हैं, हम अमीर का भी उदय चाहते हैं। हम चोर का भी उदय चाहते हैं, हम साहूकार का भी उदय चाहते हैं। हम बीमार का भी उदय चाहते हैं, हम डाक्टर का भी उदय चाहते हैं। हम तो सबका उदय चाहते हैं, हम तो सबका भला चाहते हैं। यह आखिरी तरकीब है, अगर सभी मौजूद हों तो सर्वोदय की बात करना और एक-एक मौजूद हो तो उसके उदय की बात करना। वह कुत्ता तो एकदम हैरान हो गया! उसने सोचा कि इतनी सी तरकीब थी, हम नाहक परेशान होते थे। वह कुत्ता भागा और उसने उसी रात काम शुरू कर दिया। नींद में बेचारे नेता से ये बातें निकल गईं। नेता कुछ कच्चा रहा होगा; नहीं तो असली पक्के नेता नींद में भी सच्ची बातें नहीं बोलते।
उस कुत्ते ने प्रचार शुरू कर दिया। काशी के कुत्तों में हड़कंप मच गया, आंदोलन शुरू हो गया। कुत्ते घबरा गए। उनकी जान खतरे में है! भयभीत हो गए, डरने लगे। तब वे सब उससे प्रार्थना करने लगे कि हमें बचाओ! अब तुम ही हमारे नेता हो; तुम दिल्ली चले जाओ हम सबके प्रतिनिधि बन कर। वह कुत्ता बहुत मना करने लगा। उसने टोपी पहननी शुरू कर दी खादी की। वह हाथ जोड़ने लगा और वह कहने लगा कि नहीं, मैं दिल्ली क्या करूंगा? मैं तो जनता का सेवक हूं, मुझे दिल्ली जाने से क्या मतलब? लेकिन जितना ही वह इनकार करने लगा, कुत्ते उसके पीछे पड़ने लगे, उसकी प्रार्थना करने लगे, गले में मालाएं पहनाने लगे और कहा कि तुम्हें दिल्ली जाना ही पड़ेगा! आखिर मजबूरी में वह बेचारा राजी हो गया। जैसे कि सभी नेता मजबूरी में दिल्ली जाने को राजी हो जाते हैं, वह भी राजी हो गया।
कुत्तों ने दिल्ली के कुत्तों को खबर की कि हमारा नेता आ रहा है, चुना हुआ नेता है, इसके स्वागत का ठीक-ठीक इंतजाम करना। दिल्ली के कुत्ते बहुत खुश हुए। आदमियों के नेताओं का स्वागत करते-करते वे भी बहुत ऊब चुके थे। उन्होंने कहा, अपना ही नेता आता है, यह बड़ी खुशी की बात है। उन्होंने कहा, बेफिकर रहो! हम यहां सर्किट हाउस में सब व्यवस्था, रिजर्वेशन वगैरह करवा रखते हैं। लेकिन तुम कब तक आ पाओगे?

खबर गई कि एक महीना लग जाएगा। कुत्ता बेचारा, पैदल ही चलने का ख्याल था। उसे अभी पता नहीं था कि आदमियों के वाहन का उपयोग करे तो जल्दी पहुंच सकता है। वह पैदल ही उसने दिल्ली की यात्रा की।
दिल्ली के कुत्ते बड़े हैरान हो गए, वह महीने भर की बजाय सात दिन में ही दिल्ली पहुंच गया! दिल्ली के कुत्तों ने कहा, तुमने तो चकित कर दिया हमें। आदमियों के नेताओं को जिंदगी बीत जाती है तब दिल्ली पहुंच पाते हैं, तुम सात दिन में दिल्ली आ गए!
उस कुत्ते ने कहा, कुछ मत पूछो, जो मुझ पर बीती वह मैं ही जानता हूं। और
अब मुझको पता चला! मैं जब काशी छोड़ा तो काशी के कुत्तों ने मुझे गांव के बाहर तक छोड़ दिया। दूसरे गांव के कुत्ते मेरे पीछे पड़ गए, उन्होंने मुझे ठहरने नहीं दिया। वे दूसरे गांव तक छोड़ भी नहीं पाए थे कि दूसरे गांव के कुत्ते मेरे पीछे पड़ गए। दिल्ली तक मेरे पीछे किसी न किसी गांव के कुत्ते लगे रहे। वे अपने गांव की सीमा तक छोड़ कर लौट भी नहीं पाते थे कि दूसरे गांव के कुत्ते मेरा पीछा करते थे। मैं जान बचाते हुए किसी तरह भागा हुआ चला आया हूं। बीच में विश्राम बिल्कुल नहीं किया, इसलिए सात दिन में पहुंच गया हूं। लेकिन ज्यादा बातचीत मत करो, मेरी सांस अटकती है और मेरे प्राण घबरा रहे हैं, मैं मरने के करीब मालूम हो रहा हूं।
दिल्ली के कुत्तों ने कहा, बिल्कुल मत घबराओ, दिल्ली में नेता आकर अक्सर मर जाते हैं। यह दिल्ली बहुत से नेताओं की कब्र है। यह हजारों साल से कब्र बनी हुई है। यहां नेता आया और मरा। यहां से फिर जिंदा बहुत मुश्किल से कोई नेता लौटता है।
वह कुत्ता यह कहते-कहते मर गया।
पता नहीं उस कुत्ते के पीछे फिर और क्या-क्या मामले हुए। लेकिन चाहे कुत्ते को दिल्ली पहुंचना हो, चाहे आदमी को, तरकीबें एक ही हैं, रास्ता एक ही है। और पागलपन के अतिरिक्त किसी आदमी को सत्ता का, पावर का; शक्ति को, पद को पाने की तीव्र आकांक्षा पैदा नहीं होती है।
यह मैं क्यों कह रहा हूं कि यह तीव्र आकांक्षा पागलपन से पैदा होती है?
स्वस्थ आदमी अपने होने में आनंदित होता है। स्वस्थ आदमी को अपने होने में ही आनंद होता है। अस्वस्थ, रुग्ण आदमी को अपने होने में कोई आनंद नहीं होता। जिस आदमी को अपने होने में आनंद होता है उसी को स्वस्थ कहते हैं, जो स्वयं में स्थित है उसे स्वस्थ कहते हैं। जिस आदमी को अपने में कोई आनंद नहीं होता वह दूसरे लोगों को दुख देकर, पीड़ा देकर आनंदित होने की कोशिश करता है। वह दूसरों को सता कर, दूसरों को टार्चर करके सुखी होने की कोशिश करता है। जितने लोगों को वह सता पाता है, उतना ही उसको लगता है कि मैं कुछ कर रहा हूं, मैं कुछ हूं। पागल आदमी दूसरों को सताने का सुख खोजता है।
और दूसरों को सताना हो, तो एक आदमी अगर पति हो जाए तो क्या करेगा, ज्यादा से ज्यादा पत्नी को सता सकता है। या पत्नी अगर पागल हो जाए, सताने के लिए इच्छुक हो जाए तो क्या कर सकती है, ज्यादा से ज्यादा पति को सता सकती है। बहुत से बहुत अगर भाग्य से या बच्चों के दुर्भाग्य से घर में बच्चे पैदा हो जाएं तो दोनों मिल कर बच्चों को सता सकते हैं, और क्या कर सकते हैं! इतने से मन नहीं भरता है तो एक आदमी बड़ी भीड़ को सताने की कोशिश में लग जाता है। फिर वह राजनीतिज्ञ हुए बिना कोई चारा नहीं है। बड़ी भीड़ केवल राजनीतिज्ञ के कब्जे में होती है।
तो जितने लोगों को दूसरों को सताने की, दूसरों को पीड़ा देने की, दूसरों के प्रति सैडिस्ट, टार्चर करने की प्रवृत्ति होती है, वे सारे लोग राजधानियों की तरफ यात्राएं शुरू कर देते हैं। यह हिंदुस्तान में ही नहीं होता, सारी दुनिया में ऐसा होता है। मास्को में ऐसा होता है, और वाशिंगटन में ऐसा होता है, और पेकिंग में ऐसा होता है, और लंदन में भी ऐसा होता है, और पेरिस में भी ऐसा होता है, और दिल्ली में भी ऐसा होता है। दुनिया भर के सभी महत्वाकांक्षी रुग्ण लोग राजधानियों में इकट्ठे हो जाते हैं। फिर उनमें जो सबसे ज्यादा पागल होता है वह प्रधान हो जाता है, क्योंकि सबसे मजबूत पागल छोटे पागलों पर कब्जा कर लेता है। और इसलिए दुनिया तीन हजार वर्षों से युद्धों में से गुजर रही है। इस दुनिया में शांति नहीं हो सकती! कैसे

शांति हो सकती है इन लोगों के हाथ में? इनका मूल्य ही इस बात में है कि युद्ध होता रहे।
हिटलर ने लिखा है--बड़े नेता युद्ध से पैदा होते हैं। हिटलर ने लिखा है
कि बड़े नेता युद्ध से पैदा होते हैं। युद्ध नहीं होता तो नेता बड़ा हो ही नहीं पाता। जब युद्ध होता है तो नेता बड़ा हो जाता है, क्योंकि जब युद्ध होता है तो खतरा पैदा हो जाता है। खतरा पैदा हो जाता है तो सारी जनता हाथ जोड़ कर नेता के चरणों में खड़ी हो जाती है कि तुम ही हमें बचाओ! अब तुम ही भगवान हो! तुम्हारे बिना हमें कौन बचाएगा! और नेता बड़ा होता चला जाता है। तो हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि अगर असली खतरा न हो, अगर असली युद्ध न हो, तो जिसे नेता बनना है, जिसे लीडर बनना है, उसे नकली खतरे पैदा कर लेने चाहिए, नकली युद्ध पैदा कर लेना चाहिए।
वियतनाम और कोरिया में सब नकली युद्ध चल रहे हैं। जिनकी कोई जरूरत नहीं, जिनका कोई प्रयोजन नहीं। हिंदुस्तान और पाकिस्तान के बीच नकली लड़ाइयां चल रही हैं। जिनका कोई मतलब नहीं, कोई प्रयोजन नहीं। हिंदुस्तान और चीन के बीच भी सब वही मामला है।
लेकिन बड़ा नेता हो नहीं सकता कोई... माओ बड़ा नेता नहीं हो सकता अगर वह युद्ध न चलाए रखे। युद्ध चलेंगे तो माओ बड़ा नेता हो जाएगा। अगर पिछले दस साल में चीन ने शरारतें न की होतीं, माओ का नाम भी आपको पता नहीं चलता। अगर हिटलर ने दूसरा महायुद्ध खड़ा नहीं किया होता तो हिटलर का नाम भी आपको पता नहीं चलता। चंगीज खां ने अगर लोगों की हत्याएं न की होतीं तो चंगीज खां का नाम कैसे आपको पता चलता? अगर तैमूरलंग ने राजधानियों में जाकर बच्चों की गर्दनें न काटी होतीं... । तैमूरलंग जिस राजधानी में जाता, दस हजार बच्चों की गर्दनें कटवा लेता, भालों में छिदवा लेता, और उसका जुलूस निकलता तो दस हजार बच्चों की गर्दनें भालों में छिदी हुई आगे चलतीं। लोग पूछते कि तैमूर, यह तुम क्या कर रहे हो? बच्चों को किसलिए काट रहे हो? तैमूर कहता, ताकि यह मुल्क याद रखे कि तैमूर कभी यहां आया था।
यह तैमूर को अगर मैं पागल कहता हूं तो आप नाराज मत हो जाना, यह पागल है।
हिटलर ने एक बहुत सुंदर स्त्री की चमड़ी निकलवा कर अपने टेबल लैंप का कवर बनवा लिया था। क्योंकि हिटलर के टेबल लैंप का कवर कोई साधारण कागज का, चमड़े का, प्लास्टिक का नहीं बन सकता है। एक सुंदर जिंदा स्त्री को, उसकी चमड़ी खिंचवा कर, उसका टेबल लैंप का कवर बनवा लिया था। अगर इस हिटलर को मैं पागल कहता हूं तो आप नाराज न हों।
अकेले हिटलर ने पांच सौ यहूदी रोज के हिसाब से हत्या की। हिटलर ने अपनी जिंदगी में पचास लाख यहूदियों की हत्या की। पांच सौ यहूदी रोज मारने का धार्मिक नियम था उसका--व्रत। रोज पांच सौ यहूदी मारने ही हैं। फिर एक-एक यहूदी को मारना बहुत महंगा पड़ने लगा; क्योंकि पांच सौ यहूदी मारना, फिर उनकी लाशें फिंकवाना, फिर उनका इंतजाम करना, यह बहुत महंगा पड़ने लगा। तो उसने गैस चैंबर्स बनवाए, बिजली की भट्टियां बनवाईं। जिनमें पांच सौ आदमियों को बंद कर दो, बटन दबाओ, वे राख हो जाएंगे। न उनकी लाश फेंकनी पड़ेगी, न उनको मारना पड़ेगा, न गोली खर्च करनी पड़ेगी, न सिपाही लगेंगे। सारे जर्मनी में उसने गैस चैंबर्स बनवाए और पचास लाख यहूदियों को आग लगा कर जलवा दिया।
स्टैलिन ने अपने वक्त में साठ लाख लोगों की हत्या की रूस में।
अगर मैं इनको पागल कहता हूं तो नाराज न हों। जिन लोगों को आपने पागलखानों में बंद कर रखा है वे इनके मुकाबले बच्चे भी नहीं हैं, इनके मुकाबले कुछ भी नहीं हैं। इनके मुकाबले उनका पागलपन ना-कुछ है। ये सारे पागल जब तक हुकूमत करेंगे दुनिया में, तब तक कैसे शांति हो सकती है! पुराने दिनों में ज्यादा खतरा नहीं था, इन पागलों के हाथ में बहुत ताकत नहीं थी। अब इनके हाथ में बहुत ताकत है। अब इनके पास एटम बम हैं, इनके पास हाइड्रोजन बम हैं। इनके पास अनूठी ताकत हाथ में आ गई है। अब ये मनुष्य-जाति को छोड़ेंगे नहीं, ये जरूर एक तरह की शांति दुनिया में ला देंगे--मरघट की शांति! कोई न बचे और सब शांत हो जाए!

एक डाक्टर के घर में एक महिला सुबह-सुबह अपने बच्चे को लेकर पहुंच गई थी। महिला तो अपनी बीमारी के संबंध में बातें करने लगी और बच्चा जो था वह डाक्टर की प्रयोगशाला में घुस गया। डाक्टर डरा-डरा महिला से बातें कर रहा है, बच्चे की अंदर से आवाजें आ रही हैं। कहीं कोई बोतल गिर रही है, कहीं कोई कुर्सी गिर रही है, कहीं किसी किताब के फाड़े जाने की आवाज आ रही है। डाक्टर बेचैन है, लेकिन महिला जरा भी चिंतित नहीं है उसके बच्चे की ये आवाजें सुन कर।
लेकिन जब बहुत जोर से अलमारी गिरी और कई शीशियां टूट गईं, तब उस महिला
ने कहा कि मालूम होता है मुन्ना भीतर घुस गया है।
महिलाओं की यही खूबियां हैं, उनके मुन्ना क्या करते हैं उनको पता ही नहीं चलता। और किसी दूसरे के घर में करते हों तब तो बिल्कुल पता नहीं चलता कि उनके मुन्ना क्या कर रहे हैं।
उसने कहा, मालूम होता है मुन्ना भीतर चला गया है। कोई खतरा तो नहीं है? कोई अशांति, कोई गड़बड़ तो नहीं कर रहा है? डाक्टर ने कहा, अब आप बेफिकर रहें, मुन्ना बहुत ही जल्दी उस अलमारी के पास पहुंच जाएगा जहां जहर की बोतलें रखी हैं। बहुत जल्दी शांति हो जाएगी। अब घबराएं मत, आप बैठी रहें। वह महिला घबराई और अंदर भागी, लेकिन तब तक मुन्ना ने एक जहर की बोतल पी ली थी और मुन्ना समाप्त हो गया था।
आदमी की हालत भी यहां आ गई है। ये राजनीतिक मुन्ना बिल्कुल जहर की बोतल के करीब पहुंच गए हैं। ये अकेले पीकर मर जाते तो कोई खतरा नहीं था, इनके साथ पूरी आदमियत को भी मरना पड़ेगा। अब तक तो ठीक था कि थोड़ी-वोड़ी बोतलें तोड़ रहे थे, रजिस्टर फाड़ रहे थे, ठीक था, लेकिन अब ये बिल्कुल जहर की बोतल के पास पहुंच गए हैं। जिस दिन से एटम बम के करीब पहुंच गया है राजनीतिक का हाथ, उस दिन से आदमियत को शांत करने की एक सुविधा उन्हें मिल गई है, बिल्कुल शांति आ जाएगी। मुन्ना बहुत जल्दी शांत हो जाएंगे, क्योंकि वे जहर की बोतल के पास पहुंच गए हैं। लेकिन उनके साथ पूरी आदमियत को शांत हो जाना पड़ेगा। और यह वह शांति नहीं होगी जिसकी हजारों वर्ष से हमने कामना की है और सपने देखे हैं। यह वह शांति नहीं होगी जिसमें फूल होंगे, सुगंध होगी। यह वह शांति नहीं होगी जिसमें गीत होंगे, नृत्य होंगे। यह वह शांति होगी जैसी कब्रिस्तान पर होती है, जैसी मरघट पर होती है, सब सन्नाटा होता है, क्योंकि वहां कोई मौजूद ही नहीं होता।
बड़ी ताकत आदमी के हाथ में लग गई है, इसलिए खतरा पैदा हो गया है। अगर इन पागल राजनीतिज्ञों के हाथ में यह ताकत बनी रहती है तो दुनिया की बहुत आशा नहीं है कि दस-पच्चीस वर्ष से भी ज्यादा बच सकेगी यह पृथ्वी। दस-पच्चीस वर्ष बच जाना भी बिल्कुल सांयोगिक है, चमत्कार है।
पचास हजार उदजन बम तैयार हैं। एक उदजन बम चालीस हजार वर्गमील में समस्त जीवन को नष्ट करता है। और साधारण रूप से नष्ट नहीं करता, असाधारण रूप से नष्ट करता है। और आदमियों को नष्ट नहीं करता, कीड़ों को, मकोड़ों को, छोटे-छोटे पतिंगों को, पौधों को, सबको नष्ट करता है। जीवन मात्र को नष्ट करता है।
घर में हम पानी गर्म करते हैं, और पानी उबलने लगता है, सौ डिग्री पर जाकर पानी भाप बनने लगता है। सौ डिग्री की गर्मी में किसी को हम डाल दें तो उसके मन को क्या होगा? कैसा आनंद आएगा उसे? कैसी कविताएं सुनाई पड़ेंगी? कैसे सुख के झरने फूटेंगे उसके भीतर? लेकिन सौ डिग्री की गर्मी कोई गर्मी नहीं है। पंद्रह सौ डिग्री की गर्मी पर लोहा पिघल कर पानी हो जाता है, पंद्रह सौ डिग्री पर लोहा पिघल कर पानी की तरह बहने लगता है। अगर उस पानी में हम किसी को डाल दें तो क्या होगा? लेकिन पंद्रह सौ डिग्री गर्मी भी कोई गर्मी नहीं है, पच्चीस सौ डिग्री गर्मी पर लोहा भी भाप बन कर उड़ने लगता है। पच्चीस सौ डिग्री गर्मी आपके घर में जला दी जाए तो क्या होगा? लेकिन पच्चीस सौ डिग्री गर्मी भी कोई गर्मी नहीं है, एक उदजन बम के विस्फोट से जो गर्मी होती है वह होती है दस करोड़ डिग्री। दस करोड़ डिग्री गर्मी पैदा होती है एक उदजन बम के विस्फोट से, और उसका क्षेत्र होता है चालीस हजार वर्गमील।

ऐसे पचास हजार उदजन बम, ये सीधे-सादे दिखते हुए, दिन-रात मुस्कुराहट में फोटो उतरवाते हुए राजनीतिज्ञों के हाथ में ये उदजन बम हैं। और इन उदजन बमों का ये क्या करेंगे? इनका क्या परिणाम होगा? क्या होगा इस दुनिया का? यह जमीन छोटी है। जितनी बड़ी ताकत अणु बमों की हमारे पास है उसके लिए यह जमीन बहुत छोटी है। इस तरह की सात पृथ्वियों को नष्ट करने में हम समर्थ हो गए हैं। आदमियों की संख्या छोटी है। अभी कुल तीन, साढ़े तीन अरब तो आदमियों की संख्या है। हमने पच्चीस अरब आदमियों को मारने का इंतजाम कर रखा है। कोई पूछे इनसे कि इतना बड़ा इंतजाम क्यों किया? ये कहेंगे कि कोई भूल-चूक करना ठीक नहीं है। मान लो एक आदमी एक दफा में न मरे तो हम दुबारा मारेंगे, तिबारा मारेंगे, सात बार मारने का हमने इंतजाम कर रखा है। हालांकि एक आदमी एक ही बार में मर जाता है, अब तक ऐसा हुआ नहीं कि किसी आदमी को दुबारा मारना पड़ा हो। लेकिन फिर भी भूल-चूक नहीं होनी चाहिए, गणितज्ञ हैं, समझदार हैं, कैलकुलेट करते हैं, उन्होंने सब हिसाब लगा लिया। उन्होंने कहा, एक-एक आदमी को सात-सात दफे मारने का इंतजाम कर लो, कोई बच न जाए।
तो हमारे पास अतिरिक्त शक्ति है हत्या और विनाश की। और वह किसके हाथ में है? वह उनके हाथ में है जिनका मन न तो प्रेम से भरा है, जिनका मन न तो आनंद से भरा है, जिनका मन न तो शांत है, जो रुग्ण हैं, अस्वस्थ हैं, विक्षिप्त हैं। इन विक्षिप्त राजनीतिज्ञों के हाथ में छुरे थे तभी इन्होंने काफी गजब के काम किए, तलवारें थीं तभी काफी गजब के काम किए, छोटी- मोटी बंदूकें थीं तभी इन्होंने दुनिया को रौंद डाला। अब तो इनके पास ऐसी ताकत है कि ये क्या कर सकते हैं जिसका कोई हिसाब नहीं।
युद्ध नहीं रुक सकते, अगर राजनीतिज्ञ जैसा है वह वैसा ही बना रहेगा। राजनीतिज्ञ का मूल्य समाप्त होना चाहिए। उसकी प्रतिष्ठा शून्य हो जानी चाहिए। वह एक कार्यकारी की प्रतिष्ठा होनी चाहिए, एक रसोइये की, एक मेहतर की, एक डाक्टर की, एक दुकानदार की, बस इससे ज्यादा सम्मान राजनीतिज्ञ को देना खतरनाक है। क्योंकि सम्मान के कारण ही पागल लोग राजनीतिज्ञ होने को उत्सुक होते हैं। वे जो एंबीशस लोग हैं वे इसीलिए उत्सुक होते हैं कि यहां आदर मिलेगा, यहां ताकत मिलेगी, यहां सम्मान मिलेगा। दुनिया को अगर युद्धों से बचाना है तो राजनीति का मूल्य एकदम क्षीण हो जाना चाहिए, डिवैल्युएशन हो जाना चाहिए।
एक गांव में, रोम में एक बार ऐसा हुआ कि रोम की नारियों ने ऐसे कपड़े, इतने भोंडे कपड़े ईजाद कर लिए, इतने अश्लील कपड़े ईजाद कर लिए कि उन नारियों की तरफ देखना भी अत्यंत कुरूप, अत्यंत अरुचिपूर्ण हो गया, अत्यंत अशिष्ट हो गया। लेकिन दौड़ पैदा हो गई। वे नारियां नग्न भी खड़ी हो जाएं तो उनको देखना इतना अशिष्ट नहीं होता, जितना उन्होंने ईजाद कपड़े कर लिए थे। सम्राट बहुत हैरान हो गया रोम का कि क्या करे क्या न करे! आखिर उसने अपने वजीरों से सलाह ली कि मैं क्या करूं? वजीरों ने कहा कि जो नारी इस तरह के कपड़े पहने उस पर सौ रुपये जुर्माना कर दिए जाएं। राजा ने नगर में घोषणा करवा दी कि इस तरह के कपड़े फलां तिथि से जो भी नारी पहने दिखाई पड़ेगी, उस पर सौ रुपये का जुर्माना होगा।
राजा सोचता था कि जुर्माने से नारियां डर जाएंगी। नारियां जुर्मानों
से क्यों डरने लगीं! नारियों में उलटी दौड़ शुरू हो गई। जिस नारी का जुर्माना हो जाता वह दूसरों के ऊपर गौर से देखती और कहती, मेरा तीन बार जुर्माना हो गया! जिसका सात बार हो गया वह कहती, तेरा क्या हुआ, मेरा तो सात बार जुर्माना हो गया! वह जुर्माना प्रतिष्ठा बन गया। गरीब औरतें अपने पतियों से कहने लगीं, दुर्भाग्य कि हमारी शादी तुम्हारे साथ हुई, एक भी बार जुर्माना नहीं हो रहा है हमारा! हमारा जुर्माना कब होगा यह बताओ? कपड़े लाओ, हमारा जुर्माना हो। जो जितनी अमीर महिलाएं थीं वे रोज जुर्माना देने लगीं। नगर में प्रतिष्ठा हो गई कि फलानी स्त्री का इतनी बार जुर्माना हो गया, वह इतने धनी की पत्नी है। यह धन की प्रतिष्ठा हो गई कि कौन कितना जुर्माना चुका सकता है।
तीन महीने के भीतर तो गांव पागल हो गया। गरीब की औरतें भी बेचारी पहन
कर निकल आईं। क्योंकि अब क्या करें, नहीं तो दुनिया कहती कि तुम गरीब हो?

औरतें एक-दूसरे से पूछने लगीं, तुम्हारा अभी जुर्माना नहीं हुआ? फलानी पड़ोसन का अब तक एक भी दफा जुर्माना नहीं हुआ, बेचारी बड़ी गरीब है। टेलरों की दुकान पर तख्तियां लग गईं कि यहां वे कपड़े बनाए जाते हैं जिन पर निश्चित जुर्माना होता है।
राजा तो बहुत घबरा गया, उसने कहा कि यह क्या पागलपन हुआ! उसने एक फकीर
को जाकर पूछा कि यह क्या पागलपन हुआ! हमने तो रोकने के लिए लगाया था। उस फकीर ने कहा कि एक काम करो, नगर में पर्चा बंटवा दो, जगह-जगह तख्ती लगवा दो कि इस तरह के जो कपड़े पहनने वाली वेश्याएं हैं उन पर कोई भी जुर्माना नहीं होगा, वेश्याओं को स्वतंत्रता दी जाती है। गांव में तख्ती लगा दी गई कि इस तरह के कपड़े वेश्याएं पहन सकती हैं, उनको स्वतंत्रता दी जाती है, उनका अब कोई जुर्माना नहीं होगा। तीसरे दिन गांव से कपड़े नदारद हो गए। क्योंकि कोई भी स्त्री वेश्या कहलाने को राजी नहीं थी, कपड़ों की प्रतिष्ठा शून्य हो गई।
एक हाईस्कूल के पास... एक बड़े राजपथ के किनारे एक हाईस्कूल था। लड़कियों का हाईस्कूल था। लड़कियां बीच सड़क से सड़क पार करती थीं स्कूल में आते-जाते, वह बहुत खतरनाक था, ट्रैफिक ज्यादा था वहां। प्रिंसिपल ने बहुत समझाने की कोशिश की कि यहां से मत निकलो, चौरस्ते पर जाओ--चौरस्ता थोड़ी दूर था--वहां से रास्ता पार करो, बीच में से रास्ता पार मत करो। लेकिन लड़कियां सुनती नहीं थीं। रोज खतरे होने लगे, एक्सीडेंट होने लगे। लेकिन लड़कियां वहीं से पार करती थीं।
फिर उस प्रिंसिपल ने एक मनोवैज्ञानिक को पूछा कि मैं क्या करूं? उसने
एक तख्ती बना कर दे दी। कहा, इस तख्ती को वहां लगा दो। उस तख्ती पर लिखा हुआ थाः कैटिल क्रासिंग; यह जानवरों को पार करने की जगह है। बस लड़कियों ने वहां से पार करना बंद कर दिया। वे चौरस्ते पर जाकर पार करने लगीं। क्योंकि वहां से गाय-भैंसों के निकलने का रास्ता लिखा हुआ है, वहां से जो भी निकले, लोग समझें कि गाय-भैंसें जा रही हैं।
मूल्य गिरना चाहिए किसी चीज का। राजनीति की तरफ पागल और एंबीशस लोगों
की जाने की आकांक्षा कम हो, इसके लिए जरूरी है कि राजनीतिज्ञ का मूल्य कम किया जाए, राजनीतिज्ञ को सम्मान और आदर कम किया जाए। न तो अखबारों में इतनी तस्वीरों की जरूरत है, न अखबारों में इतने उनके भाषणों की जरूरत है, न अखबारों में उनके उपद्रवों की इतनी जरूरत है, न मुल्क भर में उनकी इतनी चर्चा की जरूरत है। राजनीतिज्ञ से वैसे ही देशों को सावधान हो जाना चाहिए जनता को, जैसे बीमारियों से लोग सावधान होते हैं। अपने बच्चों को दिखा देना चाहिए कि सम्हल कर अंदर आ जाओ घर के, नेता जी निकल रहे हैं वहां से। कहीं नेता जी की सभा हो रही हो तो घर के लोगों को दरवाजे बंद कर लेने चाहिए, घर के भीतर आ जाओ, नेता जी की सभा हो रही है। नेता से बचाने की जरूरत है, राजनीतिज्ञ से बचाने की जरूरत है।
पहली बात हैः राजनीतिज्ञ का मूल्य गिर जाना चाहिए।
बुद्ध एक गांव में गए एक बार। भिखारी थे वे तो। गांव के सम्राट ने सुना कि बुद्ध आ रहे हैं। उसने अपने वजीर से पूछा कि क्या मुझे भी बुद्ध के स्वागत करने के लिए जाना पड़ेगा? क्या यह उचित होगा?
वजीर ने कहा, आप यह पूछते हैं, यही सुन कर मुझे आश्चर्य होता है। जिसने सारे धन-वैभव को दो कौड़ी का समझा, जिसने स्वर्ण को मिट्टी समझा, जिसने प्रतिष्ठा को कीमत नहीं दी, जिसने राजपदों को मूल्य नहीं दिया, वह जब गांव में आ रहा हो तो सभी को उसके स्वागत के लिए जाना चाहिए। आपको भी जाना चाहिए, ताकि लोगों को यह पता चले कि असली सम्मान, असली आदर पद का नहीं है, असली सम्मान विनम्रता का है। असली सम्मान अहंकार का नहीं है, असली सम्मान निर-अहंकार का है। आपको जाना चाहिए।
राजा ने अपनी पत्नी से पूछा कि वजीर कहता है कि मैं जाऊं, लेकिन क्या
यह उचित होगा? मैं एक सम्राट और एक भिखारी के स्वागत के लिए जाऊं?
उसकी रानी ने कहा, तुम्हें शर्म आनी चाहिए कि तुम उसे भिखारी कहते हो! भिखारी हम हैं, चौबीस घंटे मांग रहे हैं कि और मिल जाए, और मिल जाए, और मिल जाए। वह भिखारी नहीं है, वह सम्राट है! उसने मांगना छोड़ दिया! वह कुछ भी

नहीं मांगता कि मुझे मिल जाए, उसकी सब मांग समाप्त हो गई। उस सम्राट के स्वागत के लिए हम सब भिखारियों को जाना चाहिए।
वह सम्राट स्वागत के लिए गया।
एक दुनिया पैदा होनी चाहिए जिसमें उन सम्राटों का आदर हो जिनके पास कुछ भी नहीं है, बजाय उन सम्राटों के जिनके पास पद हैं, प्रतिष्ठाएं हैं। राजनीतिज्ञ को आदर देना पूरे देश के चित्त को विक्षिप्त करने की दिशा देनी है, पूरी मनुष्यता को पागल करने की दिशा देनी है। क्योंकि तब बच्चों का मन भी वहीं आकर्षित होता है, वहीं दौड़ता है।
राधाकृष्णन एक शिक्षक थे, फिर वे राष्ट्रपति हो गए, तो सारे हिंदुस्तान में शिक्षकों ने समारोह मनाना शुरू कर दिया, शिक्षक-दिवस। भूल से मैं दिल्ली में था और मुझे भी कुछ शिक्षकों ने बुला लिया। मैं उनके बीच गया और मैंने उनसे कहा कि मैं हैरान हूं, एक शिक्षक राजनीतिज्ञ हो जाए तो इसमें शिक्षक-दिवस मनाने की कौन सी बात है? इसमें शिक्षक का कौन सा सम्मान है? यह शिक्षक का अपमान है कि एक शिक्षक ने शिक्षक होने में आनंद नहीं समझा और राजनीतिज्ञ होने की तरफ गया। जिस दिन कोई राष्ट्रपति शिक्षक हो जाए किसी स्कूल में आकर और कहे कि मुझे राष्ट्रपति नहीं होना, मैं शिक्षक होना चाहता हूं, उस दिन शिक्षक-दिवस मनाना। अभी शिक्षक-दिवस मनाने की कोई भी जरूरत नहीं है। जिस दिन एक राष्ट्रपति कहे कि मैं स्कूल में शिक्षक होना चाहता हूं, उस दिन तो शिक्षक का सम्मान होगा। लेकिन स्कूल का शिक्षक कहे कि हमको मिनिस्टर होना है, हमको राष्ट्रपति होना है, तो इसमें शिक्षक का कौन सा सम्मान है? इसमें राजनायक का सम्मान है, राष्ट्रपति का सम्मान है, शिक्षक का कोई भी सम्मान नहीं है।
जब एक शिक्षक राष्ट्रपति हो जाता है और हम सम्मान देते हैं, तो दूसरे शिक्षक भी पागल हो जाते हैं कि हम भी कुछ हो जाएं, न सही तो मिनिस्टर ही हो जाएं, न सही मिनिस्टर तो डिप्टी मिनिस्टर हो जाएं, अगर इतना भी न हो सके तो कम से कम डिप्टी डायरेक्टर हो जाएं या डायरेक्टर हो जाएं, कुछ न कुछ तो हो जाएं, क्योंकि हमारे अग्रज जो थे, हमारे जो आगे के थे वे राष्ट्रपति तक हो गए। एक शिक्षक राष्ट्रपति हो गए, अब दूसरे शिक्षक राष्ट्रपति हो गए, अब सारे शिक्षक चक्कर काट रहे हैं मुल्क में कि तीसरा भी शिक्षक राष्ट्रपति हो जाए।
यह पागलपन जब हम पैदा करेंगे राजनायक को सम्मान देकर, तो दुनिया में कभी भी--कभी भी--शांति नहीं हो सकती। क्योंकि एंबीशस आदमी लड़ना चाहता है, महत्वाकांक्षी लड़ना चाहता है, शांत नहीं होना चाहता। शांत हो जाएगा तो महत्वाकांक्षा मर जाएगी।
इसलिए पहली बात तो यह कहना चाहता हूं कि जितना सम्मान दुनिया में राजनीतिज्ञ को दिया जा रहा है वह एकदम विलीन हो जाना चाहिए। अगर मनुष्यों को थोड़ी भी समझ हो तो राजनीतिज्ञ के सम्मान से मुक्त हो जाना जरूरी है, अगर युद्धों से बचना हो और दुनिया में कोई शांति स्थापित करनी हो। जिस दिन राजनीतिज्ञ का सम्मान नहीं होगा, जिस दिन राजनीतिज्ञ को ऐसा लगेगा कि अगर मैं लोगों को युद्ध में ले गया तो लोग कहेंगे, चलो, नीचे वापस उतरो, तुम्हें युद्ध में ले जाने का कोई हक नहीं है किसी को! उस दिन दुनिया में युद्ध बंद हो जाएंगे। अभी राजनीतिज्ञ जितना किसी मुल्क को युद्ध में ले जाता है, उतना उसको आदर मिलता है, मुल्क पागल होकर उसको आदर देता है कि यह असली नेता है, यह हमारा बचाने वाला है, यह हमारा सेवियर है, यह हमारा रक्षक है। पहली बात!
और दूसरी बात--यह तो बहुत मूल्यवान है कि राजनीति का अवमूल्यन हो तो विश्व-शांति हो सकती है, नहीं तो कभी नहीं हो सकती--और दूसरी बात, अकेली राजनीति के अवमूल्यन से कुछ भी नहीं हो सकता, दूसरी बात भी इतनी ही जरूरी है। और वह यह है कि अब तक दुनिया में अच्छे आदमी को, भले आदमी को, साधु व्यक्ति को हमने जीवन से भागने की सलाह दी है कि तुम जीवन से भागो, दूर हट जाओ। अच्छे लोग जीवन से हट जाते हैं, बुरे लोग जीवन को चलाने वाले हो जाते हैं। अच्छे लोग जगह खाली कर देते हैं, बुरे लोग जगहों पर कब्जा कर लेते हैं। साधु भाग जाते हैं, असाधु डट कर बैठ जाते हैं। वे भागते नहीं, वे कहते हैं, हम नहीं भागेंगे, हम यहीं बैठेंगे। अच्छा आदमी भागता रहा, बुरा आदमी

ठहर गया वहीं। बुरे आदमियों के हाथों में सत्ता पहुंचने का एकमात्र कारण है कि अच्छा आदमी सत्ता के, शक्ति के, जीवन में मूल्यवान समस्त स्थानों को छोड़ कर भाग जाता है।
इसके दुष्परिणाम होने स्वाभाविक हैं। बुरे आदमी के हाथ में जब भी ताकत होगी तब युद्ध होंगे, अशांति होगी। शक्ति होनी चाहिए अच्छे आदमी के हाथ में, जीवन की बागडोर होनी चाहिए स्वस्थ साधु-चरित्र व्यक्ति के हाथ में। लेकिन यह कैसे हो सकता है? कोई साधु-चरित्र व्यक्ति आपसे आकर नहीं कहेगा कि मुझको वोट दीजिए, मैं अच्छा आदमी हूं। यह कैसे हो सकता है? सारी दुनिया में जो लोग अपने ही अहंकार का प्रचार करने में समर्थ हैं, वे लोग आपसे आकर कहते हैं--वोट दीजिए, हमें पद पर पहुंचना है, मैं अच्छा आदमी हूं, दूसरा आदमी बुरा है। और ये लोग इकट्ठे होते चले जाते हैं, यह ताकत इकट्ठी करते चले जाते हैं। अच्छा आदमी तो आपके पास आकर नहीं कहेगा।
इस बात को कसौटी समझ लें कि जब कोई आदमी आकर कहे कि मैं अच्छा आदमी हूं, यह बुरे आदमी का लक्षण है। जब कोई आदमी कहे कि मुझे वोट दें, यह बेईमान और चालाक आदमी का लक्षण है। सारी दुनिया में मनुष्य को यह समझ लेना है कि अच्छे आदमी के हाथ में अगर ताकत देनी है, तो वह आपके पास आकर नहीं कहेगा। आपको उसके पास जाकर कहना होगा कि हमारा आग्रह स्वीकार करें और यह थोड़ा सा काम है, इसको आप करें, यह काम हम आपके हाथ में देना चाहते हैं।
दुनिया भर में अच्छे आदमी के हाथ में काम देने की जरूरत पड़ गई है। तो बुरा आदमी अपने आप पीछे हट सकता है। लेकिन अच्छे आदमी ढोल बजा कर आपके घरों के सामने आकर हाथ नहीं जोड़ेंगे कि आप हमें वोट दें, आप हमें पहुंचाएं। अच्छे आदमी को तो पहुंचाना कठिन है, उसके हाथ में तो ताकत देने के लिए उसे राजी करना कठिन है। यही खतरा हो गया, बुरे आदमी को इससे सुअवसर मिल गया है। अच्छा आदमी जाता नहीं, बुरा आदमी सामने खड़ा हो जाता है, शोरगुल मचाने लगता है।
फिर मजा यह है कि दो बुरे आदमी शोरगुल मचाने लगते हैं। अब आप दोनों में से किसी को भी चुन लें, वे सब चचेरे भाई हैं, वे सब कि.जन ब्रदर्स हैं। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। चाहे आप अ को चुन लें, चाहे आप ब को, चाहे आप कांग्रेसी को, चाहे आप जनसंघी को, चाहे आप सोशलिस्ट को, चाहे कम्युनिस्ट को, वे सभी चचेरे भाई हैं, वे सभी वे लोग हैं जो सत्ता के दीवाने हैं। वे आपके पास आकर चिल्लाते हैं कि हमको वोट दो! दूसरा कहता है, हमको वोट दो! आप उन्हीं में से चुनाव कर लेते हैं और भूल हो जाती है।
सारी जनता में, सारे जगत में लोकमानस तैयार किया जाना चाहिए कि वह खोजे कि कौन लोग हैं जो जीवन को चला सकते हैं और जीवन को दिशा दे सकते हैं। उनको पकड़े, उनसे प्रार्थना करे--वे राजी नहीं होंगे, वे हाथ जोड़ेंगे, वे क्षमा मांगेंगे कि हमको क्षमा कर दें, हम जहां हैं वहां भले हैं--लेकिन अच्छे लोगों को उनकी कुटियों से, उनके झोपड़ों से, उनके जंगलों से निकाल कर लाना होगा। अच्छे लोगों के हाथ में ताकत पहुंचानी होगी। तो दुनिया बच सकती है, नहीं तो दुनिया नहीं बच सकती। चाहे राजनीतिज्ञ कितनी ही कांफ्रेंसेस करें, कितने ही यू एन ओ बनाएं, कितने ही चिल्लाएं कि शांति चाहिए! शांति चाहिए! सब चिल्लाएं वे, इससे कुछ भी नहीं हो सकता; पागल पायलट के हाथ में हवाई जहाज चल रहा है और हम सब उसमें बैठे हुए हैं।
दूसरी बात हैः अच्छे आदमी के हाथ में पहुंचानी है जीवन की दिशा। और अगर यह जीवन की दिशा पहुंचाई जा सके तो विश्व-शांति आज स्थापित हो सकती है! इसके लिए कल तक ठहरने की भी कोई जरूरत नहीं है।
लेकिन हजारों वर्ष से यह उपक्रम चल रहा है कि भला आदमी छोड़ कर भाग जाता है। और भला आदमी आपसे आकर कहता नहीं कि मैं कुछ करूं या मैं कहीं जाऊं, वह चुपचाप एक कोने में सरक जाता है। वह पीछे खड़ा हो जाता है। उसे मतलब भी नहीं, उसे प्रयोजन भी नहीं है कि वह आगे खड़ा हो। बुरे आदमी बन-ठन कर, ठीक नेता के कपड़े पहन कर आगे खड़े हो जाते हैं। मुस्कुराने लगते हैं, जैसा कि नेता मुस्कुराते हैं। हाथ जोड़ने लगते हैं, जैसा कि नेता हाथ जोड़ते हैं। और भोली जनता, सीधे-सादे लोग, वे उनकी मुस्कुराहट के धोखे में आ जाते हैं, उनके कपड़ों के धोखे में आ जाते हैं। उन्हें पता नहीं है कि सफेद कपड़े काले हृदयों को छिपाने के काम में लाए जाते हैं। उन्हें पता नहीं है कि

मुस्कुराहटें भीतर के बुरे इरादों को छिपाने का काम करती हैं। उन्हें पता नहीं है कि जुड़े हुए हाथ किसी बड़े अहंकार को छिपाने की और ओट देने की तरकीबें हैं। लेकिन यह चलता है, यह चलता रहा है। और अगर यह आगे भी चलता रहा तो मैं तो नहीं देखता हूं कि कोई रास्ता है कि विश्व-शांति कैसे हो सकती है।
सारे जगत में लोकचेतना, लोकमानस, सामान्य मनुष्य की जो समझ और बूझ है, उसको जगाना जरूरी है, उसको बताना जरूरी है कि क्या करे वह। राजनीतिज्ञ का सम्मान विलीन करे, भले लोगों से आग्रह करे कि वे जीवन के हाथ मजबूत करें, जीवन की बागडोर अपने हाथ में लें। ऐसे लोग जिन्हें ताकत की कोई आकांक्षा नहीं, उनके हाथ में ही ताकत सुरक्षित हो सकती है। ऐसे लोग जिन्हें शक्ति का कोई मूल्य नहीं, उनके हाथ में ही शक्ति उपयोगी, सदुपयोगी हो सकती है। ऐसे लोग जिन्हें किन्हीं के ऊपर बैठने की कोई कामना नहीं, वे ही लोग ऊपर बिठाने के योग्य हो सकते हैं। अच्छे लोगों के हाथ में जगत देना जरूरी है, अन्यथा जगत नहीं बच सकता है, अन्यथा बचने की कोई संभावना नहीं है। ये दो बातें हैं।
और तीसरी बात आपसे मुझे कहनी है।
दो बातें--राजनीतिज्ञ का मूल्य कम, भले आदमी को जीवन की दिशा में संलग्न करने की जरूरत है, उसे भागने से बचाने की जरूरत है। और तीसरी बात, तीसरी बात आपको भी अपने मन को राजनीति की जो मूढ़ता है और जो चक्कर है उससे ऊपर उठाने की जरूरत है। क्योंकि हम सब छोटे-मोटे अर्थों में छोटे-मोटे राजनीतिज्ञ हैं। जितनी दूर तक हमारी ताकत चलती है, वहां हम भी बादशाह हैं, वहां हम भी राजनीति चलाते हैं। एक-एक आदमी अगर अपने-अपने छोटे घेरे में राजनीति चलाएगा, तो छोटे-छोटे घेरे में कलह होगी, संघर्ष होगा। छोटे-छोटे घेरे में कांफ्लिक्ट होगी, छोटे-छोटे घेरे में हिंसा होगी। और यही सारी हिंसा मिल कर फिर बड़े युद्धों में परिवर्तित हो जाती है।
तो तीसरी बात आपसे निजी कहनी है कि आपकी जिंदगी में जितनी पॉलिटिक्स हो, जितनी राजनीति हो... क्योंकि राजनीति का मतलब बेईमानी, राजनीति का मतलब चालाकी, राजनीति का मतलब पाखंड, राजनीति का मतलब उलटे-सीधे रास्तों से गलत चेहरों के द्वारा काम करना, सीधा और साफ नहीं। तो एक-एक आदमी को सीधे-साफ चेहरे से, जैसा वह है--बिना वस्त्रों के, बिना ओट के--अपने को सीधा-साफ, सीधे रास्तों से जीवन में संयुक्त होना और प्रकट होने की कोशिश करनी चाहिए। एक-एक आदमी को अपने जीवन से राजनीति हटा देनी चाहिए। तो बड़े पैमाने पर सारे जगत से राजनीति हट सकती है।
मैंने जो दो बातें कहीं, उनसे आपको ऐसा लगेगा--वे तो मैंने दूसरों के लिए कहीं, आपके लिए क्या? और दूसरों की बुराई सुनना तो बहुत आनंदपूर्ण होता है। बहुत मजा आता है कि यह दिल्ली के लोगों की बात हो रही है। लेकिन आप भी एक छोटी सी दिल्ली बना कर बैठे हैं, इसका आपको पता नहीं होता। कि यह मिनिस्टरों की बात हो रही है। और आप भी मौका पाते से मिनिस्टर हो जाते हैं, इसका आपको पता नहीं चलता। मौका पाते ही आप भी उतनी ही चालाकी, उतनी ही कनिंगनेस में उतर जाते हैं, इसका आपको पता नहीं चलता।
अपने नौकर के साथ आप क्या करते हैं? अपने बच्चे के साथ आप क्या करते हैं? अपनी पत्नी के साथ आप क्या करते हैं? आप क्या कर रहे हैं उनके साथ जो आपसे ताकत में छोटे हैं और जिनके ऊपर आपकी ताकत है? आप जो कर रहे हैं वह वही है जो राजनीतिज्ञ और बड़े पैमाने पर कर रहा है। तो एक-एक आदमी को अपनी जिंदगी में राजनीति से मुक्त होना चाहिए।
अंत में, राजनीति का सीधा अर्थ हैः महत्वाकांक्षा, एंबीशन।
और धर्म का अर्थ हैः गैर-महत्वाकांक्षा, नॉन-एंबीशन।
राजनीतिज्ञ जीता है--किसी से आगे निकल जाऊं। धार्मिक जीता है--अपने से आगे निकल जाऊं। राजनीतिज्ञ कहता है, मुझे दूसरों के आगे जाना है। धार्मिक कहता है, मुझे अपने से आगे जाना है, मुझे दूसरे से क्या प्रयोजन! मैं जहां आज हूं, कल वहीं न रह जाऊं, अपने से आगे निकल जाऊं, अपने को ट्रांसेंड कर जाऊं। जो मैंने आज जाना है, कल और ज्यादा जानूं। जो मैंने आज जीया है, वह मैं कल और ज्यादा जीऊं। जितनी गहराई मुझे आज मिली, कल मैं और गहरा हो जाऊं। जितनी ऊंचाई मैंने आज पाई, कल मैं और ऊंचा हो जाऊं--अपने से, किसी दूसरे से

इसकी कोई तुलना नहीं, कोई संघर्ष नहीं, कोई स्पर्धा नहीं। दुनिया में दो ही तरह के लोग हैं--राजनीतिज्ञ और धार्मिक। दुनिया में दो ही तरह के माइंड्स हैं--पोलिटिकल और रिलीजस। तो आप अपने भीतर खोजते रहें कि आप भी तो पोलिटिकल माइंड नहीं हैं? आप भी तो राजनीतिज्ञ नहीं हैं?
आपके भीतर जो राजनीतिज्ञ है उसे धार्मिक बनाना है; और सारे जगत से राजनीति का मूल्य कम करना है; और सारे जगत में साधु, सरल, सीधे, साफ लोगों के हाथ में जीवन की दिशा और बागडोर देनी है। अगर ये तीन काम हो सकते हैं तो विश्व-शांति इतनी आसान है जितनी और कोई चीज आसान नहीं है। और अगर ये तीन काम नहीं हो सकते हैं तो सपने छोड़ दें विश्व-शांति के! युद्ध चलेंगे, युद्ध होंगे और शायद अंतिम युद्ध होगा जिसके आगे फिर कोई युद्ध नहीं होंगे।
एक अंतिम बात, और अपनी चर्चा मैं पूरी करूंगा। अलबर्ट आइंस्टीन मर कर स्वर्ग पहुंच गया। तो खबर सुनी होगी न आपने कि वह पहुंच गया स्वर्ग, मर गया अलबर्ट आइंस्टीन। उसी ने तो अणु-बम की सारी ईजाद की, वह बूढ़ा दार्शनिक, वैज्ञानिक बड़ा अदभुत था। भगवान उसका रास्ता देखते थे कि यह बूढ़ा आ जाए तो इससे पूछ लें कि सब क्या हाल है जमीन का। उन्होंने पूछा आइंस्टीन को कि क्या हाल हैं दुनिया के? मैं सुनता हूं कि तीसरा महायुद्ध होने वाला है, मेरे प्राण कंपे जाते हैं, नींद हराम हो गई है। सोने की टिकिया भी लेता हूं रात को तो भी नींद नहीं आती है। मुश्किल में पड़ गया हूं। कुछ समझ नहीं पड़ता कि क्या होगा। मैं पागल तो नहीं हो जाऊंगा?
आइंस्टीन ने कहा, क्यों घबराते हैं? हम लोग सोते हैं मजे से जमीन पर,
आप क्यों परेशान हो रहे हैं? तीसरे महायुद्ध में क्या होगा, आइंस्टीन ने कहा, बताना मुश्किल है। लेकिन चौथे में क्या होगा, वह मैं बता सकता हूं। ईश्वर तो बहुत हैरान हो गया! उसने कहा, तीसरे का तुम नहीं बता सकते हो
और चौथे का! क्या चौथे का बता सकते हो?
आइंस्टीन ने कहा, तीसरे के बाबत कुछ भी कहना मुश्किल है, लेकिन चौथे
के बाबत एक बात निश्चित कही जा सकती है कि चौथा महायुद्ध कभी नहीं होगा! युद्ध करने के लिए अंततः आदमियों की जरूरत पड़ती है, बिना आदमियों के युद्ध कैसे हो सकता है। और तीसरे के बाद किसी आदमी के बचने की कोई संभावना नहीं है। जैसी चल रही है यह दिशा आज तक, अगर यह ऐसी ही चलती है तो बूढ़ा आइंस्टीन बिल्कुल ठीक कहता है, चौथा महायुद्ध नहीं होगा। शांति हो जाएगी जगत में। शायद बड़ी शांति हो जाएगी, चांद-तारे बड़ी शांति अनुभव करेंगे। आदमी ने बड़ा शोरगुल मचा रखा है। शायद फिर वृक्ष पैदा हो जाएंगे, उनमें फूल खिलेंगे और वृक्ष बड़ी शांति अनुभव करेंगे। क्योंकि आदमियों ने बड़ा उपद्रव और शोरगुल मचा रखा है। पहाड़ों की चट्टानें और बर्फ की चट्टानें और नदी और झरने बहेंगे, लेकिन बड़ी शांति अनुभव करेंगे। आदमी ने बहुत अशांति मचा रखी है। एक शांति दुनिया में आएगी, लेकिन वह शांति आदमी अनुभव नहीं कर सकेगा। आदमी को छोड़ कर और सब उसका अनुभव कर सकते हैं।
आदमी को अगर शांत होना है तो आदमी को कुछ पाजिटिवली, कुछ विधायक रूप
से करना होगा, परिवर्तन करना होगा अपने जीवन के ढंग में, अपने तौर-तरीके में। आज तक उसने जिस भांति जीवन को संचालित किया है, वह जीवन का संचालन रुग्ण था, विक्षिप्त था, पागल था।
ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं।
इन बातों को आपने इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे मैं बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं।
मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नये समाज की खोज
बारहवां प्रवचन

समाज और सत्य

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

जिसको नेतृत्व कहें, वह मुल्क में है ही नहीं। नेतृत्व ही नहीं है, लीडरशिप ही नहीं है। बहुत ही कमजोर किस्म के लोग ऊपर बैठे हुए हैं। न कोई ढंग की दिशा है, न कोई दृष्टि है। नेता होने भर का एक मजा है। बातचीत भी एकदम सामान्य है। नेतृत्व ही नहीं है देश में। यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। बुरा नेता भी हो, नेता तो हो! वह भी नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

अराजकता को हेल्प करे तब तो बड़ा अच्छा है, लेकिन कर नहीं पाती। क्योंकि इस सारे उपद्रव के भीतर से तानाशाही के सिवाय कुछ भी पैदा नहीं होता। अराजकता इससे नहीं पैदा होती। अराजकता जो दिखती है वह फाल्स है। यह जो सब चल रहा है मुल्क में यह पूर्व-आयोजित है। इससे अनार्की पैदा होती नहीं। अनार्की तो तभी पैदा हो सकती है जब बड़ी सुव्यवस्था हो। उससे ही अनार्की पैदा होती है, नहीं तो नहीं पैदा होती। अभी इस वक्त नहीं पैदा हो सकती है।

अच्छा नेता होने के साथ उसकी पर्सनल लाइफ भी अच्छी होनी जरूरी है?

बिल्कुल जरूरी नहीं है। ये भी इस मुल्क की नासमझियां हैं! इस मुल्क की
ये भी नासमझियां हैं!

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां-हां, आमतौर से होगा, आमतौर से होगा। जितना स्टुपिड आदमी है, उतना
ही जिसको सोसाइटी कैरेक्टर वगैरह कहती है, उसमें फिट बैठ जाएगा--जितना स्टुपिड आदमी होगा!
बुद्धिमान आदमी एकदम फिट नहीं बैठेगा। पच्चीस फर्क उसे दिखाई पड़ेंगे,
वह जिंदगी अपने ढंग से जीना चाहेगा। वह कैरेक्टरलेस है, ऐसा नहीं है सवाल! पर जिसको आप कैरेक्टर कहते हैं, उसको वह बहुत मामूली बात शायद मानेगा। कैरेक्टर का होगा वह, लेकिन कैरेक्टर की डेफिनीशन उसकी बिल्कुल अलग होगी। जिसको हम कैरेक्टर कहते हैं उसको वह कैरेक्टर नहीं भी कह सकता है। क्योंकि जिसको हम कैरेक्टर कहते हैं वह चार-पांच हजार साल पहले के माइंड का ख्याल है। इसलिए मेरा मानना यह है कि हमारी ये अपेक्षाएं गलत हैं। ये अपेक्षाएं हमें नहीं करनी हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, बिल्कुल कहा जा सकता है। जैसे बहुत बुनियादी रूप से व्यक्ति का व्यवहार जितना अमूर्च्छित, जितना जागा हुआ हो, होशपूर्ण हो, अवेयरनेस का हो, उतना उस आदमी को मैं चरित्रवान कहता हूं। क्योंकि मेरा मानना यह है कि एक व्यक्ति जितना होशपूर्वक जीता हो, उतना ही उसके जीवन में दूसरों को दुख देने, पीड़ित करने, परेशान करने के मौके कम से कम होते चले जाते हैं। जैसे कि अगर मैं बहुत होशपूर्वक जीऊं तो क्रोध करना बहुत मुश्किल हो जाएगा, क्योंकि क्रोध करने के लिए बेहोश होना बिल्कुल जरूरी बात है। वह अनिवार्य लक्षण है। नहीं तो मैं क्रोध कर नहीं सकता। क्रोध करूंगा तभी जब बेहोश हो जाऊं, मूर्च्छित हो जाऊं। तो अमूर्च्छित व्यवहार को, कांशस व्यवहार को

मैं चरित्र का एक बुनियादी लक्षण मानता हूं। चाहे दुनिया में कहीं भी चरित्र हो, किसी तरह का हो, कोई रूप हो, उसमें यह बात तो होनी ही चाहिए। दूसरी बात, आमतौर से सारे चरित्र की धारणाएं समय से, काल से, परंपरा से, परिस्थिति से बंधी होती हैं। उन सबमें से कुछ सारभूत खींचा जा सकता है। जैसे जीसस का एक वचन है--कि जो तुम न चाहो कि कोई तुम्हारे साथ करे, वह तुम दूसरे के साथ मत करो। यह एक एसेंशियल क्वालिटी कैरेक्टर की मानी जा सकती है कि मैं आपके साथ वही करने की कम से कम कोशिश तो करूं, जो मैं आपसे मेरी तरफ चाहता हूं। अब इसको किसी समय और काल से बांधने की कोई जरूरत नहीं है। कोई भी काल हो, कोई भी समय हो, कोई भी धारणा हो, यह बात अर्थपूर्ण रहेगी। क्योंकि उस आदमी को हम चरित्रहीन कहेंगे जो आदमी आपसे तो सम्मान चाहता हो और खुद अपमान देता हो; जो आपसे तो प्रेम चाहता हो और खुद घृणा देता हो; जो आपसे तो चाहता हो कि मुझे सुख दो और खुद आपके सुख की जरा भी फिक्र न करे। वह कोई भी हो।
इसका मतलब यह हुआ कि चरित्रवान आदमी हमेशा दूसरे की जगह में अपने को
रख कर सोचेगा--हमेशा! वह यह देखेगा कि मैं इस जगह होता, दूसरे की जगह खड़ा होता, तो क्या चाहता। वह मुझे करना है। और अगर उससे अन्यथा मैं करता हूं तो मैं नीचे गिरता हूं, एकदम नीचे गिरता हूं।
तीसरी बात, जिसको कि हम समय-काल सबसे अलग कर लें, मनुष्य की चरित्रहीनता के चाहे कोई भी रूप हों, वे जहां से पैदा होते हैं, उस रूट कॉ.ज पर ध्यान होना जरूरी है। जैसे क्रोध है या लोभ है या मोह है, ये जो सारी बातें हैं, ये मेरे भीतर कहां हैं? कैसे उठती हैं? क्यों उठती हैं?
दमन करने को मैं चरित्र नहीं कहता। क्योंकि दमित आदमी खतरनाक सिद्ध होते हैं। वह कभी चरित्रवान दिखेगा, लेकिन कभी भी उसमें से विस्फोट हो सकता है। वह सिर्फ दिखने वाला चरित्र होगा। तो चरित्रवान आदमी का तीसरा लक्षण मैं यह मानूंगा कि वह दिखने वाला चरित्र खड़ा न करे, यानी पाखंडी न हो, हिपोक्रेट न हो। यह तीसरी क्वालिटी गिनें हम।
तो चरित्रवान आदमी पाखंडी नहीं होगा। वह जैसा है वैसा होगा और वैसा जाहिर करना पसंद करेगा। जैसा भी है! अगर मैं लोभी हूं, तो मैं कहूंगा कि मैं लोभी आदमी हूं। अगर आपको लोभ से डर हो, तो आपको मुझसे सावधान रहना चाहिए, मैं लोभी आदमी हूं। अगर मैं चोर हूं तो आपके घर में ठहर कर, मैं चोर आदमी हूं, मैं कोई चीज ले जा सकता हूं, इसमें पीछे कोई झंझट और चिंता की बात नहीं है। तो मैं पाखंड को सबसे बड़ी चरित्रहीनता मानता हूं कि मैं वैसा दिखाने की कोशिश करूं जैसा मैं नहीं हूं, वैसा ढोंग रचूं जैसा मैं नहीं हूं। और दो तरह का व्यक्तित्व हो--बनावटी।
चरित्रवान आदमी इकहरे तरह का व्यक्ति होगा। उसकी पर्सनैलिटी एक होगी। और इसके लिए वह सब दुख, सब परेशानियां झेलने को राजी होगा, इकहरे व्यक्तित्व को लेने की हिम्मत जुटाएगा। तो चाहे कैसा ही काल हो, कोई भी व्यवस्था हो, कोई भी चरित्र की मान्यता हो, वह आदमी जैसा है वैसा अपने को बताना पसंद करेगा कि मैं ऐसा आदमी हूं।
इन बातों का अगर हम ध्यान रखें, तब तो नेतृत्व में ये बातें होनी चाहिए। नेतृत्व में क्या, प्रत्येक व्यक्ति में होनी चाहिए। लेकिन जिसको हम आमतौर से चरित्र कहते हैं वह अत्यंत काल-सापेक्ष होता है। और काल के बीतते से ही वह खतरनाक हो जाता है और पाखंडी बनाता है। एकदम पाखंडी बनाने लगता है। क्योंकि समय तो बीत जाता है, उसकी कोई जगह तो नहीं रह जाती, लेकिन वह हमारी छाती पर चढ़ा रह जाता है। और उसको दिखावा करने की जरूरत हो जाती है।
अब जैसे कि हिंदुस्तान के पूरे नेतृत्व को गलत ले जाने का जो कारण हुआ
वह यह हुआ--गांधी जी ने एक तरह की सादगी लोगों के ऊपर थोपी। कोई आदमी सादा हो, यह तो बिल्कुल दूसरी बात है। लेकिन सादगी थोप दी जाए तो बड़ी खतरनाक बात है। जिन लोगों ने सादगी का गांधी जी के साथ व्यवहार किया, उनके मन में विशेष होने की, सुख-सुविधा की, वैभव की, प्रतिष्ठा की, यश की बहुत सी दबी हुई कामनाएं इकट्ठी हो गईं। और इधर वह सादगी, सरलता, झोपड़ा, यह सब चलता रहा। और उधर भीतर यह सब इकट्ठा हो गया। जैसे ही सत्ता हाथ में आई, उसका एकदम विस्फोट हो गया। और दबा है जो हमारे भीतर, वह शक्ति आने पर ही उसका

विस्फोट होता है, वैसे नहीं होता। वैसे विस्फोट होने में तो घबराहट है, क्योंकि मर जाएंगे आप अगर विस्फोट होगा तो!
तो हिंदुस्तान में गांधी जी ने जिन लोगों को खड़ा किया, उनको एक झूठे व्यक्तित्व को आधार बना कर खड़ा कर दिया। ताकत हाथ में आई कि वह सब व्यक्तित्व तो बह गया, और भीतर का असली आदमी बाहर आ गया। और वह जो असली आदमी है वह बिल्कुल उलटा साबित हुआ! वह था ही वैसा।
अब मेरा मानना है कि इससे अच्छा हुआ होता कि हम सीधे-सीधे आदमी को जानते होते कि यह आदमी ऐसा है। और यह स्वाभाविक है, इसमें कुछ खराबी नहीं है। तो नेतृत्व के सामने जो एक पाखंड फैला--कि दिखा कुछ रहे हैं, कर कुछ रहे हैं, हो कुछ रहा है--वह इस मुल्क में नहीं फैलता। सारी दुनिया में हमसे ज्यादा ईमानदारी है इस मामले में। चीजें साफ-सीधी हैं। इधर पांच-छह हजार साल में हमने सब पाखंड खड़ा कर लिया है और इतनी हिपोक्रेसी खड़ी कर ली है-- इतना आश्चर्यजनक है! और ऐसा भी नहीं है कि वह आदमी बहुत कांशस है इस बात के लिए जो कर रहा है। बिल्कुल अनकांशस कर रहा है। दो हिस्से टूट गए हैं, वह दो तरह के व्यवहार कर रहा है। जब वह मंच पर आता है तो एक तरह का आदमी हो जाता है, जनता में एक तरह का आदमी हो जाता है।
एक तो सजग व्यवहार हो, बहुत जागा हुआ आदमी चाहिए, एक-एक क्षण! दूसरे की जगह अपने को रखने की क्षमता चाहिए। और जैसा है वैसा प्रकट करना चाहिए। अगर ये तीन क्वालिटी हैं किसी आदमी में तो मैं मानता हूं कि वह चरित्रवान आदमी है। चाहे वह चोर ही हो, यह मैं नहीं कहता कि चोरी नहीं कर सकता। मैं मानता हूं, हालांकि वह हो नहीं सकता, बहुत मुश्किल है इन क्वालिटीज को सम्हाल कर चोरी करना। बहुत मुश्किल मामला है।
इधर मैं, अभी नागार्जुन की बात चलती थी--कल ही नागार्जुन की बात कर रहा था। वह एक राजधानी से गुजरता है। नंगा भिक्षु है और हाथ में एक लकड़ी का पात्र रखता है, बौद्ध भिक्षु जैसा पात्र रखते हैं। उस गांव की जो महारानी है, वह उससे बहुत प्रभावित है। उसे भोजन के लिए बुलाया है। और वह भिक्षा लेने गया है। तो उसने उसके हाथ से वह भिक्षा-पात्र ले लिया और कहा कि यह तो मैं रखूंगी स्मृति में, आपके लिए मैंने दूसरा भिक्षा-पात्र बनवाया है वह आप ले लें। उसने एक सोने का भिक्षा-पात्र बनवाया है, उसमें बहुत बहुमूल्य मणि-माणिक्य लगाए हैं। वह लाखों रुपये की कीमत का है। वह नागार्जुन के हाथ में दे देती है।
उसको ख्याल था कि शायद वह इनकार करेगा कि यह सोना है, यह मैं नहीं लूंगा। जैसी हमारी अपेक्षा होती है संन्यासी से। लेकिन नागार्जुन तो सब चीजों को शून्यवत मानता है, इसलिए वह इसमें कोई फर्क नहीं करता कि वह लकड़ी का है, कि यह सोने का है, या कुछ है। वह पात्र लेकर चल देता है। वह रानी हैरान भी होती है। उसने एक दफे भी यह नहीं कहा कि यह तो सोने का है और मैं तो भिक्षु हूं और यह मैं नहीं लूंगा।
रास्ते पर सबकी नजरें पड़ती हैं, क्योंकि सूरज की रोशनी में उसका पात्र चमक रहा है और वह नंगा आदमी सोने का पात्र लिए चला जा रहा है। एक चोर उसके पीछे हो लेता है। कितनी देर यह नंगा आदमी इसको बचाएगा! नागार्जुन भी उसके पैरों की आवाज पीछे आती देख कर जंगल में, समझ जाता है कि मेरे पीछे तो कोई कभी आता नहीं, यह इस पात्र के पीछे ही आता होगा।
वह एक मरघट में ठहरा हुआ है, एक खंडहर में। उसमें न कोई द्वार है, न दरवाजा है। वह अंदर चला गया है। दोपहर का वक्त है, वह सोने को है। वह सोचता है कि नाहक बेचारा बाहर बैठा हुआ है दीवार से छिप कर वह चोर। वह न मालूम कितनी देर बैठा रहेगा। इतनी देर बिठाने के लिए मैं क्यों उसे परेशान करूं! और फिर वह चुरा कर तो ले ही जाएगा, क्योंकि मैं अब सोऊंगा। मैं इस पात्र के लिए तो बैठा नहीं रह सकता, मुझे सोना ही है, तो यह ले ही जाएगा। और चुरा कर ले जाए, यह चोर बनाने का जिम्मा भी मैं क्यों लूं! वह उस पात्र को उठा कर बाहर फेंक देता है खिड़की से।
वह जहां चोर बैठा है, वह पात्र वहां गिरता है। वह चोर तो हैरान होता है। एक तो वैसे ही यह आदमी अदभुत था कि नंगा है और इतना बहुमूल्य पात्र लिए हुए है! फिर उसने पात्र भी फेंक दिया है। तो वह चोर उसको धन्यवाद देने के लिए खिड़की में से सिर निकालता है और कहता है, मैं धन्यवाद देता हूं! मैं

धन्यवाद देता हूं, आश्चर्य कि आपने यह पात्र बाहर फेंक दिया! पहले ही शक होता था कि नंगे आदमी के हाथ में इतना कीमती पात्र! फिर वह ऐसे आपने फेंक दिया जैसे किसी मूल्य का न हो। कभी-कभी, मैं चोर हूं, पर कभी-कभी मेरे मन में भी ऐसा होता है कि कब ऐसी हमारी भी हिम्मत हो! चोर तो हूं, लेकिन कभी मन तो ऐसा होता ही है कि कब हमारी भी ऐसी हिम्मत हो! क्या मैं भीतर आकर थोड़ी देर बैठ सकता हूं आपके पास?
वह नागार्जुन कहता है, मैंने पात्र इसीलिए बाहर फेंका। वैसे भी तुम भीतर आते, लेकिन तब मुझसे मिलना न हो पाता। इसलिए पात्र पहले ही फेंक दिया कि तुम भीतर आओ और मिलना भी हो जाए। तुम आ जाओ भीतर! वह चोर आकर बैठ जाता है और कहता है कि मैं कई साधु-संतों के पास जाता हूं। मैं भी शांति चाहता हूं, आनंद चाहता हूं, सत्य चाहता हूं। चोर हुआ तो क्या, ये तो मुझे भी चाहिए। कोई चोर होने ही से तो ये सब मुझे नहीं चाहिए, ऐसा नहीं है। लेकिन वे सब साधु-संत यह कहते हैं कि पहले तू चोरी छोड़। और चोरी छूटती नहीं, चूंकि मैं चोर हूं। तो क्या कोई रास्ता नहीं है कि मैं चोर रहूं और जो मैं चाहता हूं वह भी मिल जाए?
तो नागार्जुन उससे कहता है कि तू फिर साधु-संतों के पास गया ही न होगा। पिछले जमाने के किन्हीं चोरों के पास पहुंच गया होगा! इसलिए वे चोरी पर जोर देते हैं कि चोरी छोड़। साधु को क्या मतलब तेरी चोरी से? तू कुछ भी कर। साधु को साधुता से मतलब, साधु को चोरी से क्या मतलब है? और तू कुछ तो होगा ही। यानी कुछ तो होगा ही तू, क्योंकि वह तेरा जानना है। तू साधु के पास गया ही नहीं।
वह चोर कहता है, मेरी आपसे बात बैठ सकती है। तो मैं चोर रहते हुए कुछ
कर सकता हूं।
तो नागार्जुन कहता है कि यह मैं तुझे करने को कहता हूं, यह तू कर।
वह उसको कहता है कि जो भी काम तू कर, पूरे होश से कर। चोरी भी कर तो होश
से कर। जानते हुए कर कि यह तू कर रहा है। और एक-एक हाथ भी उठाए, सामान निकाले तिजोरी से किसी की, तो पूरे जागरूक रह कर निकाल। मैं इसके सिवाय और कुछ कहता नहीं। अगर तेरा दिल हो, तो मैं पंद्रह दिन तक यहां रुका हूं, तू फिर आ जाना।
वह चोर तो तीसरे-चौथे दिन वापस आता है और कहता है, मुझे मुश्किल में डाल दिया! बहुत मुश्किल में पड़ गया। क्योंकि कल मैं घुस गया महल में और तिजोरी पर पहुंच गया और तिजोरी खोल ली। जब होशपूर्वक हाथ डालता हूं तो हंसी आती है और हाथ भीतर नहीं जाता, कि यह मैं क्या कर रहा हूं! और जब हाथ भीतर जाता है और सामान निकाल लेता हूं, तब मैं बेहोश होता हूं। मुझे बहुत मुश्किल में डाल दिया! होश में तो चोरी हो ही नहीं सकती।
वह नागार्जुन कहता है, हम कोई चोर नहीं, हम चोरी की बात ही नहीं करते। हमें क्या मतलब? तुम जानो! तुम्हें चोरी करनी हो तो बेहोश रहो। अब यह चोरी की हमसे मत पूछो, क्योंकि हम चोरी के लिए कुछ कहते नहीं। हम तो इतना ही जानते हैं कि तुम होशपूर्वक जो भी करते हो, करो।
और नागार्जुन ने वहां उससे कहा कि जो होशपूर्वक किया जा सके, वही धर्म है; और जिसके लिए बेहोश होना जरूरी हो, वही अधर्म है।
इसलिए अधर्म छोड़ने का सवाल ही नहीं है, सिर्फ होश से जीने की बात है। इसलिए मैं कैरेक्टर का बुनियादी हिस्सा उसको मानता हूं। मैं जो भी करूं!

मगर यह थोड़ा पैराडॉक्सिकल है। बेहोशी में, होश नहीं है, यह कैसे मालूम पड़ा उसको?

वह हमेशा पीछे मालूम पड़ता है, हमेशा पीछे, घटना के बीत जाने के बाद। जैसे तुमने क्रोध किया। जब तुम क्रोध में हो तब तुम्हें कुछ होश नहीं है। लेकिन क्रोध गया, तब तुम लौट कर देखते हो और कहते हो, अरे, यह मैंने क्या कर लिया! यह तो मैं कभी करता ही नहीं अगर मुझे होश होता तो। एक सेकेंड की बात है न! कोई ऐसा थोड़े ही है कि महीनों बीते हैं। एक सेकेंड!

लेकिन जब वह चोरी करने जाता था तो वह कहता है, होश में जब रहता हूं तब हाथ नहीं घुसता... ।

हां, हां, वह वहीं बैठ कर तिजोरी में यह प्रयोग कर रहा है। वह जब परिपूर्ण होश से हाथ डालता है तो हाथ रुक जाता है।

वह कांशस हो गया!

हां, कांशस है पूरा।

किस बात का कांशस हो गया वह?

जो भी एक्ट कर रहा है वह, यह जो भी पूरी सिचुएशन है, जो भी हो रहा है, वह पूरे के लिए कांशस है। जो भी है उस वक्त--उसके भीतर, बाहर, चारों तरफ सब--वह पूरा कांशस है। जैसे ही होश खोता है... ।

जब इस कृत्य के प्रति वह कांशस है, तब वह डर के प्रति कांशस नहीं हो सकता कि कोई मुझे देख रहा है?

कांशस होना जो है न, कांशस होना जो है, अगर कोई पूरी तरह कांशस है तो सब चीज के प्रति कांशस है, जो भी हो रहा है चारों तरफ। एक चीज के प्रति अगर तुम कांशस हो तो बाकी के प्रति सोए हुए हो। कांशस होने का मतलब सब चीज के प्रति कांशस होना है। लेकिन कांशसनेस के क्षण में फियर कभी पकड़ता नहीं।
और हैरान होगे तुम, न फियर पकड़ सकता है कांशसनेस के क्षण में, न मृत्यु पकड़ सकती है कांशसनेस के क्षण में, न जिसे हम बुरा कहते हैं--क्रोध है, घृणा है, हिंसा है, हत्या है--वह कोई पकड़ सकता है। कांशसनेस के क्षण में तुम इतने अछूते और दूर खड़े हो जाते हो, तुम इतने इनोसेंट और कुंआरे हो जाते हो जिसका कोई हिसाब ही नहीं। कुछ भी नहीं पकड़ता है। और पकड़ा कि तुम कांशसनेस के बाहर गए। वह छिटक गई बात! तुम डूब गए फिर।
जैसे फियर किसी को पकड़ा। एक आदमी वहां से झांक कर देख रहा है, और मैं
डर गया। तो डरा क्या? डरा यह कि मेरा चित्त चला गया इस क्षण से बाहर। सोचा कि अब पकड़ा जाऊंगा, अब सजा होती है, अब बदनामी होती है। वह गया मेरा चित्त इस क्षण से बाहर। मैं बेहोश हो गया।
एक मैं तुम्हें दूसरी घटना सुनाऊं इस तरह की।
जापान में एक मास्टर थीफ हुआ है। एक झेन स्टोरी है। एक चोर है जो साधारण चोर नहीं है। वह मास्टर ही कहा जाता है। वह चोरी का कला-गुरु है पूरा का पूरा! और उसकी इतनी प्रसिद्धि है कि जिस घर में वह चोरी कर लेता है, उस घर के लोग दूसरों से कहते हैं कि पता है, हमारे घर मास्टर थीफ ने चोरी की है! क्योंकि साधारण चोरी वह करता ही नहीं।

प्राउड की बात है।

हां, यह कीमत की बात है कि उनके घर में वह आदमी घुस गया। साधारण घरों में तो वह कदम नहीं रखता। तो लोग चर्चा करते हैं कि हम साधारण लोग थोड़े ही हैं, हमारे घर फलां चोर घुस गया था। और वह कभी नहीं पकड़ा गया है।
वह बूढ़ा हो गया है। उसका लड़का जवान है। वह लड़का एक दिन उससे कहता है कि
अब आप तो बूढ़े हो गए, कितने दिन के हैं, कहा नहीं जा सकता। यह अपनी कला मुझे सिखा दें।
तो वह चोर उससे कहता है कि कला के साथ यही खराबी है कि उसे सिखाना मुश्किल है। वह चोर कहता है कि कला के साथ यही खराबी है। मैं कोई साधारण चोर थोड़े ही हूं जो तुझे चोरी सिखा दूं! चोरी अगर मेरा व्यवसाय हो तो तुझे सिखा सकता हूं। धंधा सिखाया जा सकता है; और कला नहीं सिखाई जा सकती। चोरी मेरी कला है, वह मेरा आनंद है। वह कोई ऐसा मामला नहीं है कि मैं सिर्फ चीजों को चुरा लाता हूं। वह जो चोरी में जो कुशलता है, बहुत मुश्किल है

तुझे सिखाना। लेकिन एक कोशिश करके देखेंगे, अगर तेरे भीतर चोर होने की जन्मजात क्षमता है... सभी कलाकार यह मानते हैं कि जन्मजात क्षमता होनी चाहिए... तो वह चोर तो कलाकार है, वह कह रहा है, अगर जन्मजात चोर है तू तो कुछ निकल सकता है, नहीं तो मैं कुछ नहीं सिखा सकता। खैर, आज चल।
अंधेरी रात है, अमावस है, वह उसको लेकर, बेटे को लेकर गया है। बूढ़ा है, उसकी उम्र कोई सत्तर वर्ष है। बेटा जवान है। जब वह एक महल के पास जाकर दीवार तोड़ रहा है, सेंध बना रहा है, तब बेटा उसका कंप रहा है। और उस बूढ़े के हाथ में न कोई कंपन है, न कोई बात है, वह ऐसे दीवार खोद रहा है जैसे अपने घर की दीवार सुधारता हो।
उसका बेटा कहता है कि आप यह क्या कर रहे हैं! जरा भी घबरा नहीं रहे हैं? कोई आ जाए, कोई पकड़ ले, कोई आवाज हो जाए। उस बूढ़े ने कहा, ये सब बातें हो सकती हैं, अगर मैं घबरा जाऊं। ये सब बातें हो सकती हैं--आवाज भी हो सकती है, कोई आ भी सकता है, पकड़ा भी जा सकता हूं--अगर मैं घबरा जाऊं। ये सब बातें, बेटे, भय में घटित होती हैं। इनकी वजह से भयभीत नहीं होता कोई, भय की वजह से ये सब बातें घट जाती हैं। तू चुपचाप खड़ा रह। लेकिन वह बेटे से कहता है, तू कंप क्यों रहा है? वह कहता है, कंपूं नहीं? मेरे तो हाथ-पैर ढीले हो रहे हैं। मेरी तो समझ में नहीं आ रहा है कि क्या होगा!
उस बूढ़े ने सब दीवार खोद ली है, वह अंदर चला गया है और उसको बेटे को कहता है, भीतर आ जा। वह बेटे को लेकर एक-एक ताला खोलते हुए महल के भीतरी कक्ष में पहुंच गया है। वहां एक बड़ी आलमारी है। उसमें बहुमूल्य कपड़े और सब सामान रखा हुआ है। वह उसे खोलता है और अपने बेटे को कहता है, तू भीतर चला जा और तुझे जो भी अच्छा लगता हो वह निकाल ला। वह भीतर जाता है, उसे तो कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है, अच्छे-बुरे का कहां सवाल है! उसकी कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि क्या होगा, क्या नहीं होगा। जब वह भीतर गया उस आलमारी के, बाप ने आलमारी बंद कर दी, ताला लगा दिया, चाबी वहीं लटकाई और जोर से चिल्लाया कि चोर! और सारे घर में हुल्लड़ मचा कर बाप तो निकल कर भाग गया। वह बेटा उस आलमारी के भीतर बंद हो गया। और सारे घर के लोग जग गए हैं, लालटेनें निकल आई हैं, मोमबत्तियां जल गई हैं, नौकर खोज रहे हैं, मालिक खोज रहा है।
वह बेटे ने तो कहा कि मार डाला! यह क्या हुआ, यह तो मुश्किल हो गई! मैं
तो गया पहले ही दिन, चोरी सीखने का सवाल ही न रहा! अब तो उसकी समझ के ही बाहर है कि अब क्या होगा! और यह बाप ने क्या किया? यह क्या सिखाना हुआ?
वह बेटा भीतर है और एक नौकरानी वहां से मोमबत्ती लिए हुए निकलती है उसके पास से। तो वे जिसको अमरीका में इस वक्त हैपनिंग कहते हैं--उसके लिए अपने पास कोई शब्द नहीं है--वह जो चोर का लड़का अंदर बंद है, जैसे ही वह नौकरानी वहां से पास से निकलती है, कुछ होता है और वह ऐसी आवाज करता है जैसे चूहे कपड़े काट रहे हों, हाथ से लकड़ी पर खरोंच मारता है। वह नौकरानी समझ कर कि शायद चूहा या बिल्ली अंदर रह गई है, चाबी लगा कर दरवाजा खोलती है और हाथ मोमबत्ती के साथ अंदर ले जाती है--यह भी हैपनिंग है--वह फूंक मार कर मोमबत्ती बुझा देता है, धक्का मारता है और भागता है वहां से। उसके पीछे दस-पंद्रह आदमी भागते हैं।
अब वह आखिरी शक्ति से भाग रहा है, जैसा वह कभी नहीं भागा था। उसे पता
ही नहीं था कि इतना वह भाग सकता है। वह एक कुएं के पास पहुंचा है--फिर हैपनिंग ही है यह--वह कुएं के पास से एक पत्थर उठा कर जोर से कुएं में पटकता है और एक झाड़ के पीछे खड़ा हो जाता है।
वे पंद्रह आदमी उस कुएं को घेर कर खड़े हो गए हैं। चोर तो कुएं में कूद गया, अपने आप मर जाएगा। अब इतनी रात कौन परेशान हो! सुबह आकर देखेंगे, बच जाता है तो ठीक है, नहीं तो लाश निकालेंगे। वे वापस लौट जाते हैं।
वह लड़का झाड़ के पीछे खड़ा हुआ, घर पहुंचा। बाप कंबल ओढ़ कर आराम से सोया हुआ है। वह उसका कंबल छीनता है और जोर से उसकी गर्दन पकड़ लेता है कि क्या मेरी जान लेना चाहते थे? यह तुमने क्या किया? वह बाप कहता है, जो हुआ, हुआ। तुझमें चोर होने की क्षमता है। अब सो जा, सुबह बात करेंगे। वह कहता है, बात अभी करनी है, मैं इतनी मुसीबत में पड़ गया। वह बाप कहता है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तू आ गया, बस काफी है। बाकी बात बाद में करेंगे। तू आ गया, बस ठीक है, तू चोर हो सकता है। वह बेटा कहता है, मुझे अभी सब बताना है कि क्या-

क्या हुआ। बाप कहता है, वह सब विस्तार की बातें जानने का कोई मतलब नहीं है। विस्तार की बातें जानने का कोई मतलब नहीं है। तू बिना सोचे-समझे कुछ कर सकता है। वह चोर होने के लिए यह जरूरी गुण है, वह उससे कहता है। क्योंकि कोई प्लान तो हो नहीं सकता चोरी में। दूसरे के घर में प्लानिंग अपनी नहीं चल सकती। कोई प्लान नहीं है, दरवाजा कहां है, दीवार कहां है, कुछ पक्का पता नहीं है। कहां नौकर सोता है, कहां पहरेदार है, कुछ पक्का पता नहीं है। बंदूक है, तलवार है, क्या है, कुछ पता नहीं है। कब क्या हो जाए, बिल्ली कूद जाए, बर्तन गिर जाए, कुछ पता नहीं है, सब अनप्लांड है। तो सिर्फ होश काफी है। वह कहता है कि सिर्फ होश काफी है कि क्या हो रहा है, उसके साथ हम रिएक्ट कर सकें।
यह जो सारे जीवन की जो सिचुएशन है, वह भी ऐसी ही है, अगर बहुत गौर से हम देखें। वहां कहां क्या हो जाए, क्या पता है! अभी हम यहां बैठे हैं, एक क्षण में क्या होगा, क्या पता है! कुछ भी पता नहीं है। अभी क्या हो जाए, क्या पता! यह मकान गिर जाए, कोई भूकंप आ जाए, क्या हो जाए, क्या पता! अभी कल्याण जी प्रेम से बुला लिए हैं, उनका दिमाग खराब हो जाए, वह सबको निकाल बाहर कर दें, क्या पता है! यह सब हो सकता है न!
तो हम कोई ऐसे जी ही नहीं सकते कि हम पहले से सब बना-बना कर जीएं। और जो बना-बना कर जीएगा, वह आदमी जीता ही नहीं। उसका जीना एक तरह का बारोड और उधार और बासा है। जीने के लिए पूरी अगर बात हो, तो जिंदगी की पूरी स्थिति में हमें सजग होकर जीना चाहिए। और एक-एक स्थिति की चुनौती का सामना करना चाहिए और जो उससे निकल आए।
तो ठीक कैरेक्टर के आदमी को मैं यह मानूंगा कि वह हरेक सिचुएशन में सजग होकर जी रहा है। जो भी समय आए, जो भी जिंदगी मौका लाए, वह जागा हुआ जी रहा है। जो होगा, वह करेगा। न उस करने के लिए कोई पछतावा है पीछे। पछतावा सिर्फ सोए हुए आदमी को होता है, क्योंकि वह यह सोचता है कि इससे अन्यथा भी मैं कर सकता था। जागा हुआ आदमी कहता है, मैं जागा हुआ था, अन्यथा कुछ हो ही नहीं सकता था। जो हुआ है वह हुआ है, बात खत्म हो गई है। जो हो सकता था वह मैंने किया, क्योंकि मैं पूरा जागा था। इससे ज्यादा मैं हूं ही नहीं। इससे ज्यादा कोई उपाय ही नहीं है।
इसलिए जागा हुआ आदमी न पीछे लौट कर देखता है, न पछताता है, न दुखी होता है। न जागा हुआ आदमी आगे के लिए बड़ी योजना बनाता है, हिसाब करता है, सब तय करके चलता है, ऐसा कुछ भी नहीं है। जागा हुआ आदमी जीता है। और तब जीने में जो सघनता आ जाती है उसकी, क्योंकि न वह अतीत में होता है, न भविष्य में होता है। वह यहीं होता है, अभी होता है। तो पूरी की पूरी जो इंटेंसिटी चाहिए जिंदगी की, सघनता, वह उसको उपलब्ध हो जाती है। और उस क्षण में वह जो जानता है--वह जो आप पूछते हैं कि सब सापेक्ष है--उस क्षण में जिसे वह जानता है वह निरपेक्ष है। उस निरपेक्ष पर ही सारे सापेक्षों का आवर्तन, आना-जाना है। एक बैलगाड़ी चल रही है। सारा चाक घूम रहा है। वह एक कील बीच में बिना घूमे हुए खड़ी है। वह जो कि नहीं घूमती है कील, उसी पर चाक का घूमना है। वह कील भी घूम जाएगी, चाक गिर जाएगा फौरन। वह चाक को घूमते देख कर यह मत सोचना कि चाक में न घूमने वाला कुछ भी नहीं है। मजा यह है कि वह घूमने वाला चाक किसी न घूमने वाली कील पर ही खड़ा है, नहीं तो खड़ा ही न रहेगा।
तो यह जो सापेक्ष का इतना बड़ा घूमता हुआ वृत्त है, यह जो वर्तुल है सापेक्ष का, इसके बीच में एक तत्व बिल्कुल निरपेक्ष है, वही हम हैं। उसे कोई साक्षी कहे, आत्मा कहे, ब्रह्म कहे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन एक तत्व, जिसके आंख के सामने से ये सब जाती हैं पर्दे पर सारी तस्वीरें, वह निरपेक्ष है। लेकिन इसे हम सघन क्षण में ही जान सकेंगे, साधारण अनुभव में नहीं जान सकेंगे।

वह जो निरपेक्ष है, वह भी तो सापेक्ष से सापेक्ष हो जाता है न?

नहीं होता है। नहीं होता है इसलिए--कि सापेक्ष का मतलब क्या है?

जो निरपेक्ष से अलग है।

न-न! असल कठिनाई क्या है, निरपेक्ष से अलग नहीं, सापेक्ष का मतलब निरपेक्ष से अलग नहीं। सापेक्ष का मतलब यह है कि जिसके अनुभव के लिए दूसरे की जरूरत है। यह समझ लेना ठीक से। जिसके अनुभव के लिए दूसरे की जरूरत है। जिसका अपना अलग अनुभव नहीं हो सकता, रिलेटिव अनुभव ही हो सकता है कभी। जैसे समझ लो कि मैं कहता हूं, यह पानी गरम है। तो गरम शब्द कभी भी निरपेक्ष नहीं हो सकता, क्योंकि ठंडे के बिना उसका कोई अस्तित्व नहीं है। और ऐसा भी हो सकता है कि मैं एक हाथ को गरम कर लूं और एक को बरफ पर रख लूं और दोनों हाथों को एक ही पानी में डाल दूं, तो एक हाथ को वही पानी गरम मालूम पड़े, दूसरे हाथ को वही पानी ठंडा मालूम पड़े। यह सापेक्ष हुआ। एक ही पानी है, एक ही बर्तन है और मेरा एक हाथ गरम है और एक ठंडा है, दोनों को मैं डाल दूं, तो मेरे दोनों हाथों को पानी की अनुभूति अलग-अलग हो। एक हाथ कहे कि गरम है, एक कहे कि ठंडा है। और पानी वही है और दोनों एक ही पानी में हैं। सापेक्ष का मतलब यह है कि जिसका अनुभव तुलनात्मक है--एक। और किसी की अपेक्षा के बिना जो अस्तित्व में नहीं हो सकता। "इन इटसेल्फ" जो नहीं है, हमेशा किसी और की अपेक्षा से है। और अगर कोई ऐसा अनुभव है जो अपने में ही हो सकता है, जिसके लिए कोई अपेक्षा नहीं, किसी की कोई अपेक्षा नहीं, तो निरपेक्ष हो जाएगा।
अब जैसे मेरा कहना है कि वह जो हमारे भीतर बैठा है, वह किसी सघन क्षण में अकेला ही होता है। कोई अनुभव नहीं होता, कोई दूसरा नहीं होता, बस वही होता है। जैसे एक दीये की हम कल्पना करें--एक दीया जल रहा है, दीवार प्रकाशित हो रही है, हम सब पर प्रकाश पड़ रहा है। तो दीया है और हम हैं। हम एक कल्पना करें--क्योंकि वह कल्पना ही हो सकती है अभी, जब तक कि किसी सघन से गुजरना न हो जाए--एक दीया जल रहा है, जिसका प्रकाश किसी पर नहीं पड़ता, सिर्फ दीया ही प्रकाशित हो रहा है। कोई दूसरी चीज नहीं है, सिर्फ दीया ही है और अपने प्रकाश में स्वयं ही प्रकाशित हो रहा है। तब वह स्थिति निरपेक्ष हो गई।
तो ध्यान की गहरी या समाधि की जो गहरी अनुभूति है, वह निरपेक्ष का, एब्सोल्यूट का अनुभव है। वहां कोई रिलेटिव की बात नहीं है। और एक कण भी उसकी अनुभूति का मिल जाए, तो फिर हम सारे सापेक्ष के बीच भी निरपेक्ष हैं।

यह तो अवेयरनेस का सवाल आ गया।

अवेयरनेस का ही सवाल है! अवेयरनेस का ही सवाल है!

यह रोज की हमारी लाइफ के कनफ्यूजन में यह निरपेक्ष अनुभव कर सकते हैं?

हां-हां, बिल्कुल ही। इसी में कर सकते हैं। और कहीं तो कर ही नहीं सकते।

यह समाज जो बना हुआ है, वही समाज रहना चाहिए या इसको भी बदलने की जरूरत है?

इसको रोज बदलने की जरूरत है।

तो इसी अनुभव के जरिए बदलेगा यह?

न, न, न। ऐसा भी जरूरी नहीं है। यह अनुभव अगर हो, तब तो यह समाज बहुत ही, रोज बदल जाएगा। इसको कल वाला होने की भी जरूरत नहीं है।

यह तो फिर आप अनार्किज्म की बात कर रहे हैं। यह तो वैसा ही हुआ कि जो बदल सकता है, हर कर्तव्य में वह अलग-अलग हो सकता है।

बिल्कुल हो सकता है।

तो यह अनुभव में भी हम सोचते हैं कि यह कुछ भी नहीं, यह भी नहीं, यह भी नहीं, यह भी नहीं। और फिर आगे, आगे--इसका कोई अंत नहीं है!

ठीक है न। अंत तो कोई भी नहीं है। अंत होना भी नहीं चाहिए।

तो अनार्किज्म और यह एक ही बात हुई?

असल में कठिनाई क्या है, अनार्किज्म के नाम से जिन लोगों का नाम चलता
है दुनिया में, जैसे क्रोपाटकिन या बाकुनिन, इस तरह के जो लोग हैं, उनको अगर बहुत ठीक से समझा जाए तो मैं इनको ठीक-ठीक अर्थों में अनार्किस्ट नहीं मानता हूं। इनकी अनार्की बहुत सीमित है। और वह इतनी है कि स्टेटलेसनेस, राज्य न हो, कोई आर्डर न हो, कोई व्यवस्था न हो और प्रत्येक व्यक्ति मुक्त हो, इतनी इनकी अनार्की है। इस अनार्की पर जो जोर है, वह बाहर की सारी व्यवस्था को तोड़ देने पर है।
मैं जिस अनार्की पर जोर दे रहा हूं, वह भीतर की व्यवस्था विकसित कर लेने पर है। इन दोनों में फर्क है। मेरा फर्क समझ रहे हैं न! इन दोनों में फर्क जो है, वह यह है--इसको हम ऐसा समझ ले सकते हैं, कि एक आदमी कहे कि सब मकान तोड़ दो, खुले आकाश के नीचे रहो। उसका जोर है कि यह मकान तोड़ दो, मकान गिरा दो, दीवारें गिरा दो, खुला आकाश ठीक है। लेकिन यह हो सकता है कि मकान के भीतर रहने वाला आदमी खुले आकाश के नीचे एकदम मर जाए--मर ही जाए! रहना तो मुश्किल ही हो जाए, मरना ही संभव हो। एक छोटे मकान के भीतर रहने वाले आदमी की कंडीशनिंग है। वह खुले आकाश के नीचे रह ही नहीं सकता।
मेरा कहना दूसरा है। मेरा कहना यह है कि मकान गिराना न गिराना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना महत्वपूर्ण इस आदमी के भीतर खुले आकाश के नीचे रहने की क्षमता विकसित करना है। मकान है कि नहीं, यह सवाल नहीं है। मकान में रहता है कि बाहर रहता है, यह भी सवाल नहीं है। लेकिन इस आदमी के भीतर खुले आकाश के नीचे रहने की क्षमता! और यह अगर विकसित हो जाए तो यह मकान के नीचे सोए तो खुले आकाश के नीचे है और खुले आकाश के नीचे सोए तो मकान के नीचे है।
तो क्रोपाटकिन और उनके अनार्किज्म में जो बात है वह एक तरह का रिएक्शन है--व्यवस्था तोड़ दो। और वही रिएक्शन बीटल और बीटनिक और हिप्पीज में चल रहा है।

क्रोपाटकिन के अनार्किज्म में कम्युनिज्म का कुछ तत्व है?

न, क्रोपाटकिन वगैरह को कम्युनिज्म से कोई मतलब नहीं है, बल्कि वे दुश्मन हैं। क्योंकि कम्युनिज्म मूलतः बिना राज्य-सत्ता के आ ही नहीं सकता, उनके ख्याल से। क्योंकि कम्युनिज्म लाना पड़ेगा तो राज्य की व्यवस्था चाहिए, तानाशाही चाहिए, तब ला सकोगे। और वे तो मानते नहीं कि कोई व्यवस्था चाहिए। इसलिए वह तो कम्युनिज्म और उनके बीच विरोध था। अनार्किस्ट और कम्युनिस्ट तो दुश्मन रहे आपस में और उनके बीच कोई तालमेल नहीं है। क्योंकि कम्युनिज्म आएगा राज्य से और वे हैं राज्य के दुश्मन। कम्युनिज्म मानता है कि एक दिन ऐसा आएगा कि राज्य विकसित-विकसित होते हुए विलीन हो जाएगा। लेकिन अनार्किस्ट मानते हैं कि राज्य जितना विकसित होगा उतना ही मजबूत हो जाएगा, विलीन कैसे हो जाएगा?
मेरी स्थिति बहुत और है। मेरे लिए यह सवाल बहुत महत्वपूर्ण नहीं है
कि राज्य है या नहीं है, व्यवस्था है या नहीं है। आदमी ऐसा होना चाहिए जो अव्यवस्था में भी व्यवस्थित रह सके। आदमी ऐसा होना चाहिए! और अगर ऐसा आदमी नहीं है, तो आदमी हमेशा तकलीफ और दुख और परेशानी में रहेगा। वह रहेगा ही। क्योंकि मूलतः जिंदगी एक अव्यवस्था है, एक अनार्की है। जिंदगी, लाइफ ऐज सच, इनसिक्योरिटी है। वहां कोई सुरक्षा है ही नहीं। सब सुरक्षा भ्रांत है और मानी हुई है, बिल्कुल मानी हुई है। और माने हम इसलिए हैं क्योंकि हमें डर लगता है कि असुरक्षा में तो हम एक सेकेंड जी नहीं सकेंगे। जो हमारा

पिता है वह कल भी पिता है, जो पत्नी है वह कल भी पत्नी है, जो बेटा है वह कल भी बेटा है, मकान है वह कल भी मकान है, बैंक बैलेंस है वह कल भी रहेगा--इस सबको मान कर हम जी पाते हैं। और मेरा मानना है कि इसको मानने की वजह से हम जी नहीं पाते, बल्कि इसको मानने में ही मर जाते हैं।
मैं तुम्हें एक कहानी कहूं, मुझे बहुत पसंद है।
कल्याण जी, एक राजा है और वह बहुत डर गया है। उसने बहुत युद्ध देखे और अपने दुश्मनों को मरते देखा और अब उसे ऐसा भय लग गया है कि जब मेरे दुश्मन मर सकते हैं तो किसी युद्ध में मैं भी मर सकता हूं। और जब मैं मार सकता हूं तो मैं मारा भी जा सकता हूं। वह मार-मार कर मारे जाने के भय से पीड़ित हो गया है। उसने बहुत मारा है। लेकिन अब वह डरने लगा है कि जब सब मर सकते हैं तो मैं भी मर सकता हूं। तो अब मैं क्या करूं? क्या उपाय करूं? मरने से तो बचना जरूरी है।
तो उसने एक महल बनाया, जिसमें वह सिर्फ एक दरवाजा रखता है। खिड़कियां
भी नहीं हैं उसमें, कोई दरवाजा नहीं है, कोई स्काई लाइट नहीं है, उसमें कोई उपाय नहीं है। दुश्मन उसमें कहीं से घुस नहीं सकता। भारी दीवारें हैं, सात दीवारों के पर्त हैं और उसमें एक दरवाजा है। और एक दरवाजे पर हजारों सैनिकों का पहरा है। हर सैनिक पर दूसरे सैनिक का पहरा है।
पड़ोस का राजा उसका महल देखने आया है, उसका मित्र है। उसने सुना कि उसने इतनी सुरक्षा का महल बना लिया है कि दुश्मन उसमें भीतर कभी प्रवेश नहीं कर सकता। वह उसको देखने आया है। वह देख कर बहुत खुश हुआ है और बाहर आकर कहता है कि वश चला तो मैं भी ऐसा मकान बनाऊंगा। सच में दुश्मन इसमें जा ही नहीं सकता, चोर नहीं जा सकता, डाकू नहीं जा सकता, हत्यारा नहीं जा सकता। तुम बिल्कुल सुरक्षित हो।
वह बाहर महल के विदा कर रहा है पड़ोसी राजा को मकान का मालिक, तब वह धन्यवाद दे रहा है कि मैं बहुत खुश हुआ तुम्हारा महल देख कर। सड़क के किनारे एक भिखारी बैठा है बुड्ढा, वह जोर से हंसने लगा है। उस भवनपति राजा ने पूछा कि तू क्यों हंस रहा है? क्या बात है? कोई भूल रह गई?
वह भिखारी कहता है, भूल रह गई महाराज! मैं यहीं भीख मांगता हूं और यह महल बनते देख रहा हूं वर्षों से और भूल निश्चित रह गई है। और मैं कहना चाहता था, कभी मौका भी नहीं मिला। आज आप सामने पड़ गए हैं तो मैं कह दूं। एक दरवाजा है, यह खतरा है। यह एक दरवाजा है, यह खतरा है। इससे कोई न कोई घुस सकता है। और कोई न घुस सका, तो मौत तो घुस ही जाएगी। आप ऐसा करो, भीतर हो जाओ और यह दरवाजा भी बंद कर लो। आप बिल्कुल सुरक्षित हो जाओगे। फिर कोई उपाय नहीं है मौत के घुसने का।
वह राजा कहता है, लेकिन पागल, तब तो मैं मर ही जाऊंगा! फिर मौत को घुसने
की कोई जरूरत ही न रही। वह भिखारी कहता है, मर आप अभी भी गए हैं, एक दरवाजे भर पर जिंदा हैं! जहां-जहां दरवाजे बंद हो गए हैं, वहां-वहां मर गए हैं! मर तो आप गए ही हैं। इतने बचे हैं थोड़े से, इसका भी इंतजाम कर लें, तो आप बिल्कुल ही सुरक्षित हो जाएंगे।
सिर्फ मरा हुआ आदमी ही पूरी तरह सुरक्षित हो सकता है। जीवन तो असुरक्षा है, उसको तो खतरा है। उसे मान कर और जीने की हिम्मत जुटाने को मैं समझता हूं जीवन की कला। उससे बच कर और भागने की कला कोई जीवन की कला नहीं है।
यह जो असुरक्षा है, खतरा भी है--प्रतिपल है--इसकी स्वीकृति और इसको जीने की क्षमता, यह एक इनर अनार्की। एक आउट अनार्की नहीं, इससे कोई मतलब नहीं है राज्य-वाज्य का। वह चलता है, चलता है; नहीं चलता है, नहीं चलता है। इसका उससे कुछ लेना-देना नहीं है।
और ऐसे आदमी को मैं संन्यासी कहता हूं, जो ऐसी भीतरी अराजकता को मान
कर चल पड़ा है, कि ऐसा है। यानी इसे आप चौंका नहीं सकते। उस आदमी को संन्यासी कहता हूं जिसे आप चौंका नहीं सकते। यानी चौंका सकते ही नहीं उसे, क्योंकि वह मान कर चल रहा है कि जिंदगी बहुत चौंकाने वाली है। इसे आप चौंका ही नहीं सकते।
जापान में एक फकीर हुआ। एक युवा फकीर है, क्योटो में एक छोटे गांव में
है वह। उसकी बड़ी प्रसिद्धि है। सारा गांव पूजा करता है। सुंदर है। और सच

तो यह है कि संन्यासी ही सुंदर हो सकता है ठीक अर्थों में। क्योंकि न कोई तनाव है, न कोई दबाव है, न कुछ लेना है, न कुछ देना है, सिर्फ जीना ही है। तो ऐसी स्थिति में ही सौंदर्य पूरा खिलता है। सारा गांव मोहित है।
लेकिन एक दिन बड़ी गड़बड़ हो गई। गांव में एक लड़की को बच्चा हो गया और उसने कह दिया कि वह उस संन्यासी से हुआ है। सब गड़बड़ हो गया, सारा गांव टूट पड़ा, उसके झोपड़े में आग लगा दी। सुबह का वक्त है, ठंड के दिन हैं, वह अपना धूप ले रहा था बाहर बैठा हुआ। जब उसके झोपड़े पर आग लगा दी तो वह सूरज की तरफ से मुंह हटा कर झोपड़े की तरफ बैठ कर आंच तापने लगा। उसे आप चौंका नहीं सकते। उसे ठंड लग रही थी, उसने कहा चलो यह भी ठीक है, वह आंच तापने लगा।
तो लोगों ने उसे हिलाया और कहा, तुम यह क्या कर रहे हो? यह आंच तापने
के लिए नहीं है, तुमको यहां से उखाड़ देने के लिए है।
उसने कहा, जब तक आंच है तब तक तो ताप लेने दो। पर बात क्या है? हो क्या गया मामला?
पीछे से उस लड़की का बाप आ रहा है और वह एक छोटे बच्चे को लिए चला आ रहा
है, उसके ऊपर पटक दिया। और कहा, हमसे पूछते हो क्या हो गया है? यह बच्चा तुम्हारा है! वह संन्यासी कहता है, इ.ज इट सो? बच्चा मेरा है? और वह बच्चा रोने लगा तो वह बच्चे को चुप करने लगा है। और वे सारे लोग गालियां देकर और पत्थर फेंक कर और वापस लौट गए हैं, बच्चे को वहीं छोड़ गए हैं।
दोपहर भीख मांगने का वक्त है तो उस बच्चे को लेकर वह गांव में भीख मांगने गया। आज उसे कौन भीख देगा! उसके ऊपर रास्ते पर लोग पत्थर फेंक रहे हैं, कचरा फेंक रहे हैं। दो-चार लोग उससे कहते भी हैं, तुझे आज कौन भीख देगा, जा कहां रहा है? वह कहता है, हो सकता है कोई दे दे। कोई पक्का नहीं है। क्योंकि कल यहां सब देते थे, आज कोई नहीं देता है, ऐसा भी हो सकता है। तो वह कहता है, हो सकता है कोई दे दे। कोशिश कर लेनी चाहिए! लेकिन जिस दरवाजे पर भीख मांगता है वही दरवाजा बंद हो जाता है और लोग गालियां देते हैं।
फिर आखिर में वह उस दरवाजे पर पहुंचा, जिस घर की लड़की का यह बच्चा था।
वह वहां भी भीख मांगता है। वह कहता है कि मुझे मत दो, लेकिन इस लड़के के लिए तो कुछ करो। क्योंकि अगर कसूर भी होगा तो मेरा होगा, इसका तो नहीं हो सकता। यह तो बेकसूर है। मेरे पीछे यह लड़का क्यों परेशान हुआ जा रहा है!
उस लड़की को तो मुश्किल हो गई जिसका लड़का है। उसने पिता के पैर पकड़ लिए। और उसने कहा, मुझे क्षमा करो, भूल हो गई। मैंने न सोचा था कि बात इतनी बढ़ जाएगी। इस संन्यासी से तो कोई संबंध नहीं है। असली लड़के के बाप को बचाने के लिए मैंने इसका झूठा ही नाम लिया। पिता ने कहा, तू तो पागल है कि नहीं है, लेकिन यह संन्यासी कैसा पागल है! यह मूर्ख तो कह सकता था कि मेरा कोई मामला नहीं है। वह नीचे भागा आया, उस बच्चे को छीनता है। वह संन्यासी कहता है, बात क्या है? वह बाप कहता है कि आपका बच्चा नहीं है। वह कहता है, इ.ज इट सो? वह कहता है, मेरा नहीं है?
तो वह सारा गांव इकट्ठा हो गया और कहने लगा कि तुम पागल हो? तुमने कहा क्यों नहीं?
उसने कहा कि किसी न किसी का तो होगा ही। लड़का है तो किसी न किसी का होगा ही। इससे क्या फर्क पड़ता है कि मेरा है कि किसका है! और तुम एक मकान जला ही चुके थे। इनकार करना और दूसरे को जलवाना होता। और एक आदमी गाली खा ही चुका था। और इनकार करना दूसरे को गाली दिलवानी होती। फिर इससे फर्क क्या पड़ता है?
वे सारे लोग कहते हैं कि इतना अपमान तुम्हें हमने दिया, तुम एक दफा तो
कह देते!
वह कहता है, मैंने तुम्हारा सम्मान कभी चाहा होता, माना होता, तो चिंता की बात थी। वह कभी मैंने माना नहीं था, चाहा नहीं था। जैसा हो जाता है वैसा उसको सह लेता हूं।
यह इनर अनार्की जो है, यह ही मनुष्य को मुक्त करती है, नहीं तो नहीं करती है।

नये समाज की खोज
तेरहवां प्रवचन

आध्यात्मिक क्रांति के दो सूत्र

मेरे प्रिय आत्मन्!
"क्या भारत में आध्यात्मिक क्रांति की आवश्यकता है?" इस संबंध में कुछ कहने के पहले, एक अत्यंत भ्रामक हमारी धारणा रही है, उस धारणा को समझ लेना जरूरी है।
सैकड़ों वर्षों से हम इस बात को मान कर बैठ गए हैं कि हमारा देश आध्यात्मिक है। और इस मान्यता ने हमें आध्यात्मिक होने से रोका है। अगर कोई बीमार आदमी यह समझ ले कि वह स्वस्थ है, तो उसके स्वस्थ होने की सारी संभावना समाप्त हो जाती है। बीमार आदमी को जानना जरूरी है कि वह बीमार है। इस जानने के द्वारा ही वह बीमारी से लड़ भी सकता है, बीमारी को बदल भी सकता है, स्वस्थ भी हो सकता है। लेकिन अभागा है वह बीमार आदमी जिसको यह भ्रम पैदा हो जाए कि मैं स्वस्थ हूं। क्योंकि यह भ्रम ही उसे बीमारी से मुक्त होने की कोई भी चेष्टा नहीं करने देगा।
भारत को यह भ्रम है कि हम आध्यात्मिक हैं। हम सारी बात, इस बात को मान
कर ही आगे बढ़ते हैं कि हम आध्यात्मिक हैं। फिर हमें करने को कुछ भी शेष नहीं रह जाता। भारत के जीवन में आई हुई सारी नैतिक पतन की कहानी, भारत के जीवन में आया हुआ सारा चारित्रिक ह्नास, एक ही बुनियाद पर खड़ा हुआ है कि हमने यह मान लिया है कि हम आध्यात्मिक हैं। और हम आध्यात्मिक बिल्कुल भी नहीं हैं। अध्यात्म का हमारा दूर से भी कोई नाता नहीं है!
निश्चित ही हमने एक झूठा अध्यात्म खड़ा कर रखा है, जिससे हमारा नाता है। और उसी नाते के कारण हम अपने को यह विश्वास दिलाने में समर्थ हो गए हैं कि हम आध्यात्मिक हैं। हमने एक सूडो स्प्रिचुअलिटी, एक झूठा अध्यात्म खड़ा कर रखा है। झूठा अध्यात्म बड़ी सस्ती बात है। वस्तुतः आध्यात्मिक होना एक क्रांति से गुजर जाना है। वस्तुतः आध्यात्मिक होना एक नये जीवन को उपलब्ध कर लेना है। और झूठा अध्यात्म, अपने को विश्वास दिला लेना है कि हम आध्यात्मिक हैं। और हमने कई तरकीबें खोज ली हैं अपने को विश्वास दिला लेने की। इन तरकीबों के कारण पांच हजार वर्ष से हम एक धोखे में जी रहे हैं। न हम आध्यात्मिक हो पाते हैं और न हम ईमानदारी से भौतिक हो पाते हैं। भौतिक हम हैं, मैटीरियलिस्टिक हमारा दिमाग है, लेकिन अध्यात्म का हम कपड़ा ओढ़े खड़े हुए हैं। पश्चिम के साथ कम से कम एक बात तो सच है कि वे भौतिकवादी हैं, और ऐसा वे जानते हैं कि वे भौतिकवादी हैं। हमारी स्थिति बेईमानी की है! हम भौतिकवादी हैं, और जानते हैं कि हम अध्यात्मवादी हैं। यह एक बहुत गहरी चालाकी और बहुत गहरा धोखा और पाखंड है।
और जो आदमी इस बात को ठीक से समझता हो कि मैं भौतिकवादी हूं, वह बहुत दिन तक भौतिकवादी नहीं रह सकता है। जैसे जो आदमी समझता हो कि मैं बीमार हूं, वह बहुत दिन तक बीमार नहीं रह सकता! बीमारी की अपनी पीड़ा है, जो कहती है कि स्वस्थ हो जाओ! और भौतिकवाद का अपना दुख है, जो कहता है कि इसके ऊपर उठ जाओ! आने वाले भविष्य में इस बात की संभावना है कि पश्चिम आध्यात्मिक हो जाए, लेकिन हमारे आध्यात्मिक होने की वह संभावना भी बहुत कम मालूम होती है।
इसलिए पहले तो यह समझ लेना जरूरी है कि हम आध्यात्मिक नहीं हैं। व्यक्ति हुए हैं आध्यात्मिक--महावीर हुए हैं, बुद्ध हुए हैं, कृष्ण हुए हैं, राम हुए हैं। लेकिन व्यक्तियों के आधार पर कोई देश आध्यात्मिक नहीं हो जाता। अभी गांधी थे, चालीस करोड़ का मुल्क है, अगर एक आदमी आध्यात्मिक हो जाए तो चालीस करोड़ लोगों को यह भ्रम पैदा कर लेने की जरूरत नहीं है कि वे आध्यात्मिक हो गए हैं। एक संगीतज्ञ मुल्क में पैदा हो जाए तो पूरा मुल्क संगीतज्ञ नहीं हो जाता! और एक आध्यात्मिक आदमी के पैदा होने से भी पूरा मुल्क कैसे आध्यात्मिक हो सकता है! एक राममूर्ति पैदा हो जाए और जिसकी हड्डियां लोहे जैसा काम करें, और जिसकी छाती पर पत्थर तोड़े जा सकें और कार निकाली जा सके, लेकिन इससे हमको यह भ्रम नहीं पैदा होता कि हमारी छाती पर

से पत्थर फोड़े जा सकते हैं और न हम यह चिल्ला कर कहते हैं कि हमारा पूरा मुल्क राममूर्ति हो गया।
लेकिन अध्यात्म के संबंध में हमने यही भ्रम पाल लिया है। व्यक्ति हुए हैं आध्यात्मिक, निश्चित हुए हैं। और उसमें भी यह सोचने की जरूरत नहीं कि वे इसी जमीन पर हुए हैं। सारी दुनिया में हुए हैं। लेकिन उन व्यक्तियों के कारण दुनिया के किसी देश ने यह भ्रम नहीं पाला अपने मन में कि हम आध्यात्मिक हो गए। हमारी कौम ने यह भ्रम पाल लिया है।
राम होते हैं, कृष्ण होते हैं, क्राइस्ट होते हैं, बुद्ध-महावीर होते हैं। क्या कभी आपने सोचा कि बुद्ध और महावीर हमारे मुल्क के प्रतिनिधि नहीं थे, रिप्रेजेंटेटिव नहीं थे; अपवाद थे, एक्सेप्शन थे। अगर वे हमारे प्रतिनिधि होते तो शायद पच्चीस सौ वर्ष तक बुद्ध को याद रखने की जरूरत भी नहीं पड़ती। अगर बुद्ध जैसे बहुत से लोग होते तो हम बुद्ध को कभी का भूल गए होते। हम उन्हीं को नहीं भूल पाते जो अत्यंत न्यून हैं, अकेले हैं, दूर हिमालय की चोटियों जैसे दिखाई पड़ते हैं--उन लोगों को हम नहीं भूल पाते। पच्चीस सौ साल हो गए महावीर और बुद्ध को गए हुए, अब भी हम उनकी याद करते हैं। यह इस बात का सबूत है कि पच्चीस सौ सालों में हम उस ऊंचाई के आदमी पैदा नहीं कर सके। अन्यथा महावीर-बुद्ध को हम कभी का भूल गए होते।
क्या यह संभव है कि एक मुल्क में बहुत अच्छे लोग हों, तो वहां एक अच्छे आदमी को हजारों साल तक याद रखना पड़े? याद रखना दूर है, उस अच्छे आदमी को खोजना भी मुश्किल होगा! अंधेरी रात में बिजली चमकती हुई दिखाई पड़ती है, सूरज उगा हो और बिजली चमके तो दिखाई नहीं पड़ती। स्कूल, यह जो स्कूल है, इसकी कक्षाओं में जाकर आप देख लें कि काले तख्ते लगे हुए हैं, उन काले तख्तों पर सफेद लकीर से शिक्षक लिखता है, सफेद दीवारों पर नहीं। क्योंकि सफेद दीवारों पर सफेद खड़िया से लिखे गए अक्षर दिखाई नहीं पड़ेंगे; वे काले तख्ते पर दिखाई पड़ते हैं।
महावीर और बुद्ध दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि हम सब काले तख्ते की तरह हैं। वे चमकदार लकीरों की तरह हमारे ऊपर प्रकट होकर दिखाई पड़ने लगते हैं। अगर हम सब भी सफेद लोग होते, तो महावीर-बुद्ध को खोजना मुश्किल हो जाता कि वे कहां हैं। ये दस-पांच नामों के आधार पर पूरा मुल्क यह जो भ्रम पाल लिया है कि हम आध्यात्मिक हो गए, यह धोखा टूट जाना चाहिए। और यह धोखा टूटे तो मुल्क में एक आध्यात्मिक क्रांति हो सकती है। और उसकी बहुत जरूरत है। क्योंकि जिस मुल्क का कोई आत्मिक जीवन नहीं है, उस मुल्क के पास कोई भी जीवन नहीं है। और जिस मुल्क के पास प्राणों की कोई ऊर्जा नहीं है, कोई पवित्रता नहीं है और प्राणों का कोई प्रेम नहीं है, उस मुल्क के पास सब दीन-हीन हो गया, दरिद्र हो गया, भिखमंगा हो गया, उस मुल्क का सब कुछ नष्ट हो गया!
लेकिन यह टूट नहीं सकेगी बात, जब तक हमें यह दिखाई न पड़ जाए कि व्यक्ति पैदा हुए हैं जो धार्मिक थे, राष्ट्र आज तक पृथ्वी पर कोई धार्मिक नहीं पैदा हुआ है, समाज कोई भी धार्मिक पैदा नहीं हुआ है। व्यक्ति पैदा हुए हैं अपवाद की तरह।
दो हजार साल बाद मेरा नाम लोग भूल जाएंगे और आपका नाम भी लोग भूल जाएंगे, गांधी का नाम याद रह जाएगा। और दो हजार साल बाद लोग सोचेंगे कि कितने अच्छे लोग थे गांधी के जमाने के--गांधी जैसे लोग! कितने प्यारे लोग थे! और उनका सोचना बिल्कुल ही गलत होगा, फैलॅसियस होगा, झूठ होगा। क्योंकि गांधी हमारे प्रतिनिधि नहीं थे। गोडसे हमारा प्रतिनिधि हो भी सकता है, गांधी हमारे प्रतिनिधि बिल्कुल नहीं हैं। हम गांधी जैसे बिल्कुल भी नहीं हैं। गांधी बिल्कुल अपवाद हैं। और उन्हीं गांधी के आधार पर दो हजार साल बाद लोग सोचेंगे--कितने अच्छे लोग थे! कैसा अच्छा जमाना था! सतयुग था! झूठ होगी उनकी धारणा। गांधी के आधार पर पूरे जमाने, और पूरी कौम, और पूरे देश के संबंध में निर्णय नहीं लिया जा सकता।
लेकिन हम पिछले अतीत के संबंध में यही करते रहे हैं। हम कहते हैं, राम जहां पैदा हुए! राम का देश! बुद्ध का देश! महावीर का देश! धार्मिक देश है। राम और बुद्ध और महावीर से कोई देश धार्मिक नहीं होता। देश धार्मिक होगा वृहत्तर मनुष्य के धार्मिक होने से। एक आदमी के धार्मिक होने से देश

धार्मिक नहीं होता। बल्कि उस एक आदमी का धार्मिक दिखाई पड़ना इस बात का सबूत है कि बाकी लोग धार्मिक नहीं हैं।
जिस दिन पृथ्वी पर सारे लोग धार्मिक होंगे, उस दिन महात्माओं को कोई जगह नहीं रह जाएगी। महात्मा तभी तक जी सकते हैं, जब तक हीन आत्मा पृथ्वी पर बड़ी संख्या में हैं। नहीं तो महात्माओं को विदा हो जाना पड़ेगा। जिस दिन महा-मनुष्यता का जन्म होगा, उस दिन महापुरुषों के लिए कोई जगह नहीं है। महापुरुष एक तरह का शोषण कर रहे हैं--छोटा आदमी है इसलिए महापुरुष होने की सुविधा है। अगर महापुरुष होना हो तो आप जल्दी हो जाएं। हजार, दो हजार साल बाद महापुरुष होना बहुत मुश्किल है! जिस दिन सचमुच बड़ी मनुष्यता पैदा होगी, उस दिन बड़े मनुष्यों की जगह नहीं रह जाएगी।
यह तो आदमी छोटा है, हीन है, दीन है, पापी है, अंधेरे में खड़ा है, इसलिए
एक आदमी एक हाथ में दीया लेकर खड़ा हो जाता है और महापुरुष दिखाई पड़ने लगता है। और हजारों साल तक हमें याद रखना पड़ता है कि एक आदमी था जिसके हाथ में दीया था।
यह दुख की कथा है, यह कोई बहुत आनंद की और गौरव की बात नहीं है। सिर्फ इससे हमने एक भ्रम पैदा कर लिया और हम मान कर बैठ गए कि कौम धार्मिक है, कि आध्यात्मिक हैं हम लोग।
और जब हम आध्यात्मिक हैं तो हमें करने को कुछ भी नहीं बचा, सिवाय इसके
कि हम सारे जगत को उपदेश दें। स्वाभाविक, जो आदमी आध्यात्मिक हो गया उसके लिए और क्या बच जाता है! और जब पूरा राष्ट्र ही आध्यात्मिक हो गया हो, पूरी जाति आध्यात्मिक हो गई, पूरा समाज, तो अब हमारे पास काम क्या है? अब हमारे पास एक काम है कि हम सारे जगत के गुरु हो जाएं और सारे जगत को उपदेश दें! तो भारत हजारों साल से सिर्फ उपदेश देने का काम कर रहा है और इस बात को भूल गया है कि हमारे पास ही वह संपदा नहीं है जिस संपदा की हम बात करते हैं; हमारे पास ही वह सत्य नहीं है जिसका हम शोरगुल मचाते हैं; हमारे पास ही वह अनुभव नहीं है जिस अनुभव के लिए हम इतने जोर से चिल्लाते हैं कि हमारे पास है। हमारी मुट्ठियां खाली हैं और हमारे प्राण खाली हैं। किताबें हैं हमारे पास, इतिहास है हमारे पास महापुरुषों का। लेकिन हम? हम धार्मिक नहीं हैं, हम आध्यात्मिक भी नहीं हैं। बल्कि हालतें उलटी हो गई हैं। चूंकि हमने यह बुनियादी बेईमानी की है अपने साथ कि बिना अपने को आध्यात्मिक हुए हमने आध्यात्मिक समझ लिया है, हम बहुत धोखे में पड़ गए हैं।
धोखा ऐसा है कि हमने हर चीज को झूठ की शक्ल देने का उपाय कर लिया। हर चीज को, हर बात को हमने एक प्रवंचना और डिसेप्शन बना लिया। क्योंकि सीधे हम उसे स्वीकार नहीं कर सकते। हम सीधे उस बात को अंगीकार नहीं कर सकते कि हमारे भीतर है। हम धन भी इकट्ठा करते हैं, लेकिन धन को गाली देते हुए इकट्ठा करते हैं।
एक अमेरिकन यात्री ने भारत से लौट कर अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैं दिल्ली उतरा और दिल्ली स्टेशन पर ही एक सिक्ख साधु ने आकर मेरा हाथ पकड़ लिया और मेरा हाथ देखने लगा। मैंने उससे कहा कि क्षमा करिए, मुझे हाथ दिखाना नहीं है, ज्योतिष में मेरा विश्वास नहीं है। लेकिन उसने मेरी एक न सुनी और उसने कहा कि तुम पहले सुनो, तब तुम्हें विश्वास आ जाएगा। और वह कुछ बातें कहने लगा कि भविष्य में ऐसा होगा, वैसा होगा। उस अमेरिकन ने कहा कि क्षमा करिए, मुझे जानना नहीं भविष्य के संबंध में, आप कृपा करके हाथ छोड़ दीजिए। लेकिन उस सिक्ख ने कहा, तो दो रुपये मेरी फीस हो गई जितना मैंने बताया, वह दो रुपये आप मुझे दे दीजिए। उस अमेरिकन ने दो रुपये उसे दे दिए ताकि पिंड छूट जाए भलमनसाहत और शिष्टता के साथ।
लेकिन दो रुपये लेकर वह आदमी हाथ पकड़े ही रहा और कुछ बातें बोलता गया।
उस अमेरिकन ने कहा, देखिए, क्षमा करिए! आपकी फीस फिर लग जाएगी, मैं सुनना नहीं चाहता हूं। लेकिन तब तक वह आदमी इतना बोल चुका था कि दो रुपये उसकी फीस फिर हो गई। उस अमेरिकन ने कहा कि लेकिन अब मैं दो रुपये आपको नहीं दूंगा। क्योंकि मैं जब कह रहा हूं कि आप मत बोलिए तो आप क्यों बोले जा रहे हैं? जब मैं नहीं पूछ रहा हूं तो आप क्यों बताए जा रहे हैं? अब मैं फीस नहीं दूंगा।

तो उस अमेरिकन ने लिखा है कि उस सिक्ख ने क्रोध से मेरा हाथ छोड़ दिया
और कहा कि तुम पश्चिम के लोग मैटीरियलिस्ट हो। दो रुपये के लिए मरे जा रहे हो!
यह देखते हैं मजा! यह मजा देखते हैं कि वह आदमी कहता है कि तुम मैटीरियलिस्ट हो, दो रुपये के लिए मरे जा रहे हो! और यह आदमी क्या कर रहा है? दो रुपये के लिए जबरदस्ती उसके खीसे से निकालने की चेष्टा कर रहा है। यह स्प्रिचुअलिस्ट है, यह आध्यात्मिक है!
हम अपने आदमी की तलाश करेंगे तो हम हैरान हो जाएंगे। जिन चीजों को हम गाली दे रहे हैं, उन चीजों को हम पोस रहे हैं पूरे समय। लेकिन गालियां भी दे रहे हैं, अपमानजनक शब्द भी बोल रहे हैं, निंदा भी कर रहे हैं, और उन्हीं सब चीजों को हम जी रहे हैं। यह जो एक डिसेप्टिव, एक आत्मवंचक स्थिति हमने पैदा कर ली, यह कैसे पैदा कर ली? धन को हम गाली देते हैं, लेकिन हमसे ज्यादा धन को पकड़ने वाली कोई कौम है आज पृथ्वी पर! और धन को हम गाली देते हैं। बल्कि मजा तो यह है कि अगर हम थोड़ा गौर करें... ।
मैं जयपुर में ठहरा हुआ था। एक मित्र आए और मुझसे कहने लगे कि एक बहुत बड़े मुनि नगर में हैं, आप उनसे मिल कर बहुत खुश होंगे। मैंने कहा कि तुम्हें कैसे पता चला कि वे बहुत बड़े मुनि हैं? तुमने, कौन सा मापदंड है तुम्हारे पास? तुम्हारे पास कौन सा तराजू है जिससे तुमने जाना कि वे बहुत बड़े मुनि हैं? उन्होंने कहा, इसमें क्या जानने की बात है, खुद जयपुर महाराज उनके चरण छूते हैं!
तो मैंने उनसे कहा, इसका मतलब हुआ कि जयपुर महाराज तुम्हारे लिए बड़े आदमी हैं, मुनि बड़े नहीं हैं। चूंकि जयपुर महाराज छूते हैं चरण, इसलिए मुनि भी बड़े हो गए। और अगर जयपुर महाराज वहां न जाएंगे तो मुनि छोटे हो जाएंगे। बड़ा कौन है? और जयपुर महाराज बड़े क्यों हैं? क्योंकि सम्राट हैं, संपदाशाली हैं, इसलिए न!
महावीर और बुद्ध के संबंध में शास्त्र लिखे गए हैं। और ऐसा लगता है कि
वे शास्त्र लिखने वाले बुद्ध और महावीर को जरा भी नहीं जानते होंगे। क्योंकि उन्होंने शास्त्रों में यह लिखने की कोशिश की है कि महावीर ने इतने घोड़े, इतने हाथी, इतना धन, इतना चांदी, इतना सोना छोड़ा! वे महात्यागी थे! जैसे कि अगर उनके पास ये चीजें न होतीं तो फिर वे महात्यागी नहीं हो सकते थे। यह मापदंड है कि कितने घोड़े छोड़े, कितने हाथी छोड़े, कितना सोना! तो मूल्य किस बात का है, महावीर का या सोने का, घोड़ों का, हाथियों का? फिर अगर बुद्ध को बड़ा त्यागी बताना है उनके शिष्यों को, तो महावीर से ज्यादा घोड़े, ज्यादा हाथी छुड़वाने पड़ेंगे, तब तो बड़े हो सकते हैं अन्यथा नहीं हो सकते!
क्या आपने कभी सोचाः हिंदुस्तान में जैनियों के चौबीस तीर्थंकर हैं, उनमें से एक भी गरीब आदमी का लड़का नहीं है, सब राजाओं के लड़के हैं। बुद्ध राजा के लड़के हैं। राम, कृष्ण राजा के लड़के हैं। हिंदुस्तान में आज तक एक गरीब आदमी को यह हैसियत नहीं मिली कि उसे भगवान माना जा सके। क्यों? क्या गरीब आदमी के घर में भगवान के पैदा होने की कोई संभावना नहीं है? क्या भगवान के वहां भी गरीब और अमीर आदमी का हिसाब रखा जाता है? क्या यह सोचना पड़ता होगा अवतार लेने के पहले कि कहां लेना है? अमीर के घर में, राजपुत्रों के!
नहीं, यह कारण नहीं है। लेकिन सच्चाई यह है कि गरीब के घर से अगर कोई व्यक्ति त्याग करके निकल जाए तो हमारे पास तौलने का कोई उपाय नहीं है कि वह त्यागी है। तौलने का उपाय तो धन है। तो जब राजपुत्र त्यागते हैं तो हमें दिखाई पड़ते हैं; जब गरीब-पुत्र त्यागते हैं तो उनका कोई पता नहीं चलता। गरीब संन्यासी हो तो भिखारी हो जाता है और अमीर संन्यासी हो तो स्वामी हो जाता है। क्योंकि तौलने का हमारे पास उपाय क्या है? मापदंड क्या है हमारे पास? और हम ऐसे लोग हैं जो धन को आदर नहीं करते। हमसे ज्यादा धन को आदर करने वाले लोग खोजना कठिन है!
मैं आपसे कहता हूं, पश्चिम के मुल्कों में--या भारत को छोड़ कर कहीं भी-- मोहम्मद राजा के लड़के नहीं थे। लेकिन अरब की कौम ने एक गरीब के लड़के को भगवान के अवतार की हैसियत दी! जीसस क्राइस्ट राजा के लड़के नहीं थे, एक गरीब

के लड़के थे, एक बढ़ई के लड़के थे। लेकिन जेरुसलम के लोगों ने ईश्वर के अवतार की हैसियत दी! हिंदुस्तान आज तक एक गरीब लड़के को अवतार की हैसियत नहीं दे सका है। हिंदुस्तान के बाहर गरीबों के लड़कों ने भी भगवान होने की हिम्मत कमाई; लेकिन हिंदुस्तान के बाहर ही यह संभव हुआ है, हिंदुस्तान के भीतर संभव नहीं हो सका है। इसका कुछ कारण होना चाहिए। धन के प्रति हमारा अत्यधिक मोह है। यद्यपि हम गालियां देते हैं। बल्कि यह भी हो सकता है कि हम गालियां भी इसीलिए देते हैं कि हमारा अत्यधिक मोह है। अगर मोह न हो तो शायद धन का हमें ख्याल भी भूल जाए, इतनी गालियां देने की जरूरत भी न रहे। मैंने सुना है कि अगर कहीं चोरी हो जाए, अगर इस इलाके में चोरी हो जाए अभी, और यहां खबर आए कि चोरी हो गई, तो इस भीड़ में जो चोर होंगे वे सबसे पहले चोरी की निंदा शुरू कर देंगे। क्योंकि उन्हें डर पैदा होगा कि कहीं किसी को ख्याल न हो जाए कि हमने तो चोरी नहीं की। तो चोर सबसे पहले चिल्लाने लगेगाः चोरी पाप है! पकड़ो चोर कहां है! ताकि भीड़ ठीक से सुन ले कि यह आदमी चोरी के खिलाफ है, कम से कम यह आदमी चोरी नहीं कर सकता।
अगर चोरी हो, तो चोर सबसे पहले चोरी की निंदा करते हैं। अगर बेईमानी हो, तो बेईमान बेईमानी के खिलाफ खड़े हो जाते हैं। अगर भ्रष्टाचार हो, तो भ्रष्टाचारी नेता हो जाते हैं और दिल्ली के मंच से खड़े होकर कहने लगते हैं कि हम भ्रष्टाचार बिल्कुल समाप्त कर देंगे।
और हम धोखे में आ जाते हैं। हम समझते हैं कि यह जो आदमी भ्रष्टाचार के खिलाफ है, यह आदमी कैसे भ्रष्टाचार कर सकता है!
लेकिन हमें पता नहीं है। जिन लोगों को मनुष्य का थोड़ा भी अनुभव है, जो मनुष्य की चालबाजियां, मनुष्य की कनिंगनेस, मनुष्य की बेईमानी का जिन्हें थोड़ा भी ख्याल है, वे जानते हैं कि भ्रष्टाचारी को बचने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि वह भ्रष्टाचार के खिलाफ में बोलने लगे। चोर को बचने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि वह चोरी का दुश्मन हो जाए। ये बचने के उपाय हैं।
और हमारा मुल्क धन के खिलाफ बोल रहा है हजारों साल से। मेरी अपनी समझ
यह है कि यह हमारा धन के प्रति जो अत्यधिक मोह है, उससे बचने का उपाय है। इस भांति हम जाहिर करते हैं कि नहीं, हमें धन से कुछ लेना-देना नहीं है, इस भांति हम जाहिर करते हैं कि हम धन के दुश्मन हैं। लेकिन धन के प्रति हमारी तीव्र आकांक्षा सब तरफ दिखाई पड़ती है, सब तरफ सब भांति दिखाई पड़ती है।
और इसी भांति हमने जीवन के सारे तलों पर धोखा दे लिया है, सारे तलों पर! हम कहते हैं कि आत्मा अमर है, और युद्ध के मैदान पर जाने की हमारी जरा भी हिम्मत नहीं है। हम कहते हैं आत्मा अमर है, और अंधेरे में जाने से हम डरते हैं। हम कहते हैं आत्मा अमर है, और पहाड़ पर चढ़ने में और समुद्र को लांघने में हमारे प्राण कंपते हैं। जिनकी आत्मा अमर है, जिन्हें यह अनुभव हो चुका, उन्हें मृत्यु का भय मिट जाना चाहिए। क्योंकि जिसको पता चल गया आत्मा अमर है, उसके लिए मृत्यु कहां रही! उसके लिए तो जिंदगी एक खेल हो गई, मौत एक खेल हो गई।
हमारा मुल्क मानता है कि आत्मा अमर है, और मौत से हम सबसे ज्यादा डरते हैं। जो लोग कहते हैं कि आत्मा अमर नहीं है, जो लोग कहते हैं कि मरने के साथ सब मर जाता है, वे लोग भी मृत्यु का साक्षात करने में हमसे ज्यादा सबल और बहादुर हैं। क्या कारण है?
कारण यह है कि आत्मा अमर है, यह हम अपने मरने का जो भय है, उसे छुपाने
के लिए इस मंत्र को दोहराते रहते हैं कि आत्मा अमर है, आत्मा अमर है। ताकि हमें विश्वास आ जाए कि आत्मा अमर है, और मरना नहीं है। मौत के भय को भुलाने के लिए हम यह छोटी तरकीबें ईजाद कर लेते हैं।
मेरा मतलब यह नहीं है कि आत्मा अमर नहीं है, वह मैं नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि हमारी यह तरकीब है।
मैं एक घर में गया था। कोई मर गया था। पास-पड़ोस के लोग इकट्ठे हुए थे
और घर के लोगों को समझा रहे थे कि क्यों रोते हैं आप? आत्मा तो अमर है! क्यों रोते हैं? शरीर मिट जाता है, शरीर तो वस्त्र हैं, छूट जाते हैं।
आत्मा तो फिर आगे यात्रा पर निकल गई। तो फिर क्यों रो रहे हैं? कोई मरा नहीं है, मृत्यु तो असत्य है।

मैं तो बहुत हैरान हुआ। मैंने सोचा कि इन लोगों को ज्ञान उपलब्ध हो गया, इस पड़ोस में बड़े ज्ञानी हैं! जिनको यह सब पता है कि शरीर वस्त्र की भांति छूट जाता है। लेकिन यह मुझे मालूम नहीं था कि ये थोथे शब्द थे जो इन्होंने किताबों से पढ़ लिए थे। लेकिन मैं कैसे पहचानता ये कि सिर्फ शब्द हैं। आदमी कोई कह रहा है, तो मैंने माना कि ठीक कहते होंगे। मैं बहुत प्रसन्न लौटा। मैं उन पड़ोस के लोगों को नमस्कार करता हुआ लौटा कि इस आस-पास के लोग कितने अदभुत हैं, इनको आत्मा की अमरता का पता है!
लेकिन संयोग की बात, दो महीने बाद, जो सज्जन समझा रहे थे उनके घर कोई
मर गया, और मुझे वहां भी जाना पड़ा। मैंने देखा, वे रो रहे हैं, और जिनको वे समझा रहे थे, अब वे उनको समझा रहे हैं कि आत्मा तो अमर है। आप क्यों परेशान हो रहे हैं? आत्मा तो अमर है! यह तो वस्त्रों की भांति छूट जाता है शरीर और आत्मा आगे की यात्रा पर निकल जाती है। कोई मरता ही नहीं है।
तब मुझे बड़ी हैरानी हुई! तब मुझे समझ में आया कि कुछ बातें हैं जो दूसरों को समझाने के लिए हैं, लेकिन उनका हमें खुद कुछ भी पता नहीं है। या हो सकता है कि हम अपने को समझाने की चेष्टा करते हों उन बातों को दोहरा कर, लेकिन उससे जीवन की समस्या का न कोई हल होता है, न जीवन के सत्य का कोई अनुभव होता है।
इसी भांति हमने बहुत से तलों पर अपने को धोखा दे लिया है। और सब तरह का धोखा देकर हम आध्यात्मिक होने का मजा ले रहे हैं, एक तृप्ति कर रहे हैं अहंकार की कि हम आध्यात्मिक हैं। शायद इस आध्यात्मिक होने के गौरव के पीछे एक और कारण है। और वह कारण यह है कि हम जगत में सब तरह से दीन-हीन हो गए हैं। न हमारे पास भौतिक शक्ति है, न हमारे पास वैज्ञानिक उपकरण हैं, न हमारे पास भोजन है, न हमारे पास वस्त्र हैं, हमारे पास कुछ भी नहीं है। जो चीज दिखाई पड़ती है वह हमारे पास कुछ भी नहीं है। तो जो चीज नहीं दिखाई पड़ती है, हम उसी का दावा कर सकते हैं। दिखाई पड़ने वाली चीजों का दावा करना तो मुश्किल है।
हम यह तो नहीं कह सकते कि हम धनी हैं। क्योंकि दुनिया हंसेगी इस पागलपन की बात को सुन कर। क्योंकि अगर हम धनी कहेंगे तो अमेरिका के सामने हाथ जोड़ कर भीख मांगने का उपाय नहीं रह जाएगा। हम यह नहीं कह सकते कि धन-धान्य से परिपूर्ण है हमारी यह भारत माता। यह सुजलाम्-सुफलाम भूमि जो है यह धन-धान्य से परिपूर्ण है, यह हम नहीं कह सकते। क्योंकि हम जानते हैं कि आज हमारे पेट में जो रोटी है वह हमारे मुल्क की नहीं है, हमारी जमीन की नहीं है। आज हिंदुस्तान में जितना रुपया चल रहा है, उसमें से दो रुपये अमेरिका के हैं हर तीन रुपये में। तीन रुपये चलते हैं तो दो रुपये अमेरिका के हैं। और आने वाले पांच साल के भीतर तीसरा रुपया भी अमेरिका का हो जाएगा। भोजन उधार है, मांगा हुआ है। हम यह नहीं कह सकते आज कि हमारा देश सोने की चिड़िया है। फिर हम क्या दावा करें? फिर हम किस तरह अपने अहंकार की तृप्ति करें? हम क्या कहें?
तो हम कुछ ऐसे दावे कर सकते हैं जो दिखाई भी नहीं पड़ते, जिनको नापने- तौलने का भी कोई उपाय नहीं है, जिनकी जांच-परख भी नहीं हो सकती, जिनका खंडन भी नहीं किया जा सकता। और वैसा दावा है कि हम आध्यात्मिक हैं। आध्यात्मिक होने का कोई उपाय नहीं, जांच-पड़ताल नहीं, कोई थर्मामीटर नहीं, कोई मेजरमेंट का रास्ता नहीं कि कैसे हम जानें कि आप आध्यात्मिक हैं? तो हमने एक ऐसी बात की गुहार मचानी शुरू कर दी कि हम आध्यात्मिक हैं।
यह जब तक हम चिल्लाते रहेंगे, तब तक दुनिया का, किसी और का कोई नुकसान नहीं है। क्योंकि अगर एक भिखारी अपने को सम्राट समझता हो, तो सम्राटों को इससे कोई नुकसान नहीं पहुंचता। बल्कि सम्राट सुरक्षित हो जाते हैं, इस भिखारी से डर भी न रहा, यह कभी सम्राट होने की चेष्टा भी नहीं करेगा। इससे किसी और को नुकसान नहीं पहुंचता है हमारे इन झूठे दावों से, नुकसान पहुंच रहा है हमको। देश का जीवन, देश का चरित्र, देश की नीति, देश का व्यक्तित्व, आत्मा रोज नीचे गिरती चली जाती है। और जितनी वह नीचे गिरती चली जाती है, उतने ही जोर से हम चिल्लाने लगते हैं कि हम आध्यात्मिक गुरु हैं जगत के। जगत से किसी ने कभी पूछा ही नहीं कि आपका गुरु कौन है! और हिंदुस्तान में

गांव-गांव में जगतगुरु हैं। उनसे कोई पूछे कि जगत से कोई सलाह-मशविरा लिया है कि बिना जगत के पूछे आपने सेल्फ अपॉइनटेड!
एक गांव में मैं गया था, वहां भी एक जगतगुरु थे। मैंने गांव के लोगों
को पूछा कि ये जगतगुरु कैसे हैं? इन्होंने जगत से पूछताछ की है? कितने शिष्य हैं इनके जगत में? कितने लोग इन्हें मानते हैं? उन्होंने कहा, जगत का तो हमें पता नहीं, लेकिन हमारे गांव में एक शिष्य जरूर है। और वे मुझसे कहने लगे, अगर आप किसी को न बताएं तो मैं असलियत बता दूं। वह शिष्य भी वैतनिक है, उसको भी वेतन देना पड़ता है। क्योंकि आज-कल गुरु ज्यादा हो गए हैं और शिष्य कम; तो शिष्य कहते हैं, वेतन दो, तो हम तुम्हारे साथ रहेंगे, नहीं तो हम दूसरे गुरु को ढूंढते हैं।
एक जमाना था, शिष्य ज्यादा थे, गुरु कम थे। अब जमाना बिल्कुल उलटा है। गुरु ज्यादा हैं और शिष्य बिल्कुल कम हैं। तो शिष्यों के लिए होड़ मची रहती है। गुरु शिष्यों की टांग पकड़े रहते हैं कि कहीं वह निकल कर दूसरे के चक्कर में न चला जाए। कहीं हिंदू मुसलमान न हो जाए, कहीं हिंदू ईसाई न हो जाए, कहीं ईसाई जैन न हो जाए, कहीं एक गुरु का शिष्य दूसरे के पास न चला जाए।
तो उन्होंने कहा है कि वह वैतनिक शिष्य है। मैंने कहा, यह भी चमत्कार है! अब तक वैतनिक गुरु सुने थे, वैतनिक शिष्य! और एक ही शिष्य के आधार पर वे जगतगुरु कैसे हो गए?
तो उन गांव के लोगों ने कहा, वे बहुत बुद्धिमान आदमी हैं, वे बिल्कुल वैधानिक रीति से जगतगुरु हैं। उन्होंने अपने शिष्य का नाम जगत रख लिया है। उन पर कोई कानूनी जुर्म भी नहीं चला सकता कि तुम जगतगुरु कैसे हो? हमारा पूरा मुल्क इस तरह की बेवकूफियों में तृप्ति खोज रहा है। हम सारे जगत के गुरु हैं, और हमारे हाथ खाली हैं और हमारे प्राण खाली हैं। न वहां प्रार्थना है, न वहां प्रेम है, न वहां परमात्मा है। हमारे पास कुछ भी नहीं है, और हम चिल्ला रहे हैं कि हम जगतगुरु हैं, आध्यात्मिक हैं; ऐसे हैं, वैसे हैं; यह हैं, वह हैं। ये झूठी बातें हम कब तक करते रहेंगे और कब तक अपने मन को बहलाते रहेंगे?
आध्यात्मिक क्रांति की जरूरत है। और उस क्रांति का पहला चरण यह होगा
कि हम अपने इस भ्रम को भस्मीभूत कर दें, इस झूठे भ्रम को गिरा दें कि हम आध्यात्मिक हैं। हम सच्चाई से स्वीकार करें कि हम क्या हैं। क्योंकि हम इस बात को जब ठीक से समझ लेंगे कि हम क्या हैं, तो उस "क्या" को बदला जा सकता है। अगर हम अपनी वास्तविकता को जान लें, तो हम उस वास्तविकता को जानते हुए यात्रा भी कर सकते हैं, जहां हम उस वास्तविकता के ऊपर उठ जाएं। हम क्या हो सकते हैं, उसकी यात्रा के लिए, हम क्या हैं, इसे ठीक से जान लेना अत्यंत जरूरी है।
लेकिन यह झूठा भ्रम हमें यह नहीं जानने देता। आध्यात्मिक क्रांति का पहला कदम, मेरी दृष्टि में, भारत का जो एक मिथ्या दंभ है, एक फाल्स ईगो है, एक झूठा अहंकार है, उसको खंड-खंड कर डालना है। भारत को स्वीकार करना होगा कि फैक्चुअलिटी क्या है? तथ्य क्या है हमारा? हमारी वास्तविकता क्या है? हम खड़े कहां हैं?
हजारों साल से हमने अपने को धोखा दिया, उससे हम नीचे गिरते चले गए। अभी भी समय है कि हम ठीक से स्वीकार करें कि हम कहां खड़े हैं। अगर धन का हमारा मोह है, तो हम कहें कि धन का हमारा मोह है। अगर शरीर का हमें प्रेम है, तो हम कहें कि शरीर का हमें प्रेम है। अगर हमें मकान अच्छे लगते हैं, तो हम कहें कि मकान अच्छे हैं। हमें जो ठीक लगता है, हम कहें, उसे स्वीकार करें।
और फिर उस स्वीकृति के बाद हम सोच-विचार करें कि हमारी यह स्थिति है,
यह डायग्नोसिस है, यह निदान है हमारा, अब हमें क्या करना है? अब हम इसमें क्या फर्क कर सकते हैं? अब हम इसके ऊपर कैसे उठ सकते हैं?
लेकिन नहीं, हम इस बात को जानने में बड़ी इनकारी जाहिर करते हैं। हम विरोध करते हैं इस बात का कि हमारे कपड़े उघाड़ कर न देखें जाएं। हमारे कपड़े उघाड़े जाएं और हमारी नग्नता दिखाई जाए, इसके लिए हम बहुत झगड़ा खड़ा करते हैं। मुझसे बहुत लोग नाराज होते हैं। वे कहते हैं, आपको कपड़े उघाड़ने की

जरूरत क्या है? हम कपड़ों के बाहर जैसे दिखाई पड़ रहे हैं आप वैसा स्वीकार क्यों नहीं करते?
लेकिन हम कैसे करें! मैं टेलर की दुकान पर कपड़े बनते देखता हूं--जिस आदमी के कंधे नहीं हैं बिल्कुल, वह भी रूई भरवा कर कोट में कंधे दिखलाता है। किसी दूसरे का नुकसान नहीं है इस बात से कि तुम्हारे कंधे नहीं हैं। लेकिन रूई के झूठे कंधों से तुम इस हाल में पड़ जाओगे कि व्यायाम किया जा सकता था और कंधे पैदा हो जाते, लेकिन उनको तुम अब कभी पैदा नहीं करोगे, रूई के कंधे काम कर देंगे, रूई के कंधों से तृप्ति हो जाएगी, झूठे कंधे पर्याप्त मान लिए जाएंगे।
आदमी के कपड़ों की ईजाद ने आदमी के स्वास्थ्य को इतना नुकसान पहुंचाया
है जिसका हिसाब नहीं, क्योंकि कपड़ों के द्वारा आदमी स्वास्थ्य का धोखा देने में समर्थ हो गया। अगर दुनिया से कपड़े छीन लिए जाएं तो आप इसी शरीर में रहने को राजी नहीं होंगे जो शरीर है। क्योंकि आप इतने दीन-हीन दिखाई पड़ेंगे कपड़े छिन जाने पर कि इस शरीर को बदलने का आपको ख्याल पैदा हो जाने वाला है। आप असंतुष्ट हो जाएंगे कि इस हड्डी-हड्डी शरीर को लेकर कहां जाऊं, कैसे खड़ा हो जाऊं चौरस्तों पर! लेकिन कपड़ों ने सुविधा पैदा कर दी है, भीतर अस्थिपंजर है और कपड़ों में ढांक कर हम छिपा लेते हैं और सड़क पर खड़े हो जाते हैं। अगर दुनिया के कपड़े छीन लिए जाएं तो पंद्रह रोज के भीतर सारी दुनिया का स्वास्थ्य अच्छा हो सकता है। क्योंकि कोई आदमी अपने को नंगा देख कर बरदाश्त नहीं करेगा कि ऐसे शरीर को खींचना कैसे उचित है! या कहां जाऊं इस शरीर को लेकर! लेकिन कपड़ों ने व्यवस्था कर दी है। एक धोखा कपड़ों ने खड़ा कर दिया है।
क्यों मैं मनुष्य के, हमारे मुल्क के आध्यात्मिक कपड़ों को छीन लेना चाहता हूं?
क्योंकि हमें असलियत दिखाई पड़े कि हम आध्यात्मिक रूप से कितने नग्न, दीन, दरिद्र और अस्थिपंजर रह गए हैं, तो शायद कुछ किया जा सकता है। निश्चित कुछ किया जा सकता है कि इस मुल्क की आत्मा को जन्म मिल जाए। यह पहली बात आपसे कहना चाहता हूं कि यह भ्रम टूट जाना चाहिए। क्रांति का पहला चरण यह है।
और दूसरा चरण मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि अब तक मनुष्य को आध्यात्मिक बनाने की हमने जो योजना दी है, उस योजना में बुनियादी भूल है। और वह बुनियादी भूल यह है कि अब तक हमने अध्यात्म को एक सामूहिक उपक्रम, एक कलेक्टिव एफर्ट समझा हुआ है। हमने समझा हुआ है कि आध्यात्मिक समाज बनाना है तो एक-एक आदमी को समूह के ढांचे पर ढालना है। यह बात बुनियादी रूप से गलत है, अवैज्ञानिक है। दो आदमी एक जैसे नहीं बनाए जा सकते; न बनाने का कोई उपाय है। जिस दिन पृथ्वी पूरी आध्यात्मिक होगी, उस दिन एक-एक आदमी अपने जैसा होगा।
फ्रांस में एक बादशाह था चार्ल्स पंचम। उसको यह ख्याल सवार था कि सारे लोगों को एक नीति, एक आचरण, एक विचार का बनाया जाए। उसने हजारों लोगों को फांसी पर लटकवा दिया, सिर्फ इसलिए कि आदमी अलग-अलग क्यों हैं, एक जैसे होने चाहिए! लेकिन फिर भी वह सफल नहीं हो पाया। बूढ़ा हो गया। तब तक उसने हजारों लोग मार डाले थे, लेकिन न तो सारे लोग एक विचार के बनाए जा सके, न एक चरित्र के बनाए जा सके, न एक मत में एक झंडे के नीचे लाए जा सके। फिर वह थक गया, ऊब गया, और उसने जाकर राज्य छोड़ दिया और एक मोनेस्ट्री में संन्यासी होकर भर्ती हो गया।
लेकिन जिंदगी भर की आदत थी उसको, तो उसने अपने एक कमरे में बारह घड़ियां लगवा लीं और चेष्टा करता था कि बारह घड़ियां एक सा समय दें। बारह बजें तो सब में बारह बज जाएं; एक मिनट-सेकेंड का फर्क न हो। लेकिन दो-चार दिन में ही उसे मुश्किल मालूम हुई, बारह घड़ियां थीं, उनको एक साथ चलाना मुश्किल था। घड़ियों को ही चलाना मुश्किल हो गया, कोई मिनट आगे निकल जाती, कोई मिनट पीछे रह जाती। उसने क्रोध में घड़ियां तोड़ डालीं। लेकिन घड़ियां तोड़ कर उसे ख्याल आया कि जब बारह घड़ियां भी एक जैसी नहीं चलाई जा सकतीं, तो मैं सारे देश के लोगों को एक जैसा चलाने की कोशिश कर रहा था, वह पागलपन था।

घड़ियां तो मृत हैं, वे भी एक जैसी नहीं चलाई जा सकतीं, तो जीवित मनुष्यों को एक से सांचों में कैसे ढाला जा सकता है!
वह जो चार्ल्स पंचम को जो पागलपन सवार था, वही इस देश के धर्मगुरुओं
को हजारों साल से सवार है। हर आदमी को एक जैसा बना देना है! जब कि कोई दो आदमी एक जैसे नहीं हैं। एक जैसे बना देने की चेष्टा असफल होने को आबद्ध है, वह असफल होकर रहेगी, वह असफल हो गई है।
एक-एक आदमी का अनूठापन स्वीकार करना जरूरी है। अगर हमें मनुष्य को आध्यात्मिक बनाना है, तो आध्यात्मिकता युनिफॉरमिटी का नाम नहीं है। आध्यात्मिकता मिलिट्री की परेड नहीं है कि वहां एक जैसी कवायद हो रही है कि सारे लोग एक जैसे खड़े हुए हैं। एक-एक आदमी के पास अपनी आत्मा है, अपना व्यक्तित्व है। उस व्यक्तित्व को अपने ही ढंग से विकसित होने का मार्ग होना चाहिए।
लेकिन अब तक धर्म के नाम पर हमने यही किया है कि व्यक्ति को हमने समाज
के ढांचे में ढालने की चेष्टा की है। समाज के ढांचे में ढाला गया व्यक्ति आध्यात्मिक तो हो ही नहीं पाता, पाखंडी हो जाता है, हिपोक्रेट हो जाता है। क्योंकि उसे हम जो बनाने की कोशिश करते हैं वह बन नहीं पाता, फिर वह क्या करे? फिर वह धोखा देना शुरू करता है कि मैं बन गया हूं। भीतर से वह जानता है कि मैं नहीं बना हूं। भीतर से अपराध अनुभव करता है। लेकिन जीने के लिए चेहरे बनाने फिर जरूरी हो जाते हैं। वह कहता है, मैं बन गया हूं। भीतर रहता है अशांत, भीतर रहता है पाप और अपराध से घिरा हुआ, और जाकर मंदिर में पूजा करता है। जब वह पूजा करता है, अगर कोई उसके प्राणों में झांक सके, तो पूजा को छोड़ कर उसके प्राणों में सब कुछ हो सकता है, पूजा उसके प्राणों में बिल्कुल नहीं हो सकती।
लेकिन सोशल कनफरमिटी, समाज कहता है, पूजा करना धर्म है, टीका लगाना धर्म है, चोटी बढ़ाना धर्म है। धर्म जैसे कोई मिलिट्री की कवायद है कि आप इस-इस तरह का काम कर लें तो आप धार्मिक हो जाएंगे। धर्म के नाम पर समाज ने एक व्यवस्था बनाई हुई है। उसके अनुकूल आप हो जाएं, आप धार्मिक हो गए। जब कि आध्यात्मिक होने का मतलब ही यह है कि आपकी जो व्यक्तिगत चेतना है उसकी फ्लावरिंग हो, आपका जो व्यक्तिगत चेतना का फूल है वह खिले। और आप जैसा आदमी इस दुनिया में कभी नहीं हुआ। न राम आप जैसे थे, न बुद्ध आप जैसे, न महावीर आप जैसे।
यही तो वजह है कि ढाई हजार साल हो गए महावीर को गए हुए, दूसरा महावीर क्यों पैदा नहीं हो सका? क्या इसका कारण यह है कि लोगों ने महावीर बनने की कोशिश नहीं की? हजारों लोगों ने कोशिश की। लाखों लोगों ने कोशिश की। वे ठीक कपड़े छोड़ कर महावीर के जैसे नग्न खड़े हो गए। आज भी वैसे लोग हैं। लेकिन उनमें से एक भी महावीर की गरिमा, गौरव, आनंद को उपलब्ध नहीं हो सका। क्यों नहीं हो सका?
पहली तो बात यह है कि कोई आदमी दूसरे जैसा नहीं हो सकता है। इसकी कोई संभावना नहीं है। जरूरत भी नहीं है। वह दुनिया बहुत बेहूदी और बहुत बोरडम से भरी होगी। अगर बंबई के पचास लाख लोग रामचंद्र जी हो जाएं और धनुष-बाण लिए हुए घूमने लगें, तो बहुत घबराने वाली हो जाएगी बंबई। या पचास लाख लोग ठीक महावीर जैसे हो जाएं बंबई में, तो भी जीना दूभर हो जाएगा, लोग समुद्र में कूद कर आत्महत्या कर लेंगे। क्योंकि इतना एक जैसा पन घबड़ाने वाला होगा। जीवन में है विभिन्नता, अलग-अलग फूल, अलग-अलग रंग, अलग-अलग सुगंधें, और इसलिए जीवन में एक रस है और एक आनंद है।
नहीं, व्यक्तियों को मिटाने की जरूरत नहीं है। एक-एक व्यक्ति को पूरी स्वतंत्रता देने की जरूरत है कि वह वही हो सके जो होने के लिए पैदा हुआ है। लेकिन अब तक की सारी शिक्षा धर्मों की यह है--अध्यात्म के नाम पर हम यही सिखाते हैं--क्राइस्ट जैसे हो जाओ! गांधी जैसे हो जाओ! महावीर जैसे हो जाओ! लेकिन कोई धर्म यह नहीं कहता कि अपने जैसे हो जाओ। दूसरे जैसे हो जाओ! दूसरे जैसे होने वाली आध्यात्मिकता झूठी होगी। और उससे जो आदमी पैदा होंगे वे असली आदमी नहीं होंगे, वे कार्बन कापियां होंगे, असली नहीं। और दुनिया को चाहिए असली आदमी, जिंदा आदमी चाहिए जो अपने जैसा हो; जिसके

प्राणों में जो छिपा है उसे प्रकट करे, अभिव्यक्त करे। वह जो पैदा होने को हुआ है वही हो जाए।
एक आध्यात्मिक क्रांति का दूसरा चरण मेरी दृष्टि में--अध्यात्म को समूह से मुक्त करना है, क्राउड से मुक्त करना है और एक-एक व्यक्ति को गौरव और गरिमा देनी है। व्यक्ति का मूल्य है। समूह का अध्यात्म में कोई भी मूल्य नहीं है। भीड़ का आध्यात्मिक अर्थों में कोई भी मूल्य नहीं है।
भीड़ का मूल्य है राजनैतिक, पोलिटिकल। भीड़ का मूल्य है राजनेता के लिए, क्योंकि भीड़ की ताकत खड़ी करके वह नेता बनता है। भीड़ की जरूरत है वहां जहां युद्ध हैं, भीड़ की जरूरत है वहां जहां घृणा है, भीड़ की जरूरत है वहां जहां हमें फिजिकल फोर्स की जरूरत है। अध्यात्म में भीड़ की क्या जरूरत है? भीड़-भाड़ का वहां कोई सवाल नहीं, वहां एक-एक आदमी का मूल्य है। और एक-एक आदमी को खोज करनी है अपने प्राणों की, अपने सत्य की, अपने जीवन की, अपने जीवन को अभिव्यक्त करने का मार्ग खोज लेना है।
लेकिन यह नहीं हो सका, क्योंकि हमने राजनैतिक ढांचे पर धर्म को भी खड़ा
कर लिया। हिंदुओं की भीड़ है, मुसलमानों की भीड़ अलग है, जैनियों की भीड़ अलग है। ये भीड़ें हैं, इनका अध्यात्म से कोई भी संबंध नहीं। आध्यात्मिक व्यक्ति होता है, भीड़ का कोई सवाल नहीं है। अगर आपको आध्यात्मिक होना है तो भीड़ खोजनी पड़ेगी? नहीं; आपको एकांत खोजना पड़ेगा, भीड़ नहीं। आपको अकेलापन खोजना पड़ेगा। आपको दूसरों से अपने को मुक्त करके अपने भीतर की खोज करनी पड़ेगी।
फिर हिंदुओं की भीड़ की क्या जरूरत है? मुसलमानों की भीड़ की क्या जरूरत है? ईसाइयों की भीड़ की क्या जरूरत है? ये भीड़ें राजनीति के छद्मवेश हैं, ये भीड़ें राजनीति की छिपी हुई शक्लें हैं। इसलिए हिंदू-मुसलमान के नाम पर हिंदुस्तान-पाकिस्तान बंट जाता है। धर्म का नाम है, बदमाशी राजनीति की है। सारी दुनिया में लड़ाइयां चलती हैं, हत्याएं चलती हैं। धर्म का नाम है, मस्जिद की आड़ है, मंदिर की आड़ है--और पीछे? पीछे शैतान तलवारें लिए हुए खड़ा है। और उसके पीछे हमेशा शैतान खड़ा हुआ है। वहां कभी भगवान नहीं है। और जहां-जहां भीड़ इकट्ठी होती है वहां-वहां साधना का कोई सवाल नहीं रह जाता। लेकिन अब तक हमने इसको आध्यात्मिक होना समझा था कि एक आदमी हिंदू है,
तो हम कहते हैं यह धार्मिक है। एक आदमी हिंदू भीड़ में सम्मिलित है तो हम कहते हैं धार्मिक है। भीड़ में सम्मिलित होने के लिए उसे कुछ नियम पालन करने पड़ते हैं। चोटी बढ़ानी पड़ती है, टीका लगाना पड़ता है, जनेऊ पहनना पड़ता है। अगर वह ये काम पूरे कर देता है तो वह आदमी धार्मिक है।
अभी मैं एक पत्रिका पढ़ रहा था। मैं तो हैरान हो गया! बीसवीं सदी में भी
इस तरह की बातें कहने वाले लोग हैं। और न तो हमारे पास उनकी चिकित्सा का उपाय है, न अस्पतालों में भेजने की कोई व्यवस्था है। एक पीठी के जगतगुरु शंकराचार्य दिल्ली में ठहरे हुए थे, उनकी ही पत्रिका में वह लेख छपा है इसलिए गलत होने का कोई सवाल नहीं। एक आदमी ने आकर उनसे प्रार्थना की सुबह, दस-पच्चीस उनके भक्त बैठे हुए हैं और एक आदमी ने उनसे प्रार्थना की कि हमारा एक मंडल है, हम कुछ ब्रह्मज्ञान के संबंध में आपका उपदेश रखना चाहते हैं। जगतगुरु ने नीचे से ऊपर तक उसे देखा। वह आदमी टाई पहने हुए है, कोट-पतलून पहने हुए है। और कहा कि टाई, कोट-पतलून पहन कर ब्रह्मज्ञान पा लोगे? वह आदमी घबड़ा गया होगा। उसने कभी ख्याल भी नहीं किया होगा कि ब्रह्मज्ञान का टाई, पतलून और कोट से भी कोई संबंध हो सकता है! वह थोड़ा डरा। उसको डरा हुआ देखा होगा और पच्चीस जो भक्त बैठे थे वे प्रसन्न हुए होंगे, तो शंकराचार्य की हिम्मत बढ़ी होगी। इन गुरुओं की हिम्मत तब तक बढ़ती रहेगी जब तक भीड़ इनके पीछे है। तो उन्होंने उससे कहा, चोटी है?
अब उस आदमी की चोटी कहां! तो उन्होंने अपने शिष्यों से कहा, देखो, चोटी
है नहीं और ब्रह्मज्ञान की खोज करने चले हैं!
और भी इससे गजब की बात उन्होंने पूछी जो अत्यंत अशिष्ट है, लेकिन उन्होंने पूछा। और भक्तों ने छापा है, तो भक्तों ने प्रशंसा में ही छापा होगा। उन्होंने पूछा कि पेशाब खड़े होकर करते हो कि बैठ कर?
यह हमारा धर्म है, यह हमारा अध्यात्म है।

और उस आदमी से, उस बेचारे आदमी को अपमानित किया और कहा कि जाओ, जब तक ये
सब बदलोगे नहीं तब तक तुम समझ ही नहीं सकते कि धर्म क्या है!
सोशल कनफरमिटी को, सामाजिक एकरूपता को अब तक हमने धर्म समझा हुआ है। हमारे जैसे कपड़े पहनो, हमारे जैसे उठो-बैठो, तो धार्मिक हो जाओगे। धार्मिक होने से इसका क्या संबंध? बल्कि सच तो यह है कि हमारे बीच जो सबसे ज्यादा आत्मिक रूप से कमजोर होते हैं, वीकलिंग होते हैं, वे इस सोशल कनफरमिटी में सम्मिलित होते हैं। जो हमारे बीच थोड़े भी शक्तिशाली हैं वे इस मूर्खता में सम्मिलित नहीं होंगे। और उसका दुष्परिणाम यह होगा कि वे समाज के विद्रोह में खड़े हो जाएंगे।
आज जमीन पर जितने लोग सामाजिक जगत का विरोध करते हैं, उन लोगों में बहुत आध्यात्मिक चेतना है। लेकिन उस चेतना का दुरुपयोग हो रहा है। वे प्रतिक्रिया में खड़े हो गए हैं समाज के। उन सारे लोगों को आध्यात्मिक बनाया जा सकता है। मेरी दृष्टि में, आस्तिकों की बजाय नास्तिक में ज्यादा आध्यात्मिक ऊर्जा और खोज होती है। क्योंकि वह ईमानदारी से पूछता है कि मुझे ईश्वर दिखाई नहीं पड़ता तो मैं कैसे मानूं? उसका ईश्वर से ज्यादा गहरा कनसर्न है, उसका ईश्वर से ज्यादा गहरा संबंध है। वह पूछता है कि जो मुझे दिखाई नहीं पड़ता उसे मैं कैसे मानूं?
और एक आस्तिक बिल्कुल धोखेबाज है। उसे न ईश्वर दिखाई पड़ता है, न उसे मतलब है। वह कहता है, होगा, जरूर होंगे! एक कभी नारियल चढ़ा देते हैं, इससे ज्यादा झंझट में पड़ना भी नहीं है। हो या न हो, क्या करना है! होंगे ही, जब सब लोग कहते हैं तो ईश्वर जरूर है। यह आदमी आस्तिक दिखाई पड़ता है, क्योंकि समाज की धारणा को स्वीकार करता है, समाज के अनुगत हो जाता है, समाज का गुलाम है। समाज इसका आदर करता है कि यह आदमी बिल्कुल ठीक है। जो आदमी कहता है, कहां है ईश्वर? जो आदमी पूछता है, चोटी और ब्रह्म का क्या संबंध? वह आदमी गड़बड़ मालूम पड़ता है! दिखाई पड़ता है कि नास्तिक है, अधार्मिक है।
मैं आपसे कहना चाहता हूं, ऐसी उलटी स्थिति हो गई है इस जगत में कि जो लोग सच में आध्यात्मिक हो सकते थे वे आज विद्रोही दिखाई पड़ते हैं और जिनके जीवन में कोई अध्यात्म नहीं वे धार्मिक दिखाई पड़ते हैं। यह उलटा शीर्षासन उनका चल रहा है।
अगर आने वाले बच्चों को धार्मिक बनाना है और इस देश को कोई आध्यात्मिक क्रांति देनी है, तो मैं आपसे कहता हूं, अध्यात्म हमेशा विद्रोही है, रिबेलियस है। महावीर विद्रोही थे, बुद्ध विद्रोही थे, क्राइस्ट विद्रोही थे, कृष्ण विद्रोही थे। अध्यात्म हमेशा विद्रोही है। क्यों? क्योंकि वह भीड़ से मुक्त होने की चेष्टा करता है। अध्यात्म हमेशा व्यक्तिवादी है, इंडिविजुअलिस्टिक है। क्योंकि वह अपनी आत्मा की घोषणा करता है, वह सारी दुनिया के सामने यह कहना चाहता है कि मैं हूं। और मैं जो होने को पैदा हुआ हूं वही होने की आज्ञा चाहता हूं। और अगर वह आज्ञा नहीं मिलेगी तब भी मैं वही होने की चेष्टा करूंगा। सारी दुनिया के विरोध में भी मैं वही होने की चेष्टा करूंगा।
एक पहाड़ के किनारे पर, एक पहाड़ से मैं गुजर रहा था, एक ऊंची चोटी पर, एक पत्थर की दरार से एक बीज फूट गया होगा, एक शाखा निकली है, एक फूल खिला है। मैंने अपने मित्रों को कहा, देखते हो! एक पहाड़ की दरार पर, आंधियों और तूफानों में भी, एक बीज असर्ट करता है अपने को, एक बीज अभिव्यक्त करता है अपने को। उसने अपनी शाखा भेज दी, फूल खिल गया। पानी की मुश्किल होगी उसे पाने को वहां, मिट्टी कहां से खोदी होगी। पहाड़ की दरार है, आकाश में उठा हुआ है, अकेला है, कहीं दूर तक हरियाली नहीं है। आंधियां आती होंगी, तूफान टकराते होंगे चट्टान से आकर। लेकिन छोटा सा बीज भी हिम्मत रखता है, वह भी अपने को बचाने की चेष्टा करता है, वह लड़ता है। वह तूफानों से भी कहता हैः कोई फिकर नहीं, लेकिन मैं बढूंगा; कोई फिकर नहीं, लेकिन मैं फूलूंगा; कोई फिकर नहीं, बीज जब पैदा हो गया है तो फूल बन कर रहेगा। यह घोषणा करता है। लेकिन आदमी इतना कमजोर है कि वह जिंदगी में घोषणा भी नहीं करता कि मेरे भीतर भी फूल हैं, मैं उन्हें खिलाऊंगा। मेरा व्यक्तित्व है, मैं उसे विकसित करूंगा। मैं लडूंगा सारी दुनिया से। इम्मॉरल सोसाइटी है, अनैतिक समाज है, धार्मिक आदमी अगर किसी को होना है तो उसे समाज के खिलाफ लड़ना ही

पड़ेगा। और इसलिए विद्रोही आदमी ही धार्मिक हो सकता है। इम्मॉरल सोसाइटी और मॉरल मैन, इन दोनों के बीच क्या संबंध हो सकता है? समाज है अनैतिक, तो धार्मिक आदमी कैसे समाज के अनुगत हो सकता है? इसका मतलब जो भी समाज के अनुगत है वह अनैतिक होगा! इस अनैतिक समाज के खिलाफ जो खड़ा होगा, विद्रोही, वही धार्मिक हो सकता है। धार्मिक होने के लिए व्यक्ति की चेतना का उदघोषण जरूरी है।
तो दूसरी बात यह कहना चाहता हूं कि सामूहिक धर्म का गया दिन, सामूहिक आध्यात्मिकता विदा हो गई। वह झूठी सिद्ध हुई, वह असफल हो गई। अब एक व्यक्तिगत आध्यात्मिकता, इंडिविजुअल स्प्रिचुअलिटी की घोषणा सारे जगत में कर देनी जरूरी है। और हमारे देश में तो अत्यंत जरूरी है।
भारत को आध्यात्मिक क्रांति की जरूरत है। बहुत सूत्र होंगे इस क्रांति के। लेकिन दो छोटे से सूत्रों पर मैंने आपसे बात की है। एक--कि यह भ्रम हमारा जाए कि हम आध्यात्मिक हैं। दो--समूह के साथ एक होने का नाम आध्यात्मिकता नहीं; आध्यात्मिकता का अर्थ हैः आत्मा की अभिव्यक्ति, घोषणा, व्यक्ति की घोषणा।
इन दो सूत्रों पर मैंने ये थोड़ी सी बातें आपसे कहीं, इस आशा में कि आप मेरी बात मान नहीं लेंगे। अभी मेरे मित्र ने जिन्होंने परिचय दिया, उन्होंने कहा कि मैं जो कहूं, उसे विचारें, मानें, व्यवहार करें। नहीं, उतने आगे जाने को मैं नहीं कहूंगा। उनके इरादे ज्यादा एंबीशस हैं, उन्होंने ज्यादा महत्वाकांक्षा की बात कह दी। इतना ही पर्याप्त है कि मैंने जो कहा उसे सोचें। मानने की कोई भी जरूरत नहीं। और करने की तो कोई भूल कर चेष्टा मत करना। क्यों? क्योंकि मेरा कहना ही यह है कि अगर विचार में कोई चीज परिपूर्ण रूप से ठीक मालूम हो जाए, तो आपको करना नहीं पड़ेगा, वह होनी शुरू हो जाएगी। हमें करने की कोशिश तभी करनी पड़ती है जब विचार में हमारे बहुत गहरे तक कोई बात नहीं जाती, तब हमें चेष्टा करनी पड़ती है कि करो इसे। करने की चेष्टा आधे विचार का कारण है, अधूरा विचार है।
मैं नहीं कहता कि मेरी बात करने की कोशिश करना। अब तक के साधु-संत वही कहते रहे हैं कि हम जो कहते हैं उसे करो। मैं कहता हूं कि इस बात को भूल कर भी मत सोचना। मैं जो कहता हूं उसे सोचो, बस उतना ही काफी है। अगर ठीक से सोचा तो दो बातें होंगीः या तो मेरी बातें सब गलत दिखाई पड़ेंगी, तो उनसे छुटकारा हो गया, उनको करने की कोई जरूरत न रही; या आपने ठीक से सोचा और मेरी कोई बात ठीक दिखाई पड़ी, इतनी ठीक दिखाई पड़ी कि वह आपके प्राणों में प्रवेश कर गई, तो आपको उसे करने की फिकर न करनी पड़ेगी। जैसे बीज जमीन में घुस जाए, फिर उसे पौधा बनना नहीं पड़ता, फिर बीज टूट जाता है और अंकुर निकल आता है और पौधा पैदा हो जाता है।
एक बार प्राणों की गहराई में कोई विचार चला जाए, फिर वह बीज बन जाता है। और आप पाएंगे कि अचानक आपने वैसा करना शुरू कर दिया है जो आपका विचार है। विचार के पीछे आचरण छाया की भांति चलता है। विचार कमजोर हो तो आचरण को खींच-खींच कर लाना पड़ता है; विचार ठीक हो, राइट थिंकिंग हो, तो आचरण अपने आप पीछे चला आता है। जैसे बैलगाड़ी चलती है तो पीछे चक्के के निशान बन जाते हैं; आदमी चलता है तो उसकी छाया चलती है। आचरण शैडो से ज्यादा नहीं है, आचरण छाया की भांति है। विचार है असली तत्व!
तो मैंने जो कहा उसको आप विचारने की ही कृपा करना। उतना पर्याप्त है। लेकिन उतने की भी आशा नहीं है। हम विचार भी नहीं करते हैं। इसलिए आगे
की तो बातें सब फिजूल हो जाती हैं। हम सुनते हैं, और या तो सुन कर मान लेते हैं या सुन कर नहीं मान लेते हैं, बस दो काम कर लेते हैं बहुत जल्दी। या तो कह देते हैं कि सब ठीक, बिल्कुल ठीक कहा। और चरण पकड़ लेते हैं किसी आदमी का कि गुरुदेव, आपने बिल्कुल ठीक कहा है। बस बात खत्म हो गई। गुरुदेव को धन्यवाद दे दिया और बात खत्म हो गई, आप पर कोई जिम्मा न रहा, अभी आपने निबटारा कर दिया। धन्यवाद, मतलब आपने हमें अच्छी बात बताई तो हमने कृतज्ञता ज्ञापन कर दी, बात खत्म हो गई। और या फिर दूसरा निर्णय ले लेते हैं कि यह बात सब गड़बड़ है; आंख बंद करके अपने पुराने गुरुदेव के ही पैर दबाए चले जाना कि वही ठीक है।

ये दोनों ही बातें अविचार का लक्षण हैं। न तो किसी बात को शीघ्रता से स्वीकार कर लेना चाहिए, न अस्वीकार। सुन लेना चाहिए निष्पक्ष मन से। फिर बहुत धीरे, बहुत आहिस्ता से उस पर विचार करना चाहिए। बहुत निष्पक्ष, अनप्रिज्युडिस्ड, अपने सारे पुराने विचारों को एक तरफ रख कर फिर से पुनर्विचार करना चाहिए कि जो कहा गया वह कितने दूर तक सच हो सकता है। और जिस दिन उसमें सत्य दिखाई पड़ेगा, आप पाएंगे कि उस सत्य ने आपके जीवन को बदलना शुरू कर दिया है।
जीसस का एक वचन है। जीसस ने कहा हैः सत्य को पा लो! और फिर शेष सब सत्य
कर देगा, तुम्हें कुछ नहीं करना पड़ेगा।
सत्य को पा लो; और शेष सब सत्य कर देगा, फिर तुम्हें कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। यही मैं भी आपसे कहता हूं। विचार को पा लो, विचार करने की क्षमता को पा लो; और फिर विचार करने की क्षमता सत्य को खोज लेती है। जैसे नदियां सागर को खोज लेती हैं। कोई पता नहीं रास्ते का, गंगा को पता नहीं कि सागर कहां है, निकल पड़ती है गंगोत्री से। लेकिन सागर तक पहुंच जाती है।
जिसके जीवन में विचार की गंगा पैदा हो जाए वह सत्य के सागर तक पहुंच जाता है। और फिर सत्य मिल जाए तो जीवन अपने आप रूपांतरित होता है, बदल जाता है; फिर बदलना नहीं पड़ता, चेष्टा नहीं करनी पड़ती।
मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नये समाज की खोज
चौदहवां प्रवचन

सत्य को बोलने का साहस

प्रियआत्मन्‌!
एक छोटी सी घटना से मैं अपनी बात शुरू करना चाहूंगा।
एक छोटा सा स्कूल एक छोटे गांव में और सुबह ही सुबह स्कूल के निरीक्षण
के लिए स्कूल का इंस्पेक्टर निरीक्षण को आया हुआ है। स्कूल की बड़ी कक्षा में वह गया, उसने बोर्ड पर तीन सवाल लिखे और विद्यार्थियों से कहा: तुम्हारी कक्षा में जो प्रथम, द्वितीय और तृतीय विद्यार्थी हों; वे क्रमशः आकर इन सवालों को हल कर दें। पहला विद्यार्थी उठा, उसने बोर्ड पर सवाल आकर हल किया, अपनी जगह बैठ गया। दूसरा विद्यार्थी उठा, उसने भी सवाल हल किया। तीसरा विद्यार्थी उठा, लेकिन बहुत झिझकता हुआ, बहुत डरा हुआ। फिर बोर्ड पर आकर खड़ा हुआ तो भी सिर झुकाए हुए। फिर इंस्पेक्टर को शक हुआ। उसने गौर से उस बच्चे को देखा, तो उसे खयाल आया, यह तो पहली बार भी आकर सवाल हल कर गया है। उसने उस विद्यार्थी के कान पकड़ लिए और कहा कि तुम दुबारा धोखा देने की कोशिश कर रहे हो, तुम तो पहले भी सवाल हल किए हो आकर?
उस विद्यार्थी ने कहा: पहले भी मैं आया था, लेकिन दूसरी हैसियत से। हमारी कक्षा का नंबर तीन का विद्यार्थी क्रिकेट का मैच देखने चला गया है और वह मुझसे कह गया है कि उसकी जगह कोई जरूरत पड़ जाए तो मैं जाकर कर दूं। मैं उसकी जगह पर सवाल हल करने आया हूं।
इंस्पेक्टर तो बहुत नाराज हुआ और उसने कहा कि कोई किसी दूसरे की जगह परीक्षा नहीं दे सकता है। यह तो बेईमानी की यात्रा शुरू हो गई। तुमने अभी से ही बेईमानी सीख ली। कोई किसी की दूसरे की जगह परीक्षा देने की औचित्य नहीं है। बहुत डांटा उस विद्यार्थी को और कहा: दुबारा ऐसी भूल मत करना। आदमी अपनी ही जगह हो सकता है, किसी दूसरे की जगह नहीं। और जब भी कोई आदमी किसी दूसरे की जगह होने की कोशिश करता है, तभी जीवन में अनीति का कारण हो जाता है।
फिर वह शिक्षक की तरफ मुड़ा, जो बोर्ड के पास चुपचाप खड़ा था। और उस इंस्पेक्टर ने कहा: यह बच्चा मुझे धोखा दे रहा था, आप चुपचाप खड़े हुए देखते रहे! हो सकता था मैं पहचान भी न पाता, आप तो भलीभांति पहचानते होंगे कि विद्यार्थी दुबारा आया है?
उस शिक्षक ने कहा: क्षमा करें, मैं इस क्लास का शिक्षक नहीं हूं, मैं पड़ोस की कक्षा का शिक्षक हूं। इस कक्षा का शिक्षक क्रिकेट का मैच देखने चला गया है और मुझसे कह गया है कि उसकी जगह खड़ा हो जाऊं। मैं सिर्फ उसकी जगह आकर खड़ा हो गया हूं क्योंकि आप निरीक्षण करने आए हैं।
तब तो इंस्पेक्टर बहुत पागल हो उठा। उसने कहा: विद्यार्थी ही धोखा नहीं दे रहा है, आप भी धोखा दे रहे हैं! और अगर आप भी धोखा दे रहे हैं तो विद्यार्थी तो धोखा देना सीखेंगे ही। ऐसे शिक्षक को स्कूल की नौकरी में नहीं रखा जा सकता है। उसने अपना रजिस्टर खोल लिया और कहा कि मैं आपके खिलाफ रिपोर्ट लिखता हूं। गरीब शिक्षक बहुत घबड़ा गया। घुटने टेक कर, हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगा कि अब दुबारा ऐसी भूल नहीं करूंगा। इस बार क्षमा कर दिया जाऊं, मेरे छोटे बच्चे हैं। इंस्पेक्टर को अंततः दया आ गई। और उसने कहा कि तुम इस बार क्षमा किए जाते हो, लेकिन दुबारा ऐसी भूल मत करना। इस बार तुम बच रहे हो, क्योंकि मैं असली इंस्पेक्टर नहीं हूं। असली इंस्पेक्टर क्रिकेट का मैच देखने चला गया है। मैं उसका मित्र हूं, उसने कहा कि जरा जाना आज स्कूल का निरीक्षण कर आना। तो मैं स्कूल का निरीक्षण करने आ गया हूं।
यह कहानी जब मैंने सुनी, तो मुझे समझ में आया कि यह तो हमारे पूरे देश
की प्रतीक कहानी है। नीचे से लेकर ऊपर तक, चपरासी से लेकर राष्ट्रपति तक सब आदमी बेईमानी में संलग्न हैं। हर आदमी हर दूसरे आदमी को धोखा दे रहा

है। और हर धोखा देने वाला यह समझा रहा है कि धोखा देना बहुत बुरा है, धोखा नहीं देना चाहिए।
अब सबको यह पता चल गया है कि धोखा देना ही जिंदगी का नियम है। और यह भी समझ में आ गया है कि समझाते रहना चाहिए कि धोखा नहीं देना है, लेकिन धोखा देना जारी रखना चाहिए।
पूरे देश का चारित्र्य, पूरे देश का आचरण, पूरे देश की आत्मा रोज-रोज पतित होती चली जा रही है। और लाख उपदेश दिए जाएं, लाख समझाया जाए, उससे कोई भी अंतर नहीं पड़ता है। क्योंकि उपदेश देने वाले भी उसी जगह खड़े हैं जिस जगह उपदेश सुनने वाले खड़े होते हैं। एक ऐसा जाल पैदा हो गया है जिससे बाहर निकलने का कोई उपाय भी नहीं सूझता है। और सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह होता है कि यह एक ऐसे देश में घट रहा है जो देश हजारों वर्षों से सत्य की, ईमानदारी की, नीति की, धर्म की और परमात्मा की बातें कर रहा हो। हमसे ज्यादा बातें पृथ्वी पर किसी देश ने नहीं की हैं--अच्छी बातें। और हमसे ज्यादा बुरा आदमी खोजना पृथ्वी पर मुश्किल हो गया। हम सबसे अच्छी बातें करने वाले लोग और हमसे ज्यादा बुरा जीवन किन्हीं का भी न हो, तो बहुत हैरानी मालूम पड़ती है।
क्या कारण हो सकता है? कहीं बहुत अच्छी बातें करना भी तो एक कारण नहीं है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि हमने धर्म को बातचीत बना लिया है और जीवन से उसका कोई संबंध नहीं रह गया?
जिन देशों में धर्म की कोई भी बातचीत नहीं है, वे देश हमसे ज्यादा धार्मिक मालूम पड़ते हैं। जिन देशों में धर्म की कोई चर्चा नहीं है, उनका चरित्र भी हमसे ऊंचा मालूम पड़ता है। और हम जो हजारों वर्षों से चरित्र की बात करते हैं, सुबह से सांझ तक धर्म की बात करते हैं--सुबह उठते हैं तो राम का नाम लेते हुए, रात सोते हैं तो राम का नाम लेते हुए। लेकिन दो नामों के बीच में दिन भर का हमारा जो जीवन है, वह राम के बिलकुल विपरीत है। यह ऐसा कैसे हो गया? इसे समझने के लिए पहली बात तो यही समझ लेनी जरूरी है कि जब भी कोई समाज और कोई देश और कोई कौम जीवन की श्रेष्ठतम दिशाओं को सिर्फ चर्चा का कारण बना लेती है, तभी उस देश, उस समाज, उस कौम का पतन शुरू हो जाता है। कुछ चीजें बात करने के लिए नहीं, जीने के लिए होती हैं। और जब हम उनकी बात करने लगते हैं तो जीने से उनका संबंध चूक जाता है।
इस देश को भी धर्म की बातचीत बंद कर देनी पड़ेगी। इस देश को भी चरित्र
की बातचीत बंद कर देनी पड़ेगी और चरित्र को जीना और धर्म को जीना शुरू करना पड़ेगा।
एक आदमी सुबह मंदिर हो आता है, भागता हुआ मंदिर में जाकर हाथ जोड़ कर लौट आता है और हम कहते हैं वह आदमी धार्मिक हो गया, क्योंकि वह आदमी मंदिर गया। मंदिर जाने से किसी के धार्मिक होने का क्या संबंध हो सकता है? मंदिर जाने से कोई आदमी कैसे धार्मिक हो सकता है? मंदिर जाने से जीवन का क्या परिवर्तन होता है? जिस तरह का आदमी मंदिर गया था उसी तरह का आदमी मंदिर से वापस लौट आता है। मंदिर जाने से, मंदिर की सीढ़ियां चढ़ने से किसी की आत्मा नहीं बदल जाती। लेकिन हम कहते हैं, यह आदमी धार्मिक हो गया। यह धोखे की परिभाषा हो गई। जीवन को धर्म से हटा कर मरे हुए मंदिर के साथ जोड़ दिया। तब कोई भी आदमी मंदिर हो आएगा और धार्मिक हो जाएगा।
और जब इतने सस्ते ढंग से धार्मिक होने की सुविधा मिल जाए, तो कोई जिंदगी को बदल कर धार्मिक होने की कोशिश क्यों करे? एक आदमी तिलक लगा लेता हो, यज्ञोपवीत पहन लेता हो, चोटी बढ़ा लेता हो और धार्मिक हो जाता है। जिस देश ने धार्मिक होने के इतने सस्ते रास्ते निकाल लिए, उस देश में जीवन अधार्मिक हो ही जाएगा। इतने सस्ते रास्ते खतरनाक सिद्ध हुए। इस तरह कोई भी आदमी कभी धार्मिक नहीं होता।
धार्मिक आदमी होता है जीवन से। धार्मिक आदमी होता है चरित्र से। धार्मिक आदमी होता है व्यवहार से। धार्मिक आदमी होता है आचरण से। और हमने थोथी बातों से धर्म को जोड़ कर एक होशियार और चालाकी की तरकीब निकाल ली है। इस तरकीब से बिना धार्मिक हुए धार्मिक होने का मजा आ जाता है। अब गले में कोई रस्सी बांध ले, इससे कोई धार्मिक हो सकता है! तो कितनी ही मोटी रस्सी बांध ले, चाहे लोहे की जंजीर बांध ले, तो भी धार्मिक नहीं हो सकता। लेकिन

हम देख लेते हैं कि फलां आदमी यज्ञोपवीत पहने हुए है, वह आदमी धार्मिक। माथे पर कोई चंदन लगा ले, इससे कोई धार्मिक हो सकता है? या कोई आदमी गेरुए वस्त्र पहन ले, इससे कोई आदमी धार्मिक हो सकता है? वस्त्रों के पहनने से धार्मिक होने का क्या संबंध है? या कोई आदमी काशी हो आए या कोई आदमी बद्री और केदार की यात्रा कर ले, तो यात्रा करने से धार्मिक कैसे हो सकता है? चाहे कोई आदमी कितने ही गंगा-स्नान करे और चाहे कितने ही मंदिरों में बैठ कर आरती चलाए, इन सारी बातों से धार्मिक होने का कोई भी संबंध नहीं है। चाहे कोई आदमी बैठ कर कितनी ही माला फेरे...आश्चर्यजनक है, माला फेरने से, गुरिए फेरने से कोई आदमी धार्मिक कैसे हो जाएगा? लेकिन हमने ये तरकीबें निकाल ली हैं। और इन तरकीबों के कारण हम धार्मिक होने से बच गए हैं।
अगर हमें धार्मिक होना हो--और धार्मिक हुए बिना कोई समाज कभी भी न आनंद को उपलब्ध होता है, न शांति को उपलब्ध होता है। और धार्मिक हुए बिना कोई समाज न कभी शक्तिशाली होता है, न कभी सामर्थ्यवान होता है। धर्म को उपलब्ध हुए बिना कोई समाज कभी समृद्ध भी नहीं होता। धर्म को उपलब्ध हुए बिना कोई समाज ठीक अर्थों में मनुष्य का समाज भी नहीं बन पाता है।
लेकिन हम सोचते हैं कि धार्मिक होने का मतलब यह है कि हमारे गांव में कितने मंदिर हैं, कितने मस्जिद, कितने पुजारी हैं, कितने पुरोहित, कितने त्यौहार हम मनाते हैं, सत्यनारायण की कितनी कथाएं हम पढ़ाते हैं, रामायण कितनी पढ़ते हैं, गीता कितनी पढ़ते हैं, इन सारी बातों से हम धार्मिक होना समझ रहे हैं।
मेरे एक पटना युनिवर्सिटी के मित्र हैं, वे अमरीका गए धर्म के संबंध में बोलने। अमरीका में उन्होंने भारतीय धर्म के संबंध में बड़े व्याख्यान दिए। एक बूढ़ी स्त्री न्यूयॉर्क में उनके पास आई, उसकी उम्र कोई पचहत्तर वर्ष होगी, उस बूढ़ी स्त्री ने उनके पैर पकड़ लिए और उसने कहा कि अब तो मैं आपके साथ भारत चलूंगी। जहां ऐसे धार्मिक लोग हैं, जहां ऐसे धर्म का जगत है, मैं अपनी अंतिम श्वास वहीं लेना चाहती हूं। वे मित्र बहुत घबड़ाए। धर्म के संबंध में व्याख्यान देना बात एक है। और भारत में कहां धर्म है? कहां खोजने से मिलेगा? उन मित्र ने उसे बहुत टालने की कोशिश की कि मैं जाकर वहां इंतजाम करूंगा, फिर आपको बुला लूंगा। लेकिन उस बूढ़ी औरत ने कहा: आपने ही अपने व्याख्यान में कहा, एक भी श्वास का भरोसा नहीं है। क्या पता आप जाएं और मैं समाप्त हो जाऊं। पचहत्तर वर्ष मेरी उम्र हो गई। नहीं, मैं आपके साथ चलूंगी। इंतजाम मैं कर लूंगी, आप इंतजाम की फिकर न करें। मैं तो अपने अंतिम जीवन को वहीं बिताना चाहती हूं जहां ऐसे पवित्र लोग हैं।
वे पवित्र लोग यहां कहां हैं? लेकिन यह सारी दुनिया यही सोचती है कि भारत में बड़े पवित्र लोग होंगे। क्योंकि वे भारत की किताबें पढ़ते हैं और उन्हें भ्रम पैदा हो जाता है कि जहां की किताबें इतनी श्रेष्ठ हैं वहां के आदमी भी इतने श्रेष्ठ होंगे। उन्हें पता ही नहीं कि हमारी किताबें और हममें जमीन-आसमान का फर्क है।
वह बूढ़ी औरत नहीं मानी और जबरदस्ती भारत आ गई। वे मित्र तो बहुत डरे हुए थे कि उसे कहां जाकर दिखाएंगे ऋषि-मुनियों का देश। ऋषि-मुनियों की कमी नहीं है। लेकिन दूर से उनको देखो तो वे ऋषि-मुनि मालूम पड़ते हैं, उनके पास जाओ तो सब धोखा टूट जाता है।
पचपन लाख संन्यासी हैं भारत में आज भी, कोई संन्यासियों की कमी नहीं है। लेकिन इन पचपन लाख संन्यासियों का कोई भी उपयोग नहीं है। जिस देश में पचपन लाख ईश्वर को प्यार करने वाले संन्यासी हों, उस देश की यह हालत हो सकती है?
वे उस महिला को लेकर वे मेरे मित्र बोधगया पहुंचे। गया स्टेशन पर उतरे। सोचा कि जाकर भगवान बुद्ध का मंदिर दिखा देंगे बोधगया में। शांति है उस जगह। उस बूढ़ी को अच्छा लगेगा। स्टेशन पर उतरे गया के और दस-पंद्रह भिखमंगों ने आकर घेर लिया। वे भीख मांगने लगे। उस बूढ़ी औरत ने कहा कि तुम्हारे देश में अभी भी लोग भीख मांगते हैं? क्योंकि तुमने तो अपने व्याख्यानों में कहा था कि करुणा हमारे देश में पैदा हुई, कंपेशन। जिस देश में करुणा का जन्म हो चुका उस देश में अभी तक भिखारी हैं? तो तुम हजारों

वर्ष से कैसी करुणा कर रहे हो कि अब तक भिखारियों को नहीं मिटा पाए? यह कैसी करुणा है?
मित्र ने कहा: मैंने वहीं कहा था कि अभी मत चलो, मैं इंतजाम कर लूं तब चलना। लेकिन यह तो साधारण नगर है, मैं तुम्हें बोधगया ले चलता हूं थोड़ी दूर। वहां तुम्हें बहुत शांति और धार्मिक वातावरण मिलेगा।
वे जाकर बोधगया के मंदिर के सामने उतरे। उस बूढ़ी से उन्होंने कहा कि पहले चल कर होटल में सामान रख दें। उस बूढ़ी ने कहा: नहीं, पहले तो मैं भगवान बुद्ध के बोधिवृक्ष का दर्शन करूंगी। मंदिर के सामने ही सामान रख कर वे मंदिर के पीछे दर्शन करने को गए। लौट कर आए, सब सामान नदारद है, चोरी चला गया। वह बूढ़ी स्त्री कहने लगी कि क्या मंदिर में भी चोरी हो सकती है? और भगवान गौतम बुद्ध के मंदिर में चोरी हो सकती है? कैसा तुम्हारा देश?
वे मित्र मुझसे कहने लगे, मैंने अपना सिर पीट लिया और उस बूढ़ी को कहा
कि मैं पहले ही कह रहा था कि वहां मत चलो। अब तुम नहीं मानी, आ गई, तो मैं तुम्हें सत्य बता देना चाहता हूं। अच्छी बातें हमारी किताबों में लिखी हैं। हमने अच्छी बातों को किताबों में बंद कर दिया है, ताकि हमको अच्छी बातों के साथ जीना न पड़े। जैसा हमें जीना है, हम जीते हैं। अच्छी बातें हमने किताबों में लिख कर समाप्त कर दीं।
यह जो स्थिति है हमारी, यह बदलने जैसी नहीं मालूम पड़ती? क्या हम ऐसे ही जीते चले जाएंगे और देश रोज नरक से नरक होता चला जाएगा? लेकिन इसे कैसे बदला जाए? इसे बदलने का पहला सूत्र मैं आपसे कहना चाहता हूं और वह यह है, पहला सूत्र यह है कि धर्म को व्यर्थ की असंगत बातों से मुक्त करो, ताकि धर्म को संगत और जीवन की बातों से जोड़ा जा सके।
मत कहो उस आदमी को जो मंदिर जाता है धार्मिक। कहो उस आदमी को धार्मिक
जो इस तरह जीता है जमीन पर जैसे कि ईश्वर हो। कहो उस आदमी को धार्मिक जो लोगों में, जीवित लोगों में परमात्मा के दर्शन करता है, पत्थर की मूर्तियों में नहीं। कहो उस आदमी को धार्मिक जिसका आचरण प्रार्थनापूर्ण है। मत कहो उस आदमी को धार्मिक जो तीन घंटे हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता है, लेकिन बाकी जिंदगी में प्रार्थना का जिससे कोई भी संबंध नहीं है। मत कहो उस आदमी को धार्मिक जो सुबह उठ कर गीता पढ़ लेता हो और फिर दिन भर बेईमानी करता है। कहो उस आदमी को धार्मिक जिसने चाहे गीता कभी न पढ़ी हो और कभी किसी मंदिर और मस्जिद में न गया हो और कभी कुरान और बाइबिल को उठा कर न देखा हो, लेकिन जिसके उठने-बैठने और चलने से सबूत मिलता है कि वह आदमी चारों तरफ परमात्मा को अनुभव कर रहा है। जिसकी श्वास-श्वास से, जिसके शब्द-शब्द से, जिसके व्यवहार से धार्मिक होने का सबूत मिलता है, उस आदमी को हम धार्मिक कहेंगे। वह चाहे गेरुए वस्त्र पहनता हो या न पहनता हो, वह चाहे किसी धर्म को मानता हो या न मानता हो, चाहे वह ईश्वर को भी स्वीकार करता हो या न स्वीकार करता हो। लेकिन जिस व्यक्ति का व्यक्तित्व खबर देता है, सुगंध देता है पवित्रता की, उसको हम धार्मिक कहेंगे। हमें धार्मिक का क्राइटेरियन, धार्मिक होने का मापदंड बदल लेना पड़ेगा, तो हम इस देश में धार्मिक आदमी को पैदा कर सकते हैं, अन्यथा नहीं।
पुरी के शंकराचार्य ठहरे हुए थे दिल्ली में और एक आदमी उनसे मिलने गया और उस आदमी ने कहा कि हमारा एक छोटा सा समाज है, हम चाहते हैं कि आप चल कर हमें ब्रह्म के संबंध में उपदेश दें। शंकराचार्य ने हिकारत से उस आदमी को देखा, हंसे और कहा कि तुम, तुम्हें अभी कपड़े पहनना भी नहीं मालूम, तुम पैंट, टाई और कोट पहने हुए हो। कभी पता है कि फुलपैंट, टाई और कोट पहनने वालों को ब्रह्मज्ञान हो सकता है?
वह आदमी तो घबड़ा गया होगा। आस-पास बैठे हुए लोग भी हंसने लगे। और शंकराचार्य ने कहा कि अगर ऋषि-मुनियों ने किसी ने कभी फुलपैंट, कोट ये सब पहने थे? नासमझ थे वे लोग? तुम इन कपड़ों को पहन कर कभी ईश्वर को पा सकते हो? चोटी है तुम्हारी या नहीं?
उस आदमी ने कहा: चोटी तो नहीं है। तो शंकराचार्य ने कहा: हो गया ब्रह्मज्ञान! जिनकी चोटी भी नहीं है उनको ब्रह्मज्ञान कैसे हो सकता है!

यह सब कल्याण में छपा है पूरा का पूरा। और आखिरी और मजे की बात उन्होंने पूछी। और उन्होंने उस आदमी से पूछा कि खड़े होकर पेशाब करते हो कि बैठ कर?
ये हमारे जगतगुरु हैं, ये हमारे ज्ञानी हैं, ये हमारे धार्मिक लोग हैं
जो ब्रह्मज्ञान को इस तरह की मूढ़तापूर्ण बातों से जोड़ रहे हैं जिनका इनसे कोई भी संबंध नहीं है।
आदमी कैसे कपड़े पहनता है इससे धार्मिक होने का संबंध नहीं है। आदमी कपड़े कैसे भी पहन सकता है। आदमी भीतर कैसा है, सवाल यह है। कपड़ों का सवाल नहीं है कि आप कैसे कपड़े पहने हुए हैं। आप कैसे हैं? आप चोटी रखते हैं या नहीं, यह सवाल नासमझी का है। वह आदमी भीतर कैसा है? उस आदमी का व्यक्तित्व कैसा है? कपड़ों को और चोटियों को नापने-जोखने वाले लोग दर्जी हो सकते हैं, नाई हो सकते हैं, ब्रह्मज्ञानी नहीं। लेकिन हम इन्हीं को ब्रह्मज्ञानी समझे बैठे हैं। और हमने सारे मनुष्य के व्यक्तित्व को झूठी बातों से जोड़ दिया है। यह झूठी आधारशिला उखाड़ देने की जरूरत है। ठीक जगह उसे रखना पड़ेगा। और ठीक जगह कहां है धर्म की? ठीक जगह मनुष्य का व्यक्तित्व है, मनुष्य के बाह्य उपकरण नहीं। आदमी क्या पहनता है, क्या खाता है, क्या नहीं खाता है, कब सोकर उठता है, कब सोता है, ये सारी बातें अत्यंत गौण हैं। विवेकानंद से किसी ने अमरीका में पूछा कि तुम्हारे देश में धर्म की इतनी चर्चा है, लेकिन धर्म कहीं दिखाई नहीं पड़ता। कारण क्या है? तो विवेकानंद ने कहा कि मेरे देश में एक दुर्भाग्य घटित हो गया है, मेरे देश का सारा धर्म चौके-चूल्हे में जाकर सिकुड़ कर बैठ गया है। वहीं हम चिंतन करते हैं कि आदमी क्या खाता है, किसका छुआ खाता है, किसका छुआ पहनता है। इन सारी टुच्ची और दो कौड़ी की बातों में सारा धर्म सिकुड़ कर मर गया है।
धर्म को मुक्त करना जरूरी है, ताकि वह जीवन के विराट हिस्सों पर फैल जाए और हम उसे वहां पा सकें जहां उसकी जरूरत है। लेकिन यह तरकीब क्यों ईजाद की गई? यह तरकीब ईजाद करने वाले लोग बहुत चालाक रहे हैं। बहुत कनिंगनेस इस तरकीब के पीछे काम कर रही है। और वह तरकीब यह है कि जो लोग धार्मिक नहीं होना चाहते, अधार्मिक ही रहना चाहते हैं, वे लोग भी अपने मन को यह सुख और सांत्वना देने की इच्छा रखते हैं कि हम धार्मिक हैं। वे भी मरने के बाद स्वर्ग पाना चाहते हैं। वे भी मरने के बाद परमात्मा के सिंहासन के पास बैठना चाहते हैं। उन सबके लिए तरकीब निकालनी जरूरी है। और उनके लिए ऐसी ही व्यर्थ की तरकीबें निकाली जा सकती हैं।
तिब्बत में उनहोंने एक धर्म-चक्र बना रखा है। प्रेयर-व्हील उसका नाम है। जैसे आप माला फेरते हैं ऐसा उन्होंने एक छोटा चाक बना रखा है। उस चाक में एक सौ आठ आरे लगे हुए हैं। प्रत्येक आरे पर मंत्र लिखा हुआ है। दुकानदार अपनी दुकान में बैठा रहता है उस चक्के को रखे हुए। काम करता रहता है, दुकान चलती रहती है। कभी-कभी उस चक्के को हाथ से धक्का मार देता है, वह चक्का जितने चक्कर लगा लेता है उतने मंत्रों का फल उस आदमी को मिल जाता है। उस चक्के में लिखे हुए हैं मंत्र और चक्के को धक्के मारने से चक्के ने जितने चक्कर लगा लिए उतने मंत्रों का लाभ आदमी को मिल गया। वह दिन भर बैठा हुआ कभी-कभी धक्का मारता रहता है, ऐसे दिन भर में लाखों मंत्रों का लाभ उसे मिलता रहता है। अब तो बिजली आ गई। अब तो बिजली से जोड़ देना चाहिए चक्के को। वह दिन भर चलता रहेगा और मंत्रों का लाभ आपको मिलता रहेगा। इसमें, इसमें कोई फर्क नहीं है कि आप एक ब्राह्मण को खरीद कर घर ले आते हैं और उससे कहते हैं कि तू भागवत का पाठ कर। आप अपनी दुकान करते हैं, वह भागवत का पाठ करता है और लाभ आपको मिलता है।
नौकरों से प्रार्थनाएं करवाई जा रही हैं। नौकर भी प्रार्थना कर सकते हैं? नौकरों से करवाई गई प्रार्थना का उपयोग क्या है? लेकिन नहीं, हम धार्मिक होने का मजा भी लेना चाहते हैं। अब यह बड़ा अच्छा है कि चोटी बढ़ा लें, चोटी बढ़ाने में हर्ज क्या है, नुकसान क्या है। चोटी बढ़ा लें और धार्मिक हो जाएं। किसी पत्थर की मूर्ति के सामने दो मिनट सिर झुका कर बैठ जाएं और धार्मिक हो जाएं। दो फूल दूसरे की बगिया से तोड़ कर किसी मंदिर में चढ़ा दें और धार्मिक हो जाएं। इतना सस्ता रास्ता हमने निकाल लिया है। अब हमें सच में धार्मिक होने की जरूरत नहीं रह गई है।

आचरण को बदलना कठिनाई है। जिंदगी को बदलना मुसीबत है। क्योंकि जिंदगी
को बदलने का मतलब है, बहुत सी तकलीफ भी झेलनी पड़ेगी। असत्य को बोलने से लाभ भी मिल सकता है, सत्य को बोलने से नुकसान भी झेलना पड़ेगा। जिंदगी को बदलना तो तपश्चर्या है। लेकिन हमने और तपश्चर्याएं निकाल ली हैं जो बिलकुल धोखे की हैं। एक आदमी धूप में खड़ा हुआ है और हम कहते हैं, वह तपश्चर्या कर रहा है। धूप में खड़ा होने से तपश्चर्या का क्या संबंध?
सत्य बोलना तपश्चर्या हो सकती है। प्रेम करना तपश्चर्या हो सकती है। घृणा से और क्रोध से ऊपर उठना तपश्चर्या हो सकती है। किसी भी मनुष्य को शत्रु न मानना, सारे जगत को मित्र मानना तपश्चर्या हो सकती है। हिंसा से बचना तपश्चर्या हो सकती है। लेकिन धूप में खड़ा होना सर्कस का काम है, तपश्चर्या नहीं। एक आदमी उपवास पर बैठा हुआ है, खाना नहीं खा रहा है और हम समझते हैं तपश्चर्या हो गई। भूखे मरने से धार्मिक होने का कोई भी संबंध नहीं है। अन्यथा दुनिया में जितने लोग अकाल में पड़ जाते हैं वे सब धार्मिक हो जाते। भूखे मरने से धार्मिक होने का कोई भी संबंध नहीं है। और न नंगे खड़े हो जाने से धार्मिक होने का संबंध है। ये सारी की सारी बातें ऊपर हैं, इनसे आत्मा नहीं बदलती। और अगर एक आदमी रोज धूप में खड़ा रहे, तो थोड़े दिन में अभ्यस्त हो जाता है।
अभी मैं एक गांव से गुजरा। वहां एक संन्यासी आठ साल से खड़े हुए हैं।
वे बैठते नहीं, सोते नहीं। लाखों लोग उनकी पूजा करते हैं। मैंने उनसे पूछा कि किसी आदमी के खड़े हो जाने से क्या फर्क पड़ता है? उनके खड़े हो जाने से उनकी जिंदगी में कौन सा फर्क पड़ गया? और तुम पागलों की तरह पूजा करने में क्यों लगे हो? लाखों रुपये चढ़ाए जा रहे हैं। लोग कह रहे हैं कि बहुत बड़ा महान कार्य हो गया, क्योंकि एक आदमी खड़ा हुआ है।
किसी आदमी के जीवन भर खड़े रहने से क्या फर्क पड़ता है? क्या कोई आदमी खड़ा रहेगा तो ज्यादा बुद्धिमान हो जाएगा? जितना बुद्धू खड़ा होते समय रहा होगा उससे भी ज्यादा बुद्धू हो गया होगा
आठ साल में खड़ा-खड़ा। बुद्धि में थोड़ी-बहुत क्षमता रही होगी, वह भी खत्म हो गई होगी। क्या कोई आदमी खड़े रहने से आचरणवान हो जाएगा? तब तो बड़ी अच्छी तरकीबें हैं। क्या कोई आदमी खड़े रहने से भगवान को उपलब्ध हो जाएगा? मात्र खड़े रहने से क्या होने वाला है? हां, पूजा मिल सकती है, क्योंकि पूरा मुल्क बुद्धिहीनता की बातों में पड़ा हुआ है। लाखों लोग पूजा करेंगे कि कोई आदमी खड़ा हुआ है। कोई आदमी सिर के बल खड़ा हो जाए तो सारा गांव श्रद्धा करने इकट्ठा हो जाएगा। सिर के बल खड़े होने से क्या संबंध है? सिर के बल खड़े हो जाने से भगवान के मिलने की कौन सी सुविधा बनती है? भगवान सिर के बल खड़े हुए लोगों को ज्यादा पसंद करता होता तो उसने सभी को सिर के बल पैदा किया होता, किसी को पैर के बल खड़े करने की जरूरत न थी। लेकिन नहीं, हम इन सारी बातों को तप और साधना समझते हैं। ये तप और साधनाएं नहीं हैं।
जीवन की साधना और जीवन के तप वहां हैं जहां आदमी को श्रेष्ठ के लिए निकृष्ट को छोड़ने की तैयारी करनी पड़ती है। वहां जहां जिंदगी में असत्य को छोड़ने की हिम्मत जुटानी पड़ती है। जहां सत्य को बोलने का साहस करना पड़ता है। जहां चारों तरफ क्रोध को पैदा करने के उपाय किए जाते हैं और जहां आदमी क्रोध से बचने की चेष्टा करता है।
गौतम बुद्ध एक गांव के पास से निकलते थे, कुछ लोगों ने उन्हें घेर लिया और बहुत गालियां दीं। जब उन्होंने सारी गालियां सुन लीं, तब उन्होंने कहा कि अब मैं जाऊं अगर तुम्हारी बातें पूरी हो गई हों, क्योंकि मुझे दूसरे गांव जल्दी पहुंचना है। उस गांव के लोग रास्ता देखते होंगे। और तुमने मुझे पहले खबर भी नहीं की थी कि तुम्हें कुछ बात करनी है, अन्यथा मैं समय लेकर आता। मुझे जल्दी जाना पड़ेगा। तुम्हारी बात पूरी हो गई?
उन गांव के लोगों ने कहा: बात? हम गालियां दे रहे हैं, हम सीधी-सीधी गालियां दे रहे हैं, आपकी समझ में नहीं आता?
बुद्ध ने कहा: अगर गालियां देनी थीं, तो दस साल पहले आना था। दस साल से
तो मैंने गालियां लेना बंद कर दिया है। तुम देते हो वह ठीक, धन्यवाद, लेकिन मैं लेता नहीं। दस साल से मैं गालियां लेता ही नहीं।
उन लोगों ने कहा: गालियां भी क्या लेनी पड़ती हैं?

बुद्ध ने कहा: जो मैं नहीं लूंगा, तुम कैसे देओगे? दूसरे गांव में, पिछले गांव में कुछ लोग मिठाइयां लेकर आए थे। मैंने कहा, मेरा पेट भरा हुआ है। वे थालियां वापस ले गए। तुम गालियां लेकर आए हो अपनी थालियों में भर कर। और मैं कहता हूं, मैं नहीं लूंगा। अब तुम क्या करोगे? जबरदस्ती तो नहीं दिया जा सकता। तुम्हें अपनी गालियां वापस ले जाना पड़ेंगी, मित्रो, क्योंकि मैं लेता ही नहीं, मैंने गालियां लेना बंद कर दिया है।
इसे तो हम साधना कह सकते हैं कि किसी आदमी ने गालियां लेना बंद कर दिया हो। यह धूप में खड़े होने की मजाक नहीं है। व्यक्तित्व को इस भांति तैयार करना कि गालियां लेना बंद हो जाए। यह तो तपश्चर्या हो सकती है। यह तो साधना हो सकती है। यह आदमी परमात्मा के निकट पहुंच सकता है। यह आदमी धार्मिक हो सकता है। गालियां न लेना, क्रोध न लेना, घृणा न लेनी बड़ी हिम्मत की बात है। क्योंकि हमें पता ही नहीं चलता, देने वाला गाली दे भी नहीं पाता कि हम ले चुके होते हैं। हमें पता ही नहीं चलता कि कब हमने ले ली। दी नहीं कि गाली हमारे भीतर प्रवेश कर जाती है। प्रेम इतनी आसानी से प्रवेश नहीं करता। कोई हमें प्रेम करे तो हम पच्चीस बार सोचते हैं कि सच्चा है या झूठा? लेकिन कोई हमें गाली दे तो हम कभी नहीं सोचते कि सच्ची है या झूठी, फौरन स्वीकार कर लेते हैं।
जीवन की तपश्चर्या, जो व्यर्थ है, उसके प्रति जागने में है; जो सार्थक है, उसके विकास में है। चोटियां बढ़ाने में नहीं, आत्मा के बढ़ाने में; कपड़े बदलने में नहीं, आत्मा को बदलने में जिंदगी की साधना है। वहां है धर्म। और जिस दिन कोई व्यक्ति अपने जीवन के मंदिर में घृणा से मुक्त हो जाता
है और प्रेम से भर जाता है; असत्य से मुक्त हो जाता है और सत्य से भर जाता है, उस दिन उसे परमात्मा को खोजने नहीं जाना पड़ता, परमात्मा खोजता हुआ उसके द्वार पर आ जाता है। और यह मैं आपसे कहना चाहता हूं कि आप परमात्मा को कहां खोजेंगे? जिसका पता नहीं है उसे खोजेंगे कैसे? वह तो जिस दिन आप योग्य हो जाएंगे परमात्मा आपको खोज लेता है। आपको परमात्मा को नहीं खोजना पड़ता है।
धार्मिक आदमी मैं उसे नहीं कहता जो ईश्वर को खोजता है, धार्मिक आदमी मैं उसे कहता हूं जिसे खोजने के लिए ईश्वर को मजबूर होना पड़ता है। धार्मिक आदमी ईश्वर की फिकर ही नहीं करता, ईश्वर ही धार्मिक आदमी की फिकर कर लेता है। मैं उसको धार्मिक आदमी नहीं कहता जो मंदिर जाता है, मैं उसको धार्मिक आदमी कहता हूं कि जहां भी बैठ जाए वहीं मंदिर हो जाए, जहां भी जीए वहीं मंदिर की सुगंध आने लगे, जहां खड़ा हो जाए वह भूमि पवित्र हो जाए, जहां देख ले वहां प्रार्थना की हवा छा जाए। वैसे आदमी का होना धार्मिक होना है। और अगर हम इस दिशा में थोड़ा सा प्रयास नहीं किए और हमने जीवन को बदलने को ही धर्म की कला नहीं बनाया, तो हमारा देश खो गया है, हमारे देश का आगे कोई भी भविष्य नहीं है।
ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। एक सच्चे धर्म के आधार पर जीवन को और व्यक्ति को बदलना जरूरी है। और अगर हम यह कर सके, तो एक नये देश का और एक नये समाज का जन्म हो सकता है। इस जन्म की दिशा में आप सब भी प्रयास करेंगे, ऐसी अंत में प्रार्थना करता हूं।मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नये समाज की खोज
पंद्रहवां प्रवचन

निर्विचार अनुभव ही सनातन हो सकता है

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

कुछ निहित स्वार्थ पीछे नुकसान करते होंगे। लेकिन फिर भी अच्छा हुआ। बहुत लोगों को उत्सुक कर दिया। अब मैं जा रहा हूं तो ज्यादा लोग मुझे सुन रहे हैं, ज्यादा लोग पूछ रहे हैं। यह अच्छा हुआ।

गुजरात समाचार में भी, आपने तो पढ़ा होगा, दो-तीन महीने तक बहुत अच्छी तरह से फेवर में और अगेंस्ट में चर्चाएं चलती रही हैं।

बहुत अच्छा है। अच्छा है, एक लिहाज से तो अच्छा है। लोकमानस प्रबुद्ध
हो तो अच्छा है।

प्रवचन में आपका इतना प्रचार नहीं हुआ, जितना यह अखबार वालों ने प्रचार कर दिया। और अभी आप जहां जाते होंगे, वहां ज्यादा आदमी न आते होंगे, उसमें से कुछ लोग ही सिर्फ आते होंगे।

जरूर! लेकिन अच्छा हुआ, उससे बुरा नहीं हुआ है। विरोध से कभी भी कुछ बुरा नहीं होता। अगर बात गलत हो तो विरोध से खत्म हो जाती है और अगर बात में कोई बल हो तो विरोध से और मजबूत हो जाती है। दोनों हालत में फायदा होता है। अगर जो मैं कह रहा हूं वह गलत है, तो विरोध से वह टूट जाएगा। टूट जाना चाहिए! और अगर उसमें कुछ भी सही है, तो विरोध से और मजबूत होकर बाहर निकल आएगा। इसलिए विरोध से कभी कोई नुकसान नहीं होता।

तीन-चार महीने में आपका अनुभव क्या है? आपने जो दो बात बताई अभी--कि विरोध से टूट जाता है और विरोध से प्रचार भी होता है, तो आपका अनुभव चार महीने में क्या हुआ, यह भी बताइए।

कुछ भी नहीं टूटा, कुछ भी नहीं टूटा, कुछ भी नहीं टूट सकता है।

और मजबूत हुआ है?

हां, जरूर, जरूर!

प्रतिभा का कोई खंडन नहीं हो सका।

नहीं, कुछ नहीं। प्रतिमा का खंडन हो जाता है, प्रतिभा का कोई कुछ नहीं
कर सकता।

जूनागढ़ में जब आप पहले आए थे तो जो लोग आपके पास थे, वे शायद आज नहीं दिखाई पड़ते। वह क्यों?

कुछ दो-चार लोग, इससे ज्यादा नहीं।

वे दो-चार कोई मामूली आदमी थे?

मेरे लिए सब मामूली हैं। मैं व्यक्ति-व्यक्ति में मूल्य नहीं मानता हूं। और इसलिए और मामूली कहता हूं, क्योंकि वे नहीं दिखाई पड़ते; अगर वे दिखाई पड़ते तो इतने मामूली साबित नहीं होते। अगर मुझसे विरोध भी हो गया

हो, तो भी दिखाई पड़ने में तो हर्जा नहीं है। और मुझसे विरोध हो गया हो तब तो मुझे और भी सुनने को आना जरूरी है। मुझसे पूछ लें, मुझसे चर्चा कर लें, मेरा विरोध करने को आना जरूरी है। भाग जाना मामूली होने का लक्षण है।
फिर दो-चार लोग चले जाते हैं, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। ये जो दो-चार लोग हैं, होता क्या है--मुझे तो गांव-गांव में यह तकलीफ होती है--मुझे पहली बार जो लोग बुलाते हैं, न मालूम उनके मन में मेरा इमेज होता है कुछ, उस हिसाब से बुलाते हैं। सुनने के बाद मैं वैसा आदमी साबित हो भी सकता हूं, नहीं भी हो सकता। नहीं हो सकता तो वे तो चले जाने वाले हैं। और मैं उनको ध्यान में रख कर कुछ कर सकता नहीं हूं; कि वे रुकें, इसलिए कुछ नहीं कर सकता हूं। न मैं यह ध्यान में रख सकता हूं कि आपको क्या प्रीतिकर लगता है, वह मैं बोलूं। न यह ध्यान में रख सकता हूं कि आपको रोकने के ख्याल से बोलूं। मुझे तो जो ठीक लगता है वह मैं बोले चला जाऊंगा। कौन रुकता है, नहीं रुकता है, यह बिल्कुल गौण बात है।
लेकिन मेरी समझ यह है कि वे जो छोड़ कर चले भी गए हों दो-चार लोग, वे साल
भर के भीतर वापस लौट आएंगे, वे जा नहीं सकते। इसलिए मैं सोचता हूं कि नहीं जा सकते हैं कि अगर थोड़ा-बहुत भी सोचते हैं, थोड़ा-बहुत भी बुद्धि का उपयोग करते हैं, तो जाने का कोई कारण नहीं है।
जैसे अभी हुआ बड़ौदा में। बड़ौदा में... सभी जगह वही हुआ... कुछ मित्रों
ने मुझे आकर कहा कि जो लोग, दो-चार लोग नहीं आ रहे हैं, वे भी टेप से सुन रहे हैं, वे भी घर में बैठ कर खबर पूछ रहे हैं। और मित्रों ने मुझे आकर कहा कि आप फिकर मत करिए, वे छह महीने के भीतर वापस लौट आएंगे, वे जा नहीं सकते। अगर बात में कोई बल है और कोई सच्चाई है, तो लौट आना चाहिए। और नहीं है बल, तो बिल्कुल नहीं लौटना चाहिए। कोई सवाल भी नहीं है।
और रह गई बात यह, हमारे मुल्क में तो, हमारे मुल्क में कुछ ऐसा दुर्भाग्य है कि जो लोग बोलते हैं, सोचते हैं, वे पहले सुनने वाले की तरफ देखते हैं कि उसे क्या पसंद है और क्या पसंद नहीं है। तो जरूर भीड़ बढ़ाई जा सकती है, अगर मैं आपके मन की बात कहता रहूं। लेकिन उसके कहने का कोई उपयोग भी नहीं है, मूल्य भी नहीं है।

वही बात है जो भीड़ जानती है, आप कहते हैं। वह आप उसके लिए नहीं बोलते। लेकिन लोग आज ऐसा बोल रहे हैं कि गांधी के विरुद्ध, कांग्रेस के विरुद्ध, ऐसी कुछ बात आती है तो लोगों को अच्छी लगती है, इसीलिए इतनी भीड़ हो जाती है।

हो सकती है, वह हो सकती है। लेकिन अगर वह इसलिए होती है तो वह छंट जाएगी। क्योंकि मैं कोई गांधी और कांग्रेस के खिलाफ ही नहीं बोलता, मैं तो मार्क्स के खिलाफ भी बोलता हूं और लेनिन के खिलाफ भी बोलता हूं। अब सवाल यह है कि अगर कल मेरे पास कोई आदमी आता है...

लेनिन और मार्क्स को जाने दें आप!

मेरी आप बात नहीं समझ रहे हैं। मेरी आप बात समझिए! कल मेरे पास जो लोग थे, अगर वे इस कारण थे कि मैं गांधी के पक्ष में बोलूंगा, और नहीं बोला हूं पक्ष में तो वे हट गए हैं। आज जो मेरे पास आएगा, अगर वह इस कारण आ रहा होगा, तो कल मैं कुछ बोलूंगा वह हट जाएगा। मेरे पास तो वही रुक सकता है जिसकी सत्य की कोई तलाश है।

इसलिए जो भीड़ है वह वास्तविक नहीं है। सुनने वाले दिलचस्पी वाले होते हैं, ये तो सिर्फ गर्दन ही हिलाते हैं।

कई तरह के लोग होते हैं सुनने वाले, उसमें सब तरह के लोग हैं। उसमें कोई सोच-विचार कर सुनता है, कोई कुतूहल के लिए आता है, कोई सिर्फ भीड़ को देख कर आता है कि दूसरे लोग जा रहे हैं इसलिए जा रहे हैं। तो सब तरह के लोग वहां हैं।

इसलिए मैं कह रहा हूं कि इट इ.ज नाट ए प्वाइंटर दैट दि आइडियालॉजी ऑर
दि थीम दैट यू आर कनवेइंग, आर हैविंग ए इको, आर हैविंग एक्सेप्टेंस।

न, यह तो सवाल ही नहीं है। यह तो मैं कहता ही नहीं हूं कि वह एक्सेप्ट
की जाए। यह तो मैं कहता ही नहीं हूं।

नहीं, इसीलिए कि आपने कहा कि जो लोग आज नहीं आए, वे कल वापस लौटेंगे।

मेरा कुल कहना इतना है, मेरा कुल कहना इतना है कि मेरी तो चेष्टा ही इतनी है कि विचार शुरू हो। मेरी यह चेष्टा ही नहीं है कि जो मैं कहता हूं वह स्वीकृत हो जाए।

हां, विचार शुरू हो गया और वे रुक गए।

कोई हर्जा नहीं है। तो विचार शुरू नहीं हुआ है। यानी मेरा कहना यह है
कि अगर विचार शुरू हुआ हो... ।

अगर आपकी बात सुने तो ही विचार शुरू होता है?

ऐसा भी नहीं कहता, ऐसा भी नहीं कहता। लेकिन मैं जो कह रहा हूं अगर उसके विरोध में भी उनके मन में ख्याल आया है, तो भी रुकने का कोई कारण नहीं है। रुकने का मतलब यह है कि मुझे सुनने से रुक जाना विचार का लक्षण नहीं है। हां, अगर मेरी बात ही फिजूल हो गई हो और सुनने योग्य ही न रही हो, तो समझ में आता है। लेकिन मेरी बात फिजूल नहीं हो गई है, वे मेरी बात पर विचार कर रहे हैं, चर्चा कर रहे हैं, बैठ कर बात कर रहे हैं, मेरे खिलाफ लिख रहे हैं। बात मेरी फिजूल हो गई हो तो खत्म हो गई बात, फिर कोई मतलब नहीं है। लेकिन मेरी बात सार्थक मालूम पड़ रही है उन्हें, और अगर सुनने से रुकते हैं, तो इसको मैं विचार का लक्षण नहीं कह सकता हूं। यानी मेरी बात ही फिजूल हो गई, तो खत्म हो गई बात, अब उसका कोई सवाल ही नहीं रहा। फिर मेरे खिलाफ भी कहने का कोई सवाल नहीं रहा।
लेकिन मेरे खिलाफ कहे जाते हों, बात करते हों, मेरी सभा न हो सके इसका उपाय करते हों, तो मेरी बात पर सोच रहे हैं। मेरी बात को सार्थक तो मानते हैं, गलत भला मानते हों, उसमें अर्थ तो मालूम होता है। और मेरा कहना है कि इसलिए बहुत देर वह सोच-विचार जारी है, और जारी है तो अच्छा है। इसी को मैं शुभ मानता हूं।
मेरी यह भी दृष्टि नहीं है कि जो मैं कहूं वह स्वीकृत होना चाहिए। वह
तो मेरा मानना ही नहीं है। मेरा कहना है कि किसी की बात स्वीकार करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए; चिंतन हो, मनन हो, सोच-विचार हो, इतना काफी है। मैं तो सिर्फ एक जंपिंग-बोर्ड भी बन जाऊं सोचने के लिए तो भी काफी है, बात खत्म हो गई, इससे ज्यादा कुछ मतलब का नहीं है।
इधर तो मैं यह हैरान हुआ हूं जान कर कि गांधी के प्रशंसक भी जो हैं, वे
भी गांधी पर मुल्क में कोई ऊहापोह पैदा नहीं करवा पाते, कोई विचार पैदा नहीं करवा पाते। प्रशंसा करने से कोई विचार तो पैदा नहीं हो जाता या मूर्ति बनाने से कोई विचार पैदा नहीं हो जाता।

आंदोलन नहीं चलता है।

हां, आंदोलन नहीं चलता है। मेरा यह कहना ही नहीं है कि गांधी को, गलत हैं, ऐसा मान लेने की जरूरत है। मेरा कुल कहना इतना है कि गांधी विचारणीय हैं और विचार का सब तरफ से हमला होना चाहिए।

लेकिन आपने स्टार्ट किया निगेटिव एप्रोच से। ऐसा क्यों?

विचार तो हमेशा निगेटिव एप्रोच से ही शुरू होते हैं, पाजिटिव एप्रोच
से कभी शुरू नहीं होते।

वा.ज इट इंटेनशली शॉक थेरेपी?

हां, बिल्कुल मेरी तरफ से इंटेनशनल है, बिल्कुल इंटेनशनल है। हां, मुझे तो ख्याल है कि क्या होगा।

तो जो लोग नहीं आते वे शायद समझते हैं कि आप इंटेनशली कर रहे हैं। आप इंटेनशली यह काम शुरू किया है, ऐसा कोई भी लोग मानते हैं?

कुछ लोग हैं जो ऐसा मानते हैं।

जस्ट टु मेक पीपुल थिंक, शॉक थेरेपी, समथिंग डिफरेंट। जस्ट टु ब्रेक लिथॉर्जी। बट व्हाय गांधी?

हां, गांधी को क्यों चुना, यह पूछा जा सकता है। दो-तीन कारणों से। एक
तो गांधी निकटतम हैं इस मुल्क के लिए।

गुजरात के लिए कि सारे हिंदुस्तान के लिए?

सारे हिंदुस्तान के लिए ही! गुजरात के लिए और भी ज्यादा। और सारे हिंदुस्तान के लिए निकटतम हैं। फिर अभी भी हमारे और उनके बीच बहुत फासला नहीं हुआ। अभी जो पीढ़ी उनके निकट जीयी थी, वह अभी जिंदा है। और हिंदुस्तान के लिए मेरा मानना है कि भविष्य में जो भी निर्णय लेने हैं, वे निर्णय किसी न किसी रूप में गांधी पर विचार करके ही लेने होंगे--चाहे पक्ष में, चाहे विपक्ष में। गांधी हिंदुस्तान के आने वाले सौ वर्षों में महत्वपूर्ण रहेंगे, ऐसी मेरी समझ है--चाहे पक्ष में, चाहे विपक्ष में, यह दूसरी बात है। और इसलिए गांधी पर बहुत निश्चित रूप से विचार किया जाना चाहिए।
एक तो यह था कारण।
फिर मुझे ऐसा लगता है कि हिंदुस्तान में ही नहीं, हिंदुस्तान के बाहर
भी गांधी पर चिंतन और विचार शुरू हुआ है। बल्कि कभी ऐसा भी लगता है कि हिंदुस्तान से कहीं ज्यादा बाहर लोग सोच रहे हैं, विचार कर रहे हैं। और इस मुल्क में तो चिंतन जैसे बंद है, कोई चिंतन नहीं है। तो गांधी तो सिर्फ शुरुआत के लिए! मेरा तो कहना है, महावीर और बुद्ध पर भी चिंतन वापस जगाने की कोशिश करनी चाहिए। लेकिन उनके और हमारे बीच बहुत फासला है। वह फासला इतना ज्यादा है कि बहुत खींच कर भी महावीर पर चिंतन लाना मुश्किल है। लेकिन मुझे लगता है कि अगर गांधी की अहिंसा पर विचार शुरू हो, तो कल महावीर की अहिंसा पर भी विचार करने के लिए हवा पैदा की जा सकती है। लेकिन गांधी की अहिंसा पर ही विचार न होता हो, तो महावीर की अहिंसा पर विचार करना बहुत मुश्किल मामला हो जाता है।
तो गांधी पर जानते हुए शुरू किया हूं, क्योंकि वे हमारे निकट हैं, चोट
भी लग सकती है हमारे मन को उनके ऊपर बात करने से। लेकिन आश्चर्य यह है कि जो लोग गांधी को प्रेम करते हैं, वे भी गांधी पर विचार किया जाए इसके लिए उत्सुक और तैयार नहीं हैं। शायद भयभीत हैं, या प्रेम बहुत कमजोर है, या ऐसा डर है कि कहीं विचार से गांधी की प्रतिमा को नुकसान न पहुंच जाए।
मुझे ऐसा नहीं लगता। मुझे ऐसा लगता है कि गांधी का व्यक्तित्व इतना महिमाशाली है कि किसी तरह के विचार से उस प्रतिमा को कोई नुकसान नहीं पहुंचेगा, बल्कि विचार से वह प्रतिमा और निखरेगी, और साफ होगी, ज्यादा स्पष्ट होगी, ज्यादा बहुमूल्य हो जाएगी।
और इधर कुछ थोड़े गांधीवादियों ने जरूर मुझे पत्र लिखे। कुछ गांधीवादी मित्रों ने मुझे आकर कहा भी कि हम चाहे आपसे राजी न हों, लेकिन इस बात से हम खुश हुए हैं कि एक हवा बात करने के लिए बनी। लेकिन बहुत कम, न के बराबर। आमतौर से तो हो यह गया है कि गांधी के पीछे जो वर्ग खड़ा हुआ, उसके अब इतने

निहित स्वार्थ हैं कि अब गांधी पर विचार वगैरह करने की उसकी तैयारी नहीं है। गांधी का शोषण करने की तैयारी है। गांधी के नाम से जितना फायदा मिल सकता हो, उतना लेने की तैयारी है।

दि रिवर्स इ.ज नाट ट्रू?

जरूरी नहीं है।

क्योंकि गांधी के खिलाफ बोलने से भी आज फायदा मिलता है।

बिल्कुल हो सकता है, बिल्कुल हो सकता है। गांधी के खिलाफ बोलने से भी... ।

यू मे नाट अट्रैक्ट आडियंस इफ यू स्पीक ऑन सम डिफरेंट सब्जेक्ट। बट
इफ यू स्पीक अगेंस्ट गांधी, यू मे फाइंड क्राउड्स एंड क्राउड्स--हू मे नाट बी योर फालोअर, हू मे नाट बिलीव इन योर फिलासफी, हू मे नाट बिलीव इन योर आइडियालॉजी।

हां-हां, मैं समझा। यह बिल्कुल हो सकता है, यह बिल्कुल हो सकता है।

इसलिए क्या ऐसा है कि आप, जो शॉक थेरेपी है उसमें कुछ और बात कहना चाहते हैं, लेकिन गांधी का नाम लेकर आडियंस, गांधी के विरुद्ध बात करने से आडियंस क्रिएट करते हों, अट्रैक्ट करते हों, ऐसा ही है?

अगर गांधी के ही खिलाफ अकेला बोल रहा होता, तो ऐसा हो सकता था। मैं और बहुत सी चीजों के खिलाफ बोल रहा हूं। आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न?

देअर इ.ज नाट ओनली वन प्वाइंट, बट देअर आर टू थिंग्स। वन इ.ज टु अट्रैक्ट आडियंस। दैट इ.ज व्हाई यू आर आलवेज--दिस इ.ज व्हाट इ.ज बीइंग सेड टुडे ऑर बिलीव्ड--यू आर आलवेज टाकिंग सरटेन थिंग्स व्हिच विल अट्रैक्ट पीपुल टुवर्ड्स यू, एंड देन यू ट्राई टु इनफिल्टरेट इनटु देअर माइंड्स दि अदर आइडियाज। गांधी एंड सेक्स एंड अदर थिंग्स आर ओनली दि प्वाइंट्स टु अट्रैक्ट आडियंसेस।

हां-हां, यह हो सकता है, यह हो सकता है। कोई चाहे तो ऐसा भी कर सकता है। लेकिन मजा यह है कि आडियंस को अट्रैक्ट करने का मुझे कोई भी प्रयोजन नहीं है। न तो मैं कोई दल बना रहा हूं, न कोई संप्रदाय बना रहा हूं, न किसी को सदस्य बना रहा हूं, न किसी को शिष्य बना रहा हूं।

दैट मे बी फालोड बाइ समबडी एल्स। दैट पार्ट ऑफ वर्क मे बी कैरीड आउट बाइ समबडी एल्स, आफ्टर सम टाइम।

मैं जब तक हूं, तब तक तो किसी को नहीं चलाने दूंगा।

दैट हैज आलवेज हैपेंड इन इंडिया।

हां, यह हमेशा होता है, यह हमेशा होता है। और यह नहीं होना चाहिए, यह मेरी चेष्टा है और यह मेरे आंदोलन का हिस्सा भी है कि यह नहीं होना चाहिए। मेरे जानते हुए नहीं होने दूंगा, नहीं होने दूंगा। क्योंकि मेरी दृष्टि यह है कि जैसे ही किसी विचार के पीछे अनुयायी खड़े हुए कि वैसे ही विचार विकृत होना शुरू हो जाता है और शोषित होना शुरू हो जाता है। जैसे ही किसी विचार के पीछे दल, संप्रदाय संगठित हुआ, आर्गनाइजेशन हुआ, वैसे ही विचार के निहित स्वार्थ शुरू हो जाते हैं। और विचार मर जाता है, उसी वक्त समाप्त हो जाता है। और फिर विचार की जगह स्वार्थ काम करने शुरू कर देते हैं।

तो मेरी यह भी दृष्टि है कि विचार कभी भी संगठित रूप नहीं लेने चाहिए; विचार हमेशा एक असंगठित प्रक्रिया होनी चाहिए।

संगठित रूप नहीं होना चाहिए।

नहीं होना चाहिए।

इट शुड नाट बी ए कंटिन्युअस प्रोसेस ऑफ थिंकिंग।

न-न, प्रोसेस तो होनी चाहिए। आर्गनाइज्ड, और उसके पीछे अनुयायियों और संस्थाओं का इस्टैब्लिशमेंट, और शिष्यों की संख्या, वह सब नहीं होनी चाहिए। वह जैसे ही हुई कि फिर विचार शोषक होना शुरू हो जाता है। ये हिंदू या मुसलमान, या जैन और ईसाई, या गांधी और मार्क्स, ये सारे के सारे विचार शोषक सिद्ध होते हैं अंततः। क्योंकि जैसे ही विचार संगठित हुआ कि शोषण उसके पीछे आया।
आने वाली दुनिया में ऐसा होना चाहिए कि विचार संगठित न हो। विचार की प्रक्रिया तो कंटिन्युअस हो, लेकिन जैसे मैंने एक बात आपसे कही और आप उसके पक्ष-विपक्ष में सोचते हैं, तो कंटिन्युटी शुरू हो गई, लेकिन न तो आप मुझसे बंधते हैं, और न आप मुझसे संगठित होते हैं, न आपसे मेरा कोई संबंध बनता है। समझ लीजिए कि जूनागढ़ में दस हजार लोग मुझे सुन रहे हैं, तो अगर इन दस हजार लोगों को मैं बांधने की कोशिश करूं तब तो आडियंस को अट्रैक्ट करने का कोई अर्थ हो सकता है।
मेरा मतलब आप समझे न? मैं इनसे बात कह देता हूं, और मेरे लिए मामला खत्म हो गया। मैं अपने रास्ते पर चला जाता हूं, ये अपने रास्ते पर चले जाते हैं। मुझे पता भी नहीं कि कौन था सुनने वाला, कौन था नहीं सुनने वाला। विचार की कंटिन्युटी रहेगी कि जो मैंने उनसे कहा, वे उस पर सोचेंगे पक्ष या विपक्ष में; कुछ निर्णय लेंगे, नहीं लेंगे; वह विचार उनके भीतर चलेगा। लेकिन जो कंटिन्युटी हुई, उससे अब मैं कोई संबंध नहीं रखता हूं किसी तरह का; उनको न संगठित करता हूं, उनको न इकट्ठा करता हूं।
इसलिए आडियंस को अट्रैक्ट भर करने का कोई प्रयोजन नहीं हो सकता। प्रयोजन तभी हो सकता है जब उस इकट्ठी भीड़ का हम कोई फायदा उठाना चाहते हों, कोई राजनैतिक दल बनाना चाहते हों, कोई धार्मिक संप्रदाय बनाना चाहते हों, तब तो आडियंस को अट्रैक्ट करने का अर्थ हो सकता है।

आर आल दीज थिंग्स नाट स्यूडो प्रिपरेशंस फार दैट?

न, मेरी दृष्टि में नहीं। क्योंकि मैं तो अभी से उसके खिलाफ हूं। वह
तो चारों तरफ मित्र मुझे मिलते हैं कि संगठन करिए, व्यवस्था बनाइए। मैं तो उसके खिलाफ हूं, उसको तोड़ने के खिलाफ हूं। न ही कोई संगठन बनाना चाहता हूं, न ही कोई व्यवस्था देना चाहता हूं। और चाहता हूं कि जितनी व्यवस्थाएं बनी हैं वे भी टूट जानी चाहिए, तो मेरी दृष्टि है कि विचार मुक्त होगा और मनुष्य-जाति ज्यादा विचारपूर्ण होगी।

बिल्डिंग ऑफ ट्रेडीशन इ.ज आलवेज बैड?

आलवेज बैड।

एंड ट्रेडीशनल आइडियाज आर आल्सो... ।

ट्रेडीशन ऐज सच, ट्रेडीशन ऐज सच।

फिर भी आप आपके विचार-आंदोलन को शुरू करने के लिए, लोग उसको ग्रहण करें इसके लिए हिप्नोटिज्म का प्रयोग तो करते ही हैं।

जरा भी नहीं। वह भी एक झूठी बात है।

डू यू बिलीव दैट ट्रेडीशनल आइडियाज आर आलवेज फाल्स ऑर बैड?

हां, जैसे ही ट्रेडीशन बनता है कोई विचार, वैसे ही गलत शुरू हो जाता है।

इट इ.ज हार्ड टु एक्सेप्ट दैट।

हां, यह दूसरी बात है, यह दूसरी बात है। मैं चाहता नहीं कि आप एक्सेप्ट करें। यह सवाल नहीं है।

राइट फ्राम शॉपनहार टु...

हां, जैसे ही कोई विचार ट्रेडीशन बनता है, जैसे ही कोई विचार ट्रेडीशन बनता है, वैसे ही डेड हो जाता है। और फिर हम उसे विचार करके नहीं मानते, ट्रेडीशन के कारण मानते चले जाते हैं। तब फिर वह डेड फोसिल की तरह हमारे दिमाग पर सवार रहता है।

ट्रेडीशन बिकम्स स्टैगनेंट एंड डेड बट देअर मे बी सम आइडियाज फार आल टाइम्स, इटरनल।

कोई विचार सनातन नहीं होता। और नहीं हो सकता है। निर्विचार अनुभव सनातन हो सकता है।

यू मे काल इट ट्रुथ।

हां, तो वह जो ट्रुथ है वह विचार नहीं है। यह जिसको ट्रुथ हम कहते हैं, जिसको सत्य कहते हैं, वह विचार नहीं है, वह एक अनुभव है। और उसको विचार में कभी बांधा भी नहीं जा सकता। जो विचार में हम बांधते हैं, वे हमेशा सामयिक होते हैं, कंटेम्प्रेरी होते हैं। एक परिस्थिति में उनका अर्थ होता है, फिर...

आल्सो रिगार्डिंग दि आइडियाज इन दि उपनिषद ऑर इन दि गीता?

सारी चीजों के बाबत, सारी चीजों के बाबत। जो भी हम कह सकते हैं, जो भी शब्द में बांधा जा सकता है, वह कभी भी इटरनल नहीं हो सकता।

यस्टरडे ओनली यू सेड दैट दे कैन बिकम माइल स्टोन्स! लाइफ ऑफ माइन, गीता एंड आल दैट।

हां, इसको थोड़ा सोचें तो निगेटिव अर्थों में मैं यह कहता हूं। यानी यह मैं कहता हूं कि ट्रेडीशन का एक ही अर्थ है कि आप सदा उसको छोड़ कर आगे बढ़ें। ट्रेडीशन का एक ही अर्थ है कि उसको छोड़ कर आप सदा आगे बढ़ें। मेरा मतलब आप समझे न? मेरा मतलब यह हुआ कि उसका एक ही अर्थ है कि सदा उसको छोड़ कर आगे बढ़ें। और जितना छोड़ कर उसको आप आगे बढ़ते हैं, उतना ही आपकी पहुंच नॉन ट्रेडीशनल है, एंटी ट्रेडीशनल है।

बट इन गीता एंड आल उपनिषद, यू हैव टु एंटर इनटु दि आइडियाज देमसेल्व्स, दि ट्रुथ देमसेल्व्स। यू हैव नाट टु लीव देम, ऐज यू से।

आइडिया और ट्रुथ अलग-अलग चीजें हैं।

दि आइडियाज एक्सप्रेस्ड बाइ गीता एंड उपनिषद आर ट्रू।

वह तो, वह तो गीता को जो पकड़ने वाला है, वह कहेगा। कुरान को पकड़ने वाला दूसरी बात कहेगा। महावीर को पकड़ने वाला तीसरी बात कहेगा। वह तो आप पकड़ते हैं जिस विचार को, उसको कहते हैं यह सत्य है। वह सत्य है या नहीं, यह सवाल नहीं है। जिसको आप पकड़ लेते हैं, उसको आप कहते हैं यह सत्य है।

हम पकड़ते हैं इसलिए वह सत्य नहीं होता। वह सत्य है इसलिए हम पकड़ते हैं।

यह आपको कैसे पता चलता है? आप हिंदू घर में पैदा हुए... ।

जैसे कि आपको पता चला कि यह असत्य है। ट्रेडीशनल सब चीज असत्य है।

मेरा कहना जो है, मेरा कहना जो है वह कुल इतना है कि जैसे ही कृष्ण को सत्य का अनुभव होगा, यह मैं कहता हूं, लेकिन कृष्ण जैसे ही कहेंगे उस अनुभव को, वह अनुभव सत्य नहीं रह गया, सिर्फ शब्द हो गया। और वह शब्द हम पकड़ कर बैठ जाते हैं। और जितनी जोर से हम पकड़ते हैं, उतना ही खतरनाक हो जाता है। उसे हम जितनी शीघ्रता से छोड़ सकें उतना हम अपने सत्य के समझने में...

मेरा मतलब यह है कि आप उस सत्य का अनुभव तब ही करेंगे जब आप उसका एक्सपीरिएंस, नेचुरल रियलाइजेशन करेंगे, तब। देन दि सिस्टम इ.ज मियर आइडिया।

हां-हां, वे हैं ही, वे हैं ही। वे मियर आइडियाज ही हैं, जब तक आपको अनुभव नहीं होता अपना। और मेरा जोर है व्यक्तिगत सत्य के अनुभव पर।

दे कैन नाट बी डिसमिस्ड ऐज यूजलेस देन।

यूजलेस का मेरा मतलब आप नहीं समझे। यूजलेस का मेरा मतलब यह है कि उनको
आप ट्रुथ मत समझ लेना, बस इतना मतलब है यूजलेस का। वे आइडियाज हैं।

वर्ड्स बाइ देमसेल्व्स आर नाट ट्रुथ।

हां, इतना ही हमें ख्याल में रहे तो बात पूरी हो गई। और उतना ख्याल में नहीं रह जाता ट्रेडीशनल माइंड को, वह शब्दों को ही सत्य समझ कर पकड़ कर बैठ जाता है। उसके लिए गीता ही सत्य हो जाती है। फिर वह गीता की पूजा कर रहा है, गीता को सिर पर रख कर बैठा है।

इफ वन ट्राइज टु एंटर इनटु दि एक्सपीरिएंस ऑफ दोज ट्रुथ्स... ।

आप किसी दूसरे के एक्सपीरिएंस में कभी एंटर नहीं कर सकते। आप सदा अपने ही एक्सपीरिएंस में एंटर कर सकते हैं। उसका कोई रास्ता ही नहीं है।

नेचुरली दैट इ.ज इटरनल। इट इ.ज मेन्ट फॉर आल एंड नाट वन--दिस ट्रुथ।

यह जैसे आप किसके बाबत कह रहे हैं? ट्रुथ तो होता ही नहीं किताब में, सिर्फ शब्द होते हैं।

जैसे कि आत्मा का जो किया गया है वेदों में, उपनिषदों में, गीता में...
।

और बुद्ध ने खंडन किया है पूरा का पूरा। कौन है इटरनल--कृष्ण कि बुद्ध?

ही माइट हैव यूज्ड अनादर टर्मिनालॉजी... ।

मेरा मतलब यह है, मेरा कुल कहना इतना है कि ये जो सब डिवाइसेस हैं कुछ बात कहने की, इन डिवाइसेस को पकड़ लेने से खतरा हो जाता है।

आई अंडरस्टैंड, देन यू आर राइट दैट एक्सपीरिएंस इ.ज दि मेन थिंग एंड वर्ड्स आर नाट वेरी इंपॉरटेंट।

हां, इतना ही ख्याल में रहे, उसके लिए सारी इंफेसिस और जोर है। उतना ही ख्याल में रहे। उतना ख्याल में रहे तो ट्रेडीशन अर्थपूर्ण है। क्योंकि फिर हम उस पर विचार करते हैं, क्रिटिसाइज करते हैं और आगे बढ़ते हैं। ट्रेडीशन का एक ही उपयोग है कि उससे आगे बढ़ा जा सके। कल तक जो हो चुका है उसका एक ही उपयोग है कि वह हमें आने वाले कल तक आगे बढ़ा सके।

आइडियाज आर आलवेज इवाल्विंग।

यही तो मुश्किल है, आइडियाज इवाल्विंग में ट्रुथ कैसे इवाल्व हो सकता है?

यू मे काल देम आइडियाज दैट वे।

यह कहने का सवाल नहीं है, ट्रुथ का मतलब ही यह है कि अब जो इवाल्व नहीं
हो सकता।

दैट इ.ज रिलेटिव।

ट्रुथ का मतलब ही यह है कि जो परफेक्ट है, जो पूर्ण है, अब उसमें कोई विकास नहीं होगा।

ट्रुथ, दैट इ.ज इवाल्विंग।

ट्रुथ को जब आप कहेंगे इवाल्विंग, तो उसका मतलब हुआ कि उसमें अनट्रुथ मिला हुआ है, नहीं तो इवाल्व क्या होगा!

लिमिटेशन ऑन दैट। फॉर दैट इ.ज पर्सनल ट्रुथ, दैट इ.ज इवाल्विंग।

जैसे ही हम कहेंगे कि सत्य विकास कर रहा है, तो उसका मतलब हुआ उसमें असत्य मिला हुआ है। नहीं तो विकास कैसे होगा? और सत्य में असत्य कभी भी मिला हुआ नहीं हो सकता है। यह कुछ मामला ऐसा है कि सत्य या तो सत्य होता है या नहीं सत्य होता है। इन दोनों के बीच में उपाय नहीं है कि सत्य में असत्य मिला हो। इसलिए सत्य कभी भी इवाल्विंग नहीं है, हमेशा एब्सोल्यूट है! हां, हम इवाल्विंग हैं, हम सत्य की तरफ इवाल्व कर सकते हैं।
एक आदमी है, वह मील भर दूर से एक चीज को देखता है। एक खंभा गड़ा हुआ है, उसको देखता है मील भर दूर से। उसको दिखाई पड़ता है कि कोई आदमी खड़ा हुआ है। अभी भी आदमी नहीं खड़ा हुआ है, खंभा ही गड़ा हुआ है, उसे दिखाई पड़ता है कि आदमी खड़ा हुआ है। वह आधा मील आगे बढ़ कर देखता है, उसे पता चलता है कि नहीं, आदमी नहीं है, यह तो कोई वृक्ष मालूम होता है। और आधा मील चल कर पता चलता है कि यह तो वृक्ष भी नहीं है, आदमी भी नहीं है, एक खंभा गड़ा हुआ है।
तीन स्थितियां हुईं। इन तीनों स्थितियों में सत्य में कोई फर्क नहीं पड़ा, जो था वही है। लेकिन यह जो आदमी इवाल्व हुआ, इसका माइंड जो इवाल्व हुआ, इसका माइंड करीब आया, इसमें फर्क पड़े। माइंड में एवोल्यूशन होती है, ट्रुथ में कोई एवोल्यूशन नहीं होती। और जिस दिन माइंड पूरी तरह इवाल्व हो जाता है, उस दिन वह ट्रुथ को जान लेता है। और जब तक इवाल्व नहीं होता, नहीं जान

पाता। हमारा आइडिया इवाल्व हो सकता है ट्रुथ के बाबत, लेकिन ट्रुथ में कोई एवोल्यूशन नहीं होता।

पुनर्जन्म के बाबत आपका क्या विचार है? डॉक्ट्रिन ऑफ दि रि-बर्थ।

डॉक्ट्रिन्स से मुझे नफरत है--डॉक्ट्रिन ऐज सच। सिद्धांतों से मुझे नफरत है।

क्या पुनर्जन्म है?

इसको अगर अनुभव की तरह पूछें, सिद्धांत की तरह नहीं, तो मेरा कहना है
कि आप पूछना क्यों चाहते हैं कि पुनर्जन्म है? हमें जीवन का भी पता नहीं है, अभी जो जीवन है उसका भी पता नहीं है कि वह क्या है, और हम पूछते हैं कि पहले जीवन था या नहीं? आगे जीवन होगा या नहीं? और जो जीवन अभी हमारे भीतर है, उसका भी हमें पता नहीं है कि वह क्या है, और है भी या नहीं! इसको थोड़ा समझ लेना जरूरी है। हमारे मन में यह ख्याल क्यों उठता है कि हम पहले भी थे, आगे भी होंगे? और यह ख्याल क्यों नहीं उठता कि अभी हम क्या हैं?

नहीं, आपने कल बताया कि जन्मों-जन्मों से यह मन भर रहा है... ।

मेरी बात सुनिए। मैं जो कह रहा हूं, मैं जो कह रहा हूं, जरूरी है जानना
यह कि अभी जो जीवन मेरे भीतर है वह क्या है, उसे मैं जान लूं। उसे जो जान लेता है, उसे यह भी पता चल जाता है कि जीवन पहले भी था और बाद में भी होगा। तब यह सिद्धांत नहीं होता। और जीवन का हमें कोई पता न हो तो फिर रि-बर्थ और इनकारनेशन और फलां-ढिकां, वे सब सिद्धांत हैं। और वे सिद्धांत किसी मतलब के नहीं हैं। वे सिद्धांत बड़े खतरनाक हैं। वे खतरनाक इसलिए हैं कि उन सिद्धांतों के द्वारा केवल हम अपनी मृत्यु के भय को कम करते हैं, और कुछ भी नहीं करते। फिर मन में यह विश्वास हो जाता है कि मरना नहीं पड़ेगा; बस इससे ज्यादा कुछ भी नहीं। और इसलिए जो समाज जितना ज्यादा पुनर्जन्म के सिद्धांत को मानता है, उतना ही मृत्यु से भयभीत समाज होता है। अब हिंदुस्तान में जितने मौत से डरने वाले लोग हैं, जमीन पर और कहीं भी नहीं होंगे। और यहीं पुनर्जन्म को मानने वाले लोग भी सबसे ज्यादा हैं।
तो हमारी जो जिज्ञासा है, वह कहीं सिर्फ मृत्यु के भय से बचने की जिज्ञासा तो नहीं है? क्यों पूछना चाहते हैं कि पीछे जन्म था? क्या वजह है? क्यों जानना चाहते हैं? इसकी उत्सुकता क्या है?
इसकी उत्सुकता कुल इतनी है कि कहीं हम मर तो नहीं जाएंगे, मिट तो नहीं जाएंगे, इसका कोई विश्वास दिला दे। कोई पक्का निर्णय दे दे कि नहीं, मरोगे नहीं, जिंदा रहोगे। तो हम निश्चिंत हो जाएं।
यह मरने का भय, फियर ऑफ डेथ ही काम करता रहता है। इसमें मुझे उत्सुकता नहीं है। मेरी उत्सुकता इसमें है कि अगर जीवन की खोज की आकांक्षा है, तो पहले तो इस जीवन को खोजने की कोशिश करें जो भीतर है। और इसका पता चलते ही कि यह जीवन क्या है, आपको यह भी पता चल जाता है कि यह जीवन क्या था और क्या होगा। वह इसका अनिवार्य परिणाम होता है।
पुनर्जन्म सिद्धांत नहीं है, किन्हीं लोगों की अनुभूति है। और आपकी
भी अनुभूति बने तो ही सार्थक है और सिद्धांत बने तो बिल्कुल व्यर्थ है। दोनों में फर्क समझते हैं न आप? सिद्धांत की तरह व्यर्थ है। उससे कोई मतलब नहीं है सिद्धांत को पकड़ कर दोहराने से। उससे तो अच्छा है कि किसी सिद्धांत में अपने को न बांधें। क्योंकि सिद्धांत आपको खोज में ले नहीं जाते, बल्कि रोकते हैं। अगर यह मन को पक्का हो गया कि पुनर्जन्म है, तो आप किसी खोज-वोज में नहीं जाते, बात खत्म हो गई। बल्कि वह जो मृत्यु का भय था, वह भी खत्म हो गया। और मृत्यु के भय के कारण जो जीवन में परिवर्तन भी हो सकते थे, वे भी खत्म हो गए। और एक डेडनेस पैदा हो जाती है।

मृत्यु का भय इतना आवश्यक है?

नहीं-नहीं, आवश्यक नहीं है, है! मैं नहीं कह रहा कि रखिए।

अगर मृत्यु का भय चला जाए... ।

चला जाना चाहिए! आवश्यक यही है कि चला जाए। लेकिन वह जाएगा तभी जब आपको जीवन का अनुभव हो, नहीं तो वह नहीं जाने वाला है। मृत्यु का जो भय है, वह हमारे भीतर जो जीवन की धारा है, उसका अनुभव न होने के कारण है। एक बार हमें अनुभव हो जाए कि मैं जीवन हूं, तो मृत्यु का भय खत्म हो गया। क्योंकि साथ ही यह भी अनुभव हो जाएगा कि अब मेरी कोई मृत्यु नहीं हो सकती। वह जीवन का अनुभव नहीं है हमें, इसीलिए मृत्यु का भय पकड़े हुए है और जैसे ही जीवन का अनुभव होगा, मृत्यु का भय विलीन हो जाएगा। मृत्यु का भय सिर्फ अज्ञान है, वह जीवन का अज्ञान है।
हम क्या करते हैं, जीवन को जानने की फिकर किए बिना, हम सिर्फ इस भय से बचने के लिए पुनर्जन्म के सिद्धांत को पकड़ने लगते हैं--कि नहीं, आगे भी जीवन है; मरना है ही नहीं, आत्मा अमर है। यह पकड़ कर हम मृत्यु के भय को कम कर रहे हैं सिर्फ। इससे कम होगा नहीं, सिर्फ भीतर दब जाएगा।

नहीं, मृत्यु का भय नहीं। जीवन को जानने के लिए क्या यह जरूरी नहीं है
कि मैं पहले कौन था? उसका पास्ट क्या है?

यह आप जीवन को जान कर ही जान सकते हैं। और सिद्धांतों से जानने का कोई रास्ता नहीं है।

इट इ.ज सेड दैट यू हैव रिवाइज्ड योर स्टैंड, इंप्रूव्ड योर स्टैंड रिगार्डिंग योर... ।

नहीं, जरा भी नहीं। मैं जो कहा हूं, वही कह रहा हूं।

व्हेन पीपुल रिफ्रेन टु योर आइडियाज, यू जस्ट रिवाइज्ड... ।

जरा भी नहीं। मैंने जो कहा, वही कह रहा हूं। लेकिन इंप्रूवमेंट मालूम
पड़ सकता है, क्योंकि मुझे रिपोर्ट करने में इंप्रूवमेंट हुआ है। जो मैंने पहली बार कहा था, वही कह रहा हूं। फर्क सिर्फ इतना पड़ा है कि वह पहली बार जो मैं कहा था, उसमें से कुछ हिस्से छोड़ कर रिपोर्ट किए गए थे। जो हिस्से छोड़ दिए गए थे...

जस्ट टेकेन आउट ऑफ कांटेक्स्ट।

हां, आउट ऑफ कांटेक्स्ट। इसलिए एक इंप्रेशन पैदा हुआ था। जैसे कि मैंने कहा कि अगर हम चरखा, तकली, इस तरह की चीजों को आगे भी मानते चलते चले जाते हैं, तो देश का आत्मघात हो जाएगा, देश की हत्या हो जाएगी। अखबारों ने रिपोर्ट किया कि मैं गांधीजी को देश का हत्यारा कहता हूं।
इस तरह का अर्थ दिया जा सकता है। क्योंकि मैंने कहा कि गांधीजी ने जोर दिया है चरखे पर, तकली पर, आदिम उपायों पर--यह मैं आगे कहा, पीछे और कुछ बातें कहा। उसके बाद किसी ने मुझे पूछा कि आगे अगर ये चीजें चलती हैं तो क्या परिणाम होगा? मैंने कहा, देश का आत्मघात हो जाएगा।

यू आर नाट ड्राइविंग एट दैट प्वाइंट?

न-न, बिल्कुल भी नहीं, बिल्कुल भी नहीं। लेकिन उसका अर्थ ऐसा लिया जा सकता है। और वह अर्थ लेकर बड़े हेडिंग्स में अखबारों ने छाप दिया कि मैं गांधी को देश का हत्यारा कहता हूं।

नहीं, ऐसा अर्थ निकल सकता है।

बिल्कुल निकाला जा सकता है। अर्थ क्या निकालना चाहते हैं, वह तो फिर बहुत आसान है।

एंड यू वांट टु ट्राइ क्रिएट विक्रांति--सो मेनी पीपुल शुड थिंक ऑन दैट।

हां-हां, बिल्कुल ही। इसमें कोई हर्जा नहीं है।

वा.ज इट नाट ए सूडो थिंग? यू स्पोक समथिंग इन वन कांटेक्स्ट, दि अदर थिंग इन अदर कांटेक्स्ट, यू सेड ओनली वन कांटेक्स्ट वा.ज गिवेन, सेकेंड हाफ वा.ज नाट गिवेन... ।

हां-हां, यह मिस इंटरप्रिटेशन था।

मिस इंटरप्रिटेशन था?

बिल्कुल मिस इंटरप्रिटेशन था।

लेकिन उसमें मिस इंटरप्रिटेशन नहीं, उसके अंदर कोई ऐसा इरादा ही था?

यह मैं नहीं कह सकता हूं। क्योंकि इरादों का पता लगाना बड़ा मुश्किल है। क्योंकि पीछे रिपोर्ट किया...

नहीं-नहीं, आपका इरादा!

न-न, मेरा कोई इरादा नहीं था। मेरा कोई इरादा नहीं था। मुझे पता भी नहीं था। वह जब छपा तभी मुझे पता चला कि यह भी इसका अर्थ हो सकता है।

बट यू डिड वांट टु गिव सम शॉक।

मैं तो बिल्कुल ही शॉक देना चाहता हूं। लेकिन शॉक का मतलब यह नहीं कि
जो शॉक मैंने नहीं दिए हैं वे भी मेरे नाम से थोप दिए जाएं। वह तो मैं बिल्कुल नहीं देना चाहता।

अच्छा, अब हिप्नोटिज्म के बारे में भी आया है। वह आपने कहा कि जवाहर
भी ऐसा कर रहा था, हिटलर भी कर रहा था और मैं भी कर रहा हूं। वह सच्ची रिपोर्टिंग है?

वह बिल्कुल ही गड़बड़ है।

तो आपने क्या कहा था?

मैं कुल इतना कहा, मैं कुल किसी प्रसंग में यह कहा कि मनुष्य-जाति पर जिन लोगों का बहुत प्रभाव पड़ा है, उसमें बहुत तरह के लोग हैं। उसमें जान कर भी लोगों को सम्मोहित करने वाले लोग हैं, अनजाने भी लोग जिनसे सम्मोहित हो जाते हैं ऐसे लोग हैं। जैसे मैंने कहा हिटलर। हिटलर तो जान कर सम्मोहित कर रहा था। सारी व्यवस्था थी पूरी की पूरी। अपनी आत्मकथा में लिखता भी है, उल्लेख भी करता है। सलाह भी लेता था कि कैसे मनुष्य ज्यादा से ज्यादा प्रभावित हो सके। अगर सभा भी करता, तो सारे हाल में प्रकाश बुझा दिया जाता, सिर्फ प्रकाश हिटलर के ऊपर होता। सारे भवन में अंधकार होता जैसा सिनेमागृह में होता है और तेज जलते हुए प्रकाश हिटलर के ऊपर होते। ताकि

कोई आदमी हाल में किसी और को देख न सके, पूरे वक्त हिटलर को देखने की मजबूरी हो जाए।
मंच इतना ऊंचा बनाता कि आंख की पलक जो है, जैसा कि हिप्नोटिस्ट कहते हैं, वे कहते हैं कि एक विशेष कोण पर अगर आंख को ऊंचा रखा जाए, तो पांच-सात मिनट में आदमी सजेस्टिबल हो जाता है। अगर आंख नीची हो तो आदमी उतना सजेस्टिबल नहीं होता, उसको उतनी जल्दी सम्मोहित नहीं किया जा सकता। अगर बहुत देर तक आंख ऊपर रखी जाए तो आदमी सजेस्टिबल हो जाता है। आंख के सारे स्नायु भीतर शिथिल हो जाते हैं और उनके शिथिल हो जाने से तर्क की क्षमता कम हो जाती है। तो जो भी उससे कहा जाए, उसको मान लेने की प्रवृत्ति ज्यादा होती है, इनकार करने की प्रवृत्ति कम होती है।

थकावट के कारण?

थकावट के कारण। तो हिटलर मंच इतना ऊंचा बनाएगा, जिससे कि आंख उस कोण
पर थक जाए। यह तो पूरा नियोजित था। तो मैंने कहा कि हिटलर जैसे लोग तो नियोजित सम्मोहन का प्रयोग करते हैं। नेहरू नियोजित सम्मोहन का प्रयोग नहीं कर रहे, लेकिन लोग सम्मोहित हो रहे हैं। नेहरू को पता भी नहीं कि वे सम्मोहित कर रहे हैं, लेकिन लोग सम्मोहित हो रहे हैं। यह जो सम्मोहित होना है, यह... अब इससे हुआ क्या कि उन्होंने इन दोनों बातों को जोड़ कर कि मैं नेहरू, हिटलर को एक ही तरह का आदमी कहता हूं।

नहीं, आपके बारे में।

हां, और यह जो मजे की बात है कि मेरे बाबत तो कोई बात ही नहीं थी। मेरे बाबत तो कुछ पूछा ही नहीं गया था, मेरे बाबत कोई बात भी नहीं कही थी। मेरे बाबत तो जो... एक पत्रकार हैं, वे मेरे साथ यात्रा कर रहे थे ट्रेन में। उन्होंने मुझे कहा कि मुझे बहुत तकलीफें हैं। और मुझे किसी ने कहा है कि अगर मैक्सकोली को मैं मिलूं, तो शायद हिप्नोटिज्म से मुझे फायदा हो सकता है। पत्रकार को तकलीफें थीं। तो उन्होंने कहा कि मुझे किसी ने कहा है कि अगर मैक्सकोली को मिलूं तो फायदा हो सकता है। आपका क्या कहना है?
मैंने कहा कि फायदा हो सकता है। क्योंकि अगर तकलीफें आपकी काल्पनिक हैं तो हिप्नोटिज्म से दूर हो सकती हैं, उनसे मैंने कहा। तो उन्होंने कहा कि आप यह मानते हैं कि मुझको फायदा हो सकता है? मैंने कहा, बिल्कुल फायदा हो सकता है। उन्होंने मुझसे कहा कि अगर मैं आपके पास आ जाऊं, तो आप कुछ हिप्नोटाइज करके मुझे फायदा पहुंचा सकते हैं?
मैंने कहा, मेरे पास वक्त नहीं है। लेकिन अगर वक्त हो तो आपको फायदा पहुंचाया जा सकता है--एक ही शर्त पर कि आपकी जो तकलीफें हैं, वे काल्पनिक हों। अगर तकलीफें असली हैं तो उसमें कुछ फायदा नहीं पहुंचाया जा सकता। तो उन्होंने मुझसे पूछा कि आप इसमें विश्वास करते हैं कि इससे फायदा पहुंच सकता है? मैंने कहा, बिल्कुल पहुंच सकता है, क्योंकि वह तो बिल्कुल साइंस की बात है। अगर आपकी तकलीफ काल्पनिक है, तो आपको सुझाव देने से फायदा पहुंचाया जा सकता है।
जैसे एक आदमी के सिर में दर्द है। सिर में दर्द वास्तविक भी हो सकता है। अगर वास्तविक हो तो हिप्नोटिज्म से कोई फायदा नहीं हो सकता। लेकिन सिर में दर्द काल्पनिक भी हो सकता है। और अगर काल्पनिक है तो उस आदमी को मूर्च्छित करके सुझाव दिया जा सकता है कि दर्द खत्म हो गया। और दर्द खत्म हो जाएगा, क्योंकि वह था ही नहीं।
उन सज्जन से मैंने कहा कि आपको फायदा पहुंच सकता है। आपको बहुत तकलीफ
है और आपको लगता है कि डाक्टर कहते हैं कि आपको कोई तकलीफ है नहीं, तो आप मैक्सकोली से मिल लें। और अगर संभव हो, अगर मुझे कभी वक्त हो, तो दो-तीन दिन के लिए मेरे पास आ जाएं।
उन सज्जन ने जाकर कहा कि मैं भी हिप्नोटाइज करता हूं। मैं भी हिप्नोटिज्म में विश्वास करता हूं। और मेरा कहना यह है कि मैं हिप्नोटिज्म से फायदा भी पहुंचा सकता हूं। ये सारी की सारी बातें रिपोर्ट

की हैं। अब यह बिल्कुल पर्सनल बातचीत थी, जिसमें उनकी बीमारी के लिए मैंने कहा था।

और आप अपनी आयोजित सभा में हिप्नोटिज्म भी करते हैं, ऐसा भी कहा।

ये सब बिल्कुल बातें झूठी हैं, सारी की सारी झूठी बातें हैं। हां, वे किस तरह चलीं। यह जो सारी बात हुई, यह उन सज्जन से मेरी बात हुई थी जिन्होंने रिपोर्ट किया, फिर उन्होंने सबको जोड़ा।
जो लोग ध्यान करने बैठते हैं, ध्यान की स्थिति में कुछ घटनाएं घटनी शुरू होती हैं। जैसे अगर किसी व्यक्ति के मन में बहुत दिन का कोई रुदन रुका हो, रोना रुका हो, जो उसने सप्रेस किया हो, तो ध्यान की रिलैक्स हालत में आंख से आंसू बहने शुरू हो जाएंगे। रोना भी आ सकता है, हंसना भी आ सकता है, शरीर कंप भी सकता है, वह सारी स्थितियां हो सकती हैं।
वह सारे पत्रकारों ने वहां नारगोल के कैंप में देखा था कि कुछ लोगों
को रोना आ जाता है, कोई किसी का शरीर कंपने लगता है। वह सब, उस दिन मेरी जो व्यक्तिगत उनसे बात हुई, उस बात को और इन सबको जोड़ कर यह नतीजा निकाला कि मैं भी लोगों को हिप्नोटाइज करता हूं। उससे उनको सारी ये बातें पैदा हो जाती हैं।

दिस टाइम आई हैव नाट सीन अरेंजमेंट्स ऑफ योर मीटिंग। लास्ट टाइम व्हेन देअर वा.ज ए मीटिंग देअर आई हैव सीन एक्चुअली दैट योर प्लेटफार्म वा.ज क्वाइट एट हाइट, रेज्ड प्लेटफार्म। एंड व्हेन एवरीबडी, यू आस्क देम टु गो फार प्रेयर ऑर समथिंग, आल लाइट्स वर पुट ऑफ एक्सेप्ट दि लाइट ऑन योर हेड।

नहीं, नहीं, नहीं। वह रह गई होगी। हां, वह कुछ गलती हो सकती है। लेकिन प्रकाश तो सारे ही बुझा देने को मैं कहता हूं।

नहीं मैं इसलिए कहा, आपने कहा कि वह अपने मुंह पर, हिटलर, वह प्रकाश रखता था। क्योंकि जो लोग आंख अगर खुली रखते हैं... ।

मैं समझ गया, मैं समझ गया आपकी बात। हो सकता है, वह हो सकता है। लेकिन वहां तो जो हम रात को ध्यान के लिए बैठते हैं, तो सारे लोगों की आंख बंद करवा देते हैं। तो मेरे सिर पर अगर लाइट रहा भी हो, तो किसी मतलब का नहीं है।

आंख बंद करने की तो आप बात करते हो न! वे लोग बंद करते हैं कि नहीं, यह किसको मालूम।

यह मैं समझ गया, यह मैं समझ गया। वह अगर प्रकाश रहा भी होगा तो मेरी आयोजना से नहीं, क्योंकि मैं तो चाहता हूं कि सारे प्रकाश बुझा देने चाहिए।

हमने जो हिप्नोटिज्म का पढ़ा और जो व्यवस्था यहां देखी थी, इसलिए ही सब... ।

हां, इसी तरह सब जुड़ जाता है, यह सब जुड़ सकता है, यह ख्याल में जुड़ सकता है। अब मंच, मैंने कहा कि मंच ऊपर बनाया जा सकता है हिप्नोटाइज करने के लिए, और बोलने के लिए भी मंच ऊपर बनाना पड़ेगा। ये तो और बातें हैं न! आखिर बोलना पड़ेगा, तो मेरा मंच नीचे अगर बना दें तो आप मुझे नहीं देख सकोगे।

इफ इट इ.ज एट ए पर्टिकुलर हाइट ओनली।

हां, अगर उसकी आयोजना की जाए और एक पर्टिकुलर हाइट पर रखा जाए, तो उसके परिणाम हिप्नोटिक होते हैं। और ये अनजाने भी हो सकते हैं। यही मैंने कहा था कि हिटलर जान कर कर रहा है। नेहरू को कुछ पता भी नहीं है, लेकिन अनजाने में ये हो सकते हैं। और फिर यह जो मास हिप्नोसिस है, वह चाहे जान कर हो रही हो, चाहे अनजाने हो रही हो, वह माइंड को एक तरह का नुकसान पहुंचाती है। क्योंकि वह जो माइंड है, उसकी वह विचार करने की क्षमता कम करती है।
अब मैं तो बिल्कुल उलटा आदमी हूं, क्योंकि मैं यह कह रहा हूं कि विचार करने की क्षमता बढ़नी चाहिए। मेरी चेष्टा यह है कि आदमी जितना क्रिटिकल और जितना विचारपूर्ण हो सके, उतना मूल्यवान है। तो मैं तो हिप्नोसिस के पक्ष में कैसे हो सकता हूं? लेकिन उनसे जो मैं बात किया था, वह बिल्कुल थेरेपी की तरह बात किया था।

सिंगल इंडिविजुअल की तरह।

सिंगल इंडिविजुअल की तरह उनसे कहा था कि अगर आपकी बीमारियां मानसिक, काल्पनिक हैं, तो हिप्नोसिस से फायदा हो सकता है। वह साइंटिफिक बात है, उससे फायदा पहुंचाया जा सकता है। उन्होंने यह समझा कि मैं यह कहता हूं कि मैं जो हिप्नोटिज्म करता हूं उससे तो फायदा पहुंचता है और दूसरे जो करते हैं उससे नुकसान पहुंचता है। ये सारी की सारी बातें हैं। इन सारी चीजों को जोड़ कर इस भांति पेश किया जा सकता है।
अब जैसे यह आपको दिखाई पड़ गया कि बल्ब जला हुआ है, मुझे पता भी नहीं।
अब इसको ख्याल में रखा जा सकता है। और कल मैं जब कहूं कि हिटलर अपने ऊपर प्रकाश रखता था, तो ये दोनों बातें जोड़ी जा सकती हैं। ये बिल्कुल जोड़ी जा सकती हैं, इसमें कोई शक नहीं।

यह स्पष्टता नहीं हुई थी तो ऐसा ही था।

सहज ही, बिल्कुल सहज जुड़ सकता है। मैं तो हिप्नोटिक सारे मेथड्स के विरोध में हूं, सिर्फ थेरेपी को छोड़ कर।

थेरेपी को छा.ेड कर।

थेरेपी को छोड़ कर। आदमी को किसी भी तरह से, सिवाय उसके तर्क को प्रभावित किए और किसी भी तरह से प्रभावित करना, उसकी आत्मा को नुकसान पहुंचाना है। क्योंकि तब हम उसकी आत्मा को मौका नहीं देते, हम उसको पीछे से पकड़ लेते हैं तरकीब से। और वह जो तरकीब से पकड़ना है वह उसकी आत्मा को गुलाम बनाना है। थेरेपी की तरह छोड़ कर हिप्नोटिज्म के सारे के सारे प्रयोग मनुष्य को नुकसान पहुंचाने वाले हैं।
अभी तो वे बहुत तरकीबें कर रहे हैं ईजाद। अभी मैंने पढ़ा कि अमेरिका में एडवरटाइजमेंट के लिए वे एक नया प्रयोग कर रहे हैं।
अभी तो फिल्मों में एडवरटाइज करते हैं, तो अमेरिका में विरोध बढ़ता जा रहा है इसका, कि आप एडवरटाइज नहीं कर सकते हैं इस तरह। क्योंकि इस तरह आप हमारे साइक को प्रभावित करते हैं। हम फिल्म देखने जाएं, तो लक्स टायलेट साबुन खरीदिए! अखबार पढ़ें, तो लक्स टायलेट साबुन खरीदिए! तो आप हमारे दिमाग को इस तरह सजेस्ट करते हैं। और धीरे-धीरे लक्स टायलेट हमको पकड़ जाती है, हम बाजार में खरीद लेते हैं। तो आप हमारी बुद्धि को प्रभावित नहीं करते हैं, आप सजेस्ट करते हैं; और हमको नुकसान पहुंचाते हैं। आप गलत साबुन भी पकड़ा सकते हैं। यह जनता के साथ अत्याचार है। इसकी हवा अमेरिका में पैदा होनी शुरू हो रही है। तो अब इससे बचने के लिए क्या किया जा सकता है! इस पर तो कानून भी अमेरिका में दस साल के भीतर बन जाएगा कि आप इस तरह प्रभावित नहीं कर सकते हैं। क्योंकि यह नाजायज तरीका है एक तरह से।

ऐसा कानून अपने जो प्रीचर्स हैं उनके प्रति भी नहीं आ जाना चाहिए?

आना चाहिए कभी न कभी, आना चाहिए। क्योंकि आदमी के तर्क को प्रभावित किए बिना और जितनी तरकीबें हैं, वे सब आदमी को नुकसान तो पहुंचाती ही हैं। तो अब उन्होंने एक तरकीब ईजाद की है, कि जैसे आप फिल्म देख रहे हैं, तो आपको अब सीधा पर्दे पर लक्स टायलेट न दिखाई जाएगी। फिल्म चल रही है, और बीच चलती फिल्म में, बहुत थोड़े सेकेंड को लक्स का एडवरटाइजमेंट निकलेगा। वह आपको दिखाई भी नहीं पड़ेगा कांशसली। यानी वह तो बहुत ही, अगर दस हजार लोग बैठे हैं, तो मुश्किल से दस लोग पकड़ पाएंगे कि वहां बीच में लक्स का एडवरटाइजमेंट भी निकल गया। लेकिन आपका जो सब-कांशस माइंड है, उस पर उसका इंपैक्ट पड़ जाएगा।
और अभी उन्होंने इस पर प्रयोग करके पाया कि यह काम कर जाएगा। और वह और
भी खतरनाक है। क्योंकि आपको पढ़ने में भी नहीं दिखाई पड़ेगा कि लक्स टायलेट! वह सिर्फ निकल जाएगा एक झटके में। और उसका जो इंपैक्ट है निगेटिव, वह आपके माइंड पर छूट जाएगा। बाजार में जब आप जाएंगे तो आपको ख्याल आएगा कि लक्स खरीद लेनी चाहिए। और वह आपके सब-कांशस माइंड से होगा।

यह तो उससे भी ज्यादा खतरनाक है!

यह खतरनाक है। यह मैं कह रहा हूं, यह मैं कह रहा हूं कि हिप्नोटिज्म कई तरह के खतरनाक रास्तों पर कई सुझाव दे रहा है। स्टैलिन ने उपयोग किया खुले आम। हिटलर तो खुले आम उपयोग करता था। सारी दुनिया का विज्ञापनबाज उसका पूरा उपयोग करता है, पूरा उपयोग करता है। राजनीतिक उपयोग करता है। धर्मगुरु बहुत दिन से उपयोग करता रहा है। सबसे पहले उसी ने उपयोग किया है। बाकी लोग पीछे धीरे-धीरे उपयोग किए हैं, वह सब उपयोग करता रहा है। अब यह सारा का सारा उपयोग मनुष्य की आत्मा को मुक्त नहीं होने देता।
तो मैं तो बुनियादी रूप से विरोध में हूं। मेरा कहना यह है कि हिप्नोटिज्म के बाबत सबको जानकारी दी जानी चाहिए, ताकि प्रत्येक आदमी सचेत रह सके कि उसे हिप्नोटाइज करके प्रभावित तो नहीं किया जा रहा है! मैं तो इसके पक्ष में हूं। और वह सारा अखबार यह चर्चा करता है कि मैं हिप्नोटिज्म के पक्ष में हूं और हिप्नोटाइज करता हूं।

अच्छा जैसे यह आपने हिप्नोटिज्म के बारे में क्या सच बात थी वह बताई, उसी तरह से अभी तक दूसरी ऐसी कौन सी चीज आपके विरुद्ध प्रोपेगेंडा हुआ कि जिसमें आप मानते नहीं हों और प्रेस वालों ने प्रोपेगेंडा किया?

करीब-करीब ऐसा हुआ है, कुछ बातों को तोड़ कर... जैसे सेक्स के बाबत जो मैं कहा हूं। जैसे मैंने कहा कि मेरा मानना यह है कि कम से कम सात वर्ष तक छोटे बच्चों को घरों में वस्त्र पहनाने पर आग्रह नहीं किया जाना चाहिए। वे जितनी देर नंगे खेल सकें खेलें। घर के बाहर जाएं, कपड़े पहन लें। और चौदह वर्ष तक के बच्चों को भी घर में, बाथरूम में, अगर वे नंगे नहाना चाहें, घर के आंगन में आकर नंगे कपड़े बदलना चाहें, तो उन पर बहुत जोर नहीं दिया जाना चाहिए। क्योंकि मेरी समझ यह है कि बच्चे जितने एक-दूसरे के शरीर से परिचित हो जाएं, उनके जीवन में शरीर के प्रति आकर्षण उतना ही कम और क्षीण हो जाता है।
अब इस बात को तोड़-मरोड़ कर ऐसा पेश किया गया है कि मैं तेरह-चौदह वर्ष
के बच्चों को सड़कों पर नंगा घुमाना चाहता हूं। इसे तोड़-मरोड़ कर जो शक्ल दी जाती है वह शक्ल यह है कि मैं कुछ इसके पक्ष में हूं कि न्यूडिस्ट क्लब हों, मैं इसके पक्ष में हूं कि लोग नंगे सड़कों पर घूमें, यह उसको शक्ल दी जाती है।
मेरा कुल कहना इतना था कि मनुष्य के मन में जीवन भर जो एक-दूसरे को नंगा देखने की तीव्र आकांक्षा है--उसकी वजह से अश्लील पोस्टर पैदा होता है, अश्लील कहानी बनती है, अश्लील फिल्म बनती है। और हम अगर अश्लील कहानी और फिल्म को बंद करना चाहें, तो इससे कुछ बंद होने वाला नहीं है, जब तक कि वह मन की जो हमारी जिज्ञासा है उसको क्षीण करने के कोई उपाय न हों। और उसको क्षीण करने का सर्वाधिक श्रेष्ठतम उपाय यह है कि बच्चों की जिज्ञासा,

स्त्री और पुरुषों के शरीर देखने की, इतनी सहज तृप्त हो जानी चाहिए कि बाद में वह प्राणों को खींच कर तृप्ति की नई मांग न करे।

अब उसको तोड़-मरोड़ कर शक्ल देने की कोशिश की गई और उसके खिलाफ, और पक्ष और विपक्ष, वह सारी बात चलाई गई। तो चीजों को थोड़ा सा शक्ल देने से... मैंने कहा है और मैं मानता हूं कि बच्चों को हम जितनी देर तक, जितनी देर तक उनको कांशस न बनाएं बॉडी के लिए, नंगेपन के प्रति कांशस न बनाएं, उतना हितकर है।

जिज्ञासा एक बात होती है, और जो चौदह और पंद्रह साल के बाद जो अर्ज होती है, वह दूसरी बात है।

बिल्कुल दूसरी बात है, यह तो मना नहीं करता हूं। वह जो अर्ज है, वह अर्ज बिल्कुल रहेगी; लेकिन वह अर्ज नार्मल होगी। अभी वह एबनार्मल हो गई है। अब जैसे एक लड़का एक लड़की को देख कर, पंद्रह या सोलह साल का लड़का या बीस साल का लड़का एक लड़की को देख कर मोहित हो जाए, आकर्षित हो जाए, यह समझ में आता है। लेकिन उस लड़की को पत्थर मारे और एसिड फेंक दे, यह एबनार्मल हो गया। वह उसको प्रेम-पत्र लिख दे, यह भी समझ में आता है, यह बिल्कुल नार्मल है। यह बिल्कुल नार्मल है। लेकिन वह एसिड फेंक दे उसके ऊपर और पत्थर मार दे, यह बिल्कुल एबनार्मल है।

यह जो हमारा जितना, जैसा व्यक्तित्व है आज, उसमें नार्मल अर्ज तो बहुत कम रह गई है, एबनार्मल आब्सेशंस बहुत ज्यादा हैं।

अब मैं तो कालेज में बहुत दिन था, तो मैं देख कर दंग रह गया कि यह सब क्या हो रहा है! यानी हालत ऐसी हो गई है, एक लड़की का निकलना मुश्किल हो गया है कैंपस में से। वह निकल रही है तो मतलब बिल्कुल ही विक्टिम है एक तरह की, शिकार है, चारों तरफ...

और यह सारी चीज सबको ज्ञात है। लेकिन इसको सबको बरदाश्त किया जा रहा है। इसकी कोई फिकर नहीं कि इसको तोड़ने के लिए क्या किया जाए।

इ.ज इट नाट ड्यू टु एनवाइरनमेंट?

हां, एनवाइरनमेंट है। और एनवाइरनमेंट को ही तोड़ने के लिए तो मैं सारी बात कर रहा हूं। यानी मेरा कहना यह है कि जितना सेक्स सप्रेसिव एनवाइरनमेंट होगा, उतनी एबनार्मलिटी पैदा होगी।

सेक्स को एनवाइरनमेंट से--ऐसी बात मैं नहीं कह रहा हूं। एनवाइरनमेंट को तो दूसरी बात कहते हैं। जो साहित्य हो, जो फिल्म हो, वह सब एनवाइरनमेंट है।

वह सब क्यों पैदा होती है--साहित्य और फिल्म? वह साहित्य और फिल्म इसलिए पैदा होती है कि माइंड डिमांड करता है। नहीं तो वह पैदा नहीं होती।

नहीं, वह माइंड डिमांड ऐसा ही करता है क्या?

माइंड इसलिए डिमांड करता है कि आपने सप्रेस किया हुआ है, नहीं तो माइंड डिमांड नहीं करेगा।

जैसे मैं आपको उदाहरण के लिए कहूं, मैं आपको उदाहरण के लिए कहूं। बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है अपनी आत्मकथा में कि जब मैं छोटा था, तो इंग्लैंड में स्त्रियों के पैर के अंगूठे देखना भी बहुत मुश्किल था; घाघरा ऐसा पहना जाता था कि जमीन को छूता रहे। तो अगर स्त्री का कभी पैर का अंगूठा भी दिख जाता था तो काम-उत्तेजना पैदा हो जाती थी। और वह लिखता है कि अब नब्बे वर्ष की उम्र में, अब मैं देखता हूं कि स्त्रियां जांघों तक नंगी घूम रही हैं, और उनको जांघों तक देख कर भी वह काम-उत्तेजना लोगों में पैदा नहीं होती जो आज से अस्सी साल पहले, सत्तर साल पहले, अंगूठा देख कर पैदा हो जाती थी। तो मुझे हैरानी होती है कि बात क्या है? मामला क्या है?

वह अंगूठे तक को छिपाया गया था, तो अंगूठा तक आकर्षण का कारण बन गया था। जितना हम छिपाते हैं, जितना हम रोकते हैं, उतना आकर्षण बढ़ता चला जाता है। और वह जितना आकर्षण बढ़ता है, फिर उसको देखने की इच्छा बढ़ती है। फिर देखने के लिए हमें दूसरे रास्ते निकालने पड़ते हैं। फिर हम फिल्म में देखेंगे; फिर किताब छपवाएंगे, उसमें देखेंगे; फिर गंदी तस्वीर बनाएंगे, उसमें देखेंगे। और हम लोगों से कहेंगे कि गंदी तस्वीरें और फिल्मों की वजह से वातावरण बिगड़ रहा है।
मेरा कहना है कि वातावरण बिगड़ा है इसलिए गंदी फिल्म और तस्वीर पैदा होती है। नहीं-नहीं, वातावरण बेसिक नहीं है, वातावरण बेसिक नहीं है। अगर आप जाकर एक आदिवासी को एक नंगी औरत की तस्वीर दिखलाएं, तो वह उसमें कोई ज्यादा उत्सुकता नहीं लेगा--जितनी आप उत्सुकता लेंगे। क्योंकि उसकी समझ के बाहर है कि इसमें उत्सुकता लेने जैसा है क्या? स्त्रियां नंगी घूम रही हैं।
यह मैंने उदाहरण के लिए कहा तो अखबारों ने छापा कि मैं सारी दुनिया को आदिवासी बनाना चाहता हूं। मैं विकृत करने का उदाहरण दे रहा हूं। मैं किसी को आदिवासी नहीं बनाना चाहता। कुल जमा इतना कहा था कि एक आदिवासी के माइंड को देख कर हमें यह ख्याल में आना चाहिए कि अगर स्त्रियां नग्न हैं आदिवासी समाज में, तो स्त्रियों की नंगी तस्वीर देखने के लिए आदिवासी की कोई उत्सुकता नहीं है।

जो प्रिमिटिव आइडियालॉजी का प्रिमिटिव आइडिया था, तो फिर वह तो स्टैगनेंसी आ गई। आदमी है तो आज तो पेपर क्लोथ्स भी आ गए हैं। इस तरह की बात होती है कि पेपर क्लोथ्स आ गए हैं, बारिश आ गई तो क्या होगा! लेकिन जो प्रिमिटिव डेज के आदिवासी की बात थी, तो आदिवासी के दिलों में कुछ ऐसी बात नहीं पैदा होती थी आज तक, क्योंकि उसमें कोई छिपाने की कोई बात नहीं थी, वे ऐसे ही नंगे घूमते हैं आज भी। तो जो सोसाइटी में दो हजार साल, पांच हजार साल, दस हजार साल तक का यह जो क्रांति की है, यह जो व्यवहार किया है, उसमें कोई ऐसा परिवर्तन नहीं आता है? वह पहले का ही आइडिया आपने रखने की हिमायत की।

नहीं, मैं यह भी नहीं कह रहा हूं, मैं यह भी नहीं कह रहा हूं। मैं जो कह रहा हूं वह सिर्फ आपको एक उदाहरण दे रहा हूं। यह कह नहीं रहा हूं कि वैसा हो जाना चाहिए, वह आइडिया रखना चाहिए। कुल कह इतना रहा हूं, कुल कह इतना रहा हूं कि आदिवासी के दिमाग में सेक्स का वैसा आब्सेशन नहीं है। क्यों नहीं है? उसके लिए नंगी तस्वीर में क्यों आकर्षण नहीं है? हमें क्यों बहुत आकर्षण है?
हमें इतना आकर्षण इसीलिए है कि शरीर को देखने की बच्चे की जो सहज जिज्ञासा है, उसको हमने कुंठित किया है, रोका है, दबाया है। वह दबी हुई इच्छा दूसरे-दूसरे रास्तों से नंगे शरीर को देखने के लिए मार्ग खोजती है। और ये मार्ग ज्यादा खतरनाक हैं। क्योंकि वह जो सीधा शरीर देखना है--अब यह हैरानी की बात है--अगर आप सीधा नग्न शरीर देख लें तो बात खत्म हो जाती है। और नंगी तस्वीर देखें तो बात खत्म नहीं होती। नंगी तस्वीर बहुत लुभावनी है, सीधे शरीर से बहुत ज्यादा। क्योंकि नंगी तस्वीर बनाई गई है पूरे के पूरे आपके माइंड को खींचने और आकर्षित करने को। शरीर एक मामला है, पर्टिकुलर आप क्या-क्या चाहते हैं, वह सब उसमें उभारा गया है। वह सब उसमें दिखाया गया है। उस सबको खींचने के लिए आपको वह तैयार की गई है। तो वह जो नंगी तस्वीर है वह ज्यादा नंगी है, नंगे आदमी के बजाय। नंगा आदमी इतना नंगा कभी भी नहीं है।
तो मेरा कहना यह नहीं है कि आप आदिवासी हो जाएं, मेरा कहना यह है कि यह सिर्फ समझने की बात जरूरी है कि क्या हम अपने बच्चों को इस तरह बड़ा कर सकते हैं कि शरीर के प्रति वे ज्यादा स्वस्थ, सामान्य हों। और मेरा अपना समझना है कि वे बच्चे इस तरह विकसित किए जा सकते हैं कि ज्यादा स्वस्थ और सामान्य हों। और उनके सामान्य और स्वस्थ होने के लिए जरूरी है कि हम बच्चों के मन में बचपन से ही शरीर की बहुत ज्यादा कांशसनेस न भर दें।

अभी एक छोटा सा बच्चा, तीन साल का बच्चा, और वह घर में नंगा आ जाए तो शीऽऽऽ! चलो, जल्दी से कपड़े पहनो!
उस बच्चे को भी ऐसा लग जाता है कि यह नंगा होना कोई भारी पाप हो गया। शरीर के प्रति वह भी भयभीत हो गया; वह भी डर गया। शरीर के प्रति उसे अभी कुछ भी पता नहीं था, अभी उसे कोई मतलब न था शरीर से; अभी वह नंगा खड़ा हो सकता था, उसे ख्याल भी न था। हमने उसको भर दिया भय से, हमने डरा दिया उसे। वह जो हमारा माइंड है, हमने उस बच्चे में आरोपित करना शुरू कर दिया।
मेरा कहना यह है कि बच्चे, जितनी दूर तक सेक्स मैच्योरिटी नहीं आती, उतने दूर तक शरीर के बाबत उनको सामान्य-स्वस्थ दृष्टि होनी चाहिए और हमें उन्हें भयभीत नहीं करना चाहिए।

क्लोदिंग जो है, बच्चे को जो पहनाते हैं, वह सिर्फ सेक्स के लिए ही है?

न, न, न। सिर्फ सेक्स के लिए नहीं है। सिर्फ सेक्स के लिए हो गया है लेकिन। अगर आप शरीर को ढंकने के लिए...

वी आर एक्चुअली लुकिंग फ्रॉम दैट एंगल। एक्चुअली लुकिंग टुडे फ्रॉम दैट एंगल।

हां-हां, वही कारण हो गया है। बच्चे को आप कपड़े पहनाते हैं सर्दी- जुकाम के लिए और धूप के लिए, कोई मना नहीं करता। लेकिन उसमें जो सेक्सुअलिटी है हमारे कपड़ों को पहनाने में... ।

ऐसा नहीं भी तो हो सकता है।

यह तो आप एक-एक घर में जाकर अनुभव करके देखें, तो आपको पता चलेगा कि आप कपड़े सिर्फ इसलिए नहीं पहना रहे हैं कि वे धूप में बचा लेंगे, आप इसलिए नहीं पहना रहे हैं कि सर्दी में बचा लेंगे, कपड़े आप इसलिए पहना रहे हैं-- इसलिए भी पहना रहे हैं, ज्यादा इसलिए ही पहना रहे हैं--कि वे शरीर के नंगेपन को छिपाएं, शरीर को ढांकें, शरीर प्रकट न हो जाए। और शरीर के नंगेपन के प्रति एक भय जो हमारे मन में बैठा हुआ है, वह भय हम बच्चों पर थोप देते हैं। वह भय फिर पीछे काम करता है और आब्सेशन बनता है।
तो मेरा कहना कुल इतना है, और फिर मैं यह भी नहीं कहता कि जो मैं कहता हूं वह मान लिया जाए, मेरा कुल कहना इतना है कि इन सारे जीवन के मसलों पर चिंतन और विचार होना जरूरी है।
अब विनोबा जी कहते हैं कि पोस्टर मत लगाओ नंगे।
वे पोस्टर नहीं रुक सकते, वे लगेंगे। क्योंकि आदमी नंगा पोस्टर देखना चाहता है। तुम दीवार पर नहीं लगाओगे, बाजार में बिकेगा, किताब में छप कर बिकेगा। वह बिकेगा, वह रुक नहीं सकता। वह नंगा पोस्टर उसी दिन बंद होगा, जिस दिन आदमी, खुद आदमी के भीतर नंगेपन का जो भय है और घबराहट है... ।

वह कहीं न कहीं से निकलेगी।

हां, वही मैं कह रहा हूं कि वह हमारी ट्रेनिंग जो बचपन से है, वह ट्रेनिंग हमें पूरी बदल देनी पड़ेगी। बर्ट्रेंड रसेल ने एक स्कूल खोला इंग्लैंड में...

वही मैं बात कह रहा हूं कि पोस्टर जो होता है, वह कोई नंगे बालक की तस्वीर होती है तो लोगों का आकर्षण नहीं होता है।

हां, वह नहीं होगा न। वह तो ठीक है, वह तो नहीं होगा। वह तो नहीं होगा।
और आप बालकों को भी अगर बिल्कुल ढांक-ढांक कर रखते हैं तो बालकों तक को नंगा देखने का आकर्षण पैदा होना शुरू हो जाता है। बालकों तक, छोटी बच्चियों तक के साथ व्यभिचार के मामले हैं; ऐसी बच्चियों के साथ, पांच साल

और छह वर्ष की बच्चियों के साथ। और यह तो हद एबनार्मलिटी की बात है कि यह क्या हो रहा है? यह यहां तक पैदा हो सकता है। अगर हम रोकते ही चले गए तो इसका अंतिम परिणाम यह होने वाला है।
अभी जो न्यूडिस्ट क्लब यूरोप और अमेरिका में बनने शुरू हुए हैं, उनके अनुभव बहुत रिवीलिंग हैं। मैंने दो-चार किताबें उठा कर देखीं, जिनमें उन लोगों ने अनुभव लिखे हैं जो न्यूडिस्ट क्लब में गए हैं। और उनके अनुभव बहुत अदभुत हैं।
पहला अनुभव तो यह है कि पहले तो उन्होंने सोचा था कि बहुत ही आनंदपूर्ण होगा जहां सारी स्त्रियां और पुरुष नंगे होंगे। और देख कर बड़ी खुशी होगी। और शायद हम देखते ही रह जाएंगे, फिर कभी आंख नहीं हटाएंगे। लेकिन उन्होंने कहा कि पंद्रह मिनट के बाद बात भूल गई, पंद्रह मिनट के बाद बात भूल गई और व्यर्थ हो गई, कि लोग नंगे हैं, ठीक है, बात खत्म हो गई। बल्कि एक आदमी ने लिखा कि मैंने उन स्त्रियों को नंगा देखा न्यूडिस्ट क्लब में, तब मुझे वे उतनी आकर्षक नहीं लगीं; और जब वे कपड़े पहन रही थीं आकर बाहर निकलने के लिए, तब मुझे ज्यादा आकर्षक लगीं। वे जो कपड़े पहनते वक्त ज्यादा आकर्षक लगीं, वे नंगे होते वक्त आकर्षक नहीं थीं।
असल में नंगे शरीर में क्या हो सकता है आकर्षण का? आकर्षण कल्टीवेटेड है, हमने पैदा किया है बहुत तरकीबों से। और जितना निषेध किया है, उतना पैदा होता चला गया है।

बट फॉर कंटिन्युएशन ऑफ दि वर्ल्ड, दिस आकर्षण इ.ज ए नेसेसरी थिंग ऑर नाट?

आकर्षण स्वस्थ बिल्कुल जरूरी है, बिल्कुल जरूरी है। अस्वस्थ नहीं, अनहेल्दी नहीं, बीमार नहीं। एक स्त्री एक पुरुष में आकर्षित हो, यह समझ में आने वाली बात है। एक पुरुष एक स्त्री में आकर्षित हो, यह समझ में आने वाली बात है। लेकिन आकर्षण स्वस्थ हो, शुभ हो, सुंदर के प्रति हो, जीवन को ऊंचाइयों की तरफ ले जाने वाला आकर्षण हो, तो समझ में आता है। लेकिन जो हमारा आकर्षण है वह जीवन को नीचाइयों की तरफ ले जाने वाला है, ऊंचाइयों की तरफ ले जाने वाला नहीं है।
कुछ मामले हुए हैं मरी हुई स्त्रियों के साथ व्यभिचार के, जिनको कब्रों में से निकाल कर व्यभिचार किया गया। इस आकर्षण को शुभ नहीं कहा जा सकता और न स्वस्थ कहा जा सकता है। यह पागलपन है, मैडनेस है बिल्कुल। एक स्त्री मर गई हो, और उसके ताबूत में से उसकी लाश को निकाल कर उसके साथ व्यभिचार किया जाए। यह जो आदमी कर रहे हैं, इन आदमियों को हमें सोचना पड़ेगा कि कुछ मामला क्या हो गया है? इनको क्या हो गया है? मेरा मतलब यह है... ।

इट इ.ज सो स्ट्रेंज!

हां! यानी यह जो मामला है न, यह मामला थोड़ा सोचने जैसा है कि यह मैडनेस
की बात हो गई, अब यह आकर्षण नहीं रहा।

शारीरिक आकर्षण नहीं होना चाहिए!

न-न, मैं यह नहीं कह रहा। मैं सिर्फ यह कह रहा हूं कि यह आकर्षण... यह भी आकर्षण है न!

लेकिन परवर्शन है।

हां, परवर्शन है न! तो यही मेरा कहना है कि आकर्षण तो रहे, लेकिन शुभ हो, परवर्टेड न हो; स्वस्थ हो, जीवन को ऊंचा ले जाने वाला हो, समझ में आता है। हम एक-दूसरे के शरीर में भी आकर्षित हों, यह भी समझ में आता है। लेकिन यह आकर्षण रुग्ण और बीमार नहीं होना चाहिए।

और अभी सारा आकर्षण रुग्ण और बीमार है। एकदम रुग्ण और बीमार है। अभी आकर्षण हमारा स्वस्थ नहीं है। और यह जो रुग्ण स्थिति है, इस रुग्ण स्थिति को तोड़ने के लिए कुछ न कुछ किया जाना चाहिए। और करने में जरूरी यह होगा कि हम जितना व्यक्ति को जीवन की सच्चाइयों से परिचित कराते हुए आगे बढ़ाएं, उतना अच्छा है। जीवन की सच्चाई जितनी ज्ञात हो, उतना आदमी स्वस्थ होता है। और जीवन की सच्चाइयां जितनी छिपाई जाएं, उतना आदमी अस्वस्थ होता है। बच्चे सीखेंगे वे सारी बातें, जो आप उनसे छिपा रहे हैं। अच्छा हो कि
आप न छिपाएं, अच्छा हो कि उनको साफ सुव्यवस्था से समझाएं। सेक्स की पूरी शिक्षा दी जाए, सेक्सोलॉजी की पूरी शिक्षा दी जाए।

सेक्स नॉलेज विल बी देअर। बट व्हाट इ.ज दि यूज ऑफ रिमेनिंग अनड्रेस्ड?

यह मैं नहीं कह रहा हूं। आप इससे घबरा क्यों रहे हैं?

नहीं, घबरा तो नहीं रहा हूं। मैं यह जानना चाहता हूं।

मैं यह भी नहीं कहता हूं कि अनड्रेस्ड रहें। मेरा कहना है कि ड्रेस्ड
और अनड्रेस्ड का वह जो बहुत पागल मोह है, वह क्षीण हो जाना चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि कोई नंगे घूमते हुए जाएं आप कहीं। लेकिन अगर एक आदमी नंगा बैठ कर अपने घर में नहाना चाहता है, एक बच्चा अपने घर में नंगा नहाना चाहता है, तो सारा का सारा घर पागल नहीं हो जाना चाहिए कि यह क्या हो रहा है!

लेकिन हिंदुस्तान में तो हालत ऐसी है कि करीब साठ से सत्तर प्रतिशत
तक लोगों को तो कपड़े पहनने को भी नहीं मिलते हैं। उनके बच्चे तो ऐसे ही घूमते हैं। फिर भी यही वातावरण पैदा होता है।

न, न, न। कहां! यह कहते भर हैं हम। कपड़े भला पहनने को नहीं मिलते, चिथड़े
ही मिलते होंगे, लेकिन चिथड़ों से भी हम वही काम कर लेते हैं जो कोई आदमी बड़े से बड़े कीमती कपड़ों से करता होगा। माइंड के करने का सवाल है। कपड़े भी नहीं मिल रहे हैं, कपड़े भी नहीं हैं, लेकिन हम काम वही कर लेते हैं। और फिर भी मैं आपसे कहूंगा कि देहात के बच्चों में वह आकर्षण नहीं है, जो आपके शहर के बच्चे में होगा। देहात का बच्चा ज्यादा स्वस्थ है।

दैट इ.ज फॉर डीसेंट लुकिंग। पैरेंट्स फील दैट दि चिल्ड्रेन शुड लुक डीसेंट, एंड दैट्स व्हाई दे आस्क, नाट फॉर सेक्स रीजन्स।

वह डीसेंट... सेक्स भी आपके लिए इनडीसेंसी है एक। आज जो सेक्स की हालत
है न, वह भी इनडीसेंसी है। अगर एक बच्चा आपसे सेक्स का कोई सवाल पूछता है, तो आप रोकेंगे उसे कि इनडीसेंट है यह सवाल! यह मत पूछो सबके सामने! यह बात मत पूछो, चुप रहो! डीसेंसी के लिए आपकी धारणा बहुत कुछ सेक्सुअल है।

इंडिविजुअली, आई विल नाट आब्जेक्ट। आई बीइंग ए डाक्टर, आई विल आंसर दि क्वेश्चन।

मैं आपका नहीं कह रहा हूं। हां, बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। हां, मैं चाहता हूं कि सभी आंसर दें। और सभी डाक्टर नहीं हैं। और उन सब तक यह खबर पहुंचानी है कि वे सब ये जवाब दे सकें, वे सब स्वस्थ उत्तर दे सकें, तो शुभ हो सकता है। लेकिन इन चीजों को बिगाड़ा जा सकता है। जो मैं कह रहा था, वह मैं यह कह रहा था कि इन सारी चीजों को बिगाड़ा जा सकता है।

आप रसेल की और उसके स्कूल की बात कर रहे थे अभी।

हां, रसेल ने एक स्कूल खोला इंग्लैंड में। इंग्लैंड में भी नहीं चलाया जा सका वह स्कूल। क्योंकि उस स्कूल में यह कोशिश की कि बच्चे स्कूल

के ग्राउंड पर नंगे खेल सकें, स्कूल के स्वीमिंग पुल में नंगे नहा सकें। तो इंग्लैंड जैसे मुल्क में भी उस स्कूल को चलाना मुश्किल हो गया। हालांकि जो थोड़े से बच्चे उस स्कूल में पढ़े और लिखे--जो थोड़े से बच्चे, कोई तीस-चालीस बच्चे बर्ट्रेंड रसेल को मिले, फिर स्कूल को तो जबरदस्ती पब्लिक ओपिनियन के दबाव में बंद करना पड़ा, क्योंकि बरदाश्त के बाहर हो गया--जो बच्चे भी उसके भीतर पले, कोई पांच-सात साल वह स्कूल चलता रहा, तो जिन लोगों ने भी जाकर उन बच्चों के पास रहे, उन्होंने कहा कि वे बच्चे बहुत ही स्वस्थ थे, कई अर्थों में स्वस्थ थे। जो हमको पागलपन पकड़े हुए थे, उनको बिल्कुल भी नहीं थे। वे ज्यादा सहज और साफ थे।
वे होंगे ही! मेरा कुल कहना इतना है कि जिंदगी की कोई भी सच्चाई छिपाने से लाभ नहीं है। जिंदगी की सच्चाई छिपाने से नुकसान है। क्योंकि सच्चाई को उघाड़ने की कोशिश जारी रहेगी। जिंदगी जितनी साफ-सुथरी और सीधी- सीधी हो, कम छिपाई गई हो, उतना ज्यादा आदमी स्वस्थ हो सकता है।

इफ यू डोंट माइंड, जस्ट वन मोर क्वेश्चन। आप आपके व्याख्यान वगैरह में विवेक और सत्य और विचार की ओर ज्यादा जोर दे रहे हैं। तो आदमी के विकास में श्रद्धा, भक्ति, प्रेम के स्थान के बारे में आप क्या कहते हैं?

बहुत स्थान है उनका, बहुत स्थान है। लेकिन मेरी दृष्टि में उनका स्थान परिणाम की तरह है। जैसे अगर कोई आदमी जीवन में विवेक से जीए, तो एक दिन श्रद्धा को उपलब्ध हो जाएगा। लेकिन वह श्रद्धा विवेक-विरोधी नहीं होगी, वह विवेक से ही आएगी। और जिसको आप श्रद्धा कहते हैं, वह विवेक-विरोधी है। वह बिना विवेक के पहले ही आ जाती है। मैं उसके विरोध में हूं। जो श्रद्धा बिना विवेक के और विवेक के विरोध की तरह आ जाती है, मैं उसके विरोध में हूं। वह अंधापन है। मेरा मानना है कि अगर आदमी विवेक से जीए, तो भी उसके जीवन में एक श्रद्धा आएगी। लेकिन वह विवेक का ही फल होगी, वह उसके विचार की ही निष्पत्ति होगी।
भक्ति का हम सारा का सारा बात करते हैं, लेकिन जो भक्ति अंधी है और विश्वास पर खड़ी है, उसका मेरे लिए कोई मूल्य नहीं है। मेरी दृष्टि में विचार करने वाला व्यक्ति भी जीवन में प्रेम को उपलब्ध होता है और विचार करने वाला व्यक्ति भी एक दिन उस जगह पहुंच सकता है जहां सारे जीवन के प्रति उसके भीतर से प्रेम बहने लगे, उस भक्ति को मैं भक्ति कहूंगा।
लेकिन अंधी भक्ति के मैं विरोध में हूं। विवेक के पहले जो विश्वास आ जाता है, मैं उसके विरोध में हूं। विवेक से ही जो आता होगा, उसकी बात अलग है, उसके मैं विरोध में नहीं हूं। और आना भी विवेक से ही चाहिए। अगर आपकी कोई श्रद्धा भी है, तो भी विवेक के ही आधार पर खड़ी होनी चाहिए। यानी उसके लिए भी आपके विवेक का ही बल होना चाहिए। मैं उसके विरोध में नहीं हूं। लेकिन जो चलता है उसके बिल्कुल विरोध में हूं, क्योंकि वह बिल्कुल विवेक-विरोधी है, बुद्धि-विरोधी है।

विवेक का अर्थ आप क्या करते हैं?

विचार की शुद्धतम हो क्षमता।

नये समाज की खोज
सोलहवां प्रवचन

जीवन एक समग्रता है

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

लेकिन मजा यह है कि कम्युनिज्म अब बिल्कुल क्रांतिकारी नहीं रहा है,
अब वह भी एक रिएक्शनरी विचारधारा है। जब कोई विचार पैदा होता है तब तो वह क्रांतिकारी होता है, और जैसे ही वह संगठित हो जाता है, संप्रदाय बन जाता है, व्यवस्था हो जाती है, उसकी क्रांति मर जाती है। बुद्ध जब बात कहे तो वह क्रांतिकारी थी; और जैसे ही बौद्ध धर्म बना, वह खत्म हो गई क्रांति। महावीर ने जब बात कही, बड़ी क्रांतिकारी थी; जैसे ही जैनी खड़े हुए, क्रांति खत्म हो गई।

उन्होंने भी बुतपरस्ती शुरू की।

हां, वह शुरू हो जाएगी। मार्क्स ने जो बात कही, वह बड़ी क्रांतिकारी थी; लेकिन जैसे ही मार्क्ससिस्ट पैदा हुए कि वह क्रांति गई।

तो फिर सामाजिक कार्यक्रम में जो प्रेक्टिकल प्रोग्राम बनेगा कंस्ट्रक्टिव, और कोई न कोई नेता प्रोग्राम देगा कि यह करना होगा, यह करना होगा। जैसा कि आपने कल बोला कोटिचंद्रयज्ञ के बारे में। तब तो कुछ न कुछ गड़बड़ होगी कार्यक्रम में, प्रेक्टिकल सेंस में।

इसीलिए मेरा कहना यह है कि समाज को सतत क्रांति की जरूरत है। यानी मैं कुछ कहूं, इससे क्रांति खत्म नहीं हो जाती; कल मैं भी स्थापित स्वार्थ बन सकता हूं। क्रांति की जरूरत रहेगी। दूसरे आदमी को क्रांति करनी पड़ेगी। यानी मेरा कहना यह है कि क्रांति जो है वह जीवन का सतत तत्व है। ऐसा दिन कभी नहीं आएगा जब क्रांति की जरूरत नहीं होगी। क्योंकि जो भी क्रांति आएगी, वह बहुत जल्दी--जैसे ही सफल होगी--स्थापित स्वार्थ बन जाएगी। क्रांति जब तक सफल नहीं होती, तब तक वह क्रांति है; और वह जैसे ही सफल हुई कि उसका खुद का न्यस्त स्वार्थ शुरू हो जाता है, उसकी व्यवस्था बन जाती है। तो मेरा कहना यह है कि क्रांति जारी रहेगी। और जो सच में क्रांतिकारी है, जो सच में क्रांतिकारी है, वह खुद अपनी ही क्रांति के खिलाफ भी हो जाएगा--जैसे ही क्रांति का स्वार्थ निश्चित हुआ।

तो इसका मानी यह हुआ कि आप क्रांति को कुसुम-फूल के साथ आपने जो उपमा
दी है, वह पत्थर नहीं है, क्रांति भी एक फूल है, वह बिगसता रहेगा।

बिल्कुल फूल है, बिल्कुल बिगसता रहेगा।

अच्छा, मेरा पहला सवाल यह है कि मूर्तिभंजन करने वाला, क्या खुद अपनी मूर्ति को प्रजा-मानस में मूर्तिभंजक के रूप में प्रस्थापित नहीं करेगा?

अगर वह सच में मूर्तिभंजक है, तो वह अपनी मूर्ति से भी प्रजा को बचाने
की कोशिश करेगा। और अगर वह सिर्फ दूसरों की मूर्तियों का भंजन करना चाहता है और अंततः भीतर रस इसमें है कि उसकी मूर्ति स्थापित हो जाए, तब तो सब मूर्तिभंजक पीछे से मूर्तिपूजक और मूर्तिपूजा को शुरू करने वाले बन जाते हैं। लेकिन मेरी दृष्टि यह है कि मूर्तिभंजक अगर सच में मूर्तिभंजक है, तो अपनी प्रतिमा को स्थापित नहीं होने देगा। वह यह संघर्ष भी जारी रखेगा। क्योंकि उसकी लड़ाई किसी की मूर्ति से नहीं है, उसकी लड़ाई मूर्ति के बन जाने से है। जैसे ही मूर्ति बनती है कि वह सत्य-विरोधी हो जाती है।

और वह जो आप कहते हैं, यह खतरा है हमेशा। क्योंकि दुनिया के पिछले सारे मूर्तिभंजकों की मूर्तियां बन चुकी हैं। जीसस मूर्तिभंजक हैं और बुद्ध भी मूर्तिभंजक हैं। लेकिन बुद्ध की तो इतनी मूर्तियां बनीं कि बुत शब्द जो है वह बुद्ध का ही रूपांतरण है, वह बुद्ध का ही बिगड़ा हुआ रूप है। इतनी मूर्तियां बनीं कि बुत का मतलब ही बुद्ध होने लगा, बुत का मतलब ही बुद्ध हो गया।
तो वह बुतपरस्ती पैदा होती है। अब तक यह हुआ है। और अब इससे सीख लेनी चाहिए उन लोगों को जो मूर्तिभंजक हैं। और पहली सीख यह है कि वे अपनी मूर्ति को किसी भी तरह स्थापित न होने दें। क्योंकि इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आपके चित्त में कौन सी मूर्ति है। आपके चित्त में मूर्ति है, कि बात खत्म हो गई। आपका चित्त मूर्ति से मुक्त होना चाहिए। तो मैं तो पूरी चेष्टा करूंगा कि मेरी मूर्ति स्थापित न हो जाए।
अब जैसे कि कल ही मैंने आपसे कहा कि मैं कोई चरित्र का दावा नहीं करता हूं। अगर मुझे अपनी मूर्ति स्थापित करनी है तो मुझे चरित्र का दावा करना चाहिए।

मगर चरित्रवान की मूर्ति स्थापने के लिए।

लोकमानस में चरित्रहीन की मूर्ति की कोई पूजा कभी नहीं हुई है और कभी संभावना नहीं है। चरित्रहीन की मूर्ति स्थापित होने की कोई संभावना नहीं है। मेरा मतलब समझे न? आखिर लोकमानस, मूर्ति बनाने के उसके नियम हैं। मुझे दावा करना चाहिए कि मैं भगवान हूं, मुझे दावा करना चाहिए कि मैं मोक्ष को उपलब्ध कर गया हूं, तब मूर्ति स्थापित होती है। और मुझे कहना चाहिए कि मेरे पैर छूने से तुम मुक्ति पा सकोगे। मुझे, तुम्हें मेरी मूर्ति बनाने में क्या-क्या लाभ होगा, यह भी मुझे बताना चाहिए। अगर मेरी मूर्ति बनाने से कोई लाभ नहीं होता, तो मूर्ति कभी निर्मित नहीं होती।

अच्छा, कोटिचंद्रयज्ञ के बारे में कल आपने बताया कि वह एक जघन्य अपराध है। यह ठीक है। फिर आपने कहा कि कुछ लोगों को तैयार होना चाहिए, जो विरुद्ध में हैं, कि वे खुद वेदी में कूद पड़ें। मगर आप आचार्य की उपाधि लिए हुए हैं, लिए हुए नहीं, दी हुई है, आप पर आरोपित है, इसलिए कोई प्रभावक प्रोग्राम कोई इस संदर्भ में बनाया है, कोई ख्याल है उसका--कोटिचंद्रयज्ञ को रोकने के लिए--प्रवचन के सिवाय।

मैं समझा। यानी मेरी तो मान्यता यह है, मेरी मान्यता ही यह है कि सक्रिय कार्यक्रम विचार के ऊहापोह से पैदा होता है। मेरी सक्रिय कार्यक्रम में कोई उत्सुकता नहीं है, मेरी उत्सुकता नहीं है। मेरी उत्सुकता वैचारिक क्रांति में है। और मेरी मान्यता यह है कि विचार वायुमंडल तैयार हो जाए, तो उस वायुमंडल से सक्रिय कार्यक्रम अपने आप पैदा होंगे। उनसे सीधी मुझे कोई उत्सुकता नहीं है।
यानी जैसे कि कल भी बात हुई, वह भूल होती है। मेरे चित्त में, जिसको पाजिटिव प्रोग्राम कहें, उसके लिए कोई जगह नहीं है। मेरी मौलिक दृष्टि निगेटिव है। और मेरा मानना भी यह है कि क्रांति की दृष्टि अनिवार्यरूपेण नकारात्मक होती है। पर उस नकार के प्रभाव से बहुत सा विधायक कार्यक्रम पैदा होता है। वह इतर बात है, वह बाइ-प्रोडक्ट है, उससे सीधा मेरा कोई संबंध नहीं है।

वह बाइ-प्रोडक्ट है।

हां, वह बिल्कुल बाइ-प्रोडक्ट है। इसलिए उससे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। मेरी दृष्टि सिर्फ यह है कि मेरा विचार स्पष्ट हो जाए और मेरा विचार साफ-साफ लोगों तक पहुंच जाए। तो वह जो मैं निषेध कर रहा हूं, अगर स्पष्ट हो जाए, तो विधायक कार्यक्रम उससे अनिवार्यरूपेण पैदा होगा। उसकी मुझे चिंता नहीं है।

तो इससे यह सवाल पैदा होता है कि आप, अगर मैं ठीक समझता हूं तो, मंडन के लिए खंडन करते हैं। पुरानी प्राचीन परिभाषा है। इस नकारात्मकता से एक नयी तकलीफ को जन्म देंगे। क्योंकि जब कोई एक स्टेप छोड़ता है--जो कल आपने बोला-- तब उसको दूसरा स्टेप, तब आगे दूसरा स्टेप होता ही है। आपकी विचारधारा में, जो है, उसको छोड़ने का ऐलान है। दूसरा कोई पाजिटिव स्टेप, अभी आप बोले कि पाजिटिव कार्यक्रम नहीं है। तो वह आप बताएंगे? नेचर एब्होर्स वैक्यूम। नकार से जो वैक्यूम पड़ेगा, उसको कुदरत कुछ न कुछ चीज से भर देती है। यह आपकी नकारात्मकता की बातों से जो शून्यता निर्मित होगी इससे उपजित, तो कुछ न कुछ से वैक्यूम भर जाएगा, उसका गंभीर उत्तरदायित्व आप स्वीकार करते हैं?

हां-हां, बिल्कुल ही।
दो बातें हैं। पहली तो बात यह कि जिन-जिन चीजों से भरने की संभावना हो सकती है, उन-उन को मैं नकारता हूं। जैसे कि इस कमरे में कोई मुझसे पूछे कि कुर्सी क्या है? तो मैं कहता हूंः टेबल कुर्सी नहीं है; पलंग कुर्सी नहीं है; दीवार कुर्सी नहीं है। मैं कुर्सी को छोड़ कर प्रत्येक चीज को नकारता हूं। सिर्फ रह जाती है कुर्सी!
और मेरी मान्यता है कि जो इतने नकार को समझ लेगा उसे कुर्सी दिखाई पड़ जाएगी! जैसा कि उपनिषद कहते हैंः नेति-नेति! वे कहते हैंः नाट दिस, नाट दैट। वे कहते चले जाते हैं कि यह भी नहीं, यह भी नहीं, यह भी नहीं। छोड़ देते हैं सिर्फ उसको जो है। इस सबको इनकार करने पर जो है, वह रह जाएगा। और जो इतने इनकार से गुजरेगा उसे वह दिखाई पड़ेगा, उसे वह दिखाई पड़ेगा।
और हम क्यों जोर नहीं देते हैं कि यही है सीधा, इसे कहने के लिए। क्योंकि जैसे ही हमने यह कहा, यही है सीधा, वह जो नकार की क्रांति है उससे वह आदमी गुजर ही नहीं पाता। और वही क्रांति उसके मस्तिष्क को विकसित करती है।
पाजिटिव पकड़ लेने से कोई विकास नहीं होता। जैसे हमने कह दिया, यह रही कुर्सी। वह मेरी मानता है और कुर्सी को पकड़ लेता है। अभी उसे पता नहीं चला कि यह कुर्सी क्यों है? यह टेबल क्यों नहीं है? क्योंकि टेबल को उसने इनकार नहीं किया, न उसने दीवार को इनकार किया। उसे तो कुर्सी पकड़ा दी गई, उसने कुर्सी पकड़ ली। उसने मेरी मान कर पकड़ ली।
पाजिटिव इशारा हमेशा बिलीफ पैदा करता है। निगेटिव इशारा कभी भी बिलीफ पैदा नहीं करता। क्योंकि डाउट से गुजर कर वह आदमी विचारशील बनता है। विचारशील बनने पर जब उसे दिखाई पड़ता है कि कुर्सी यह है, तो यह मामला बहुत और हो गया। यानी सत्य का साक्षात उसे होना चाहिए। मैं असत्य बता सकता हूं कि यह असत्य है, यह असत्य है।
मेरा मतलब समझे न?
और जैसे ही नकार से एक शून्य पैदा होता है, अनिवार्यरूपेण शून्य चल नहीं सकता, शून्य भरेगा। हम चाहते भी हैं कि शून्य भरे, हम चाहते भी हैं। लेकिन हम चाहते हैं कि सत्य से शून्य भरे। और असत्य का अगर ठीक-ठीक बोध हो जाए, तो फिर असत्य से यह शून्य कभी नहीं भरेगा।

तो आपकी समझ में उपनिषद थोड़ा सा तो काम आया।

न-न, नेति-नेति सदा ही काम आती है। निगेशन हमेशा ही काम आया है। समझे न आप? दुनिया में जो भी महत्वपूर्ण है, वह हमेशा निगेटिव है।

मगर आपको अभी उपनिषद ही याद आया।

हां, मैं समझा, ठीक कहते हैं न। उपनिषद ही याद इसलिए आया कि नेति-नेति शब्द का जितना सीधा उपयोग उपनिषद ने किया है, दुनिया के किसी शास्त्र ने नहीं किया है। मेरा मतलब समझ रहे हैं न? नेति-नेति की जो प्रक्रिया का सीधा उपयोग किया है। उपनिषद बिल्कुल ही नकारात्मक है।

च्वाइसलेस अवेयरनेस, यह भी कोई च्वाइस नहीं है? यही बात आती है, पैराडॉक्स की ही बात आती है।

नहीं, च्वाइसलेस अवेयरनेस च्वाइस नहीं है। च्वाइसलेस का मतलब है कि
हम कोई चुनाव नहीं करते हैं, हम कोई विकल्प नहीं चुनते हैं, हम सिर्फ जागते हैं। उस जागने में हम कोई निर्णय नहीं लेते कि यह ठीक है, यह गलत है; यह मानना चाहिए, यह छोड़ना चाहिए। हम कोई निर्णय नहीं लेते। हम सिर्फ जाग कर देखते हैं। इस जाग कर देखने में कोई भी चुनाव नहीं है। और जब तक चुनाव है तब तक हम जाग कर नहीं देख सकते हैं। यानी अवेयरनेस विद च्वाइस, ऐसी कोई चीज नहीं होती। अवेयरनेस ऐज सच इ.ज विदाउट च्वाइस। अवेयरनेस होती ही च्वाइसलेस है। तो अवेयरनेस कभी भी च्वाइस के साथ नहीं हो सकती है। क्योंकि च्वाइस का मतलब है कि रस शुरू हो गया, नींद शुरू हो गई।
यहां इतने लोग बैठे हैं, मैंने कहा, बच्चू भाई बढ़िया आदमी हैं। फिर मैं बच्चू भाई के प्रति भी अवेयर नहीं हो सकता; क्योंकि मेरी आसक्ति शुरू हो गई। और जयंत भाई के प्रति भी अवेयर नहीं हो सकता; क्योंकि उनके प्रति मेरा नकार शुरू हो गया। मैं जाग सकता हूं इस कमरे के सारे लोगों के प्रति तभी, जब मेरा कोई चुनाव नहीं है, मैं सिर्फ जाग कर देख रहा हूं।
तो वह जो च्वाइसलेस अवेयरनेस है, वह च्वाइस नहीं है।

एलन वाट ने झेन बुद्धिज्म में यही स्पांटेनियस रिएक्शन का खबर दिया है। अच्छा, मारेलिटी के मूलभूत सिद्धांत विधि-निषेध, इनहीबिशंस की नींव पर बने हुए हैं, इसे आप युवा विश्व को जाहिर में नग्नता का प्रकट आदेश देकर तोड़ रहे हैं। वह एक प्रकार की सूक्ष्म अनैतिकता स्वीकार करते हैं?

नहीं; क्योंकि जो नैतिकता विधि-निषेध पर खड़ी है, उसे मैं अनैतिक मानता हूं। उस नैतिकता को ही मैं... ।

और मेरा यह भी ख्याल है कि--मैं उसको संडास नहीं कहता--सेक्स के बाथरूम
को खुला रखने से क्या सिर्फ सुगंध ही फैलेगी?

इस पर मैं बात कर लेता हूं, पहले यह बात कर लूं।
जिसको हम नैतिकता कहते रहे हैं आज तक, वह नैतिकता नहीं है। वह नैतिकता
ही नहीं है। क्योंकि जिस नैतिकता को भय के ऊपर खड़ा करना पड़ता है और डरा कर, स्वर्ग और नरक के प्रलोभन और डर पर, पाप और पुण्य की घबराहट पर, दबाव पर, जबरदस्ती, उसको मैं नैतिक नहीं मानता। क्योंकि यह जबरदस्ती की प्रक्रिया ही अनैतिक है।
नैतिक होने का अर्थ हैः एक व्यक्ति की चेतना जागरूक हो। और उस जागरूक चेतना को अनिवार्यरूपेण, जो शुभ है वही करने का भाव पैदा होता है, अशुभ का उसे भाव पैदा नहीं होता। मेरा मतलब कहने का आप समझे न? तो मैं अनैतिकता की तरफ ले जाने का जिम्मा नहीं ले रहा हूं। बल्कि मैं अनैतिकता से नैतिकता की तरफ ले जाने का प्रयास कर रहा हूं।

वही निगेटिव?

हां, निगेटिव ही। और दूसरी जो बात आप कहते हैं कि सेक्स की संडास को खुला रखने से...

संडास नहीं, बाथरूम मैं कहता हूं।

बाथरूम कहिए, इससे क्या फर्क पड़ता है। वह आपको संडास का ख्याल है इसलिए बाथरूम कहते हैं। वह सेक्स के बाथरूम को खुला रखने से सुगंध ही फैलेगी, ऐसा मैं नहीं कह रहा हूं। पहली तो बात यह कि सेक्स का बाथरूम नहीं है, संडास भी नहीं है।

बाग है?

यह सवाल नहीं है। यह जैसे ही हम चुनाव करते हैं न, यह जैसे ही हम थोपते हैं उस पर कुछ, हम कोई भाव ले रहे हैं। सेक्स सिर्फ जीवन का एक सहज तथ्य है, सिर्फ फैक्चुअलिटी है। उस फैक्चुअलिटी को हम चाहें तो संडास भी बना सकते हैं और चाहें तो बाग भी बना सकते हैं। सेक्स अपने आप में न्यूट्रल फैक्ट है। इसको समझ लें। मैं नहीं कह रहा हूं कि बाग है।

आप फर्ड और लारेंस के साथ नहीं हैं।

न। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि बाग है, न मैं कह रहा हूं कि संडास है। मेरा मानना है कि वह जो पुरानी नैतिकता थी, जो संडास कहती थी, उसके खिलाफ लारेंस की बगावत है। वह रिएक्शनरी है लारेंस। अब वह उसको संडास से हटा कर बगीचा कह रहा है।
मैं यह कह रहा हूं कि न मुझे पुरानी नैतिकता से मतलब है, न इन विद्रोहियों से मतलब है। मैं सेक्स को एक तटस्थ तथ्य मानता हूं। हम चाहें तो उसे संडास भी बना सकते हैं। और अगर संडास बनाना हो तो पहला काम दरवाजा बंद कर देना है। हम चाहें तो उसे बगीचा भी बना सकते हैं। और अगर बगीचा बनाना हो तो पहला काम दरवाजा खोल लेना है। यह मैं पहला ही काम कह रहा हूं, इससे काम पूरा नहीं हो गया। समझे न?
लेकिन सेक्स सुगंधपूर्ण बनाया जा सकता है। इतना सुगंधपूर्ण बनाया जा सकता है कि वह प्रेयरफुल हो जाए; इतना सुगंधपूर्ण बनाया जा सकता है कि वह स्प्रिचुअल एक्ट हो जाए। और उसे इतना गर्हित और कुत्सित और निंदित बनाया जा सकता है कि वह... ।

मगर वह सब्जेक्ट्स पर आधारित होगा न बनाना। जो सब्जेक्ट्स कम्यूनियन में होंगे, वह सामाजिक व्यवस्था...

उन पर ही होगा। वही मैं कह रहा हूं। बनाने का मतलब आप समझे न?

आपके बारे में मैं नहीं कह सकता। मगर जो...

न-न, उन पर ही होगा। लेकिन उनका चित्त समाज निर्मित करता है। और अगर समाज बचपन से बच्चों को सेक्स का कंडेमनेशन सिखाता है, तो समाज संडास बनाने का इंतजाम कर रहा है। क्योंकि एक लड़के को, एक लड़की को, बीस साल तक सिखाया जाए कि सेक्स पाप है, गर्हित है।

मगर अब थोड़ा सा रिलीज हुआ है, पहले जैसा नहीं है।

हां-हां, मैं कह रहा हूं कि रिलीज हुआ है।

लेकिन हां, क्रिश्चिएनिटी में जैसा सीन है, वैसे हमारे में तो...

वह जैसे ही आप कहते हैं कि रिलीज हुआ है, आप मानते हैं कि वहां कुछ अभी जकड़ा हुआ है, जिसमें से कुछ रिलीज हुआ है। लेकिन तथ्य की तरह, तटस्थ तथ्य की तरह उसकी स्वीकृति कहीं भी नहीं है।

सब-कांशस में पड़ा होगा।

वह है न पूरा, वह है। हजारों साल से हमारा जो कलेक्टिव माइंड है, उसमें
वह पड़ा हुआ है। तो हम जो रिलीज भी करते हैं थोड़ा सा, वह रिलीज भी टोटल नहीं है। और उस रिलीज से भी टेंशन पैदा होता है, क्योंकि आधा रिलीज होता है, आधा खिंचता है। यानी वह मामला ऐसा है कि जैसे कोई आदमी कार चला रहा हो,

एक्सीलरेटर भी दबाता है और ब्रेक भी लगाता है। तो जो कार की हालत होने वाली है, वह आदमी के माइंड की हो रही है। इधर वह एक्सीलरेटर भी दबाता है कि गाड़ी बढ़नी चाहिए, उधर उसका अनकांशस माइंड ब्रेक भी लगाता है। इसमें गाड़ी के सिवाय टूट जाने के, एक्सीडेंट के, कुछ होने वाला नहीं है। इससे तो पुरानी हालत भी बेहतर थी, वह सिर्फ ब्रेक लगाने वाली हालत है--एक। एक सिर्फ पश्चिम की हालत है--एक्सीलरेटर दबाने वाली। अभी जो नया माइंड है वह इन दोनों के बीच में उपद्रव में पड़ गया है।
मेरा मानना है, मेरा मानना यह है कि एक्सीलरेटर भी दबाने योग्य है और उसको दबाने का वक्त है। और उसका ब्रेक भी लगाने योग्य है, लेकिन उसका भी वक्त होता है। और दोनों पर एक साथ लगाने योग्य कभी भी नहीं है। मेरी आप बात समझ रहे हैं न? जो आदमी सेक्स को सुंदर बनाना चाहता है, वह कोई ब्रेक नहीं तोड़ डालेगा; बल्कि मेरा मानना है कि उसका ब्रेक ज्यादा मजबूत साफ-सुथरा होगा। और ब्रेक इसलिए नहीं होगा कि सेक्स पाप है। ब्रेक इसलिए होगा कि सेक्स से बहुल इनर्जी है। और उस इनर्जी को कितना ऊंचा उठाना है, उतना संगृहीत करना जरूरी है।

अच्छा, प्राब्लम टेल के लेखक ए.एस.निल ने स्वयंभू-नीति की बात की है-- इनहीबिशनलेस। चर्च था और चर्च में, चर्च के बाहर लड़के लोग प्ले-ग्राउंड में ऊधम करते थे और आवाज भी करते थे। तो क्या हुआ कि एक दिन रविवार आ गया तो लड़कों ने अपने आप ही अपनी स्वयंभू-नीति से ही निश्चित किया कि आज चर्च में कार्यक्रम होगा इसलिए हम यहां दंगा-फसाद, धमाल नहीं करेंगे। तो वह तो क्रिश्चिएनिटी में ही बना हुआ, गुजरा हुआ एक दृष्टांत है। ऐसे भी दृष्टांत मिलते हैं कि जो अपने आप ही वह है। इनहीबिशन है, वहां भी ऐसे उदाहरण मिलते हैं।

ऐसे उदाहरण मिल सकते हैं।

तो यह व्यक्ति पर आधारित है? वह तो एक समूह था लड़कों का।

व्यक्ति पर नहीं, समाज का जो मैकेनिज्म है, उस पर बहुत कुछ निर्भर है। असल में चर्च किसी को बुलाता नहीं। समझ लें। न किसी को रोकता है, न खेलने से रोकता है। लेकिन चर्च इतना आकर्षक हो सकता है, इतना शांत हो सकता है, वहां का संगीत इतना मधुर हो सकता है, प्रार्थना इतनी आनंदपूर्ण हो सकती है कि सामने खेलने वाले बच्चों को लगे कि आज हम चर्च में चलें। लेकिन इसमें अगर कोई समझ रहा हो कि बच्चे चर्च में गए, तो बहुत गलती में है--बच्चे संगीत के लिए गए होंगे, बच्चे प्रार्थना के लिए गए होंगे।

नहीं, चर्च में जाने के लिए नहीं।

मेरा मतलब आप समझे रहे हैं न? वह अगर चर्च में बहुत संगीत बज रहा है, प्रार्थना हो रही है, लोग शांत बैठे हैं, तो भी बच्चे रुक सकते हैं कि हम ऊधम न करें, यह भी संभव है। यह भी संभव है। और यह जितना सहज हो, उतना ही उचित है, महत्वपूर्ण है, श्रेष्ठ है।

उसका कोई हर्ज नहीं।

उसका कोई भी हर्ज नहीं है। जितना सहज हो जीवन, उतना ही महत्वपूर्ण है।
और वह तो इनहीबिशनलेस तो होना ही चाहिए व्यक्तित्व।

आपके जो विधान दैनिक पत्र में आए थे गांधीजी के बारे में, तो चरखे को जला दो जैसे विधान शॉक ट्रीटमेंट में यकीनन काम आ सकते हैं, आ रहे हैं। मगर मास माइंड में इससे आपके शुभहितों को थोड़ी सी हानि नहीं पहुंचेगी--आपके शुभहितों को, आपका जो मिशन है?

मैं समझा। दो बातें हैं। दो बातें हैं। एक तो मेरा मिशन क्या है? मेरा मिशन है लोगों में विचार को जगा देना। उसको कोई नुकसान इससे नहीं पहुंचने वाला है, एक बात। दूसरी बात, चरखा जला देने जैसी बात मैंने कभी कही नहीं है।

अच्छा, इट इ.ज शॉकिंग! वह तो जनसाधन में छपी भी थी।

कहा जो मैंने है वह यह है, मैंने कहा है कि एक वक्त आ गया है--एक समय था
कि गांधी ने अंग्रेजी कपड़े जलवाए--एक वक्त आ गया है कि गांधी ने जो टोपी दी थी लोगों को, वह जलाने के योग्य हो गई है, क्योंकि वह प्रतीक बन गई है अब सत्ता की, ब्यूरोक्रेसी की, शोषण की। एक वक्त आ गया है कि अब वह गांधी की टोपी भी जला दी जाए। यह मैंने कहा था इस संदर्भ में कि जिनको हमने कल सेवक समझा था, उनकी टोपी आज सत्ता का प्रतीक बन गई है। चरखा जलाने की बात मैंने कभी कही नहीं। टोपी! और वह भी मैंने कहा कि वक्त आ गया है कि अब वह टोपी जलाने के योग्य हो गई है।
मगर इन सब चीजों को दूसरी शक्ल दे दी जाती है।

नेहरूजी अपनी इमेज बनाए रखने के लिए हिप्नोटिज्म करते हैं और मैं लोगों के भले के लिए कर रहा हूं, ऐसा कह कर आप अपनी इमेज को थोड़ा सा ईगोइस्ट बना दिए हैं--ऐसा लोगों का ख्याल है।

यह भी मैंने कभी नहीं कहा। अब यह भी समझ लेने जैसा है। मैंने कहा कुल इतना कि मनुष्य और बृहत्तर मनुष्यता विचार से कम प्रभावित होती है, सुझाव से ज्यादा प्रभावित होती है। दुनिया में जो बहुत बड़ा जो क्राउड माइंड है, जो भीड़ का मन है, वह विचार वगैरह से प्रभावित कम होता है।
तो मैंने कहा यह कि हिटलर तो जान कर, जितने भी हिप्नोटिक टेक्नीक हैं, उनका उपयोग करता था। जैसे हाल को अंधेरा रखेगा, खुद को ऊंचे मंच पर खड़ा करेगा। प्रकाश सिर्फ हिटलर के ऊपर जले रहेंगे, सारा अंधकार रहेगा। कोई आदमी दो घंटे तक किसी दूसरे को देख नहीं सकेगा, दो घंटे तक उसको हिटलर के ही चेहरे को देखना पड़ेगा। यह इमेज उसके भीतर प्रविष्ट होगी। वैज्ञानिकों से पूछ कर तय किया जाता था कि आंख का पलक कितना ऊंचा रहना चाहिए सुनने वाले का, ताकि आंख के स्नायु शिथिल हो जाएं और सजेस्टेबल हो जाए माइंड।
तो हिटलर तो यह सब जान कर करता था। मैंने कहा यह कि हिटलर यह जान कर करता था। नेहरू ने कभी जान कर यह नहीं किया है, लेकिन नेहरू से यह हुआ है, यह बिल्कुल हुआ है। वह प्रोसेस में ऐसा हो गया है, नेहरू को पता भी नहीं है इसका। लेकिन यह हो गया है। मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न?

उनका गुलाब भी सिंबल बन गया।

हां, वह सारी चीजें सिंबल बन जाती हैं। अगर नेहरू की जगह आप एक दूसरे आदमी को लाकर खड़ा कर दें भाषण करने को और कहें कि नेहरू भाषण कर रहा है, और गुलाब और सारी पूरी बात हो, तो जनता उतनी ही प्रभावित होगी जितनी नेहरू से। वह जनता नेहरू से प्रभावित नहीं हो रही, वह अपनी इमेज से प्रभावित हो रही है। वह जो इमेज उसने बना रखी है।

नेहरू के सिवाय कोई और ऐसा गुलाब रखता... ।

मैं यह नहीं कह रहा, कोई और का नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि नेहरू की जगह, जनता को पता हो कि नेहरू ही आकर भाषण दे रहे हैं और नेहरू की इमेज पूरी की पूरी बना कर खड़ी कर दी जाए, तो जनता उतनी ही प्रभावित होगी इस आदमी से भी जो कि नेहरू नहीं है।

वे इमेज से काम ले रहे हैं। उनका रिश्ता इमेज से है।

हां, जनता इमेज से प्रभावित हो रही है, नेहरू-वेहरू से नहीं। और आज नेहरू को लाकर आप खड़ा कर दें दूसरी शक्ल में और लोगों को पता न हो कि नेहरू है... ।
मैंने पढ़ा ठक्कर बाबा के बाबत, कि ठक्कर बाबा किसी ट्रेन से जा रहे हैं, कहीं से शायद अहमदाबाद आ रहे हैं या कहीं आस-पास। और उनका वहां भाषण होने वाला है, अखबारों में सब फोटो और भाषण की बात छपी है। और थर्ड क्लास के कंपार्टमेंट में एक आदमी बिस्तर लगाए हुए लेटा है। और उस भीड़ में ठक्कर बाबा खड़े हैं और उस आदमी से कहते हैं कि भई तुम थोड़ा हट जाओ, तो मुझे बैठ जाने दो। वह कहता है, खड़े रहो बुड्ढे! गड़बड़ न करो! और अखबार पढ़ कर वह बगल के आदमी से कहता है कि ठक्कर बाबा का भाषण है, वह सुनने चलना है जरूर, बहुत गजब का आदमी है साहब!
और ठक्कर बाबा बगल में खड़े हैं, उनको बैठने दे नहीं रहा है। यही आदमी
कल भीड़ में ठक्कर बाबा को सुनेगा और प्रभावित होगा। यानी हम इमेज से चलते हैं।
तो मैंने कहा यह कि नेहरू का पूरा व्यक्तित्व और सारी व्यवस्था, नेहरू पर कोई पचास हजार रुपया रोज खर्च होता रहा है--सारे इंतजाम, सारी व्यवस्था, सारे शोरगुल में। यह सारा का सारा इंतजाम और सारी व्यवस्था से आदमी प्रभावित होता है।
और यह तो मैंने कभी कहा नहीं कि मैं जो हिप्नोटिज्म... एक तो मैं हिप्नोटिज्म का प्रयोग करता नहीं। समझ लें मेरी बात को! मैं तो चाहता हूं कि आदमी सजग हो जाए हिप्नोटिज्म से और कभी हिप्नोटिक रास्तों से प्रभावित न हो। क्योंकि वही सबसे खतरनाक तरकीब है जिससे आदमी के विचार को चोट पहुंचती है। तो मैं तो समझाना--यह जो बात भी समझाई थी वह इसलिए कि एक-एक आदमी को जानना चाहिए कि किन-किन तरकीबों से आपका दिमाग हिप्नोटिक स्लीप में जाता है। और उन तरकीबों से सावधान रहना चाहिए। क्योंकि जितना आदमी सावधान होगा, उतना ही दुनिया का हिप्नोटिक शोषण कम किया जा सकता है। इसलिए मैंने कहा। मैं तो यह कहता ही नहीं कि मैं हिप्नोटिज्म का प्रयोग करता हूं।
लेकिन वह जो पत्रकार ने गड़बड़ की। हुआ क्या, जो पत्रकार इसमें बातचीत में थे, वे मेरे साथ ट्रेन में बंबई तक गए। और मुझसे उन्होंने कहा कि मुझे कुछ तकलीफ है पेट में। और वह तकलीफ ऐसी है कि डाक्टर मुझे कहते हैं कि पेट में तो तकलीफ नहीं है, शायद आपके मन में ही तकलीफ है। तो क्या आप मुझे बता सकते हैं कि कोई हिप्नोटिक तरकीबों से यह फायदा हो सकता है? तो मैंने उनसे कहा कि बराबर हो सकता है, अगर तकलीफ झूठी है तो हिप्नोटिज्म से फायदा हो सकता है। और उन्होंने कहा, तो क्या आप कभी मुझे सहायता कर सकते हैं? मैंने कहा, मेरे पास वक्त हो तो दो-तीन दिन के लिए आप आ जाएं, तो मैं हिप्नोटिज्म से पूरी सहायता कर सकता हूं।
मैंने उनसे कहा, हिप्नोटिज्म एक थेरेपी बन सकता है। लेकिन मास-माइंड
को प्रभावित करने के लिए बहुत खतरनाक ईजाद है।
मेरा फर्क समझ रहे हैं न आप?
उन सज्जन से मैंने कहा था कि यह थेरेपिटिक हो सकता है। और है। अगर झूठी बीमारी है तो झूठे इलाज से ठीक हो जाएगी, इसमें कोई तकलीफ नहीं है। उन सज्जन से मैंने यह कहा। उन्होंने जाकर अखबार में छापा कि मैं कहता हूं कि मेरे हिप्नोटिज्म से तो फायदा हो सकता है--क्योंकि मैंने उनसे कहा था कि आपकी बीमारी को मैं फायदा पहुंचा सकता हूं--और दूसरों के हिप्नोटिज्म से नुकसान होता है।
मैं हिप्नोटिज्म के सख्त खिलाफ हूं, थेरेपी को सिर्फ छोड़ कर। हिप्नोटिज्म को मैं एक थेरेपी मानता हूं। और जब तक दुनिया में लोग झूठे ढंग से बीमार पड़ते हैं तब तक वह काम कर सकता है। और लोग झूठे बीमार पड़ते हैं, सौ में से पचहत्तर परसेंट बीमारियां तो झूठी होती हैं, जो सिर्फ कल्पना में होती हैं।

आपकी प्रवचन शैली दृष्टांत-प्रधान आडियंस में है, एनक्डोटल है। क्या कभी ऐसा नहीं हो पाता जब एक एनक्डोट के हार्प को दूसरी एनक्डोट की फलश्रुति नुकसान पहुंचाए?

यह फलश्रुति समझने में नुकसान पहुंच सकता है। मेरी तरफ से तो नहीं पहुंचता। क्योंकि मेरी दृष्टि में तो एक सुसंगति है उन दोनों के बीच में; और मैं उसी की तरफ इशारा कर रहा हूं। लेकिन यह कभी हो सकता है। क्योंकि दृष्टांत के बहुत से पहलू हैं। मैं एक पहलू पर जोर दे रहा हूं, हो सकता है आपका ध्यान दूसरे पहलू पर चला जाए।

आपको दृष्टांत कथा को वक्तव्य के अनुकूल बनाने के लिए ट्विस्ट करना पड़ता है, तब तथ्य और तवारीख को थोड़ी सी हानि नहीं पहुंचती है?

नहीं, पहली तो बात यह है, पहली तो बात यह है कि जो भी मैं एनक्डोट उपयोग करता हूं, वे जहां तक तो ऐतिहासिक नहीं होते हैं। अगर ऐतिहासिक होते हैं तब मैं उसको जरा भी बदलता नहीं; उसको वैसा ही रखता हूं, जरा भी बदलता नहीं। हां, अगर ऐतिहासिक नहीं हैं... ।

उमाशंकर जी ने... ज्योतिशिंग में आए थे उस दिन... उस दिन वह भैंस वाला सिंगड़ा उग गया, उन्होंने कुछ उपनिषद के ऋषि के बारे में कहा था और आपने वह नागार्जुन के बारे में कहा। ऐसा मुझे, स्मृति ऐसी है मेरी।

हां, मैंने नागार्जुन के बाबत ही कहा। अब इसमें हुआ क्या है कि फेबल
जो चल रहे हैं, वे सबने उपयोग किए हैं--वह जैन ग्रंथ में भी मिल जाएगा, वह हिंदू ग्रंथ में भी मिल जाएगा, बौद्ध ग्रंथ में भी मिल जाएगा। तो फेबल्स ऐसे हैं कि वे सामूहिक संपत्ति हो गए हैं, उन पर किसी का हक नहीं रह गया है। वे सबने उपयोग किए हैं अपने-अपने ढंग से। और इसलिए उनके कई तरह से उपयोग हो सकते हैं, बिल्कुल हो सकते हैं।
और यह संभावना रहती है, क्योंकि एनक्डोट जो है उसके तो मल्टी आस्पेक्ट्स हैं। अब मैं किसी और आस्पेक्ट से कह रहा हूं, आपको कोई दूसरा आस्पेक्ट ख्याल में आ गया तो...

यहां एक मुलाकात में आपने कल ही बतायाः धर्म मन बहलाव का साधन है और वैज्ञानिक चिंतन धार्मिक मनुष्य नहीं कर सकता। तो क्या राजा जी और डाक्टर राधाकृष्णन धर्माभिमुख व्यक्ति होते हुए भी वैज्ञानिक चिंतन नहीं चाहते हैं? अतीत में विवेकानंद और दयानंद ने भी समाज को कु-रूढ़ियों से बचाने का प्रयत्न नहीं किया?

दो बातें समझ लेनी चाहिए। पहली तो बात यह कि मेरा मानना है कि जिसको मैं धार्मिक व्यक्ति कह रहा हूं अर्थात तथाकथित धार्मिक व्यक्ति, जिसको हम धार्मिक कहते हैं। मेरी दृष्टि में अभी तक जिसको हम धार्मिक व्यक्ति समझते हैं--सो काल्ड रिलीजस--वह अवैज्ञानिक है। मेरी दृष्टि यह है कि अगर वैज्ञानिक चिंतन हो तो एक नये तरह का रिलीजस माइंड पैदा होता है, जो वैज्ञानिक होगा। उस वैज्ञानिक चित्त में धर्म भी एक विज्ञान की तरह ही प्रवेश करेगा, एक सुपरस्टीशन की तरह नहीं।

राधाकृष्णन में आप वह बात नहीं कह रहे हैं।

नहीं, वह बात नहीं कह रहा हूं! दूसरी बात यह कि राधाकृष्णन को मैं कोई धार्मिक आदमी नहीं मानता, पहली बात, न ही विचारक मानता हूं और न चिंतक मानता हूं। राधाकृष्णन बिल्कुल ही एक टीकाकार और एक कमेंट्रेटर और एक अनुवादक से ज्यादा नहीं हैं। अच्छे अनुवादक हैं, सुंदर अनुवादक हैं और बहुत पोएटिक एक्सप्रेशन के अनुवादक हैं। लेकिन न तो एक मौलिक विचार है उनके पास और न ही वे धार्मिक व्यक्ति हैं। धार्मिक व्यक्ति उस अर्थ में

जैसे कि रमण; धार्मिक व्यक्ति उस अर्थ में जैसे कि कृष्णमूर्ति; तो उस अर्थ में वे बिल्कुल भी धार्मिक नहीं हैं।

उस अर्थ में नहीं हैं!

उसी अर्थ को मैं धार्मिक कहता हूं।

तिरुपति जी का प्रसाद भी लेते हैं!

हां-हां! वे धार्मिक बिल्कुल नहीं हैं। बल्कि मेरी अपनी दृष्टि यह है
कि उनको अगर कहीं भी तौला जा सके, तो वे एक बहुत ही चालाक किस्म के राजनीतिज्ञ हैं। एक पोलिटीशियन से ज्यादा वे नहीं हैं। और वह भी मैं चालाक किस्म के कहता हूं। क्योंकि पोलिटीशियन भी साफ-सुथरा हो और सीधा हो, तो उसमें भी एक बात होती है। वे साफ-सुथरे और सीधे भी नहीं हैं। वे पीछे के रास्तों से राजनीति पर सारी यात्रा किए हैं।
बनारस यूनिवर्सिटी में जब राधाकृष्णन वाइस चांसलर थे, तो राज बहादुर,
वह वहां प्रेसिडेंट था यूनियन का विद्यार्थियों की। तो उसने पीछे एक वक्तव्य में कहा कि जब मैं प्रेसिडेंट था यूनियन का, तो राधाकृष्णन मेरी खुशामद करके और मुझसे कहते थे कि कांग्रेसी नेताओं से मेरी सिफारिश करके आगे मुझे बढ़ाने की कोशिश करो। और डाक्टर लोहिया ने उसका वक्तव्य पार्लियामेंट में भी पेश किया।

इट इ.ज नाट टु बी प्रिंटेड?

नहीं, मैं नहीं कहता। प्रिंट-व्रिंट करो जो करना है, उसमें कोई हर्जा नहीं है। उसमें कोई हर्जा नहीं है। इसमें कोई चिंता की बात नहीं है। राधाकृष्णन को मैं कोई न तो धार्मिक आदमी मानता हूं और न कुछ कोई बड़ा विचारक मानता हूं।

रही विवेकानंद और दयानंद के बारे में।

हां, दयानंद एक बड़े पंडित हैं। और कई अर्थ में मौलिक पंडित हैं, बड़ा मौलिक चिंतन है उनका। लेकिन वे पंडित ही हैं, धार्मिक आदमी नहीं हैं। दयानंद की बजाय विवेकानंद ज्यादा धार्मिक आदमी हैं, मौलिक चिंतक भी हैं।

वह आपके साथ ही एक "संदेश" में एक लेख मैंने देखा है, जिसमें आपका वक्तव्य और विवेकानंद का एक ही हो जाता है। उन्होंने यह कहा था कि देश तमस में गिरा हुआ है और शिष्य, मांस और मछली भी खाओ! क्योंकि देश को रजस-तत्व से जागरूक करना होगा। एक ही हो गया यह।

विवेकानंद मुझे दयानंद से बहुत ज्यादा धार्मिक आदमी मालूम पड़ते हैं। लेकिन कहता हूं बहुत ज्यादा; पूरे धार्मिक नहीं। पूरा धार्मिक आदमी मैं मानता हूं--जैसे रमण को, रामकृष्ण को। ये आदमी जिसको ठीक रिलीजस आदमी कहें, रिलीजस माइंड जिसे कहें, उस तरह के लोग हैं।

मगर वह तो इनएक्शन, केवल थ्रू निगेटिंग एक्शन थ्रूआउट योर लाइफ... ।

हां-हां, बिल्कुल हो सकता है। धार्मिक व्यक्ति की अभिव्यक्तियां बहुत तरह की हो सकती हैं। एक धार्मिक व्यक्ति परिपूर्ण रूप से सक्रिय हो सकता है। एक धार्मिक व्यक्ति परिपूर्ण रूप से निष्क्रिय हो सकता है। लेकिन एक मजे की बात है, दोनों के बीच एक खूबी रहेगीः धार्मिक व्यक्ति अगर परिपूर्ण रूप से सक्रिय है तो भी भीतर से निष्क्रिय होगा; और धार्मिक व्यक्ति अगर बाहर से बिल्कुल निष्क्रिय है तो भी भीतर से परिपूर्ण सक्रिय रहेगा।

मेरे ख्याल से रमण का प्रतिरूप आप हैं, एक्शन को...

यह हो सकता है। मेरी दृष्टि में धार्मिक व्यक्ति की दो स्थितियां हो सकती हैं--या तो उसकी प्रवृत्ति में निवृत्ति होगी या निवृत्ति में उसकी प्रवृत्ति होगी।

गांधी जी का व्यक्ति पर विश्वास था, इसलिए उन्होंने ट्रस्टीशिप का सिद्धांत प्रजा के सामने रखा। और आप जो विरोध कर रहे हैं, इसका मतलब यह नहीं कि आपको व्यक्ति की मानवता पर कोई एतबार नहीं रहा?

मुझे पूरा एतबार है। व्यक्ति की मानवता पर मुझे पूरा एतबार है, व्यक्ति पर मुझे पूरा एतबार है। लेकिन व्यक्ति को, एक व्यक्ति पर एतबार करने से पूरा समाज नहीं बदल जाता है। आप में मुझे एतबार है, आप पर भी मुझे एतबार है, अगर सारे व्यक्ति एक साथ मेरी बात को मान कर बदल जाएं तो समाज बदल जाएगा। लेकिन आप बदल जाते हैं और चालीस करोड़ का समाज का यंत्र नहीं बदलता है। आप पर मुझे एतबार है, एक-एक पर मुझे सब पर एतबार है। लेकिन एक बदलता है और चालीस करोड़ का यंत्र नहीं बदलता है, तो आपकी बदलाहट से कुछ समाज में क्रांति होने वाली नहीं है।
तब फिर जरूरी यह है कि हम एक-एक व्यक्ति के विचार को परसुएड करें, समझाएं-बुझाएं और इस बात के लिए राजी करें कि तुम अकेले मत बदलो, बल्कि समाज के यंत्र को बदलने का सामूहिक प्रयास करो। क्योंकि समूह का जो यंत्र है वह सिर्फ व्यक्ति के हृदय बदल जाने से नहीं बदल जाने वाला, उस यंत्र को भी बदलना पड़ेगा।
जैसे हम यहां इतने लोग बैठे हैं। कंडीशनर चल रहा है, वह एक यंत्र है। बच्चू भाई बदल गए, वे कहते हैं, कंडीशनर नहीं चलना चाहिए। लेकिन हम दस लोग कहते हैं कि कंडीशनर चलना चाहिए। समझे न आप? तो बच्चू भाई क्या कर सकते हैं? बच्चू भाई क्या कर सकते हैं? वह एक यंत्र है, जो हम दस की इच्छा से चल रहा है। बच्चू भाई की भी इच्छा थी, उन्होंने अपनी इच्छा खींच ली, तो बच्चू भाई गिर जाएंगे यंत्र के बाहर; लेकिन यंत्र जारी रहेगा और बच्चू भाई की जगह दूसरा आदमी बैठ जाएगा। उस यंत्र को बदलने के लिए जरूरी है... हम दसों आदमी भी राजी हो जाएं और फिर भी यंत्र को न बदलें, हम दसों भी राजी होकर बैठ गए और यंत्र को न बदलें, तो भी यंत्र जारी रहेगा।

इट इ.ज पासिबल?

इसलिए मैंने कहा कि गांधी जी का वह ट्रस्टी का काम नहीं करेगा। वह गांधी जी की ट्रस्टीशिप की बात व्यक्ति पर विश्वास को जाहिर करती है, लेकिन अवैज्ञानिक है। क्योंकि हम कब किस स्थिति में आकर दुनिया के साढ़े तीन अरब लोगों को राजी करेंगे कि तुम अब व्यक्तिगत संपत्ति छोड़ दो या व्यक्तिगत संपत्ति के ट्रस्टी हो जाओ।
तो मेरा कहना यह है कि हमें व्यक्ति के विचार को राजी करके और समूह के यंत्र की प्रक्रिया को तोड़ना और बदलना पड़ेगा।

आप प्रथम परिवेश बदलने का आदेश देते हो, मगर सामाजिक व्यवस्था का परिवर्तन हुए बिना यह कैसे हो सकता है?

बिल्कुल ठीक कहते हैं।

पहले सामाजिक व्यवस्था या परिवेश? पहले परिवेश या सामाजिक व्यवस्था?

न, ऐसा पहले और पीछे का प्रश्न ही असंगत है, साथ ही है सारा मामला। वह मुर्गी और अंडे जैसा मामला है कि कौन पहले? वह कोई पहले नहीं है। व्यक्ति

का विचार बदलेगा--समाज बदलेगा। समाज बदलेगा--व्यक्ति का विचार बदलेगा। इतने जुड़े हुए हैं ये कि हमें दोनों तरफ प्रयास करना होगा।

विनोबा प्रेरित भूमिदान के संबंध में आपने बताया कि शोषक दान देता है, मगर शोषक नहीं मिट जाता। यह आप कुछ छोटे-मोटे दृष्टांत से जनरलाइज तो नहीं कर रहे हैं?

नहीं, बिल्कुल नहीं कर रहा हूं। एक भी दृष्टांत इसके उलटे मिलना मुश्किल है जो मैं कह रहा हूं। यानी एक भी आदमी ऐसा मिलना मुश्किल है जिसने भूमिदान दिया हो, फिर उसने शोषण का कर्म बंद कर दिया--एक भी! यानी मैं जो कह रहा हूं, शोषण का कर्म बंद कर दिया। कर भी नहीं सकता जीते जी, क्योंकि पूरा समाज शोषण का है। वह आदमी जैसे ही जीएगा यहां, वह शोषण जारी करेगा।

ही इ.ज जस्ट ए कॉग इन ए ग्रेट मशीनरी।

हां, उस बड़ी मशीन में वह कर क्या सकता है? और अगर समझो वह सब कुछ छोड़ देगा, तो वह भिक्षा-पात्र लेकर बैठ जाएगा, सर्वोदय-पात्र लेकर, और शोषण जारी करेगा। वह करेगा क्या? जब शोषण की व्यवस्था चल रही है और आपको उसमें जीना है... ।
हां, एक ही रास्ता है, आप शोषण से बच सकते हैं इस व्यवस्था में कि आप मर जाएं।

सुसाइड?

हां, और कोई रास्ता नहीं है। तो वह आप करेंगे क्या? जयंत भाई को अच्छी लगी मेरी बात और उन्होंने जमीन दान दे दी। फिर जयंत भाई क्या करेंगे? ये कुछ तो करेंगे न इस सोसाइटी में जीने के लिए! ये जो भी करेंगे उसमें शोषण जारी रहेगा। और बहुत संभावना इस बात की है कि जितनी जमीन इन्होंने छोड़ दी है, उसको पैदा करने के लिए तेजी से शोषण करेंगे। क्योंकि इनकी सारी स्थिति डगमगा गई वह छोड़ देने से, उनको फिर वापस पैदा कर लेना पड़ेगा।
तो मैं एकाध-दो उदाहरण के आधार पर नहीं कह रहा हूं। मैं कह रहा हूं कि
वह निरपवाद वैसा है।

प्रोसेस ऑफ बिकमिंग में आपको रस है, इससे हम नई-नई परिस्थिति में प्रवेश पाने का साहस व आनंद ले सकेंगे। मगर हमारे एक्ट्स से जो अनिश्चितताएं भी पैदा साथ में होंगी, पैदा कर लेंगे, उसका क्या?

अनिश्चितता बहुत अच्छी बात है। मेरा कहना है कि निश्चितता जीवन का लक्षण नहीं है। अनिश्चितता, वह जो अनसर्टेनटी है, वह जीवन का तत्व है।

ग्लैमर ऑफ अनसर्टेनटी।

हां, तो वह अनसर्टेनटी इतनी रसपूर्ण है कि वह हमें पैदा करनी चाहिए।

वह मिस्टीक बन जाती है।

हां, बिल्कुल मिस्टीक है। और वह हमें पैदा करनी चाहिए। सच बात तो यह
है कि सिक्योरिटी बिल्कुल फाल्स है, जिंदगी इनसिक्योरिटी है। और उस इनसिक्योरिटी में हम कितना रस ले पाते हैं, इस पर ही हमारी जीवन की कला निर्भर है।

भारतीय मानस व्यक्तिगत चारिष्य के आधार पर स्थगित हो गया है, ऐसा आपने कहा। मगर चारिष्य शिथिल व्यक्ति ने, समझिए कोई चोर और व्यभिचारी ने

कोई सत्य का उच्चारण कर लिया, इससे बेहतर यह नहीं कि चारिष्य संपन्न व्यक्ति के मुख से यदि वही बात निकले तो वह ज्यादा समाज में प्रभाव उत्पादक सिद्ध होगी?

दो बातें हैं। पहली तो बात, किसे हम चरित्र कहते हैं? जो मैंने अभी नैतिकता के बाबत कहा। जिसको आप चरित्रवान कहते हैं, मैं उसे सिर्फ जबरदस्ती बना हुआ चरित्रवान कहता हूं। वह सप्रेस्ड है। जिस-जिस को आप बुरा कहते हैं, उसने अपने भीतर दबा रखा है। वह सब उसके भीतर मौजूद है। वह कहीं चला नहीं गया है। जिसको आप चरित्रवान कहते हैं।
हां, वह सिर्फ, अगर वह अहिंसा उसने साध ली है ऊपर से, तो भीतर उसके हिंसा मौजूद है। ऊपर से क्षमा साध ली है, भीतर क्रोध मौजूद है। क्योंकि आपकी जो प्रक्रिया है चरित्र को पैदा करने की, वह दमन की है। तो चरित्रवान जो व्यक्ति है वह भीतर से उतना ही चरित्रहीन है जितना कि दूसरा चरित्रहीन बाहर से आपको चरित्रहीन दिखाई पड़ रहा है। बल्कि एक मेरी और मान्यता है कि सामान्यतः जिसको हम चरित्रहीन कहते हैं, वह ज्यादा सरल, सीधा और साफ हो सकता है। लेकिन जिसको हम चरित्रवान कहते हैं, वह बहुत कुटिल, जटिल और कनिंग होता है। क्योंकि उसको दोहरे व्यक्तित्वों को सम्हालना पड़ता है पूरे वक्त।

स्प्लिट पर्सनैलिटी है।

हां, स्प्लिट पर्सनैलिटी है। मैं उसको चरित्रवान कहता नहीं। मेरा कहना है कि एक और चरित्र है, जो जीवन की स्पांटेनिटी, जो जीवन की सहजता से निकलता है, जो जीवन को समझने से निकलता है। वैसा जो आदमी है, वह जीवन को समझने की वजह से एक तरह से जीता है, दमन की वजह से नहीं। इस वजह से नहीं कि मोक्ष जाना है, इस वजह से भी नहीं कि लोग अच्छा कहेंगे, रिस्पेक्टबिलिटी उसका कारण नहीं है।
लेकिन जिसको आप चरित्रवान कहते हैं, उसका मौलिक कारण सिर्फ रिस्पेक्टबिलिटी है कि लोग आदर देंगे। अगर लोगों का आदर खिसक जाए तो वह चरित्र उसका खिसक जाएगा। मैं उस व्यक्ति को चरित्रवान कहता हूं, जो न रिस्पेक्टबिलिटी के लिए वैसा कर रहा है, न मोक्ष के लिए, न स्वर्ग के लिए, न पुण्य के लिए; उसे आनंदपूर्ण जो है वह कर रहा है, समझपूर्ण जो है वह कर रहा है। ऐसा व्यक्ति चरित्रवान होगा मेरी दृष्टि में। लेकिन ऐसे व्यक्ति को चरित्रवान होने का दावा भी नहीं होगा। ऐसे व्यक्ति को चरित्रवान होने का अहंकार भी नहीं होगा। ऐसे व्यक्ति को चरित्रवान होने का पता भी नहीं होगा। वह कांशस भी नहीं होगा कि मैं चरित्रवान हूं।

तो गार्ड के लिए वह टिकट लेता है ट्रेन में, ऐसा चरित्रवान होगा तथाकथित।

बिल्कुल ही, उसके लिए ही लेता है, उसके लिए ही लेता है।

अच्छा, महात्मा जी ने राजकरण में धर्म को प्रवेश दिया। आज लोग कहते हैं कि धर्म प्रवचन के निमित्त आपने धर्म में राजकरण का प्रवेश करवाया। एनी कमेंट?

मेरी दृष्टि यह है, मेरी दृष्टि यह है कि जीवन एक समग्रता है। उसे मैं धर्म, राजनीति और शिक्षा, इस तरह तोड़ता नहीं हूं। मेरे लिए जीवन एक अखंडता है! और जो व्यक्ति जीवन की अखंडता को समझने चलेगा, उस व्यक्ति को जीवन के सारे पहलुओं पर सोचना पड़ेगा और सारे पहलुओं पर विचार भी करना पड़ेगा। तो मैं जीवन को खंड-खंड में, वह कंपार्टमेंटलाइज करने के पक्ष में नहीं हूं। मेरे लिए जीवन एक अखंड इकाई है!
और अब तक लेकिन यही किया गया है कि जीवन को खंड-खंड बांट दिया गया है।
एक धार्मिक आदमी है तो वह बस निपट धार्मिक है। उसकी मंदिर तक सीमा है, उसे

जीवन की किसी बात पर नहीं बोलना है। जीवन में राजनीति में जो आदमी खड़ा है, उसे मंदिर से कुछ लेना-देना नहीं है, वह अपनी दुनिया में है। ऐसे हमने टुकड़े-टुकड़े बांटे हैं। इन टुकड़ों से समाज भी स्प्लिट पर्सनैलिटी हो गई है और व्यक्ति भी स्प्लिट पर्सनैलिटी हो गई है। मैं इन सबको इकट्ठा करना चाहता हूं। मेरे लिए यह सवाल ही नहीं है।
गांधीजी के लिए यह सवाल था। क्योंकि गांधीजी यह कहते थे कि मैं एक राजनैतिक व्यक्ति हूं और धार्मिक बनने की कोशिश कर रहा हूं। मैं यह नहीं कहता हूं कि मैं एक धार्मिक व्यक्ति हूं और राजनैतिक बनने की कोशिश कर रहा हूं। मैं यह नहीं कहता हूं। मैं यह कहता हूं कि मैं एक व्यक्ति हूं जो जीवन को उसकी अखंडता में देखना और जीना चाहता हूं। उस अखंडता में जो भी आता है, मुझे स्वीकार है। उस अखंडता में मुझे किसी चीज से इनकार नहीं है।

साधना पथ में आपने कहा हैः कोई भी प्रकार की वासना वासना ही होती है।
यह रमण की दृष्टि-बिंदु से ही मैं कहता हूं, वासना तो वासना ही है। तब आप "जो है" उसको "होना चाहिए" की दिशा में ले जाना चाहते हैं, तो उसमें अभिनिवेशपूर्ण वासना का अंश थोड़ा सा भी है?

जरा भी नहीं है। क्योंकि जो मैं कहता हूं, जो है व्यक्ति, मेरा कहना है, वही हो सकता है, अन्यथा हो ही नहीं सकता। बिकमिंग जो है वह बीइंग से अन्यथा नहीं हो सकती। जो व्यक्ति है, वही हो सकता है। जो फर्क पड़ता है वह सिर्फ बीज और वृक्ष का है। एक बीज है, वह वृक्ष होता है। वृक्ष होता है इसीलिए कि जब वह बीज था तब भी वह छिपे अर्थों में वृक्ष था, सिर्फ अभिव्यक्ति का फर्क पड़ता है। बिकमिंग जो है वह सिर्फ एक्सप्रेशन है।

कृष्णमूर्ति दि फर्स्ट एंड लास्ट फ्रीडम में कहते हैंः दि वेरी आइडिया ऑफ लीडिंग समबडी इ.ज एंटी सोशल एंड एंटी स्प्रिचुअल।

बिल्कुल ही ठीक कहते हैं। बिल्कुल ही ठीक कहते हैं। और न मैं किसी को लीड कर रहा हूं, और न किसी को लीड करने का मेरा ख्याल है। जो मुझे ठीक लगता है उसे उसी तरह कह रहा हूं जैसे कि फूल खिल जाए। उससे ज्यादा प्रयोजन नहीं है।

लेकिन आप जब कमेंट करते हैं, क्रिटिसाइज करते हैं, तब तो लोगों के सामने एक चित्र खड़ा होगा कि यह खराब है और यह ठीक है।

हां, बिल्कुल ही खड़ा होगा। और उस चित्र को...

उसमें लीडिंग का तत्व आता है।

जरा भी नहीं आता। मैं अपनी दृष्टि जाहिर कर रहा हूं। जैसे ही मैं यह कहूं कि मेरी दृष्टि को मान कर चलो, वैसे ही लीडिंग का तत्व आता है। मेरा कुल कहना इतना है... ।

वह तो स्टाइल का सवाल हुआ न।

न-न, स्टाइल का सवाल नहीं है, मेरी दृष्टि का ही पूरा सवाल है। मेरा कहना ही कुल इतना है कि मैंने जो कह दिया... वह तो कृष्णमूर्ति भी अगर लोगों से यह कहते हैं...

हां, वह तो पूछा ही है कि आप गुरु नहीं हैं?

नहीं, अगर यह भी आप लोगों को कहते हैं कि किसी को लीड करना, इसमें भी वासना है, तो यह कहना भी उस अर्थ में लीड करना शुरू हो गया।

महर्षि तो बोलते भी नहीं थे।

न, न, न। तो न बोलें तो भी लीड करना शुरू हो गया।

मौन भी कभी... ।

इससे क्या फर्क पड़ता है, इससे क्या फर्क पड़ता है? आप यह कह रहे हैं कि नहीं बोलना चाहिए। इससे फर्क क्या पड़ता है? असल में जीना अभिव्यक्ति है। यू कैन नाट एक्झिस्ट विदाउट एक्सप्रेशन। तो तुम एक्झिस्ट करोगे, तुम्हारा जो भी एक्सप्रेशन हो! मैं कल चुप होकर बैठ जाऊं एक कोने में, तो भी मैं लीड कर रहा हूं एक अर्थ में। क्योंकि जयंत भाई मेरे पास आएंगे और देखेंगे और कहेंगे कि हां, यह आदमी शांत हो गया चुप बैठने से; हम भी जाएं, चुप बैठें और शांत हो जाएं।
मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न? आप जब तक जीते हैं तो आप अभिव्यक्त करेंगे, कुछ भी करेंगे अभिव्यक्त, आंख बंद कर लेंगे, तो एक आदमी सोचेगा कि आंख बंद कर लेने से मिलता है सत्य, तो आंख बंद कर लेगा। हमारा जीना अभिव्यक्ति है। इसलिए कोई किसी भी तरह से जीए, जब तक वह जीता है, अभिव्यक्त करेगा। इसलिए इसको मैं लीड करना नहीं कहता। मेरा कहना है कि जब वह सचेष्ट, जब वह चेष्टा करके और आपको अनुगमन देने की कोशिश करता है। और कहता है, मेरे पीछे आओ! जो मैं कहता हूं, उसको मानो! जो मैं कहता हूं, वही सत्य है! जो मैं कहता हूं, वैसे ही चल कर तुम कहीं पहुंच सकोगे, नहीं तो नहीं पहुंच सकोगे! तब वह लीड कर रहा है।
मेरा यह काम नहीं है। मेरा काम कुल इतना है कि मुझे जो ठीक लगता है, जो आनंदपूर्ण है, वह मैं कह देता हूं। बात खत्म हो गई। इससे आगे मेरा आपसे कोई संबंध नहीं है।

कल सामाजिक क्रांति पर बोलते हुए आपने बताया कि धूल में लेटने-खेलने वाले सिंहासन को लात मारने की चेष्टा जताने की तकलीफ क्यों उठाते हैं। मेरा मंतव्य यह है कि आपका अभियान धूल-धूसरित लोगों के सामने है। क्या यह भी एक प्रतिक्रियावादी एटिट्यूड नहीं है? रिएक्शनरी एटिट्यूड नहीं है?

मैं समझा नहीं क्या मतलब।

आपने कल बताया कि धूल में लेटने-खेलने वाले सिंहासन को लात मारने की चेष्टा जताने की तकलीफ क्यों उठाते हैं। उनका रिएक्शन है। सिंहासन को लात मारने की बात करते हैं। मेरा मंतव्य यह है कि आपका अभियान धूल-धूसरित लोगों के सामने है।

नहीं, मेरा सबके सामने है। मुझे कोई प्रयोजन नहीं धूल-धूसरित से और महल में रहने वाले से।

आप दृष्टांत जब देते थे, तब सिंहासन वाले को धूल वाला ऐसा बोलता है यहां संतुष्ट रह कर। तो कल जो आप कह रहे थे, इसमें से टोन ऐसा लगता था कि आप धूल-धूसरित लोगों के सामने ऐसा कहते हैं।

जरा भी नहीं, जरा भी नहीं। वह जो दृष्टांत मैं दे रहा था, वह तो सिर्फ मैं यह कह रहा था कि लोग दुख में रह कर सुखी आदमी की तरफ देख कर संतोष पाने के न मालूम कितने उपाय खोजते हैं।
मेरे अभियान के लिए किसी आदमी से उसका कोई संबंध नहीं है, न गरीब से, न अमीर से। आदमी से संबंध है। और अभियान से भी मेरा संबंध कुल इतना है कि मुझे जो ठीक लगता है वह मैं कह देता हूं, क्योंकि कहना मुझे आनंदपूर्ण है। बात खत्म हो गई। उसके पीछे कोई अभियान नहीं है, मिशन जैसी भी कोई बात नहीं है।

अच्छा, आप यह तो कबूल करते होंगे न कि प्रतिक्रिया में सत्य वाष्पीभूत हो जाता है?

बिल्कुल वाष्पीभूत हो जाता है। प्रतिक्रिया में सत्य कभी बचता ही नहीं, क्योंकि प्रतिक्रिया हमेशा दूसरी अति पर चली जाती है। सत्य तो सिर्फ वहीं बचता है, जहां प्रतिक्रिया भी नहीं है और प्रतिगामिता भी नहीं है। जहां चीजें अत्यंत मध्य में हैं, वह जो गोल्डन मीन है, न हम प्रतिगामी हैं और न प्रतिक्रियावादी हैं, न हम किसी चीज को जोर से पकड़ लिए हैं, न जोर से छोड़ना चाहते हैं, हम मध्य में खड़े होकर चीजों को देखते हैं, वहीं सत्य होता है। सत्य सदा मध्य में है, अतियों पर कभी सत्य नहीं है। और प्रतिक्रिया में हमेशा अति हो जाती है।

आपको आचार्य की उपाधि कबूल है। इस लेबल को आप चाहें तो निगेट कर सकते हैं, जिससे भावुक लोग संकीर्ण अर्थ में आपको धार्मिक न समझ लें। अभी आगे ही बात हुई। आपका वेश-परिवेश भी धर्माचार्य की इमेज को पुष्ट करता है, इसलिए मैं कहता हूं।

हां। आचार्य से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है।

आरोपण है?

आरोपण भी क्या है, सिर्फ प्रचलन है। मैं जिस कालेज में प्रोफेसर था,
तो उस इलाके में तो प्रोफेसर को हिंदी में आचार्य कहते हैं।

अध्यापक-प्राध्यापक, ऐसा नहीं कहते?

नहीं!

आचार्य यहां प्रिंसिपल को कहते हैं।

वहां प्रिंसिपल को प्राचार्य कहते हैं। वहां प्रिंसिपल को प्राचार्य कहते हैं और प्रोफेसर को आचार्य कहते हैं। वह उसकी वजह से आचार्य लग गया पीछे। न तो आरोपण है, न उसका कोई सवाल है, वह सिर्फ प्रचलन है। उसे बिल्कुल ही खत्म कर देना चाहिए। उसे खत्म करने का उपाय करना चाहिए। क्योंकि जो आप कहते हैं उससे भ्रम पैदा होता है, उसे खत्म ही कर देना चाहिए।

मौन का महिमा-महत्व समझाने के लिए, एक घंटे तक...

हां, और वेश-परिवेश की बात भी आपकी रह गई है, वह आपकी बात रह गई है। मुझे जो आनंदपूर्ण है वैसा वेश मैं पहनता हूं। मुझे जो आनंदपूर्ण है वैसा ही मुझे पहनना चाहिए। अगर इस डर से मैं पहनूं कि किसको कैसा लगेगा, तब फिर मैं आपकी दृष्टि में अपनी इमेज को देखने की फिक्र कर रहा हूं। मुझे जो आनंदपूर्ण है वह मैं पहनता हूं।

मैं भी खादी पहनता हूं, कांग्रेस में नहीं मानता।

ठीक है, जो आनंदपूर्ण है वह आप पहनेंगे, वही पहनना चाहिए। अगर मैं इस
डर से भी अपने कपड़े बदल दूं कि कहीं मेरे कपड़ों को देख कर कहीं कोई धार्मिक न समझ लेता हो, तब भी मैं आपकी आंख में, आप मुझे क्या समझते हैं, इसकी चिंता कर रहा हूं। मुझे इसकी चिंता नहीं है कि आप क्या समझते हैं।

सार्त्र कहता है न कि दि अदर पीपुल्स लाइफ इ.ज हेल।

है ही, बिल्कुल है ही। बिल्कुल है ही।

मौन का महिमा-महत्व समझाने के लिए एक घंटे तक प्रवचन देना, क्या एक कंट्राडिक्शन नहीं है?

बिल्कुल नहीं है, बिल्कुल नहीं है। क्योंकि मजा ऐसा है कि अगर सफेद लकीर भी खींचनी हो तो हम काले तख्ते पर खींचते हैं। कंट्राडिक्शन नहीं है। बोलने से भी समझाया जा सकता है कि बोलना बेकार है; और पढ़ने से भी जाना जा सकता है कि पढ़ना व्यर्थ है; और चलने से पता चल सकता है कि कहीं चलने से नहीं पहुंचा जाता है।

नये समाज की खोज
सत्रहवां प्रवचन

सफलता नहीं--सुफलता

एक मित्र पूछ रहे हैंः मेरे एक वक्तव्य में मैंने कहा है कि शादी जैसी
आज है, विवाह जैसा आज है, वह विवाह इतना विकृत है कि उस विवाह से गुजर कर मनुष्य के चित्त में विकृति ही आती है, सुकृति नहीं।

यह बात सच है कि विवाह एक अति सामान्य, अति जरूरी स्थिति है। और साधारणतः अगर विवाह वैज्ञानिक हो तो व्यक्ति विवाह के बाद ज्यादा सरल, ज्यादा शांत और सुव्यवस्थित होगा। लेकिन विवाह अगर गलत हो--जैसा कि गलत है--तो विवाह के पहले से भी ज्यादा परेशानियां, अशांतियां और चित्त की रुग्णताएं बढ़ेंगी।
जैसे मेरा कहना है, जो विवाह प्रेम से फलीभूत नहीं हुआ है, ज्योतिषी
से पूछ कर हुआ है, जो विवाह मां-बाप ने तय किया है, स्वयं विवाह करने वालों के प्रेम से नहीं निकला है--वह विवाह विकृत करेगा, सुकृत नहीं करेगा। वह विवाह नई परेशानियों में ले जाएगा बजाय पुरानी परेशानियां हल करने के। और इसलिए सारी दुनिया में विवाह की पूरी की पूरी व्यवस्था रुग्ण हो
गई है, बीमार हो गई है, सड़ गई है। और जब तक हम विवाह की व्यवस्था नहीं बदलते... और भी बहुत बातें हैं, समाज को जो सड़ा रही हैं और पागलपन पैदा कर रही हैं। लेकिन उनमें से बहुत बुनियादी बातों में से एक विवाह है। जब तक हम उसे नहीं बदलते, तब तक परिवार का वह रूप प्रकट नहीं हो सकेगा जो व्यक्ति को शांति देता हो, प्रेम देता हो, आनंद देता हो, गति देता हो, बल देता हो--और सबसे बड़ी बात--जो व्यक्ति के जीवन में अध्यात्म देता हो।
अभी तो जो परिवार है वह रोग देता है, बीमारी देता है, लड़ाई देता है, कलह देता है, अशांति देता है, तनाव देता है। और यह सब भी आदमी झेलने को राजी हो सकता है अगर दो व्यक्तियों के बीच कोई बहुत गहरे प्रेम का संबंध हो। इस सबको झेला जा सकता है। लेकिन अगर बीच में प्रेम का संबंध भी न हो और यह सब झेलना पड़े, तो विवाह व्यक्ति को तोड़ता है, बनाता नहीं। और इसीलिए परिवार को छोड़ कर भागने वाले लोगों की संख्या निरंतर बढ़ती चली गई। चाहे वे संन्यास के नाम से भागते हों, वह परिवार से छुटकारा पाने का उपाय है। चाहे वे अपराध के नाम से भागते हों और जेल में सड़ जाते हों, वह भी परिवार से भागने का उपाय है। चाहे वे समाज-सेवा के नाम से चौबीस घंटे घर के बाहर घूमते हों, वह भी परिवार से भागने का उपाय है।
हजार तरकीब से आदमी परिवार से भागने का उपाय कर रहा है। होना तो यह चाहिए कि परिवार इतना सुखद हो कि सब तरफ से भाग कर आदमी परिवार की शरण में आए। लेकिन हालतें ऐसी हैं कि परिवार से बचने के लिए न मालूम कितने उपाय आदमी करता है। जितने लोग शराब पीते हैं, उसमें अधिक लोग परिवार से, परिवार को भूलने, छुटकारा पाने के लिए। लोग सिनेमाघरों में बैठे हुए हैं, परिवार से छूटने के लिए। लोग पागल तक हो जाते हैं, वह भी एक बचाव है परिवार से छूट जाने के लिए।
अगर परिवार की हम पूरी व्यवस्था देखें, तो परिवार अभी वैज्ञानिक नहीं है, किसी भी दृष्टि से वैज्ञानिक नहीं है। और इसलिए मैंने कहा कि हमें परिवार पूरा का पूरा बदलना पड़े, आमूल क्रांति परिवार में जरूरी है, तो ही मनुष्य को स्वस्थ, शांत और सरल बनाया जा सकता है। नहीं तो परिवार उसको विकृत किए दे रहा है। और पता भी नहीं चल रहा है, क्योंकि परिवार हमें इस तरह स्वीकृत हो गया है कि हम सोचते हैं परिवार कोई प्राकृतिक व्यवस्था है। जो कि सरासर झूठ है। परिवार बिल्कुल मनुष्य की ईजाद है। और जो भी चीजें मनुष्य की ईजाद हों उनमें सुधार हो सकते हैं, होने चाहिए। कोई भी... परिवार कोई ऐसी चीज नहीं है जो कि नैसर्गिक है, इसलिए परिवार बहुत प्रकार के हो सकते हैं।
जैसे उदाहरण के लिए आपको कहूं, अब तक तो हम यही समझते रहे हैं कि बच्चों को मां-बाप के साथ पाला जाना चाहिए। हम यह भी सोचते रहे हैं कि

बच्चे अगर मां-बाप के पास नहीं पलेंगे तो उन्हें प्रेम नहीं मिलेगा। हम यह भी सोचते रहे हैं कि बच्चे अगर मां-बाप से दूर पाले जाएंगे तो उनके बीच कभी प्रेम का संबंध विकसित नहीं होगा। यह सरासर ही गलत और व्यर्थ बात है। इजरायल में उन्होंने नया प्रयोग किया है--बच्चों को परिवार से अलग पालने का। और परिणाम बिल्कुल उलटे हुए हैं। हमारे बच्चे मां-बाप के साथ पलने के बाद मां-बाप के प्रति प्रेम नहीं सीखते, बहुत बुनियाद में घृणा सीखते हैं, बगावत सीखते हैं, मां-बाप के प्रति क्रोध सीखते हैं। और यही सारा का सारा क्रोध जब मां-बाप बूढ़े होते हैं और बच्चे ताकतवर होते हैं, जब परिवार का पांसा पलट जाता है, क्योंकि बचपन में बच्चे कमजोर होते हैं, मां- बाप ताकतवर होते हैं; बुढ़ापे में बच्चे ताकतवर हो जाते हैं, मां-बाप कमजोर हो जाते हैं; तो बचपन में जो-जो पीड़ा उन्होंने मां-बाप से सही है, उसका बदला लेना बुढ़ापे में वे शुरू करते हैं। फिर मां-बाप चिल्लाते हैं और कहते हैं कि बच्चे हमें सता रहे हैं। हम कमजोर हो गए, बूढ़े हो गए, हमारी न सेवा की जा रही है, न फिकर की जा रही है। लेकिन कोई भी नहीं सोचता कि बच्चे क्यों सता रहे हैं मां-बाप को! कहीं ऐसा तो नहीं है कि मां-बाप ने बचपन में सताया हो? कहीं यह उसका बदला तो नहीं है, यह उसका प्रतिकार तो नहीं है?
और मनोवैज्ञानिक कहेंगे कि उसका प्रतिकार है, बिलेटेड रिवेंज है, जो
कि उनके भीतर इकट्ठा होता चला गया। अगर मां-बाप के साथ बच्चों को पालना है तो यह होगा, क्योंकि मां-बाप उनको शिक्षा भी देंगे, कुछ काम करने से भी रोकेंगे, जरूरी भी होगा रोकना, डांटेंगे, डपटेंगे, मारेंगे-पीटेंगे, समझाएंगे-बुझाएंगे। तो इन सारी प्रक्रिया के बीच गुजर कर बच्चे का प्रेम तो बातचीत रह जाती है और मां-बाप के प्रति क्रोध असलियत हो जाती है।
अभी इजरायल में उन्होंने नया प्रयोग किया कि बच्चे को, जैसे ही वह थोड़ा सा हुआ बड़ा, छह महीने का, तो उसको नर्सरी में ले जाएंगे; मां उसे दूध पिलाने जाएगी दिन में चार-छह बार, लेकिन सप्ताह में एक दिन से ज्यादा वह बच्चे को घर नहीं ला सकेगी। फिर जैसे ही बच्चा और बड़ा होने लगेगा, वैसे ही पूरे दिन भी घर नहीं रह सकेगा। कभी सप्ताह में दो सप्ताह में आएगा घंटे, दो घंटे घर खेलने, मिलने-जुलने। मां मिलने जाएगी, पिता मिलने जाएगा।
तो पहले यह सोचा था कि इसमें तो मां-बाप और बच्चे के बीच प्रेम कम हो जाएगा। लेकिन अनुभव यह हुआ कि चूंकि बच्चा सिर्फ मां के सुखद रूप को ही देखता है, कभी दुखद रूप को देखता ही नहीं। क्योंकि घंटे भर के लिए बच्चा घर आएगा तो मां मारेगी उसको, डांटेगी--यह तो असंभव है। वह उसे प्रेम ही करेगी। तो बच्चा चूंकि प्रेमपूर्ण रूप को ही देखता है। अठारह-बीस साल का होकर जब वह यूनिवर्सिटी से बाहर आएगा, तो मां उसे सिवाय प्रेम की प्रतिमा के और कुछ भी नहीं है। यह बच्चा मां को बुढ़ापे में कभी भी नहीं सता सकता, यह असंभावना हो गई।
लेकिन ये नये प्रयोग हैं। मेरा कहना यह है कि जरूरी नहीं है कि हम ऐसा करें। मेरा कहना यह है, लेकिन परिवार जैसा है वह विचारणीय हो गया है और बहुत से नये प्रयोग करने जरूरी हो गए हैं। और इतने नये प्रयोग अगर नहीं किए जाते तो परिवार, जिसको हम समझते हैं हमारे समाज का आधार है, वही हमारे समाज को सड़ाने का बुनियादी रूप हो गया है।
और हमें यह भी... हमें ख्याल ही नहीं है कि परिवार की कितनी कुरूपता है, कि वह किस तरह के आदमी पैदा करता है। ये जो हम चारों तरफ देख रहे हैं कि लोग पैदा हुए हैं, ये परिवार से पैदा हुए हैं। न तो ये ठीक से शिक्षित होते हैं। क्योंकि इनकी शिक्षा अनिवार्य रूप से मां-बाप जो जानते हैं, जो समझते हैं, उनके दिमाग में डाल देते हैं। अब वे कहते हैं इस वक्त कि मां-बाप से बच्चों को बचाया जाना सबसे जरूरी बात है।
अब जैसे उदाहरण के लिए मैं कुछ बात कहूं। हिंदुस्तान के बच्चे अगर नर्सरीज में पाले जा सकें, तो उन बच्चों का भविष्य बहुत और होगा। मां-बाप के पास पलता हुआ बच्चा, अगर मुसलमान मां-बाप हैं तो बच्चे को मुसलमान बना देते हैं। और जो रोग मुसलमान के साथ जुड़ा था वह जुड़ा रहेगा। मां-बाप हिंदू हैं तो बच्चे को हिंदू बना देते हैं। अगर बच्चों को हम सामूहिक तल पर पाल सकें, तो बीस साल में हिंदुस्तान में न कोई हिंदू होगा, न कोई मुसलमान, न कोई ईसाई, न कोई जैन; सीधा मनुष्य होगा। और वे बच्चे जो कि साथ पलेंगे और

जिनके दिमाग में हिंदू-मुसलमान बिठाने वाली कोई तरकीब जारी नहीं की जाएगी, वे बच्चे एक ऐसी दुनिया बनाएंगे जिसमें झगड़े कम होंगे, पाकिस्तान-हिंदुस्तान के होने की जरूरत नहीं होगी। मंदिर और मस्जिद के झगड़े की जरूरत नहीं होगी।
लेकिन जब तक मां-बाप के पास बच्चे पल रहे हैं तब तक आप नहीं बचा सकते। मां-बाप मुसलमान हैं तो मुसलमान बना जाएंगे, हिंदू हैं तो हिंदू बना देंगे। और इतने बचपन से बनाएंगे कि बच्चे को पता ही नहीं चलेगा कि वह कब मुसलमान बन गया और कब हिंदू बन गया। और पुराने सब झगड़े उसके दिमाग में फिर डाल दिए जाएंगे।
यह तो सारा का सारा परिवार जैसा है वह इस योग्य नहीं है कि बचाया जाए।
लेकिन दूसरा विकल्प जब तक न हो तब तक हम प्रयोग भी नहीं कर सकते। तो अभी तो मैं चाहता हूं कि जीवन की प्रत्येक स्थिति पर पुनर्विचार हो, हम सोचें।
मैं यह नहीं कहता कि जो मैं कहता हूं वही मान लें। वह गलत भी हो सकता है।
लेकिन हम सोचना शुरू कर दें।
अब जैसे परिवार जैसी चीज पर सोचना ही बंद है। हमने मान ही लिया है कि जैसा परिवार है बस यही ठीक है, यही हो सकता है। हमने परिवार को कोई प्राकृतिक चीज बना ली है। वह प्राकृतिक चीज नहीं है, वह सिर्फ हजारों साल से चलने वाली चीज है। और दुनिया में सब जगह एक सा परिवार भी नहीं है, अलग-अलग ढंग के परिवार हैं, सब ढंग के परिवार चल रहे हैं।
अब हमें सोच कर फिर से व्यवस्था देनी चाहिए कि परिवार कैसा हो। इसलिए मैंने वह बात कही है। परिवार रोग ला रहा है, क्योंकि परिवार सड़ गया है, वह स्वस्थ नहीं कर रहा है।

दूसरे मित्र पूछते हैंः सफल जीवन यानी क्या?

पहली तो बात यह है कि जीवन हो तो सफल ही होता है। जीवन न हो तो असफल होता है। और जीवन नहीं है। जिंदा हैं हम, जीवन तो है ही नहीं। जिंदा भर रहना एक बात है--श्वास चलती है, खाना खाते हैं, सोते हैं, उठते हैं--तो जिंदा हैं, मरे हुए नहीं हैं। लेकिन जिंदा होना काफी नहीं है जीवन के लिए। जीवन का मतलब हैः जीवन, जिंदा होने की सारी शक्तियां, किसी ऐसी दिशा में समर्पित हो जाएं, जहां से संगीत आता है, जहां से प्रेम आता है, जहां से आनंद आता है, जहां से शांति आती है।
यह भी हो सकता है कि जीवन की सारी शक्तियां ऐसी दिशा में समर्पित हो जाएं, जहां से क्रोध आता है, घृणा आती है, जहां से दुख आता है, उदासी आती है।
जीवन एक अवसर है; हम किस दिशा में उसको संलग्न करते हैं, उस पर निर्भर करेगा। उस पर निर्भर करेगा कि जीवन जीवन बना कि सिर्फ जीना ही रह गया।
अधिक लोगों का जीना ही रह जाता है।
बुद्ध के पास एक भिक्षु गया, उसकी उम्र कोई सत्तर वर्ष रही होगी। बुद्ध ने उससे पूछा कि भिक्षु, तेरी उम्र क्या है? उस भिक्षु ने कहा, केवल चार वर्ष। बुद्ध ने कहा, तू पागल हो गया? चार वर्ष तेरी उम्र! तू कम से कम सत्तर वर्ष का मालूम होता है। उस भिक्षु ने कहा कि भगवन, चार वर्ष से ही मुझे जीवन की सुगंध मिली है। उसके पहले मैं जिंदा था, उसको मैं उम्र में गिनती नहीं करता हूं। सिर्फ गुजारा समय, पसार किया। इधर चार वर्ष से मैंने जीवन का रस पाया। तो मैं अपनी चार वर्ष की ही गिनती करता हूं। बाकी सब सपने में बीता, जैसे नींद में बीता हो। तो बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा कि भिक्षुओ, तुम भी अपनी उम्र अब इसी तरह से गिनना। यह आदमी उम्र का ठीक हिसाब रखता है।
कहां से जीवन की सुगंध मिलती है, उस दिन से उम्र शुरू होती है। लेकिन
कई बार तो ऐसा होता है, मौत आ जाती है और उम्र शुरू नहीं होती, क्योंकि जीवन की सुगंध ही नहीं मिलती। बहुत लोग मर जाते हैं तभी उन्हें पता चलता है कि वे जिंदा थे। उसके पहले पता ही नहीं चलता कि जिंदगी क्या थी।
हां, एक ऊपर का क्रम है, वह हम सबको पता चलता है। लेकिन वही नहीं है, वही नहीं है। भीतर जीवन का जो मूल स्रोत है, उससे संबंधित हुए बिना कभी पता नहीं चलता। और उससे जैसे ही कोई संबंधित होगा वैसे ही शांति बढ़ेगी।

जैसे कोई बगीचे की तरफ जाए। बगीचा दूर हो सही। या समुद्र की तरफ आए। समुद्र दूर हो, न दिखाई पड़ता हो सही। लेकिन जैसे-जैसे समुद्र के पास आने लगा--हवा ठंडी होने लगेगी, मन ताजा होने लगेगा। बगीचे के पास आकर सुगंध आने लगेगी। अभी बगीचा नहीं आ गया, लेकिन सुगंध हवाओं में आने लगेगी और लगने लगेगा कि हम बगीचे के करीब होते चले जा रहे हैं।
जिंदगी में जितना रस मालूम हो, जितना आनंद मालूम हो, जितना संगीत मालूम हो, जितनी सुगंध मालूम हो, ऐसा लगे कि जीना एक अदभुत घटना है, एक-एक श्वास लेना सुख मालूम पड़ने लगे, तो समझना कि जीवन के बगीचे के करीब आने लगे। ये लक्षण हैं कि हम करीब आने लगे जीवन के। और जीवन एक बोझ लगे, भारी, ऐसा लगे जैसे ढो रहे हैं, एक उदासी, एक बोरडम मालूम हो, एक ऊब मालूम हो। और ऐसा लगे कि कब मर जाएं, भगवान कब उठा ले! और ऐसा लगे कि मोक्ष कब मिल जाए, जीवन से छुटकारा कब हो जाए! और ऐसा लगे कि आवागमन से कैसे छूटें, कैसे छूटें! कहां भेज दिया इस दुनिया में, कब इससे छुटकारा हो! तो समझना चाहिए कि हम जीवन के केंद्र से दूर जा रहे हैं। तब ये लक्षण प्रकट होने शुरू हो जाते हैं।
तो पहले तो यह सोच लेना चाहिए कि हमारी जिंदगी कहां खड़ी है? कैसी है?
हम कह सकते हैं कि जिंदगी एक आनंद है? अगर कह सकते हैं तो हम ठीक दिशा में हैं। अगर हमें लगता है कि नहीं, हम यह नहीं कह सकते ईमानदारी से, कहना पड़ेगा कि जिंदगी एक दुख है, तो समझना चाहिए हम गलत दिशा में चल रहे हैं। और सफलता का क्या मतलब है? सफलता का मतलब है कि जिंदगी आनंद बनती चली जाए। असफलता का मतलब है जिंदगी दुख बनती चली जाए। तब यह भी हो सकता है कि जिसको लोग सफल कहते हैं, वह सफल न हो; और यह भी हो सकता है कि जिसको लोग असफल कहते हैं, वह सफल हो।
एक आदमी राष्ट्रपति हो जाए, और लोग कहेंगे कि सफल हो गई इसकी जिंदगी।
और हो सकता है जिंदगी दुख हो गई हो, आनंद से क्षीण हो गई हो। तो लोग कहेंगे सफल हो गई; मैं नहीं कहूंगा सफल हो गई। इसलिए कई बार मुझे लगता है कि सफलता की जगह हमें एक नया शब्द गढ़ लेना चाहिएः सुफलता। सफल होना काफी नहीं है। यानी जिंदगी में फल लग गए, यह काफी नहीं है, क्योंकि फल कड़वे भी लग सकते हैं। फल लग जाना ही... सफलता का मतलब होता हैः जिंदगी में फल लग गए। सुफलता का मतलब हैः जिंदगी में वे फल लग गए जो आनंद देते हैं, जो मीठे हैं, जो अमृत के हैं। इसलिए सफलता शब्द का मूल्य कम कर देना चाहिए, सुफलता शब्द का मूल्य बढ़ाना चाहिए। आदमी को सुफल होना चाहिए। भला एक फल लगे, न लगें हजार फल। भला ऐसा फल लगे कि किसी को दिखाई न पड़े, खुद को ही दिखाई पड़े।
लेकिन अभी क्या हुआ है, दुनिया सफलता को बहुत मूल्य देती है। बस एक आदमी--सफलता का मतलब--बड़ा मकान बना ले, बड़े पद पर पहुंच जाए, आगे खड़ा हो जाए। और चाहे वहां कुछ भी न मिले।
मैंने एक कहानी सुनी है। एक अस्पताल है। और उस अस्पताल में कोई पचास ऐसे मरीज हैं जिनके बचने की कोई उम्मीद नहीं, वह वार्ड ऐसे मरीजों का है जहां कोई बचता नहीं। जब कोई मरने के करीब आ जाता है तो उस वार्ड में ले आते हैं। दरवाजे के पास नंबर एक का बिस्तर है। और बाकी सब बिस्तर दरवाजे से दूर हैं, किसी को बाहर नहीं दिखाई पड़ता कि क्या है।
तो दरवाजे पर नंबर एक बिस्तर का जो मरीज है, वह कभी-कभी बैठ कर टिक कर बैठ जाता है अपने तकियों से और कहता है कि सुबह निकल आई है, सूरज की किरणें निकल रही हैं, फूल खिल गए हैं, पक्षी गीत गा रहे हैं। सारे पूरे के पूरे पचास जो मरीज हैं वे कुढ़ जाते हैं कि हमारा नंबर एक का बिस्तर क्यों नहीं है! हम यहां कहां पड़े हुए हैं! यह आदमी कब मरेगा! वे सब यह सोचते हैं कि यह मर जाए तो हम इसकी जगह पहुंच जाएं।
फिर उसको जोर का हार्ट अटैक आता है, तो सारे के सारे मरीज यही सोचते हैं कि अब यह मरेगा और हम कोशिश करें तो नंबर एक का बिस्तर हमको मिल सकता है। वे सब डाक्टर की खुशामद और नर्सों की खुशामदें करने लगते हैं और पूछने लगते हैं कि वह मरीज कब मर जाएगा।
लेकिन वह मरीज भी एक ही है। हार्ट अटैक आया और चला गया, वह फिर बच गया।
और जैसे ही उसने आंख खोली, उसने कहा, अहा! कैसा चांद निकला हुआ है! रातरानी

के फूल खिल गए हैं, सुगंध आती है। सुनते हो! और फिर आग लग गई सबके दिल में कि नंबर एक का मरीज जान लिए ले रहा है।
फिर उसको दूसरा अटैक आता है, तीसरा अटैक आता है। और सारे मरीज सोचते हैं कि कब मरे, कब मरे, कि हम पहुंचें उसकी जगह। वे सब अपंग हैं, कोई उठ नहीं सकता, दरवाजे पर कोई जा नहीं सकता। और वह अकेला, दरवाजे पर है उसकी खाट। और वह दरवाजे के बाहर देख सकता है। सूरज भी देखता है; फूल खिलते हैं, वह भी देखता है; पक्षी गीत गाते हैं, वह भी उसको ही सुनाई पड़ते हैं।
फिर तीसरा अटैक आया और वह आदमी मर गया। फिर बड़ी दौड़ मच गई, सबने खुशामद की, फिर एक आदमी को उसका बिस्तर मिल गया। वह आदमी जाकर वहां बैठा--वहां न फूल थे, न कोई बगिया थी, न वहां चांद दिखाई पड़ता था, न वहां सूरज दिखाई पड़ता था; वहां तो कुछ भी नहीं था। लेकिन उस आदमी ने सोचा कि अगर मैं यह कहूं कि यहां कुछ भी नहीं, तो लोग कहेंगे कि मूरख बन गया मैं, इतनी खुशामद की और नंबर एक किस मुश्किल से आ पाया। वह आदमी भी कहने लगाः अहा, कैसे फूल खिले हैं! कैसा सुंदर बगीचा है! धन्य हो गए मेरे भाग्य!
वह सारा अस्पताल फिर सोचने लगा कि कब मरे यह, तो हम इसकी जगह पहुंच जाएं। और ऐसा ही चलता है उस अस्पताल में! एक मरीज के बाद दूसरा मरीज मरता है, और खुशामद करके आदमी नंबर एक पर पहुंचता है, वहां देखता है कि कुछ भी नहीं! लेकिन जो पहुंच जाता है, बाकी मरीज कहते हैं, सफल हो गया। वह सफल हो गया, हम असफल हो गए।
एक आदमी राष्ट्रपति बन जाता है। वह कहता है, अहा! कैसा आनंद आ रहा है। धेला भर आनंद नहीं किसी राष्ट्रपति को कभी आया है; और आ भी नहीं सकता। लेकिन नंबर एक का मरीज है वह, वह खाट पर बैठा है, वह बड़ी मुश्किल से धक्के दे-दे कर वहां पहुंचा है। अब वह बेवकूफ नहीं बनना चाहता, अब वह यह नहीं कहना चाहता कि यहां कुछ भी नहीं है। नहीं तो जिंदगी भर की दौड़ व्यर्थ हो गई। और वह रस जगा रहा है दूसरों में कि तुम भी इसी तरह कोशिश करो। और ये लोग भी पहुंचेंगे। और ये भी उस जगह जाकर यही कहेंगे, अहा! बहुत आनंद आ रहा है। लेकिन न रात नींद है, न दिन चैन है, न कोई शांति है, न कोई आनंद है। तब बस वह पहले होने का--कि हम आ गए वहां जहां दूसरे नहीं आ पाए। वहां क्या है, यह कोई भी नहीं पूछता, कि वहां मिल क्या गया है जो दूसरों को नहीं मिल पाया? सफलता का मूल्य नहीं है बड़ा, सफलता बहुत बाहरी चीज है, एकदम व्यर्थ। सुफल होने की फिकर करनी चाहिए। और सुफलता बहुत भीतरी बात है और सफलता बहुत बाहरी बात है। जीवन सुफल हो जाता है जो निरंतर आनंद और शांति की तरफ... एक ही सूत्र समझ लें कि जीवन में जितना आनंद बढ़ता जाए, उतने हम सुफल हो रहे हैं; और जीवन में जितना दुख बढ़ता जाए, उतने हम असुफल हो रहे हैं। जिनको हम सफल लोग कहते हैं, वे इस अर्थ में असफल सिद्ध होंगे; और कई बार जिनको हम असफल कहते हैं, वे सफल सिद्ध होंगे।
सिकंदर हिंदुस्तान आया। तो रास्ते में एक फकीर से वह मिलने गया था।
वह फकीर एक बहुत अदभुत आदमी था, डायोजनीज। सिकंदर को उसके मित्रों ने खबर दी कि डायोजनीज का निवास पास में ही है। सिकंदर ने कहा, फिर उसे देखना पड़ेगा, मैंने उसकी बड़ी खबरें सुनी हैं। मैंने सुना है कि बड़ा अदभुत आदमी है। और कई बार तो मैंने ऐसा भी सोचा कि भगवान दुबारा अगर मुझे पैदा करे, तो अब की बार डायोजनीज बना देना। उसकी ऐसी खबरें थीं, ऐसा आदमी था। एक पात्र भी हाथ में नहीं रखता था। आखिरी में एक पात्र बचा था, एक दिन उसने एक जानवर को नदी में से पानी पीते देखा, उसने पात्र भी फेंक दिया। और उसने कहा कि क्या मैं जानवर से भी कमजोर हूं कि पात्र ढोता फिरूं! वह पात्र भी फेंक दिया, कि अब मैं पूरा स्वतंत्र हो गया।
उसकी बड़ी कथाएं थीं। तो सिकंदर उससे मिलने गया। जब मिलने गया तो सुबह
का वक्त था, ठंड के दिन थे, वह धूप ले रहा था बाहर नंगा लेटा हुआ। झोपड़ा- वोपड़ा नहीं था, सिर्फ एक गोल पोंगरा था, कचरा जिसमें रखा जाता है। कचरा फेंकने का पोंगरा था, वह उठा लाया था। उस पोंगरे को धक्के देकर एक गांव से दूसरे गांव में उसके मित्र पहुंचा देते थे। वह उसी में सो जाता था। उसी में गांव के कुत्ते भी सोते थे, उसमें जिसको सोना हो वह सो सकता था। उसी में वह बैठ कर खाना खा लेता था। उसके हाथ में, खाने में से कुत्ते भी खाना खा लेते थे, ऐसा वह आदमी था।

वह नंगा लेटा हुआ था बाहर। सिकंदर उसके पास गया और कहा कि मैं बहुत खुश हूं डायोजनीज, तुम्हारी बड़ी कथाएं मैंने सुनी हैं। मुझे पता नहीं, मैं तो सोचता हूं, जब तक दुनिया न जीत लूंगा तब तक बादशाह नहीं हो सकता। लेकिन मैंने सुना है, तुम्हारे पास कुछ भी नहीं और तुम बादशाह हो! मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूं? उसने कहा, थोड़ा हट कर खड़े हो जाओ। धूप आती थी, वह तुम छीन रहे हो मुझसे। इतना ही तुम कर दो, काफी है। इतना तुम कर दो तो तुम्हारी बड़ी कृपा है, जरा हट कर खड़े हो जाओ। वह लेटा ही रहा, उठा भी नहीं।
सिकंदर ने कहा, तुम उठोगे नहीं? उसने कहा, किसके लिए उठूं? कोई आए तो उसके लिए उठूं!
सिकंदर ने कहा, अरे पागल! मैं आया हूं, महान सिकंदर। उसने कहा, तुम्हारी मैं गिनती नहीं करता, क्योंकि तुम उस दौड़ में हो जिसके आगे कुछ भी नहीं। तुम्हारी मैं गिनती भी नहीं करता आदमियों में। तुम उस दौड़ में लगे हो जहां पहुंच कर कुछ भी नहीं मिलता। तुम पागल हो! किसलिए दौड़ रहे हो? सिकंदर ने कहा, इसलिए दौड़ रहा हूं कि सारी दुनिया जीत लूं। उसने कहा, फिर क्या करोगे? सिकंदर ने कहा कि फिर आराम करूंगा।
वह खूब खिलखिला कर हंसने लगा। उसने कहा, पागल हो! सारी दुनिया जीत कर आखिर आराम ही करना है न! आ जाओ, हमारे पास जमीन काफी है--यहीं तुम भी लेट जाओ और आराम करो, हम आराम कर रहे हैं।
उसने कहा कि मैं आराम कर ही रहा हूं! इतनी दौड़-धूप के बाद अगर आराम ही करना है, तो तुम बिल्कुल पागल हो। यानी इस दौड़ने से आराम का कोई अनिवार्य संबंध नहीं है, क्योंकि मैं कर रहा हूं बिना दौड़े। और जगह काफी है, तुम देखते हो कि मेरे इस पोंगरे में भी जगह काफी है। तुम भी समा जाओगे। आ जाओ! सिकंदर ने कहा, तुम्हारा निमंत्रण तो स्वीकार करने जैसा है, लेकिन मेरी इतनी हिम्मत नहीं। अब तो मैं निकल पड़ा हूं यात्रा पर, एकदम कैसे बीच से लौट सकता हूं! तो उस डायोजनीज ने कहा, याद रखना! एक दिन बीच से ही लौटना पड़ता है, कभी कोई यात्रा पूरी नहीं होती!
और यही हुआ। सिकंदर आया, हिंदुस्तान से लौटते में मर गया रास्ते में। वापस नहीं लौट पाया अलेक्जेंडेरिया तक। वापस नहीं लौटा, बीच में मर गया। और यह उसने कहा था डायोजनीज ने कि सब यात्राएं बीच में टूट जाती हैं, कहीं कोई यात्रा पूरी नहीं होती।
और तब एक बहुत महीन कहानी चल पड़ी यूनान में। क्योंकि संयोग की बात, उसी दिन डायोजनीज भी मरा, जिस दिन सिकंदर मरा। तो एक कहानी चल पड़ी कि दोनों वैतरणी पार करते वक्त मिल गए। मर चुके हैं, स्वर्ग जाते हैं, वैतरणी पर मिल गए। सिकंदर आगे है, वह घंटे भर पहले मरा था। और उसके पीछे डायोजनीज है वैतरणी पर। और खिलखिला कर हंस रहा है डायोजनीज। और सिकंदर बहुत शर्माने लगा, क्योंकि अब सब कपड़े छिन गए थे। जब गया था उसके पास तो रोब-दाब में था, अब तो नंगा था। और वह अब भी रोब-दाब में था, क्योंकि वह पहले ही नंगा था, उसको कोई कपड़े-वपड़े का सवाल नहीं था। बहुत डरा पीछे कि वह क्या कहेगा! फिर उसने हिम्मत जुटा कर सिकंदर ने कुछ बात करनी चाही, जिसमें कि डरूं न एकदम। तो उसने कहा, अच्छा-अच्छा, डायोजनीज मालूम होते हो।
तो डायोजनीज ने कहा, हां, क्योंकि हमारी कोई ऐसी पहचान नहीं जो कोई छीन सके। तुम तो अब कुछ भी नहीं मालूम होते, क्योंकि तुम्हारी सब पहचानें छिन गईं। कहां गए वे कपड़े? कहां गए वे जिरह-बख्तर? कहां गए वे मुकुट? कहां हैं वे सब चीजें जिन पर तुम इतराते थे? और हमारी तो कोई पहचान ही न थी, सो हम पहचाने ही जाएंगे। हमसे छीनने को मौत के लिए कुछ भी न था। हम वह सब पहले फेंक दिए थे जो मौत छीन सकती थी। हम पहले से खालिस वही थे जो भगवान के सामने खड़े होंगे। अब तुम बड़े बेढंग मालूम पड़ रहे हो और तुमको खुद भी बड़ा नंगा-नंगापन लग रहा होगा। वे सब चीजें कहां हैं?
सिकंदर ने फिर भी हिम्मत जुटाने की बात की और कहा कि ठीक है, बहुत मजा आया मिल कर। और उस बार भी बहुत मजा आया था। दुनिया में यह बात याद रहेगी कि सिकंदर जैसा महान बादशाह डायोजनीज जैसे महान भिखमंगे से मिला था।
वह डायोजनीज हंसने लगा और उसने कहा कि वह तो याद रहेगी। और आज भी देवता देखते होंगे तो सोचते होंगे कि एक सम्राट एक भिखमंगे से मिल रहा है। लेकिन थोड़ी तुम भूल कर रहे हो इस बात को समझने में कि कौन सम्राट है और कौन

भिखमंगा है। सम्राट पीछे है, भिखमंगा आगे है--डायोजनीज ने कहा--क्योंकि मेरे पास कुछ भी नहीं था जो कोई छीन सके और मैंने वह आनंद पा लिया जो जीवन है। और तुम वह सब गवां कर लौट रहे हो। क्योंकि तुमने आनंद की दिशा में एक कदम भी नहीं उठाया। और तुमने जिन दिशाओं में कदम उठाए, वे सब छूट गईं, वे सब व्यर्थ हो गईं।
सफलता का मतलब तौलने का ध्यान रहे, तो वह आंतरिक आनंद और सुगंध से तौलना--जिस दिन जीवन में बढ़ता चला जाए, समझना कि वह सफल हो रहा है।
यह जो तुम पूछते हो कि एक सामाजिक कार्यकर्ता कैसे आध्यात्मिक जीवन में जाए?
यह कोई सवाल सामाजिक कार्यकर्ता और न सामाजिक कार्यकर्ता का नहीं है आध्यात्मिक जीवन में जाने का। आध्यात्मिक जीवन में जाने का सवाल सबके लिए समान है, चाहे कोई सामाजिक कार्यकर्ता हो या न हो। हम कहीं जाकर किसी डाक्टर से पूछते हैं कि मैं एक सामाजिक कार्यकर्ता हूं तो मेरी टी.बी. का इलाज क्या है। वह कहेगा, टी.बी. का इलाज होता है, सामाजिक कार्यकर्ता से क्या लेना-देना है! और तुम सामाजिक कार्यकर्ता हो या नहीं हो, इससे इलाज में कोई फर्क नहीं पड़ता।
तो पहली तो बात यह समझ लेना चाहिए कि आध्यात्मिक जीवन का इससे कोई संबंध नहीं है कि आप क्या करते हैं। आप क्या करते हैं--शिक्षक हैं, कि दुकानदार हैं, कि कौन हैं या कौन नहीं हैं--इससे कोई भी संबंध नहीं है कि आप क्या करते हैं। आध्यात्मिक जीवन का संबंध इस बात से है कि आप क्या हैं। क्या करते हैं से नहीं, आपकी डूइंग से नहीं; आपकी बीइंग से। आप क्या करते हैं, यह गौण बात है। असली बात यह है कि आप क्या हैं? वह जो करने के बीच आप हैं, वह क्या है? वही सवाल है।
तो मैंने जैसा कहा कि अगर आप सामाजिक कार्यकर्ता हैं तो ठीक है। लेकिन सामाजिक कार्यकर्ता होने के बीच आप क्या हैं? आनंदित हैं? प्रफुल्लित हैं? शांत हैं? तब तो ठीक। तो आपके आनंदित चित्त से सामाजिक काम भी निकलेगा, वह भी सुखद होगा, वह भी दूसरों के लिए मंगलदायी होगा। और अगर आप दुखी हैं और सामाजिक काम सिर्फ इसलिए चुन लिया है कि उसमें दुख भूला रहता है, तो आपसे जो भी काम निकलेगा वह दूसरों के लिए अहितकर होगा, अमंगलदायी होगा। क्योंकि मेरी समझ यह है कि जो खुद आनंद में नहीं है, वह कुछ भी ऐसा नहीं कर सकता जिससे किसी को आनंद मिल सके। यह असंभव है। क्योंकि हमारे पास जो है वही हम दूसरों को दे सकते हैं।
इस भूल में कभी कोई न पड़े कि मैं दुखी हूं और मैं किसी को आनंदित कर सकूंगा। यह भूल वैसे ही है जैसे बुझा हुआ दीया सोचे कि मैं किसी दूसरे बुझे हुए दीये को जला दूंगा। हम कोशिश कर सकते हैं। बुझा हुआ दीया कोशिश कर सकता है दूसरे दीये को जलाने की। लेकिन डर इस बात का है कि दूसरा जला हुआ दीया भी बुझा दे; उससे जलने का तो सवाल ही नहीं उठता। और सारी दुनिया में कुछ ऐसा हुआ है कि सामाजिक काम करने वाले लोग खुद इतने अशांत और परेशान हैं कि उनके काम का अंतिम जो फल निकलता है, वह फल ऐसा नहीं निकलता कि समाज का हित होता हो, वह फल ऐसा निकलता है कि समाज का और अहित हो जाता है।
कई बार तो ऐसा लगता है कि अगर मनुष्य को उसके सुधार करने वाले, उसको ऊंचा उठाने वाले, उसको अच्छा बनाने वाले, सब उसकी फिकर छोड़ दें तो शायद मनुष्य ज्यादा अच्छा हो जाए। क्योंकि ये सब मिल-जुल कर आदमी की जो हालत कर देते हैं वह बहुत अदभुत हो जाती है। और यह तो भूल ही जाते हैं, यह बात सोचना ही भूल जाते हैं कि जो हमारे पास नहीं था वह हम किसी को देने कैसे निकल पड़े थे? यह असंभव है।
तो मैं कहता हूं कि समाज की सेवा असंभव है, जब तक किसी व्यक्ति ने अपनी सेवा न कर ली हो। यह असंभव है। अपनी सेवा से तो कोई कभी किसी दिन समाज की सेवा तक पहुंच सकता है, लेकिन समाज की सेवा से कोई कभी अपनी सेवा तक नहीं पहुंच सकता। प्राथमिक रूप से व्यक्ति को अपने को गढ़ना चाहिए, निर्मित करना चाहिए, प्राथमिक रूप से अपने को विकसित करना चाहिए। यह बिल्कुल गौण बात है, दूसरी जो बात है। और मजे की बात यह है कि अगर कोई व्यक्ति अपने भीतर सचमुच निर्मित हो जाए, तो वह कुछ करे या न करे, उससे समाज-सेवा होती है। उसे

पता भी नहीं चलता फिर। फिर समाज-सेवा उसका प्रोफेशन नहीं होता, धंधा नहीं होता। एक पहचान है। समाज-सेवा कभी भी धंधा नहीं बन सकता। लेकिन वह धंधा बन गया है। समाज-सेवा भी एक धंधा है।
उसके लिए समाज-सेवा उसका सहज जीवन होता है। उठता है, चलता है, फिरता है, तो जो भी वह करता है, श्वास भी लेता है, तो उससे किसी न किसी की सेवा अनिवार्यरूपेण होती रहती है। लेकिन अगर खुद ऐसा व्यक्तित्व न हो, तो हम जो भी समाज-सेवा करेंगे, उसके पीछे कारण कुछ और होंगे और हम बताएंगे कुछ, जानेंगे कुछ और।
एक समाज-सेवक कहेगा कि मैं तो बिल्कुल विनम्र हूं। लेकिन अगर वह अपनी खोज-बीन करेगा तो पता चलेगा कि समाज-सेवा भी अहंकार के पोषण का उपाय हो गया है। वह उसके माध्यम से भी मैं को मजबूत कर रहा है--कि मैं कुछ हूं! मैं समाज-सेवक हूं! उसके पूरे व्यक्तित्व में झलक उसी अहंकार की पकड़ती चली जाएगी। और समाज-सेवा के मार्ग से चलते-चलते कब वह समाज का मालिक हो जाएगा, कहना बहुत मुश्किल है। और दुनिया में सब समाज-सेवक बहुत जल्दी प्रतीक्षा में होते हैं कि कब समाज के मालिक बन जाएं। समाज-सेवक की अंतिम आकांक्षा ऐसी लगती है कि समाज कब उसकी सेवा करे। वह घूम-फिर कर वहां पहुंच जाता है। और हम देख चुके हैं, अपने मुल्क में तो हम देख ही चुके हैं। बीस साल पहले मुल्क आजाद हुआ, तो जिनको भी हमने हुकूमत में भेजा था वे सभी समाज-सेवक थे। फिर वे सभी समाज-शोषक सिद्ध हो गए। यह कैसे हो गया चमत्कार? यह क्या हुआ? जो सेवा करते थे, वे एकदम सत्ता में पहुंच कर मालिक कैसे हो गए? कहीं उनके भीतर बीज छिपा रहा होगा इस मालकियत को पाने का, मौका मिला और वह बीज पल्लवित हो गया।
आज दूसरे लोग समाज-सेवा कर रहे हैं। कल उनको भी आप सत्ता में पहुंचाइएगा, और आप पाएंगे कि वे मालिक हो गए। तो समाज-सेवा समाज के ऊपर मालिक बनने की सीढ़ी मालूम पड़ती है। ऐसी समाज-सेवा से कोई भी हित नहीं हो सकता सिवाय अहित के।
लेकिन हां, ऐसे लोग हो सकते हैं जो इतने जीवन में रस-विमुग्ध हो गए हैं, जो अपने जीवन में ऐसी जगह पहुंच गए हैं जहां से उनका दीया जल गया, तो उनके प्रकाश की किरणें बहुत लोगों पर पड़ेंगी, जाने-अनजाने। यह सवाल नहीं है कि वे जान कर सेवा करने जाएंगे। जान कर सेवा करना तो कई बार बहुत खतरनाक हो सकता है।
एक घटना मुझे कहने का शौक रहा है।
एक चर्च में एक पादरी बच्चों को समझाता है कि कुछ सेवा का कार्य करना चाहिए। कुछ न कुछ भगवान की दिशा में सेवा का काम करना ही चाहिए। हर दिन कम से कम एक सेवा का छोटा-मोटा कृत्य करना चाहिए। इसको तुम जीवन का नियम बना लो! और मैं तुमसे सात दिन बाद आकर पूछूंगा कि तुमने कितनी समाज-सेवा की। बच्चे पूछते हैं, क्या? समाज-सेवा से क्या मतलब? तो वह कहता है, किसी के घर में आग लगी हो तो बचाना चाहिए, कोई नदी में डूबता हो तो बचाना चाहिए, कोई गिर पड़े तो उठाना चाहिए, कोई बूढ़े-बूढ़ी को रास्ता पार करना हो तो रास्ता पार करा देना चाहिए। जो भी तुम्हें दिखाई पड़े कि कहीं सहायता पहुंचानी जरूरी है, तो निःस्वार्थ भाव से सहायता पहुंचानी चाहिए। इसके सिवाय कोई भी आदमी कभी भगवान का प्यारा नहीं हो सकता है। सेवा ही धर्म है।
सात दिन बाद वह लौटता है और बच्चों से पूछता है, तुमने कोई सेवा का कार्य किया? तो तीन बच्चे हाथ हिलाते हैं कि उन्होंने किया। वह बहुत खुश होता है कि तीस में से तीन ने किया, फिर भी किया। आज तीन करते हैं, कल तीस करेंगे। वह एक बच्चे से पूछता है, तुमने क्या सेवा का कार्य किया? उसने कहा, मैंने एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया। वह कहता है, बहुत अच्छा किया। बूढ़ों पर दया करनी चाहिए, वे निर्बल हो गए हैं; उन्होंने बहुत काम किया, अब हमें उनकी सेवा करनी चाहिए।
दूसरे बच्चे से पूछता है। वह कहता है, मैंने भी एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया।
उस पादरी को थोड़ा ख्याल होता है कि इसने भी वही किया? फिर भी बहुत बुढ़ियां हैं, मिल गई होंगी। उसने तीसरे से पूछा। उसने कहा, मैंने भी एक बूढ़ी को रास्ता पार करवाया। तो उसने कहा, हद हो गई! तुम तीनों को तीन

बुढ़ियां मिल गईं! उन्होंने कहा, तीन कहां थीं, एक ही बूढ़ी थी, हम तीनों ने उसको रास्ता पार करवाया। तो उसने कहा, क्या बूढ़ी इतनी दुर्बल थी कि तुम तीन की जरूरत पड़ी? उन्होंने कहा, दुर्बल नहीं, बामुश्किल हम उसको पार करवा पाए। वह पार करना ही नहीं चाहती थी। वह बूढ़ी इतनी ताकतवर थी कि हम तीन भी बामुश्किल पार करवा पाए उसको। लेकिन आपने कहा था कि कोई सेवा का कार्य करना चाहिए, तो हमने किया।
अब अच्छा ही हुआ कि उन्होंने किसी के मकान में आग लगा कर बचाने की कोशिश नहीं की। अच्छा हुआ कि किसी को नदी में धक्का देकर न बचाने की कोशिश की। लेकिन जिनको सेवा प्रोफेशन है, वे इसी तलाश में सुबह से निकलते हैं कि कहीं सेवा का कोई कार्य मिल जाए।
सेवा का ऐसा भाव हितकर नहीं है। सेवा धर्म नहीं है; धर्म जरूर सेवा है। इन दोनों बातों के फर्क को थोड़ा समझ लेना चाहिए। सेवा धर्म नहीं है; सेवा करने से कोई धर्म नहीं होता, अधर्म भी हो सकता है। लेकिन धार्मिक व्यक्ति जो भी करता है वह सेवा है। इसलिए धार्मिक होना प्राथमिक चीज है, सेवक होना गौण और द्वितीय चीज है।
लेकिन जैसे विनोबा कहते हैं, विनोबा कहते हैं कि सेवा ही धर्म है! उसको मैं नहीं मानता। मैं कहता हूं, वे गलत कहते हैं। मैं कहता हूं, धर्म ही सेवा है। जब भी कोई व्यक्ति धार्मिक हो जाएगा तो उसके जीवन से सेवा होगी। लेकिन इससे उलटा सच नहीं है कि कोई भी सेवा करेगा तो धर्म होगा। ईसाई सेवा कर रहे हैं, लेकिन वह धर्म नहीं है। सारी दुनिया में सेवा करते हैं, लेकिन वह धर्म नहीं है। उसके पीछे भी स्वार्थ है। उनकी देखा- देखी आर्यसमाजी भी सेवा करते हैं, हिंदू पंथ भी सेवा करता है, मुसलमान भी कोशिश करते हैं।
वह कोई सेवा-वेवा नहीं है। वह सब पालिटिक्स है, वह सब राजनीति है। धार्मिक होना महत्वपूर्ण बात है, सब बाकी गौण है। और यह मेरा मानना है
कि धार्मिक व्यक्ति निष्क्रिय नहीं बैठ सकता है। जीएगा, और जीवन से सेवा होगी। लेकिन जो धार्मिक व्यक्ति निष्क्रिय बैठ जाते हैं, वे धार्मिक भी नहीं हैं। क्योंकि धार्मिक होने का अर्थ क्या है? धार्मिक होने का अर्थ यह है कि अब मेरे लिए अपने लिए जीने का कोई प्रयोजन नहीं रहा। मेरे लिए जीना तो हो गई पूर्ति, जीना मिल गया मुझे, मैंने तो जीवन पा लिया। अब इस जीवन का दूसरों के लिए क्या हो सकता है? अब यह फूल जो खिल गया तो पौधे का काम तो पूरा हो गया कि उसका फूल खिल गया, वह तो आनंदित हो गया फूल के खिलने से। लेकिन अब इस फूल की सुगंध हवाओं में उड़ेगी, राह से चलते हुए लोगों को मिलेगी।
लेकिन फूल कुछ इसके लिए नहीं खिला है कि राह चलते लोगों को सुगंध मिले। फूल खिला है अपने आनंद के लिए, सुगंध मिलती है सहज। कोई राह से नहीं निकलेगा तो फूल रोएगा नहीं, चिल्लाएगा नहीं कि आज राह से कोई भी नहीं निकला, बेकार हो गए हम। आज कोई फोटोग्राफर नहीं आया, आज कोई अखबार वाला नहीं आया, व्यर्थ हो गई जिंदगी। अब हम क्या करें? कब तक सेवा करते रहें? कोई सुनता नहीं, कोई खबर नहीं लेता।
नहीं, फूल खुश रहेगा। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, उसे पता ही नहीं कि कोई निकला राह से कि नहीं निकला। खाली राह पर भी उसकी किरणें, उसकी सुगंध, उसके रंग बिखरते रहेंगे--खाली राह पर भी--उसी शांति से, उसी आनंद से। कोई निकल जाएगा तो प्रसन्न हो जाएगा, सुगंध मिल जाएगी। नहीं निकलेगा, बात समाप्त हो गई। फूल अपने लिए खिला है, किसी और के लिए नहीं। फूल के खिलने में किसी की प्रतीक्षा नहीं, अपना आनंद है।
तो धार्मिक व्यक्ति उसे मैं कहता हूं, जो किसी के लिए कुछ नहीं कर रहा है, जो अपने आनंद में जी रहा है। उसके आनंद में जीने से सहज किसी के लिए कुछ हो जाता है, वह बात बिल्कुल दूसरी है। न वह उसका गौरव लेता, न वह प्रतीक्षा करता कि कोई धन्यवाद दे, न वह किसी से कहने जाता कि मैं सेवक हूं। ये सारी बातों का उसे पता ही नहीं चलता।
एक संत के बाबत मैंने सुनी है एक कहानी। यूरोप में एक फकीर हुआ, उसके बाबत बहुत सी कहानियां हैं, अगस्तीन के बाबत। उसके संबंध में एक कहानी है कि उसने इतनी प्रार्थना की, इतना प्रेम किया, इतनी साधना की कि कथा कहती है

कि देवताओं ने उससे पूछा कि तुम कोई वरदान मांग लो! तो उसने कहा, पागलो, वरदान के लिए तो मैंने कुछ भी किया नहीं। पर वे नहीं माने, उन्होंने कहा, कुछ मांग ही लो, क्योंकि भगवान चाहता है कि तुम्हें कुछ मिले।
जब वह किसी तरह राजी नहीं हुआ, तो उन्होंने कहा, कुछ ऐसा मांग लो जिससे दूसरों को फायदा हो। उसने कहा, वह भी नहीं मांगूंगा, क्योंकि मेरे द्वारा दूसरों का फायदा हो रहा है, यह ख्याल भी अहंकार ला सकता है। वह मैं नहीं मांगता। लेकिन देवता पीछे पड़ गए तो उसने कहा, फिर कुछ ऐसा करो कि मेरे द्वारा फायदा भी हो तो भी मुझे पता न चले कि मेरे द्वारा हुआ है। तो उन्होंने कहा, क्या करें? तो उसने कहा, ऐसा कर दो कि मैं जहां से निकलूं, मेरी छाया जो पीछे पड़ती है, उससे किसी का कुछ लाभ हो सके तो हो जाए। अगर मेरी छाया किसी बीमार पर पड़े तो वह स्वस्थ हो जाए; अगर किसी कुम्हलाए हुए पौधे पर पड़े तो वह हरा हो जाए; लेकिन मुझे पता न चले कि मेरे द्वारा हुआ। क्योंकि मेरे द्वारा मैं कुछ भी नहीं चाहता, मैं सब परमात्मा के द्वारा चाहता हूं।
तो कहानी है कि अगस्तीन की छाया को वरदान मिल गया। अगस्तीन की छाया जिस जगह पड़ जाती, वहां फूल खिल जाते। अगस्तीन की छाया बीमार पर पड़ जाती, वह स्वस्थ हो जाता। अगस्तीन की छाया अंधे पर पड़ जाती, उसकी आंख आ जाती। लेकिन अगस्तीन को कभी पता नहीं चला। क्योंकि वह तो आगे बढ़ता जाता, छाया पीछे से पड़ती। और किसी को ख्याल में भी न आता कि इसकी छाया से यह हुआ होगा।
यह तो कहानी है, लेकिन अगस्तीन ने बात ठीक मांगी कि कुछ ऐसा करो कि मुझे यह भी पता न चले कि मेरे द्वारा हो रहा है। और धार्मिक व्यक्ति से जो भी होता है, उसे पता नहीं चलता कि उसके द्वारा हो रहा है। धार्मिक व्यक्ति तो वह व्यक्ति है जो मिट गया। अब जो भी हो रहा है, परमात्मा के द्वारा हो रहा है। न वह सेवक है, न वह साधु है, वह कोई भी नहीं है, अब वह है ही नहीं। वह सिर्फ एक द्वार है, जिस द्वार से जीवन की रश्मियां बाहर आती हैं और लोगों तक फैल जाती हैं।
तो वैसा द्वार बनो, समाज-वमाज सेवा की फिकर छोड़ो। ऐसा धार्मिक द्वार बनना चाहिए। उससे सेवा अपने आप होती है।

और एक मित्र ने पूछा है कि साधना पथ में मैंने केंद्र और परिधि की बात
की है।

तो अगर गौर से समझेंगे तो ये जो बातें मैंने कहीं, ख्याल में आ जाएंगी।
केंद्र आप हैं सारे जगत का। आपके लिए आप ही केंद्र हैं, मेरे लिए मैं
ही केंद्र हूं। तो अगर मैं स्वयं को छोड़ कर और कुछ भी करता रहूं, तो वह परिधि पर काम हो रहा है। उससे कभी भी जीवन के केंद्र पर मैं नहीं पहुंचता हूं, क्योंकि केंद्र मैं हूं। यह बड़े मजे की बात है--हम प्रत्येक केंद्र हैं जीवन का। मुझे छोड़ कर मेरे लिए सब परिधि है।
तो सबसे पहला काम साधक का यह है कि यह मैं क्या हूं, इस पर वह श्रम करे, इसे जाने, यही केंद्र है। और जिस दिन इसे जान लेगा कि मैं कौन हूं? मैं क्या हूं? यह मेरे भीतर छिपा हुआ क्या है? जिस दिन इसे जान लेगा, उस दिन उसे जीवन का केंद्र मिल जाएगा। और जिस दिन यह केंद्र मिल जाता है, उस दिन सब परिधि मिट जाती है, सब केंद्र मिट जाते हैं, मैं ही मैं रह जाता है। फिर सबके भीतर यही केंद्र दिखाई पड़ने लगता है।
केंद्र से मतलब हैः "मैं", वह जो "आई", वह केंद्र है हमारे समस्त व्यक्तित्व का, समस्त संसार का। प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपना मैं। तो अपने मैं की खोल को तोड़ कर भीतर जाना जरूरी है कि वहां क्या है! और वहीं मैंने कहा कि वहीं जीवन है, वहीं परमात्मा है--हम जो भी नाम दें--वहीं मोक्ष है। वह मैं की खोल तोड़ कर हमें भीतर घुसना जरूरी है।
लेकिन मैं की खोल ही बाधा बनती है। वह भीतर नहीं जाने देती। जैसे बीज
है, ऊपर एक खोल चढ़ी हुई है। वह खोल बीज नहीं है, बीज भीतर है। खोल उसके चारों तरफ से उसको घेरे हुए है। हम बीज को जमीन में डालते हैं। अगर खोल टूटने से इनकार कर दे, तो बीज मर जाएगा। खोल टूट जाती है, मिट्टी हो जाती

है, बीज बाहर निकल आता है। हमारा मैं जो है, वही केंद्र है खोल, जिसके भीतर वास्तविक केंद्र छिपा हुआ है, बीज छिपा हुआ है जीवन का। यह मैं की खोल मजबूत रहे, तो वह कभी नहीं टूटता।
और हम जीवन भर मैं की खोल ही मजबूत करते हैं। मैं यह हूं, मैं वह हूं, मैं यह हूं--उसी की सारे जीवन चेष्टा करते हैं। और जो आदमी सफल हो जाता है इस मैं की खोल को मजबूत करने में, उसको हम कहते हैं--यह सफल हो गया।
वह मर गया! उसके भीतर से अब वह अंकुर कभी नहीं फूटेगा जो जीवन का अंकुर है। उसकी खोल बहुत मजबूत हो गई, लोहे की हो गई, अब नहीं टूटेगी।
धार्मिक आदमी की चेष्टा होनी चाहिए कि निरंतर इस मैं की खोल को गलाए, तोड़े, मिटाए, जाने दे। और एक ऐसा वक्त आने दे जब मैं गिर जाए। और फिर भीतर से क्या है वह निकले। उसका नाम... वह है वास्तविक केंद्र। और उस केंद्र के अनुभव के बाद फिर जगत में कोई परिधि नहीं रह जाती। फिर कुछ बाहर नहीं है, कुछ भीतर नहीं है। फिर या तो हम ही हम हैं या तुम ही तुम है। फिर कोई यह शब्दों का झगड़ा नहीं है कि मैं या तुम, यह या वह, वह सब खत्म हो गया; फिर एक ही रह जाता है। उस एक का नाम ही, कहें परमात्मा, सत्य, जो भी देना चाहें। तो इस मैं की खोल का सजग निरीक्षण चाहिए निरंतर--कि मैं मजबूत तो नहीं
कर रहा हूं इसको? क्योंकि अगर हम मजबूत कर रहे हैं तो यह कभी नहीं टूटेगी। और हम इसको पूरे वक्त मजबूत कर रहे हैं। अगर रास्ते पर एक आदमी धक्का भी लगा दे, तो हम अकड़ कर उससे कहते हैं--जानते नहीं मैं कौन हूं? हम उसे मजबूत कर रहे हैं पूरे वक्त। बड़ा मकान बना रहे हैं, सिर्फ इसलिए कि छोटे मकान वालों से हम कह सकें कि मैं! बड़े पद की खोज कर रहे हैं, सिर्फ इसलिए कि नीचे वाले लोगों की तरफ हम गौर से देख सकें और कह सकें मैं! जानते हो मैं कौन हूं?
एक संन्यासी के बाबत कथा है कि वह तीस वर्ष तक हिमालय पर जाकर रहा। और तीस वर्ष उसने क्रोध पर, काम पर, लोभ पर विजय पाने की कोशिश की।
अब हिमालय पर जाकर क्रोध पर, काम पर, लोभ पर विजय पाना कठिन नहीं है। क्योंकि क्रोध करवाने के लिए भी कोई और भी चाहिए। क्योंकि अकेला मैं किससे लड़े? कोई दूसरा मैं मौजूद हो तो टक्कर हो सकती है। अकेला ही था, तो टक्कर नहीं हुई तीस साल तक। टक्कर नहीं हुई तो उसने समझा कि मैं खत्म हो गया। अब मेरे पास अहंकार भी नहीं है, क्रोध भी नहीं आता मुझे; घृणा भी नहीं होती; शत्रुता भी नहीं होती, जीत लिया मैंने। और हिमालय की शांति और सन्नाटा, तो शांति और सन्नाटे में उसको लगने लगा कि मैं शांत हो गया।
फिर धीरे-धीरे नीचे खबर पहुंची, पहाड़ पर लोग चढ़ कर उसकी पूजा को और उसकी अर्चना को आने लगे। फिर मेला भरा था नीचे। तो मित्रों ने कहा नीचे से कि आप चलें! हम सब तो पहाड़ पर नहीं आ सकते, सब दर्शन करना चाहते हैं, बूढ़े भी, स्त्रियां भी, बच्चे भी, आप मेले में चलें।
उसने कहा, ठीक है, अब क्या डर है। वह मेले में आया। जब वह मेले में गया
तो तीस साल बाद पहली दफा भीड़ में उतरा। जैसे ही मेले के भीतर गया--वहां अनेक लोग उसको पहचानते भी नहीं थे, भारी भीड़-भाड़ थी--एक आदमी का जूता उसके पैर पर पड़ गया। उसने उसकी गर्दन पकड़ ली और कहा, जानता नहीं कि मैं कौन हूं? तब उसे ख्याल आया कि अरे, वे तीस साल बेकार हो गए! वह तीस साल पहले उसको ऐसे ख्याल उठते थे। वह हैरान हो गया कि अब वे फिर एकदम से उठ आए जैसे ही जूता पड़ा पैर पर उसके! और उसने कहा, जानता नहीं मैं कौन हूं? तब उसे ख्याल आया कि बेकार हो गए वे तीस वर्ष। उसने अपनी डायरी में लिखा है कि तीस साल हिमालय के पास रहने से जो नहीं दिखाई पड़ा, वह एक आदमी के संपर्क में आने से दिखाई पड़ गया। वह ह्यूमन कांटैक्ट--कि पता चल गया कि वह छिपा था भीतर।
तो हमें चौबीस घंटे स्मरण रखने की जरूरत है, मानवीय संपर्क में, उठते- बैठते, कि वह हमारा मैं तो मजबूत नहीं हो रहा! अगर इतना ही कोई कर ले, इतना ही होश रख ले कि मैं मजबूत तो नहीं हो रहा! तो मैं क्षीण होता चला जाएगा। क्योंकि हम मजबूत करते हैं तब होता है, अन्यथा होने का उपाय नहीं है उसका कोई।
और जितने हम जागने लगेंगे... क्योंकि मैं इतना सूक्ष्म है कि पता ही नहीं चलता, पता ही नहीं चलता कि वह कहां-कहां से हमको पकड़ लेता है। हमारे आंख के इशारे में हो सकता है, पैर के चलने में हो सकता है। हमारे बैठने में,

उठने में हो सकता है। उसका बहुत सजग और सूक्ष्म विश्लेषण और बोध चाहिए मैं का। अगर इसका बोध बना रहे, तो हम केंद्र पर काम कर रहे हैं। और जैसे-जैसे बोध बढ़ेगा, मैं गिरेगा। यानी यह एक साथ होगा। जैसे-जैसे दीया बढ़ेगा, अंधकार कम होगा। ऐसे-ऐसे जैसे-जैसे बोध बढ़ेगा, होश बढ़ेगा, वैसे-वैसे मैं कम होगा। और जिस दिन बोध की ज्योति पूरी हो जाती है, मैं विलीन हो जाता है। हम केंद्र पर पहुंच गए, खोल मिट गई और वह आ गया जो खोल के भीतर था।
मैं और ईगो जो है, वह खोल है जीवन की। और वह टूट जाए तो ही जीवन उपलब्ध होता है। और उसको कहेंगे सफलता और वहां से सुगंध आनी शुरू होती है।
बस। फिर सांझ को बैठ कर बात करेंगे।

नये समाज की खोज
अठारहवां प्रवचन

नये परिवार का आधार: विवाह नहीं, प्रेम

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक मित्र ने पूछा है कि मैं परिवार के संबंध में कुछ कहूं।

परिवार के संबंध में पहली बात तो यह कहना चाहूंगा कि परिवार मनुष्य
के द्वारा निर्मित की गई प्राचीनतम संस्था है, और इसलिए स्वभावतः सबसे ज्यादा सड़-गल गई है। परिवार मनुष्य की अधिकतम बीमारियों का उदगम-स्रोत है। और जब तक परिवार रूपांतरित नहीं होता तब तक मनुष्य के जीवन में शुभ की, सत्य की, सुंदर की संभावनाएं पूरे अर्थों में विकसित नहीं हो सकती हैं। परिवार जैसा आज तक रहा है, उस परिवार को ठीक से समझने के लिए यह ध्यान में रख लेना जरूरी है कि परिवार का जन्म प्रेम से नहीं, बल्कि प्रेम को रोक कर हुआ है। इसीलिए सारे पुराने समाज प्रेम के पहले ही विवाह पर जोर देते रहे हैं। सारे पुराने समाजों का आग्रह रहा है कि विवाह पहले हो, प्रेम पीछे आए। विवाह पर जोर देने का अर्थ एक ही है कि परिवार एक यांत्रिक व्यवस्था बन सके। प्रेम के साथ यांत्रिक व्यवस्था का तालमेल बिठाना कठिन है।
इसलिए जिस दिन दुनिया में प्रेम पूरी तरह मुक्त होगा, उस दिन परिवार आमूल रूप से बदल जाने को मजबूर हो जाएगा। जिस दिन से प्रेम को थोड़ी सी छूट मिलनी शुरू हुई है, उसी दिन से परिवार की नींव डगमगानी शुरू हो गई है। जिन समाजों में प्रेम ने जगह बना ली है, उन समाजों में परिवार बिखरती हुई व्यवस्था है, टूटती हुई व्यवस्था है।
यह पहली बात समझ लेनी जरूरी है कि परिवार की बुनियाद में हमने प्रेम
को काट दिया है। तब परिवार एक व्यवस्था है, एक संस्था है, एक प्रेम की घटना नहीं। स्वभावतः जहां व्यवस्था है वहां कुशलता तो हो सकती है, लेकिन मनुष्य की आत्मा के विकास की संभावना क्षीण हो जाती है। प्रेम को व्यवस्थित नहीं किया जा सकता। यद्यपि यह सच है कि प्रेम अपने ढंग की व्यवस्था लाता है, वह दूसरी बात है। अगर दो व्यक्ति प्रेम करते हैं और पास रहना चाहते हैं, तो उनके पास रहने में एक अनुशासन, एक व्यवस्था होगी। लेकिन वह व्यवस्था प्रमुख नहीं होगी, प्रेम का परिणाम भर होगा।
लेकिन अगर दो व्यक्तियों को हम साथ रहने को मजबूर कर दें, तो भी उनमें
एक तरह की पसंद पैदा हो जाएगी। लेकिन वह पसंद प्रेम नहीं है। और अगर व्यवस्था के भीतर हम दो व्यक्तियों को साथ बांध दें, दो कैदियों को भी जेलखाने में एक कोठरी में बंद कर दें, तो भी वे धीरे-धीरे एक-दूसरे को चाहने लगेंगे। वह चाहना प्रेम नहीं है। लाइकिंग और लव में फर्क है।
तो एक पति और पत्नी यदि एक-दूसरे के साथ रह कर एक-दूसरे को चाहने लगते हैं, तो इसे प्रेम समझ लेने की भूल में पड़ जाने की कोई भी जरूरत नहीं है। दो व्यक्ति यदि रोज साथ उठेंगे, साथ खाएंगे, काम करेंगे, सोएंगे, तो स्वभावतः दोनों...
इसलिए हमारा परिवार अपनी जड़ में कलह से ग्रस्त है। जहां सिर्फ पसंद पैदा हो गई है साथ रहने से, एसोसिएशन से, जहां प्रेम नहीं है, वहां दो व्यक्तियों के बीच वह शांति, वह आनंद निर्मित नहीं हो सकता, जो कि वस्तुतः परिवार का आधार होना चाहिए। इसलिए चौबीस घंटे कलह परिवार की कथा होगी। और यह कलह रोज बढ़ती जा रही है।
एक दिन था कि यह कलह न थी। ऐसा नहीं था कि उस दिन परिवार के नियम दूसरे थे। कलह न होने का कारण था कि स्त्री को किसी तरह की आत्मा नहीं थी, स्त्री को किसी तरह का व्यक्तित्व नहीं था, स्त्री को किसी तरह की स्वतंत्रता नहीं थी। स्त्री को इस बुरी तरह दबाया गया था कि उससे सारा व्यक्तित्व छीन लिया गया था। तब कोई कलह न थी। मालिक और गुलाम के बीच, अगर पूरी व्यवस्था हो, तो कलह का कोई भी कारण नहीं होता है।

लेकिन जैसे-जैसे मनुष्यता की समझ और विवेक विकसित हुआ, हमें दिखाई पड़ा कि स्त्री के साथ भयंकर अन्याय हुआ है। और जैसे-जैसे स्त्री को स्वतंत्रता दी गई, वैसे-वैसे कलह बढ़ने लगी। क्योंकि गुलाम और मालिक के बीच कलह न थी, वह बात दूसरी थी। लेकिन दो समान हैसियत के, समान व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों के बीच यदि प्रेम न हो, तो सिर्फ व्यवस्था कलह नहीं रोक सकती। और यह भी इस संबंध में समझ लेना जरूरी है कि फासला जितना ज्यादा हो, उतनी कलह की संभावना कम होती है; फासला जितना कम होता जाए, उतनी कलह की संभावना बढ़ती जाती है। यह भी ध्यान रहे, फासला जितना ज्यादा हो, उतनी प्रेम की संभावना भी कम होती है; फासला जितना करीब होता जाए, उतनी ही प्रेम की संभावना भी बढ़ती है।
मेरा मतलब?
मेरा मतलब यह है कि हम, समझ लें कि बड़ौदा की एक स्त्री अगर रास्ते से गुजरे, तो बड़ौदा की महारानी अगर रास्ते से गुजरे और हीरों के हार पहने हो तो साधारण स्त्री को उससे कोई ईर्ष्या नहीं होगी। क्योंकि फासला बहुत ज्यादा है, वह ईर्ष्या के पार है। रानी एलिजाबेथ को देख कर सड़क पर किसी स्त्री को कोई ईर्ष्या पैदा नहीं होती। फासला बहुत ज्यादा है। हमारी ईर्ष्या की भी परिधि होती है। लेकिन पड़ोस की स्त्री अगर हीरे का हार पहन ले तो ईर्ष्या शुरू हो जाती है। हमारी ईर्ष्या के घेरे में पड़ जाती है। जब तक स्त्री मनुष्य ही नहीं थी तब तक उपद्रव नहीं था, व्यवस्था से काम चल सकता था।
चीन में पति अपनी स्त्री की हत्या कर दे तो उस पर मुकदमा नहीं चल सकता था। क्योंकि स्त्री में कोई आत्मा नहीं होती, उसे मारने का सवाल कहां उठता है! और फिर अपनी चीज को मारने का हकदार हूं। अगर मैं अपनी कुर्सी को तोड़ दूं, तो कौन अदालत मुझ पर मुकदमा चला सकती है! अगर मैं अपनी स्त्री को मार डालूं तो किसी अदालत को हक क्या है, मालकियत मेरी है! तो चीन में कभी भी पत्नी के मार डालने पर किसी तरह का मुकदमा नहीं चल सकता था। स्त्री की कोई आत्मा नहीं थी।
सारी दुनिया में, इस देश में भी स्त्री के पास कोई व्यक्तित्व नहीं था। जब तक व्यक्तित्व नहीं था तब तक व्यवस्था बिल्कुल ठीक चली। वह व्यवस्था ऊपर से ठीक मालूम पड़ती थी, आधी मनुष्यता उसके नीचे गुलामी और जंजीरों की जिंदगी को बसर कर रही थी। इसलिए परिवार सुव्यवस्थित मालूम होता था।
जेलखाने में बड़ी व्यवस्था दिखाई पड़ती है, क्योंकि संतरी बंदूकें लिए खड़े हुए हैं और कैदी अपना काम कर रहे हैं। लेकिन उस व्यवस्था के नीचे मनुष्य की आत्मा दबी हुई है।
ऐसी ही व्यवस्था थी। लेकिन जिस दिन से मनुष्य की बुद्धि विकसित हुई है, हमारी समझ बढ़ी, हमारी सहानुभूति बढ़ी, हमारा चिंतन और विचार बढ़ा और स्त्री को हमने पुरुष के बराबर समानता की स्वीकृति देनी शुरू की है, उस दिन से परिवार की नींव हिल गई। क्योंकि परिवार एक पुरानी गुलामी थी। स्त्री और पुरुष समान होंगे तो उनके बीच प्रेम होगा। और प्रेम के पीछे ही परिवार हो सकता है, प्रेम के पहले परिवार नहीं हो सकता।
प्रेम अगर पहले होगा तो परिवार इतना सुनियोजित नहीं हो सकता जितना कि विवाह वाला परिवार सुनियोजित था। प्रेम के अपने खतरे हैं। प्रेम की अपनी संभावनाएं, अपनी असंभावनाएं, अपनी दुर्घटनाएं हैं, जो विवाह की नहीं हैं। विवाह बहुत सिक्योरिटी की, सुरक्षा की व्यवस्था है। विवाह जीवन भर के लिए इंतजाम है। और इसलिए विवाह के इंतजाम को चलाए रखने के लिए हमें हजार तरह की अनैतिकताएं पैदा करनी पड़ीं। इसलिए यदि मैं आपसे कहूं कि परिवार एक अनैतिक संस्था सिद्ध हो गई है, तो कुछ अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हूं।
विवाह को व्यवस्थित रखने के लिए वेश्या पैदा करनी पड़ी। वेश्या जो है विवाह का दूसरा पहलू है। एक पुरुष और एक स्त्री को हम बिना प्रेम के दोनों को साथ रहने के लिए आजीवन के लिए बांध देते हैं, और उनके बीच कोई प्रेम नहीं है। उनके बीच ज्यादा से ज्यादा यौन का शारीरिक संबंध हो सकता है, हृदय के प्रेम का कोई संबंध नहीं है। तो यह आदमी प्रेम खोजने कहीं जाएगा, यह आदमी प्रेम खोजने के लिए कुछ रास्ते बनाएगा। निश्चित ही पड़ोस के पुरुष

इससे भयभीत होंगे, क्योंकि यह आदमी अगर पड़ोस की पत्नियों में प्रेम खोजने निकल जाए तो उपद्रव होगा। इसलिए सारे पुरुष मिल कर एक बात तय कर लेंगे कि सभी स्त्रियां नहीं, गांव में कुछ स्त्रियां छोड़ी जा सकती हैं जो किसी की भी नहीं हैं और उनके साथ कोई भी किसी तरह के संबंध बना सकता है। हिंदुस्तान में बुद्ध के जमाने में हर गांव में एक नगरवधू होती थी। गांव की जो सुंदरतम स्त्री होती थी, सारे गांव के लोग यह तय कर लेते थे, इसका कोई पति नहीं हो सकेगा। क्योंकि सुंदरतम स्त्री का पति होने से बड़ी प्रतियोगिता पैदा होगी और झंझट पैदा होगी। इसलिए पूरा गांव ही इसका पति हो जाएगा, वह नगरवधू हो जाएगी। उस स्त्री को नगरवधू का सम्मान दे दिया जाएगा। अब उसका कोई प्रतियोगी नहीं है, उसके ऊपर कोई मालकियत नहीं है, पूरा गांव उसका व्यवहार और उपयोग कर सकता है।
नगरवधू बड़ा सुंदर शब्द है। वेश्या कहें तो जरा बुरा लगता है।
फिर मंदिरों के आस-पास दासियां, देव-दासियां उत्पन्न हुईं। वे सब वेश्याएं थीं। हिंदुस्तान में भी, यूनान में भी, सभी मंदिरों के आस-पास स्त्रियों के समूह इकट्ठे किए गए। वे गांव के उन सब लोगों को तृप्त करने के लिए जरूरी थे जो अपनी स्त्री को प्रेम कर पाने में असमर्थ थे।
तब एक अजीब घटना घटी कि बच्चे किसी और से पैदा करना है, प्रेम किसी और
से करना है। तब स्त्री सिर्फ बच्चे पैदा करने की एक मशीन रह गई। निश्चित ही, स्त्रियों को यदि स्वतंत्रता होती तो पुरुष-वेश्याएं भी पैदा होतीं। लेकिन स्त्रियों को कोई स्वतंत्रता नहीं थी, इसलिए स्त्री-वेश्याएं भर पैदा हुईं।
लेकिन पिछले पचास वर्षों में पश्चिम के कुछ मुल्कों में पुरुष-वेश्याएं भी पैदा हो गई हैं, क्योंकि स्त्री को भी स्वतंत्रता मिल गई है। आज लंदन में स्त्री-वेश्याएं ही नहीं, पुरुष-वेश्याएं भी उपलब्ध हैं। वेश्याएं नहीं कहना चाहिए, कहना चाहिए वेश्य। लेकिन वेश्य से कुछ और आप गलती न समझ लें इसलिए मैं पुरुष-वेश्या कह रहा हूं। वेश्या का मतलब सिर्फ होता है बेचने वाली, वेश्य का मतलब होता है बेचने वाला। तो लंदन के पार्कों के आस-पास आज पुरुष भी खड़े हैं--वैसा ही रंग-रोगन लगा कर जैसे स्त्रियां सदा खड़ी होती रही हैं--और स्त्रियों के लिए निमंत्रण दे रहे हैं कि वे उपलब्ध हैं इतने पैसे में, एक रात, इतने घंटों के लिए।
स्त्री स्वतंत्र हुई तो पुरुष-वेश्या पैदा हो गई। इसका मतलब यह है कि स्त्री परतंत्र थी इसलिए सिर्फ स्त्री-वेश्याएं दुनिया में उत्पन्न हो पाई थीं। और स्त्री-वेश्याओं की जरूरत पड़ गई थी, क्योंकि विवाह प्रेम की आकांक्षा को तृप्त नहीं कर पा रहा था।
अब सारी दुनिया के बुद्धिमान लोग कहते हैं कि वेश्याएं नहीं होनी चाहिए। लेकिन उनमें से किसी को भी पता नहीं है कि वेश्याएं उसी दिन नहीं होंगी, जिस दिन विवाह की पुरानी व्यवस्था नहीं होगी। जब तक पुरानी व्यवस्था है, तब तक वेश्याएं भी होंगी। क्योंकि वे उसी सिक्के का दूसरा पहलू हैं। अब यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जिन सती-साध्वी स्त्रियों की हम बड़ी प्रशंसा करते हैं कि महासती हैं, साध्वी हैं, हमें पता नहीं कि उन्हीं सती-साध्वियों की वजह से वेश्या पैदा हुई है।
जब तक हम इस बात पर जोर देंगे कि दो व्यक्ति बिना प्रेम के साथ रहने को मजबूर किए जाएं, चाहे पंडित-पुरोहित उनकी जन्मकुंडली मिला कर तय कर रहे हों... । कैसा आश्चर्य है! प्रेम कहीं जन्मकुंडलियों से तय हो सकता है! और अगर जन्मकुंडलियां प्रेम तय करती थीं तो जन्मकुंडलियों से तय हुए विवाह सुखद और आनंदपूर्ण होने चाहिए। लेकिन उनके भीतर कलह के सिवाय कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता है। अगर हममें थोड़ी भी बुद्धि हो तो सारी जन्मकुंडलियां फाड़ देने जैसी हो गई हैं। हम जाकर देख लें चारों तरफ विवाह को।
आज मुझे सैकड़ों युवक और युवतियां मिलते हैं, जो कहते हैं कि हम अपने मां-बाप को देख कर ही विवाह करने से डर गए हैं। जो उनके बीच हो रहा है, अगर यही होना है, तो इससे बेहतर है अविवाहित रह जाएं। आज अमेरिका में लाखों युवक और युवतियां अविवाहित रह गए हैं। इसलिए नहीं कि उन्हें कोई ब्रह्मचर्य साधना है; इसलिए नहीं कि उन्हें कोई परमात्मा खोजना है; इसलिए

नहीं कि उन्हें कोई चित्रकला की साधना करनी है या संगीत की साधना करनी है; सिर्फ इसलिए कि मां-बाप को देख कर वे चौंक गए हैं और डर गए हैं।
मां-बाप ने एक अच्छा इंतजाम किया था बाल-विवाह का। चौंकने और डरने का उपाय न था। इसके पहले कि आप चौंकते और डरते और पहचानते, आप अपने को पाते कि विवाहित हो गए हैं। इसलिए जब तक बाल-विवाह था, तब तक एक शिकंजा बहुत गहरा था। लेकिन पच्चीस साल का पढ़ा-लिखा युवक और युवती पच्चीस बार सोचेंगे विवाह करने के लिए; देखेंगे कि चारों तरफ विवाह का परिणाम क्या हुआ है! जो चारों तरफ दिखाई पड़ता है वह बहुत दुखद है।
हां, ऊपर से चेहरे रंगे-पुते दिखाई पड़ते हैं। सड़क पर पति और पत्नी चलते हैं तो ऐसा मालूम पड़ता है कि किसी स्वर्ग में रह रहे हैं। सभी फिल्में विवाह की जगह जाकर समाप्त हो जाती हैं। और सभी कहानियां विवाह के बाद एक वाक्य पर पूरी हो जाती हैं--कि उसके बाद वे दोनों आनंद से रहने लगे। इसके बाद की कोई बताता नहीं कि वह आनंद कैसा हुआ? कहानी खत्म हो जाती है कि विवाह के बाद दोनों आनंद से रहने लगे।
असली कहानी यहीं से शुरू होती है। और वह कहानी आनंद की नहीं है, वह कहानी बहुत दुख की है। इसलिए उसे छेड़ना ही कोई फिल्म उचित नहीं समझती और कोई कथाकार उसको छेड़ना उचित नहीं समझता। विवाह के पहले तक कहानी चलती है, विवाह पर दि एंड, इति आ जाती है। असली कहानी वहीं से शुरू होती है। लेकिन उसे हम छिपाते रहे हैं। हमने आज तक खोल कर नहीं रखा कि एक पति-पत्नी के बीच जो लंबे नरक की कथा गुजरती है वह क्या है।
नहीं, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सभी के बीच गुजरती है। सौ में शायद एक मौका होता है जब पति और पत्नी के बीच स्वर्ग भी गुजरता है। लेकिन सौ में निन्यानबे मौके पर नरक ही गुजरता है। होना उलटा चाहिए कि सौ में निन्यानबे मौके पर पति और पत्नी के बीच स्वर्ग गुजरे; एक मौके पर भूल-चूक हो जाए, बीमारी हो जाए, रुग्णता हो जाए, एक मौके पर नरक गुजर सके। लेकिन ऐसा नहीं है, हालतें उलटी हैं।
मैंने सुना है, एक पति अपनी पत्नी का बहुत भक्त था। आमतौर से सभी पति होते हैं। क्योंकि जिसे हम दबाते हैं उससे हमें दबना भी पड़ता है और जिसे हम भयभीत करते हैं उससे हमें भयभीत भी होना पड़ता है। यह म्युचुअल, यह पारस्परिक संबंध है। वह पति भी बहुत पत्नी-भक्त था। निरंतर अपनी पत्नी की प्रशंसा करता था।
फिर अचानक उसकी पत्नी बीमार पड़ी और मरने के करीब पहुंच गई। यद्यपि वह डाक्टरों को लाता था, दवाई करता था, लेकिन इतनी रौनक उसके चेहरे पर कभी नहीं देखी गई थी जितनी रौनक पत्नी के मरने के करीब आने से आने लगी। फिर उसकी पत्नी मर गई, वह बहुत रोया। लेकिन जिन्होंने भी देखा वे हैरान हुए! उसके रोने में भी खुशी की कोई झलक थी, उसके रोने के पीछे से भी खुशी की किरणें दिखाई पड़ती थीं। जैसे कोई निर्भार हो गया; जैसे स्वतंत्र हो गया; जैसे मुक्ति मिल गई।
फिर उसकी पत्नी का ताबूत बनाया गया, उसकी अरथी सजाई गई। फिर अरथी को लेकर वे बाहर निकले। सामने ही एक नीम का दरख्त था, अरथी उससे टकरा गई; और पत्नी के भीतर से चीख की आवाज निकली, अरथी उतारनी पड़ी, वह जिंदा थी!
फिर वह तीन साल और जिंदा रही। पत्नी-भक्त फिर पत्नी-भक्त हो गया, उदासी फिर उसकी लौट आई। फिर वह वापस वैसे ही जीने लगा, उसी रूटीन, उसी ढर्रे में। तीन साल बाद उसकी पत्नी फिर मरी। वह छाती पीट कर रो रहा था। फिर ताबूत तैयार हुआ, अरथी बाहर निकली, वह छाती पीटते हुए एकदम चिल्लाया कि भाइयो, जरा सम्हाल कर निकालना, फिर नीम से मत टकरा देना!
यह एक आदमी की कहानी हो तो कहा जा सकता है कहानी होगी। यह पति की ही कहानी हो तो कहा जा सकता है होगी कहानी। पत्नी की भी, पति की भी, मनःस्थिति यही है। ऐसी पत्नी खोजनी मुश्किल है जिसने किसी क्षण में न सोचा हो कि इससे तो अच्छा था अविवाहित रह जाते! ऐसा पति खोजना मुश्किल है जिसने किसी दुखद क्षण में न सोचा हो कि इस पत्नी से कैसे छुटकारा हो जाए! अगर वह हिंसक हुआ तो सोचता है कि पत्नी को कैसे मार डाले!
पतियों के सपने अगर खोजे जाएं तो बहुत बड़े हिस्से में पत्नियों के मारने के सपने उनमें से निकलते हैं। पत्नी चूंकि उतनी हिंसक नहीं होती,

आत्महिंसक होती है, इसलिए अगर उसके सपने खोजे जाएं तो खुद को आग लगा लेने, पानी में डुबा देने, कुएं में गिरा देने के सपनों की भरमार होती है। पत्नी पति से छूटना चाहे तो आत्महत्या की सोचती है; पति पत्नी से छूटना चाहे तो हत्या की सोचता है। ये सोचने के ढंग हैं। लेकिन यह आश्चर्यजनक है कि पति- पत्नी के बीच संबंध क्या है?
असल में मौलिक रूप से चूंकि हम प्रेम को इनकार कर देते हैं परिवार में, इसलिए फिर प्रेम की संभावना क्षीण होती चली जाती है। और प्रेम एक घटना है, जो घटे तो घटती है, न घटे तो नहीं घटती है।
लेकिन हमने पति और पत्नी को उसी आधार पर बनाया जिस आधार पर मां और बेटा बनता है, भाई और बहन बनते हैं--गिवेन। मैं अपनी मां को नहीं बदल सकता; कोई उपाय नहीं है। मैं अपनी बहन को नहीं बदल सकता; कोई उपाय नहीं है। मैं अपने पिता को नहीं बदल सकता; कोई उपाय नहीं है। ये सारे संबंध दिए हुए संबंध हैं, जो मुझे जन्म के साथ मिलते हैं। इन संबंधों के बाद मैं हूं, इन संबंधों के पहले मैं हूं ही नहीं जो चुनाव कर सकूं। हमने पत्नी के संबंध को भी इन्हीं संबंधों की व्यवस्था में सूत्रबद्ध कर दिया। और हम पत्नी को भी गिवेन मानते हैं, वह भी मिली हुई है। इसलिए बाल-विवाह बहुत उचित पड़ता था। छोटे बच्चे, आठ साल, दस साल, बारह साल के बच्चों को हम दूल्हा-दुल्हन बना कर घोड़े पर सवार कर देते थे। जब वे होश में आते थे पंद्रह-सोलह-सत्रह साल में, तब वे पाते थे कि पत्नी भी मिली हुई है, जैसे बहन मिली हुई है, मां मिली हुई है, बाप मिला हुआ है।
जिंदगी में एक संबंध है चुनाव का, बाकी सब संबंध चुनावहीन हैं। एक संबंध है डिसीसिवः विवाह का। एक संबंध है जहां व्यक्ति निर्णायक हो सकता है। वह भी हमने छीन लिया। व्यक्ति की स्वतंत्रता पर जो बड़ी से बड़ी चोट हो सकती है, वह उसके प्रेम के चुनाव को छीन लेना है। क्योंकि वह एक मौका है जब वह चुनाव कर सके कि वह किसको पत्नी बनाना चाहता है या किसको पति बनाना चाहती है। पिता तो चुनने का कोई उपाय नहीं है, मां चुनने का कोई उपाय नहीं है, बहन चुनने का, भाई चुनने का कोई उपाय नहीं है। और कोई संबंध चुने नहीं जा सकते। सिर्फ एक च्वाइस, एक डिसीसिवनेस का मौका आदमी को मिलता है कि वह अपने प्रेम-पात्र को चुन ले।
हमने जो परिवार बनाया था उसमें हमने यह चुनाव की स्वतंत्रता भी छीन
ली थी। पत्नी भी गिवेन, पति भी गिवेन; वह भी मिला हुआ था, वह भी प्राकृतिक घटना हो गई; वहां भी मनुष्य की आत्मा को स्वतंत्रता का कोई उपाय न रहा।
और ध्यान रहे, जिस प्रेम को हम चुनते नहीं हैं, वह प्रेम प्रेम नहीं हो पाता। जिस प्रेम को मैंने नहीं चुना है, जिस प्रेम के चुनाव में मैं अंतिम निर्णायक नहीं हूं, आखिरी निर्णायक नहीं हूं, वह प्रेम प्रेम नहीं हो सकता। और दूसरी बातः जो प्रेम मेरे लिए किन्हीं और ने चुना है, वह प्रेम परतंत्रता बन जाएगा। दूसरे का चुना हुआ प्रेम परतंत्रता बन जाता है। परिवार की जो व्यवस्था इतनी रुग्ण, इतनी विकृत और इतनी कुरूप हो गई, उसका कारण था कि वह प्रेम-विरोधी है। लेकिन क्यों है प्रेम-विरोधी? आखिर क्या कारण था कि जिन लोगों ने सोचा--मनु ने, या याज्ञवल्क्य ने, या मूसा ने, या किसी ने भी--जिन्होंने भी परिवार के संबंध में नियम दिए, क्या कारण था कि उन्होंने व्यक्ति को प्रेम की स्वतंत्रता न दी?
प्रेम बहुत खतरनाक मालूम पड़ा। है भी! प्रेम आग है! जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है वह खतरनाक है, सिर्फ मौत खतरनाक नहीं है। क्योंकि मरने के बाद न फिर आप बीमार पड़ सकते, न मर सकते। जिंदगी में तो सब खतरा है। प्रेम उसमें सबसे खतरनाक तत्व है, आग के साथ खेलना है! लेकिन उस आग के साथ खेलने में ही आपके भीतर के व्यक्तित्व की फ्लावरिंग, आपके व्यक्तित्व के भीतर का फूल खिलता है--उस स्वतंत्रता में, उस संघर्ष में, उस प्रेम के शिखर पर चढ़ने में, उस यात्रा में और उस खतरे में। प्रतिपल प्रेम का खतरा है! क्योंकि प्रेम आज है, जरूरी नहीं कि कल हो।
लेकिन विवाह आज भी है और कल भी होगा, परसों भी होगा। विवाह भविष्य के लिए सुनिश्चितता है। प्रेम बहुत अनिश्चय है, प्रेम अनसर्टेनटी है। इसलिए डर है। इसलिए सब डरे हुए लोग प्रेम से बचेंगे और विवाह को वरण करेंगे।

सिर्फ अभय लोग प्रेम को स्वीकार करेंगे और कहेंगे, अगर प्रेम से विवाह निकलता हो निकले और न निकलता हो न निकले।
प्रेम का मतलब हैः पल-पल जीना। प्रेम का मतलब है कि आज मैं आपको प्रेम करता हूं, लेकिन कल का क्या भरोसा! कल के लिए मैं आज से कैसे निर्णय ले सकता हूं! और मैं कल क्या करूंगा, उसका मैं आज से कैसे सुनिश्चित आश्वासन दे सकता हूं!
इसलिए प्रेम मोमेंट टु मोमेंट लिविंग है--अभी और यहां।
नहीं, यह अर्थ नहीं है कि कल प्रेम टूट ही जाएगा! सच तो यह है कि अगर आज
के क्षण में प्रेम जीया गया है तो कल और गहरा हो जाएगा। लेकिन वह अनिश्चित है, वह निश्चित नहीं है। पुनरुक्ति नहीं है, कि कल भी उसे दोहराने की कोई मजबूरी है।
तो प्रेम तो ऐसा है जैसे फूल है, सुबह खिलता है, सांझ मुरझा सकता है। उसी फूल के नीचे एक पत्थर पड़ा रहता है। वह पत्थर सांझ फूल से कहता है, पागल! इससे तो पत्थर होना बेहतर। क्योंकि हम कभी नहीं मुरझाते; हम जहां पड़े हैं वहीं पड़े रहते हैं। तू क्षणिक है, हम स्थायी हैं। लेकिन फिर भी स्थायी पत्थर को कोई क्षणिक फूल के मुकाबले नहीं चुनेगा।
अगर मैं आपको कहूं तो कहना चाहूंगा कि प्रेम का फूल क्षण में खिलता है, मुरझाने का सदा डर है! इसीलिए उसका रस भी है, इसलिए उसका आकर्षण भी है, फूल इसीलिए इतने जोर से पुकारता भी है, क्योंकि सांझ नहीं होगा! पत्थर विवाह है, पड़ा है तो पड़ा है, वह अंत नहीं होता, उसकी कल बिल्कुल सुनिश्चित व्यवस्था है। इसीलिए आकर्षणहीन है।
इसीलिए प्रेयसी को पत्नी बनाया नहीं कि प्रेयसी का आकर्षण गया नहीं। प्रेमी को पति बनाया नहीं कि आकर्षण गया नहीं। इधर प्रेमी पति बना, उधर अचानक पाया जाता है कि आकर्षण खो गया। क्योंकि चीजें सुनिश्चित हो गईं, स्थिर हो गईं। अब प्रेम मांगा जा सकता है, अब प्रेम की डिमांड की जा सकती है। अब अगर प्रेम न दिया जाए तो झगड़ा किया जा सकता है, अब अगर प्रेम न मिले तो कलह हो सकती है। अब प्रेम एक दुकानदारी, एक सौदा, एक कांट्रैक्ट, एक समझौता हो गया।
हमारा विवाह, जिस पर हमारा पूरा परिवार खड़ा है, एक कांट्रैक्ट है, एक समझौता है, एक व्यापारी व्यवस्था है, जिसमें दो व्यक्ति यह कसम खा रहे हैं कि अब हम एक-दूसरे को सदा प्रेम करेंगे और जो प्रेम नहीं करेगा वह अनैतिक सिद्ध होगा। तब एक बड़ी अदभुत अनैतिकता घटती है कि हम प्रेम नहीं करते और प्रेम का दिखावा करते रहते हैं। इससे बड़ी कोई अनैतिकता नहीं हो सकती। जिस व्यक्ति से मेरा प्रेम नहीं है उसको अगर मैं प्रेम का दिखावा करता हूं, तो उसे तृप्ति तो मिलती नहीं, सिर्फ धोखा ही मिलता है। और यह बहुत इम्मारल है, बहुत अनैतिक है। जिस व्यक्ति से मेरा प्रेम नहीं है उसको मैं प्रेम के डायलाग और प्रेम की भाषा बोलता हूं, सीखे हुए अभिनय करता हूं--स्वभावतः मैं बहुत बड़ा धोखा दे रहा हूं। और जो आदमी प्रेम में भी धोखा दे रहा है, वह आदमी और किस चीज में धोखा नहीं देगा!
जो आदमी प्रेम में भी धोखा देने से नहीं डर रहा, अगर वह पैसे में धोखा
दे तो इल्जाम लगाना गलत है। अगर वह बाजार पर दूकान पर बैठ कर धोखा दे तो इल्जाम बेकार है। अगर वह कालाबाजारी करे, अगर वह रिश्वतखोरी करे, स्मगलिंग करे, फिर बेकार है उससे कुछ भी कहना। क्योंकि जो आदमी प्रेम में स्मगलिंग कर रहा है, जो आदमी प्रेम में धोखा दे रहा है, जो प्रेम में नकली नोट जारी कर रहा है, उस आदमी का अब कोई भरोसा नहीं, वह पूरी जिंदगी में धोखेबाज सिद्ध हो जाएगा।
उन भयभीत लोगों ने विवाह को ईजाद किया, प्रेम को हटाया। मैं आपसे कहना चाहता हूं, भविष्य का जो परिवार होगा वह विवाह की बुनियाद पर नहीं होगा। इसलिए स्वभावतः भविष्य का परिवार अतीत के परिवार से बुनियादी रूप से भिन्न होगा। उसको परिवार कहना भी शायद ठीक नहीं है, उसे शायद मित्रों का एक मिलन, संबंधियों का नहीं; वह मिलन भी सुनिश्चित फिक्स्ड नहीं, लिक्विड, वह भी तरल। प्रेम उसका आधार होगा।
अब यह आश्चर्य की बात है कि रूस अकेला मुल्क है जहां वेश्या समाप्त हो गई। यह थोड़ा सोचने जैसा है कि कारण क्या हुआ है कि रूस में वेश्या समाप्त

हो गई? और हम आध्यात्मिक लोग कभी भी वेश्या को समाप्त न कर पाए। और एक गैर-आध्यात्मिक मुल्क, एक नास्तिक मुल्क, एक भौतिकवादी मुल्क, जिसके चिंतन की बहुत ऊंचाइयां नहीं हैं, जिसके चिंतन के बहुत व्यापक आयाम नहीं हैं, जिसका चिंतन बहुत पदार्थ केंद्रित है, वह वेश्या को कैसे समाप्त कर पाया?
कुल एक छोटा सा कारण आधारभूत बना। और वह कारण यह था कि रूस में विवाह व्यवस्था न रही, प्रेम उसका आधार हुआ--एक। दूसरा, रूस ने विवाह में सब तरह की बाधाएं डालनी शुरू कीं और तलाक में सब तरह की सुविधाएं दीं।
हमारे यहां उलटी हालत है सारी दुनिया में। अगर दो आदमियों को विवाह करना है तो हम बिल्कुल फिकर नहीं करते उनकी कि कोई पूछताछ की जाए, कोई जांच-पड़ताल की जाए, कुछ उनसे कहा जाए कि साल भर और प्रेम में रहो। शायद साल भर में तुम्हारा मन बदल जाए। तो इतनी जल्दी, इतनी जल्दी मत करो। होना तो यही चाहिए कि समाज, जब भी कोई दो व्यक्ति विवाह का आवेदन करें, तो उनसे दो साल का वक्त मांगे कि तुम दो साल और प्रेम में जीओ, तुम और दो साल मिलो- जुलो, नाचो, खेलो-कूदो, तुम दो साल और प्रेमी और प्रेयसी रहो। और छह-छह महीने में तुम हमें वापस फार्म भर कर भेजते रहना कि अभी तक दिल बदल तो नहीं गया। और अगर दो साल बाद भी तुम निर्णय पर पक्के रहो कि विवाह करना ही है, तो विवाह कर लेना।
ऐसे विवाह में तलाक की संभावना बहुत क्षीण हो जाएगी।
और जब भी कोई तलाक करना चाहे तो उसे तत्काल सुविधा मिलनी चाहिए। इतनी सुविधा कि अगर दो व्यक्तियों में से एक व्यक्ति दरख्वास्त दे दे अदालत में, तो दूसरे को पूछने की भी जरूरत नहीं होनी चाहिए। क्योंकि क्या सवाल है दूसरे से पूछने का? यह संबंध जो है एक ही तोड़ सकता है। और अगर एक ने तोड़ दिया तो दूसरे की बनाए रखने की इच्छा हो तब भी क्या प्रयोजन है? कोई प्रयोजन नहीं है। एक व्यक्ति दरख्वास्त दे दे कि मेरा विवाह समाप्त, तो विवाह समाप्त हो जाना चाहिए।
रूस ने तलाक को बहुत सरल कर दिया। जब पहली दफा यह किया गया तो रूस के सिद्धांतवादियों को ख्याल था कि एकदम तलाक बढ़ जाएंगे। लेकिन आज रूस में दुनिया में सबसे कम तलाक हैं, पांच प्रतिशत। और अमेरिका में जहां तलाक बहुत कठिन है, वहां चालीस प्रतिशत तक तलाक की संख्या पहुंच गई।
यह जरा सोचने जैसा है कि आदमी का मन कैसे काम करता है। अमेरिका में चालीस परसेंट तलाक है। और डर है कि यह परसेंटेज और बढ़ जाएगी। क्योंकि चालीस परसेंट होने की वजह से, वे जो नासमझ सिद्धांतवादी और न्यायविद होते हैं, वे और तलाक को कसते चले जाते हैं। वे सोचते हैं, जितना हम जोर से कसेंगे, उतना तलाक कम होगा।
असल में जितना जोर से तलाक कसा जाता है, उतना ही ज्यादा होगा। क्योंकि जहां परतंत्रता जितनी सख्त हो जाए, दीवारें तोड़ कर बाहर निकलने की उतनी आकांक्षा पैदा हो जाती है।
आप यहां बैठे हैं, अपनी मर्जी से मुझे सुनने आए हैं। आप अभी उठ कर जाना चाहें तो आपके लिए कोई रुकावट नहीं है। लेकिन अचानक आपको पता चले कि अब एक घंटे तक आप इस कमरे के बाहर नहीं निकल सकते हैं, तो यह नहीं निकलने की सूचना मात्र आप में से बहुत सों को निकलने की आकांक्षा बन जाएगी। क्योंकि यह परतंत्रता मालूम होने लगेगी, यह हमारी आत्मा पर बोझ मालूम होने लगेगा। रूस में पांच प्रतिशत तलाक, वह भी रोज कम होता जा रहा है। क्योंकि लोग बहुत सोच-विचार कर, जब एक व्यक्ति को सब तरफ से परख लेते हैं, उसके साथ जी लेते हैं, तब विवाह कर रहे हैं। विवाह उनका बहुत सोचा-समझा हुआ निर्णय है। वह जल्दी में लिया गया निर्णय नहीं है।
अमेरिका में प्रेम-विवाह भी असफल हो रहा है। उसका कारण है कि जैसे जन्मकुंडली मिलाने की बात असफल हो गई, वैसे ही प्रेम-विवाह असफल हो रहा है। क्योंकि प्रेम-विवाह भी बहुत सुविचारित, दो व्यक्तियों के निकट आकर लिया गया निर्णय नहीं है, दो व्यक्तियों के चेहरों को देख कर लिया गया निर्णय है। चेहरों को देख कर लिए गए निर्णय बहुत गहरे और कीमती नहीं हो सकते।
और ध्यान रहे, हम सब अपने चेहरे से दूसरे को धोखा देते हैं। अगर मुझे कोई अपरिचित स्त्री मिले, तो मैं उससे घंटे भर तक जिस भांति से व्यवहार

करूंगा, वह व्यवहार मेरा एक स्त्री के साथ चालीस साल तक नहीं रह सकता। वह घंटे भर तक जो व्यवहार है, औपचारिक है, फार्मल है। इसलिए हम अजनबी आदमी से जितने भले ढंग से पेश आते हैं उतने परिचित आदमी से नहीं आते भले ढंग से पेश। ट्रेन में दो आदमी जैसी बात करते हैं, तो देख कर लगता है दोनों जेंटलमैन हैं, दोनों ही सभ्य आदमी हैं। लेकिन वे ही आदमी दोनों मित्र हो जाएं तो गाली-गलौज शुरू हो जाती है, क्योंकि औपचारिकता टूट जाती है।
लड़के और लड़कियां जब एक-दूसरे से मिलते हैं, तो दोनों ही अभिनय कर रहे होते हैं, अपने चेहरे दिखा रहे होते हैं, अपनी असलियत नहीं। अगर इस क्षण में उन्होंने कोई निर्णय ले लिया, तो कल जब वे साथ जीएंगे तो आकाश के तारों के नीचे जिस लड़की को कविता की भांति पाया था, बर्तन मलते वक्त वह कविता नहीं रह जाएगी। बर्तन मलते वक्त वह बिल्कुल भूत-प्रेत मालूम पड़ेगी। जिस लड़के में सुगंध ही सुगंध आई थी, जब वह दिन भर मेहनत करके खेत में, बगीचे में, फैक्ट्री में से लौटेगा तो उसके पसीने में बदबू आएगी। असल में समुद्र के तट पर जब मां-बाप की चोरी से कोई लड़का किसी लड़की को मिलता है, तो जो उसमें सुगंध आती है वह उसकी नहीं होती, वह फ्रेंच परफ्यूम की होती है। उसकी असली सुगंध तो जब वह खेत से मेहनत करके लौटेगा, फैक्ट्री से मेहनत करके लौटेगा, तब उसके शरीर का जो ओडर है, उसके शरीर की जो गंध है, वह पहली दफा पता चलेगी। उसके पहले तो जो सुगंधें हैं वे सब फ्रेंच के बाजारों में तैयार होती हैं, वे सुगंधें होंगी। उस सुगंध से प्रेम हो जाएगा, फिर पसीने की दुर्गंध का क्या होगा? बस टूटना शुरू हो जाएगा।
अमेरिका में प्रेम-विवाह भी टूट रहा है। हिंदुस्तान जैसे मुल्कों में अरेंज मैरिज टूट रही है। लेकिन अमेरिका में प्रेम-विवाह टूटता देख कर हिंदुस्तान का पुरोहित, पंडित, हिंदुस्तान का पुरातन-पंथी कहता है कि देखो, हम ही बेहतर हैं। हमारा विवाह बिल्कुल ठीक चल रहा है।
आपका विवाह बिल्कुल ठीक चल रहा है, क्योंकि वह मरी हुई व्यवस्था है। उसमें टूटने तक की भी जान नहीं है। टूटने के लिए भी जिंदगी चाहिए। कोई चीज टूटे, इसके लिए भी थोड़ी ताकत चाहिए। और अमेरिका में जो टूट रहा है वह प्रेम-विवाह नहीं टूट रहा है, प्रेम के चेहरे टूट रहे हैं।
अब प्रेम की असलियत के लिए दुनिया में हमने अभी कहीं भी पूरा मौका नहीं दिया। और न देने के लिए हमारी जो नैतिक व्यवस्था है वह बाधा डालती है। लड़के और लड़कियों को हम बांट कर रखते हैं। कालेज हैं, कहने को को- एजुकेशनल हैं; कहने को है कि लड़के और लड़कियां साथ पढ़ते हैं। लड़के और लड़कियां अभी भी साथ नहीं पढ़ते हैं! क्योंकि जब तक लड़के और लड़कियां साथ खेल नहीं सकते, तब तक साथ पढ़ कैसे सकते हैं? जब तक लड़के और लड़कियां एक होस्टल में साथ रह नहीं सकते, तब तक लड़के और लड़कियां साथ पढ़ कैसे सकते हैं?
जब तक लड़के और लड़कियां एक-दूसरे के कंधे में हाथ डाल कर खड़े नहीं हो सकते, तब तक साथ पढ़ नहीं सकते; नाम है साथ पढ़ने का। को-एजुकेशनल नहीं है अभी हमारा कोई भी स्कूल या कोई भी कालेज। लड़कियां एक तरफ बैठी हैं बेंचों पर, लड़के एक तरफ बैठे हैं, प्रोफेसर कांस्टेबल की तरह बीच में खड़ा हुआ है। न लड़के पढ़ पा रहे हैं, न लड़कियां पढ़ पा रही हैं। क्योंकि जब तक लड़कियां पास मौजूद हैं तब तक लड़के कैसे पढ़ें? जब तक लड़के पास मौजूद हैं तब तक लड़कियां कैसे पढ़ें? और जब तक लड़के-लड़कियां मौजूद हैं तो प्रोफेसर पढ़ाए कैसे? यह को-एजुकेशन नहीं है, को-मिसएजुकेशन है, यह को-मिसएजुकेशन है।
साथ हम स्त्री-पुरुष को अब तक स्वीकार नहीं कर पाते। और जब तक हम उन्हें साथ स्वीकार न कर पाएं तब तक उनके जीवन में प्रेम का स्वर पैदा नहीं हो पाता। प्रेम के स्वर के लिए सिचुएशन चाहिए, एक व्यवस्था चाहिए जहां स्त्री और पुरुष समान भाव से स्वीकृत हैं। जहां लड़के और लड़कियां खेल रहे हैं, दौड़ रहे हैं, लड़ रहे हैं, तैर रहे हैं, भाग रहे हैं, साथ गपशप कर रहे हैं, और इसमें कोई चिंतित होने का कारण नहीं है।
बड़े आश्चर्य की बात यह है कि जिन कारणों से हम चिंतित हैं वे कारण हमारे पूरे जीवन को विकृत किए जा रहे हैं। स्त्री और पुरुष के बीच के संबंधों को हम कब स्वस्थ भाव से ले सकेंगे? जब हम स्त्री और पुरुष के बीच के संबंधों को पूर्ण स्वस्थता, सहजता, निसर्गता से ले सकेंगे, तभी एक नया परिवार पैदा हो सकेगा। हमारा पुराना परिवार परवर्टेड है। क्योंकि उसमें

बुनियादी परवर्शन है। वह बुनियादी डर काम का, यौन का भय है कि कहीं यौन के संबंध न हो जाएं। और यौन के संबंध होंगे ही, वे रुकेंगे नहीं, उनके रोकने का कोई उपाय नहीं।
हां, रोकने की चेष्टा से वे विकृत जरूर हो जाएंगे, परवर्टेड हो जाएंगे, बीमार हो जाएंगे, रुग्ण हो जाएंगे। और एक बार अगर जीवन की कोई भी मूलधारा विकृत हो जाए तो उसे वापस लौटाना बहुत कष्ट-साध्य हो जाता है, उसे अपनी जगह पर लाना बहुत मुश्किल हो जाता है। इसलिए उचित यही है कि हम जीवन की धारा को उसकी सहजता में स्वीकार करें।
फिर हमारी जो पुरानी चिंतना थी, उसमें तो भय के कुछ कारण भी थे। बड़ा डर यही था कि कहीं लड़के और लड़कियां अविवाहित अवस्था में संतति जन्म न दे दें! वही डर था। उस डर के लिए कोई उपाय नहीं था उनके पास सिवाय कि लड़के-लड़कियों को बहुत दूर रखो। और ऐसे-ऐसे अर्थहीन मूढ़तापूर्ण उपाय भी किए गए जिनकी कल्पना करनी भी मुश्किल है।
अभी अगर आप यूरोप के म्यूजियम्स में जाएं तो उन म्यूजियम्स में एक अजीब चीज आप जरूर देख लेना, उसका नाम हैः चेस्टिटी बेल्ट। सतीत्व-रक्षा की व्यवस्था के लिए एक ताला बनाया गया था कि पति अगर युद्ध पर जाए तो पत्नी की कमर में एक खास तरह का पट्टा पहना कर लॉक कर जाता था। वह स्त्री फिर किसी से संभोग नहीं कर सकती थी।
लेकिन आप जानते हैं कि जहां भी ताले होते हैं, वहां नकली चाबियां बन जाती हैं। और जो सतीत्व तालों पर निर्भर करता हो, वह सतीत्व कितना गहरा हो सकता है? जिस सतीत्व की रक्षा के लिए ताला लगाना पड़ता हो, वह सतीत्व कितना है, कितना अर्थ रखता है? उस सतीत्व का कितना मूल्य है?
तो मैंने सुनी है एक कहानी। मैंने सुना है कि एक युवक युद्ध पर जाता था। अपनी पत्नी को उसने चेस्टिटी बेल्ट पहना दिया था, ताला लगा दिया था। मजबूत कीमती से कीमती ताला उसने और बेल्ट खरीदा था। फिर भी उसे डर था कि कहीं कोई उपद्रव न हो जाए। उसे यह भी डर था कि कहीं उसकी रास्ते में कहीं चाबी गिर जाए, किसी दुश्मन के हाथ पड़ जाए, किसी मित्र के हाथ पड़ जाए। तो उसका जो निकटतम मित्र था, उससे उसने कहा कि यह चाबी मैं तुम्हारे पास छोड़े जाता हूं--तुम पर मैं भरोसा कर सकता हूं--इस चाबी को अपनी तिजोरी में सम्हाल कर रखना और जब मैं लौट कर आऊं तो मुझे वापस लौटा देना। क्योंकि यह चाबी कहीं गिर जाए तो भी मुसीबत है, खो जाए तो भी मुसीबत है, कोई ले जाए तो भी मुसीबत है। और तुम मेरे भरोसे के आदमी हो, तुम पर मैं भरोसा कर सकता हूं। यह चाबी सम्हाल कर रखना। वह अपने घोड़े पर सवार हुआ और गांव के बाहर ही नहीं पहुंचा था कि उसने देखा कि पीछे से कोई घोड़ा तेजी से आ रहा है। मित्र चला आ रहा था। उस मित्र ने आकर कहा कि तुम गलत चाबी दे दिए मालूम पड़ता है। यह तो लगती ही नहीं है।
यह होने वाला है, यह होने ही वाला है। जहां चाबियों और तालों पर नैतिकता निर्भर होगी, वहां यह होगा ही।
हमारी सारी नैतिकता तालों और चाबियों की नैतिकता है। यह दूसरी बात है
कि हम अलग-अलग तरह के चेस्टिटी बेल्ट खोजते हैं। बाप पहरा दिए है, भाई पहरा दिए है, पति पहरा दिए है, बेटा पहरा दिए है--पहरे चल रहे हैं। ऋषि-मुनियों ने कहा है कि स्त्री को कभी बिना पहरे के नहीं छोड़ना। अगर लड़की हो तो बाप पहरा दे, अगर युवा हो तो पति पहरा दे, अगर बूढ़ी हो जाए तो बेटा पहरा दे, स्त्री को कभी अलग मत छोड़ना।
कैसी अनैतिक बुद्धि है! और ऐसी अनैतिक बुद्धि से कहीं कोई परिवार निर्मित होगा जहां पहरे दिए जा रहे हैं? और ऐसी अनैतिक बुद्धि पर जो परिवार बनेगा वह परिवार स्वस्थ होगा? मुझे नहीं दिखाई पड़ता। मैं मानता हूं कि परिवार उसी दिन स्वस्थ होगा जिस दिन हम यौन के तथ्य को सरलता से, सहजता से, जैसा वह जीवन में है, उसे स्वीकार कर लेंगे।
और ध्यान रहे, जितना हमने असहज व्यवस्था की है उतना आदमी असहज होता चला गया। राम को बेचारों को सीता की परीक्षा लेनी पड़ी, अग्नि की परीक्षा। यह सब चेस्टिटी बेल्ट का मामला है। इतनी क्या घबराने की बात थी? राम को सीता पर इतना भी भरोसा नहीं? राम जैसे अदभुत व्यक्ति को भी सीता पर इतना भरोसा नहीं कि उसकी अग्निपरीक्षा लें!

और अग्निपरीक्षा लेने से भी कुछ तय न हुआ। अग्निपरीक्षा से वह स्त्री गुजर गई तो भी एक साधारण आदमी के कह देने से उस स्त्री को घर के बाहर निकाल देना पड़ा। और तब वह गर्भवती थी, दो जुड़वां बच्चे उसके पेट में थे। जैसे दूध से कोई मक्खी को फेंक दे, ऐसे हमारे मर्यादा पुरुषोत्तम ने उसे बाहर फेंक दिया।
यह कैसी नैतिकता है! यह कैसी अजीब सी बीमार नैतिकता है! और इस बीमार नैतिकता के कारण सारी मनुष्य-जाति धीरे-धीरे सेक्स आब्सेस्ड हो गई है। यौन ही उसके चिंतन का सब आधार हो गया है। सब दिखावा है। भीतर यौन चिंतन चलता है। और पूरे वक्त उसी की फिकर लगी है।
पत्नी पति से भयभीत है, पत्नी पति से भयभीत है। पत्नी जब सांझ पति से पूछती है--कहां से आ रहे हो? तब भी वह सेक्स ही पूछ रही है। पति जरा देर हो गया है तो घर जाते डर रहा है, तब भी वह सेक्स से ही डर रहा है। पति जब घर जा रहा है तब वह सोच रहा है कि क्या उत्तर देना है कि इतनी देर कहां हो गई है। पत्नी, जरा देर हो गई है घर आने में पति के, तो बेचैन है, परेशान है। यह सब क्या है? ये कोई हमारे बीच स्वस्थ संबंध हैं? हम मित्र हैं कि हम दुश्मन हैं? हम एक-दूसरे के पहरेदार हैं? हम एक-दूसरे के कारागृह के जेलर हैं? कि हम एक-दूसरे के ऊपर जंजीरें लिए हुए, संगीनें लिए खड़े हुए कोई नौकरी बजा रहे हैं? कि हमारा कोई संबंध है एक-दूसरे से प्रेम का।
नहीं, प्रेम है ही नहीं, इसलिए यह सारा उपद्रव है। तो मैं पहली बात तो
यह कहना चाहूं कि परिवार विवाह की बुनियाद से हट जाना चाहिए। विवाह ने परिवार को बीमार कर दिया है। परिवार प्रेम के आधार पर खड़ा होना चाहिए। निश्चित ही, प्रेम के आधार पर खड़े होने पर बहुत कुछ बदलना पड़ेगा। लेकिन वह बदलने योग्य है। बहुत से खतरे लेने पड़ेंगे। लेकिन वे खतरे भी लेने योग्य हैं। और बहुत सी नई दृष्टियां पैदा करनी पड़ेंगी। वे दृष्टियां भी पैदा करने योग्य हैं।
जैसे उदाहरण के लिए, मैं समझता हूं कि हमारे परिवार की जो पकड़ है वह भी जीवन को नुकसान पहुंचाती है, वह पकड़ भी ढीली होनी चाहिए। अगर मेरे पिता और पड़ोसी में झगड़ा हो जाए तो मुझे अनिवार्य रूप से अपने पिता का साथ देना चाहिए, यह परिवार की पकड़ है, क्योंकि वे मेरे पिता हैं। और हो सकता है वे गलत हों और परिवार पड़ोस का जो झगड़ने वाला दुश्मन है वह सही हो। लेकिन परिवार मेरा कहेगा कि अपने बाप का साथ दो, अपने भाई का साथ दो, अपनी मां का साथ दो। पड़ोसी का साथ मत देना। सही-गलत का सवाल नहीं है। सही या गलत, परिवार मेरा है।
तो परिवार के साथ हमारी जो आइडेंटिटी है वह हमें सही और गलत की परख से रोक देती है। हो सकता है पड़ोसी ही ठीक हो। और तब परिवार की पकड़ अगर हमारे ऊपर कम हो जाए तो मैं अपने पिता को कह सकूं कि पड़ोसी ठीक है और अगर लड़ाई जारी होगी तो मैं पड़ोसी की तरफ हूं।
और ध्यान रहे, यह छोटा मामला नहीं है। क्योंकि यही फैल कर फिर हिंदुस्तान-पाकिस्तान का मामला बनता है, यही फैल कर फिर हिंदुस्तान-चीन का मामला बनता है। इसके बुनियाद में परिवार की पकड़ है। हिंदुस्तान ठीक होगा हर हालत में, क्योंकि मैं हिंदुस्तान में रहता हूं। तो फिर पाकिस्तान का आदमी भी सोचता है पाकिस्तान ठीक होगा हर हालत में, क्योंकि पाकिस्तान उसका परिवार है। तब दुनिया में कभी तय नहीं हो पाता कि ठीक क्या है। ठीक कभी तय नहीं हो पाएगा।
परिवार की पकड़ टूट जाए, तो मैं मानता हूं, राष्ट्र की पकड़ तत्काल टूट जाएगी। परिवार की पकड़ ही फैल कर राष्ट्रीयता बनती है, नेशनेलिटी बनती है। और जब तक दुनिया में राष्ट्र नहीं मिटता तब तक दुनिया में मनुष्यता के जन्म का कोई उपाय नहीं है। राष्ट्र मिटने चाहिए, मनुष्यता एक होनी चाहिए। लेकिन परिवार की पकड़ बहुत गहरी है। और परिवार फैल कर फिर जाति बनता है, राष्ट्र बनता है। और तब बड़ी कठिनाई खड़ी हो जाती है। आज तक तय नहीं हो पाया--कौन सही है? जब दो राष्ट्र लड़ते हैं तो दोनों ही सही होते हैं। जर्मनी और इंग्लैंड लड़े दूसरे महायुद्ध में। तो इंग्लैंड का आर्चबिशप भगवान से प्रार्थना करता रहा कि मेरे राष्ट्र को जिताओ, क्रिश्चियन भगवान से। और जर्मनी का बिशप भी क्रिश्चियन भगवान से

प्रार्थना करता रहा कि मेरे राष्ट्र को जिताओ, क्योंकि मेरा राष्ट्र धर्म के पक्ष में है। और इंग्लैंड भी धर्म के पक्ष में है। और दोनों पुरोहित एक ही जीसस के और एक ही भगवान से प्रार्थना करते हैं, एक ही बाइबिल को हाथ में रख कर।
बड़ी हैरानी की बात है! ऐसा मालूम होता है कि सही-झूठ का कोई मापदंड ही नहीं है। कुछ तय करना ही संभव नहीं हो पाता। क्योंकि जो मेरा है वह ठीक है। जब तक हम दूसरे निर्णय पर न पहुंचें--कि जो ठीक है वही मेरा है--तब तक बहुत कठिनाई है। और इस निर्णय पर पहुंचने के लिए परिवार की पकड़ ढीली होनी चाहिए।
अच्छा होगा कि जिंदगी में एकाध-दो बार पत्नी बदल जाती हो और बच्चे एक परिवार से दूसरे परिवार में यात्रा कर जाते हों, बुरा नहीं है। क्योंकि इसके परिणाम ये होंगे कि वह जो क्लिंगिंग है परिवार की, वह विदा हो जाएगी। और जिस दिन परिवार नीचे से विदा हो जाएगा, उस दिन ऊपर से राष्ट्र विदा हो जाएगा। वह परिवार का फैला हुआ रूप है। कभी आपने ख्याल किया कि परिवार की पकड़ की वजह से दुनिया में संप्रदाय बने हुए हैं, अन्यथा मिट जाएं।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि ये हिंदू और मुसलमान और यह सब पागलपन के मिटाने का उपाय क्या है?

परिवार को विदा करो! अगर परिवार बचता है तो हिंदू-मुसलमान विदा नहीं
हो सकते। क्योंकि हिंदू-मुसलमान ने ट्रिक समझ ली है और परिवार की जड़ों को पकड़ लिया है। अब आप अपने परिवार को मानते हैं। आपका परिवार एक धर्म में है, एक संप्रदाय में है। इसीलिए परिवार कोशिश करता है कि उसी धर्म में विवाह हो बेटे का, बेटी का। क्योंकि अगर दूसरे धर्म में यात्रा शुरू हो गई तो परिवार बिखरने लगेगा। वे परिवार की जो मौलिक जड़ें हैं, उनमें बिखराव हो जाएगा। इसलिए एक जाति, एक भाषा, एक धर्म, एक देश, इसमें हम विवाह करेंगे। ताकि हम आगे के लिए भी बंटवारा साफ रख सकें।
अगर हिंदुस्तान में हिंदू-मुसलमान के घरों में विवाह होते होते, तो हिंदुस्तान-पाकिस्तान कभी भी नहीं बंट सकता था। जिन लोगों ने हिंदू और मुसलमानों को विवाह करने से रोका, वे ही लोग हिंदुस्तान और पाकिस्तान के बंटवारे के लिए जिम्मेवार हैं। अगर हिंदुस्तान में हमने हिंदू लड़की और मुसलमान लड़के को विवाह करने दिया होता, मुसलमान लड़की और हिंदू लड़के को विवाह करने दिया होता, तो कैसे निर्णय हो पाता कि कौन हिंदू है? कौन मुसलमान है? कैसे निर्णय हो पाता कि किसका परिवार पाकिस्तान जाए और किसका परिवार हिंदुस्तान में रहे? सब परिवारों को बंटना पड़ता। वह असंभव था। लेकिन विवाह की व्यवस्था ने वह संभव बना दिया। एक मुल्क दो हिस्सों में टूट गया। अब भी हम उन्हीं रेखाओं में बंटे हुए जी रहे हैं।
मैं हिंदुस्तान के भावी बच्चों से कहता हूं कि भूल कर अपनी जाति में शादी मत करना, भूल कर अपने धर्म में शादी मत करना। क्योंकि धर्म में और जाति में शादी करने का परिणाम हिंदू-मुस्लिम दंगे है। जाति और धर्म में शादी करने का परिणाम है कि अहमदाबाद में मुसलमान जलेंगे, कराची में हिंदू जलेंगे और जगह-जगह हिंदू-मुस्लिम की छाती में छुरा भोंका जाएगा।
लेकिन अगर मेरी पत्नी मुसलमान हो तो फिर मुसलमान की छाती में छुरा भोंकना बहुत मुश्किल हो जाएगा मेरे लिए। और मेरे बच्चे, वे हिंदू-मुसलमान दोनों होंगे। उन बच्चों की फिर कोई भी क्लिंगिंग न रह जाएगी। उनकी कोई पकड़ न रह जाएगी। अगर वे हिंदू की छाती में छुरा भोंकना चाहेंगे तो उन्हें अपने बाप की याद आएगी और अगर वे मुसलमान की मस्जिद में आग लगाना चाहेंगे तो उन्हें अपनी मां की याद आएगी। उन बच्चों की क्लिंगिंग टूट जाएगी।
यह जो हमारा परिवार है एक रूप-रेखा में बंधा हुआ है, इसे बिखराने की जरूरत है, इसके दरवाजे खोलने की जरूरत है। इसमें आने दें।
इस परिवार के कारण ही व्यक्तिगत संपत्ति को बचने में सहयोग मिला। मेरी संपत्ति मेरे बेटे की संपत्ति हो जाती है; मेरे बेटे की संपत्ति उसके बेटे की संपत्ति हो जाएगी; संपत्ति पर कब्जा जारी रहेगा। इस संपत्ति पर कब्जा जारी रहने के कारण बहुत नुकसान हुए। अगर यह परिवारों में थोड़ा

बिखराव हो तो संपत्ति धीरे-धीरे अपने आप--बिना किसी समाजवाद के लाए, बिना ऊपर से जबरदस्ती समाजवाद थोपे और राष्ट्रीयकरण किए--संपत्ति की जो व्यक्तिगत पकड़ है, वह व्यक्तिगत परिवार के बिखराव के साथ विदा हो जाएगी। संपत्ति धीरे-धीरे अपने आप समाज की हो जाएगी।
अब मेरे एक मित्र हैं बेल्जियम में, उनके संबंध में कोई मुझे एक मजाक सुना रहा था। उनकी तीसरी पत्नी है। एक दिन उनके बच्चे आपस में लड़ रहे हैं तो उनकी पत्नी ने उनसे कहा कि देख रहे हैं आप, मेरे और तुम्हारे बच्चे मिल कर हमारे बच्चों को मार रहे हैं।
समझे आप? उसने कहा, मेरे और तुम्हारे बच्चे मिल कर हमारे बच्चों को मार रहे हैं। इस पत्नी के भी अपने बच्चे हैं पहले पति से, इस पति के भी अपने बच्चे हैं पहली पत्नी से और इन दोनों के भी बच्चे हैं। तो तीन तरह के बच्चे हैं उस घर में--मेरे, तुम्हारे, हमारे। और वह पत्नी कह रही है कि मेरे और तुम्हारे बच्चे मिल कर हमारे बच्चों को मार रहे हैं।
अब जिस घर में बच्चे इतने विभिन्न हैं उस घर में एक तरलता होगी। और स्वभावतः उस घर में पिता का हृदय और बड़ा चाहिए, मां का हृदय भी और बड़ा चाहिए। अपने बच्चे को ही प्रेम करना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है, कोई बहुत बड़ी ऊंची मनुष्यता का लक्षण नहीं है। लेकिन अगर मेरी पत्नी किसी और के बच्चों को लेकर मेरे घर में आती है और उन बच्चों को भी मैं प्रेम कर पाऊं, तो एक घटना घटती है। लेकिन उस डर से ही कि कहीं ऐसा न हो कि किसी और के बच्चों को मुझे प्रेम करना पड़े, हमने एक दीवार बना कर रखी है। यह परिवार अब तक मनुष्य को मनुष्य से तोड़ने का कारण बना है, जोड़ने का कारण नहीं बन सका। तरलता चाहिए, सॉलिडिटी नहीं, लिक्विडिटी चाहिए। जितना परिवार ठोस पत्थर की तरह होगा, उतना खतरनाक है। परिवार पानी की तरह पिघला हुआ बहता हुआ चाहिए।
असल में मेरे और आपके परिवार के बीच बहुत साफ, सुनिश्चित रेखा नहीं चाहिए। हमारे और आपके परिवार एक-दूसरे में प्रवेश करते हुए, ट्रेसपास करते हुए होने चाहिए। अगर पूरे देश के परिवार एक-दूसरे में प्रवेश करते हों तो अपने आप एक समाज का जन्म होता है। समाज तब तक पैदा नहीं हो पाता जब तक परिवार बहुत सख्त हैं, क्योंकि तब परिवार टूटे रहते हैं अलग-अलग टुकड़ों में और समाज को जोड़ने वाली बीच में कोई धारा नहीं होती। इसलिए जिस देश में परिवार जितने महत्वपूर्ण रहे हैं, उस देश में सामाजिकता उतनी ही कमजोर रही है।
जैसे हमारे देश में। हमारा देश परिवारों का सबसे पुराना देश है। और हमारे देश में परिवार की बड़ी लंबी कथा है। और हमारे देश में परिवार को हमने बड़ा पूज्य समझा है, बड़ा होली और बहुत पवित्र समझा हुआ है। और उस परिवार के कारण इस देश में सामाजिकता, सोशिएलिटी पैदा नहीं हो पाई। हमारे मुल्क में सामाजिकता बिल्कुल नहीं है। मैं अपने परिवार में जीता हूं, आप अपने परिवार में जीते हैं। और हमारे परिवार कटे, अलग, आइलैंड्स की तरह हैं, एक सागर की तरह मिले हुए नहीं।
मेरी समझ में, अगर विवाह की जगह प्रेम और प्रेम के पीछे विवाह हो; तलाक
की अधिकतम सुविधा, विवाह की अधिकतम असुविधा; परिवारों की तरलता, जाति और धर्मों का आग्रह नहीं; और मेरा परिवार ठीक हर हालत में, ऐसी भ्रांति नहीं; तो हम एक नये तरह के परिवार को जन्म दे पा सकते हैं। और इस नये तरह के परिवार को अगर हम जन्म न दें तो भविष्य में हम बड़ी कठिनाइयों में पड़ते चले जाएंगे।
जगत आगे बढ़ गया और परिवार पीछे खड़ा रह गया है। परिवार है पांच हजार साल पुराना और दुनिया है बीसवीं सदी की। परिवार के ढंग और व्यवस्थाएं सब प्राचीन और जगत बिल्कुल नया और परिस्थितियां बिल्कुल नई। इस नई परिस्थिति में नये तरह के परिवार का जन्म होना अत्यंत जरूरी है। और इस परिवार के जन्म होते ही हमारी बहुत सी रुग्ण व्यवस्थाएं हिंदू-मुसलमान की, ईसाई की, जैन की, अपने आप टूट जाएंगी। किन्हीं महात्माओं को समझाने की जरूरत नहीं है कि हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई हैं। किन्हीं महात्माओं को समझाने की जरूरत नहीं है कि अल्लाह-ईश्वर एक के ही नाम हैं।

असल में जीवन के नीचे से उस व्यवस्था को तोड़ने की जरूरत है, जिसकी वजह
से अल्लाह-ईश्वर दो नाम हो गए हैं; और जिसकी वजह से हिंदू-मुसलमान दो हो गए हैं; उस भीतर से व्यवस्था को तोड़ने की जरूरत है। परिवार बिखेर देना है। लेकिन डर लगता है हमें। हमें लगता है कि परिवार बिखर जाए तो क्या होगा? बिना यह सोचे हमें डर लगता है कि परिवार के होने से क्या हो रहा है! परिवार के बिखरने से क्या होगा?
कुछ नुकसान होने वाला नहीं है। परिवार के बिखरने का मतलब ही इतना है
कि बड़ा परिवार बनेगा। छोटे परिवार की टुकड़ियां टूट जाएंगी, बड़ा परिवार बनेगा। और जितना बड़ा परिवार बनेगा उतना ही समाजवाद सहज विकसित होगा।
और अगर बड़ा परिवार नहीं बनाना है तो समाजवाद छाती पर पत्थर की तरह आएगा, ऊपर से संगीन की तरह आएगा, दिल्ली से आएगा। और दिल्ली से आया हुआ समाजवाद खतरनाक है। वह जबरदस्ती ऊपर से संगीन के बल आएगा। नीचे से या तो परिवार को बड़ा करो, फैलाओ और पूरे समाज को परिवार बना दो। और या फिर ऊपर से ताकत के बल से आपसे छीना जाएगा, तोड़ा जाएगा। वह तोड़ने में आत्मा के बहुत से तंतु टूट जाएंगे। उस जबरदस्ती में आत्मा की सारी स्वतंत्रता छिन जाएगी। उस जबरदस्तीपूर्ण आग्रह में, उस वाद में पूरा देश एक कारागृह बन जाएगा। अगर इस कारागृह से बचना हो, तो हमें नीचे के परिवार के यूनिट्स ढीले करने चाहिए और धीरे-धीरे परिवार को बड़ा करना चाहिए। एक गांव परिवार बन जाए। अगर एक गांव पूरा परिवार बन जाता है, लिक्विड हो जाता है, तो हमें व्यक्तिगत संपत्ति मिटानी नहीं पड़ेगी; बिना व्यक्तिगत संपत्ति को मिटाए सामाजिक संपत्ति का जन्म हो जाएगा। अगर एक प्रदेश परिवार बन जाता है, तो हमें कानून नहीं बनाना पड़ेगा राष्ट्रीयकरण का, उस प्रदेश की संपत्ति प्रदेश की है और हो जाएगी। व्यक्ति भी बचेगा, व्यक्ति की गरिमा भी बचेगी और व्यक्तिगत संपत्ति अपने आप विदा हो जाएगी।
और अगर हमने यह आग्रह जारी रखा, हमारे पुराने टुकड़े जिंदा रखने की हमने कोशिश की, तो जबरदस्ती ये टुकड़े तोड़ने पड़ेंगे। और व्यक्तिगत संपत्ति को बिखराने में व्यक्ति की सारी स्वतंत्रता के बिखर जाने का डर है। इसलिए मेरे मस्तिष्क में समाजवाद की एक धारणा है और वह धारणा है परिवार के विस्तार से समाजवाद के फलित होने की। और मेरी दृष्टि में हिंदू-मुसलमान को मिटाने की एक धारणा है और वह धारणा है हिंदू-मुसलमान को भाई-भाई समझाने की नहीं; उससे कुछ भी नहीं हुआ, उससे बल्कि नुकसान हुआ। अगर हिंदुस्तान के समझदार नेता हिंदू और मुसलमानों को भाई-भाई होना न समझाते तो शायद पार्टीशन न होता!
उसके कारण हैं। क्योंकि जब हमने पचास साल तक निरंतर कहा कि हिंदू- मुसलमान भाई-भाई हैं, हिंदू-मुसलमान भाई-भाई हैं। फिर भी हिंदू-मुसलमान एक साथ रहने को राजी न हुए, तो भाई-भाई के तर्क ने लोगों को ख्याल दिया कि अगर दो भाई साथ न रह सकते हों तो संपत्ति का बंटवारा कर लेना चाहिए। पार्टीशन, दो भाइयों के बीच झगड़े का आखिरी निपटारा है।
अगर गांधी जी ने हिंदुस्तान को मुसलमान-हिंदू के भाई-भाई की शिक्षा न
दी होती तो पार्टीशन का लाजिक ख्याल में नहीं आ सकता था। असल में पार्टीशन सदा दो भाइयों के बीच में होता है। पार्टीशन होने के पहले, दोनों भाई हैं, इसकी हवा पैदा होनी जरूरी थी। अगर यह हवा पैदा न होती तो ख्याल में भी न आता कि हिंदुस्तान का बंटवारा हो। जब एक दफा यह ख्याल पैदा हो गया कि दोनों सगे भाई हैं और साथ रहने में मजबूर हैं, तो स्वाभाविक लाजिकल कनक्लूजन, जो तार्किक निष्कर्ष था वह यह हुआ कि फिर ठीक है बंटवारा कर लें, जैसे कि दो भाई लड़ते हैं और बंटवारा कर लेते हैं। फिर गांधी जी को या किसी को कहने का उपाय न रहा कि बंटवारा न होने देंगे।
हम कभी नहीं कहते कि ईसाई-ईसाई भाई-भाई हैं। हम यह क्यों कहते हैं कि हिंदू-मुसलमान भाई-भाई हैं? हिंदू-ईसाई भाई-भाई हैं? यह भाई-भाई का कहना जो है खतरे की सूचना है, इससे पता चलना शुरू हो गया कि झगड़ा खड़ा है।...
तब तक परिवार तरल नहीं हो सकता। क्योंकि पिता अपने दिमाग से सारा इंतजाम करेगा। अगर पिता अपने लड़के का विवाह करेगा तो स्वभावतः ब्राह्मण पिता ब्राह्मण लड़की से विवाह करेगा। अरेंज मैरिज सोच-समझ कर की जाएगी तो पिता...

तो हम प्रेम करें। प्रेम पहले शुरू हो जाता है, पीछे पता चलता है--कौन हिंदू है, कौन मुसलमान है। और जब एक बार प्रेम शुरू हो जाए तो हिंदू- मुसलमान दो कौड़ी की बातें हैं, उनको फेंका जा सकता है, उनका कोई मूल्य नहीं है। जहां प्रेम नहीं है वहीं उन बातों का मूल्य है; जहां प्रेम की शुरुआत है वहां कोई मूल्य नहीं है। अगर हम अपने लड़के-लड़कियों को करीब ला सकें, तो बीस साल में हिंदुस्तान में हिंदू-मुसलमान का कोई सवाल नहीं रहेगा--सिर्फ बीस साल में। क्योंकि बीस साल में एक जेनरेशन, एक पीढ़ी बदल जाती है। सिर्फ बीस साल का सवाल है। और अगर हम अपने मुल्क के लड़के-लड़कियों को बहुत निकट ला सकें, तो आने वाले पचास साल में हिंदुस्तान-पाकिस्तान को अलग रहने की कोई जरूरत न रह जाएगी।
सच बात तो यह है कि आदमी की जितनी बुद्धिमत्ता मशीनों और पशुओं के संबंध में काम में आ रही है, उतनी बुद्धिमत्ता खुद के संबंध में काम नहीं आ रही है। हम सब जानते हैं कि अंग्रेज बैल को, अंग्रेज सांड को लाकर हिंदू गाय से विवाहित करवा देने से जो बच्चे पैदा होते हैं उनकी ताकत का कोई मुकाबला नहीं। लेकिन यही व्यवहार हम आदमी के साथ नहीं कर पा रहे। यह बायोलाजिकल समझ आदमी के साथ में उपयोग में नहीं आ पा रही है।
सच बात यह है, संबंध जितने दूर के होंगे, बच्चे उतने स्वस्थ, उतने बुद्धिमान होंगे। जितनी क्रास-ब्रीडिंग होगी। सच तो यह है कि जितने दूर की बहुएं हमारे घरों में आ सकें और हमारी लड़कियां जितने दूर के घरों में बहुएं बन सकें, उतने इस जगत में मनुष्य का रूप, सौंदर्य, स्वास्थ्य, बुद्धि, सब विकसित होगी। लेकिन हमारे परिवार रुकावट डाल रहे हैं।
नहीं, अंतर्जातीय ही नहीं, अंतर्राष्ट्रीय विवाह भविष्य का विवाह होगा। अंतर्जातीय छोटी पड़ गई है बात, अंतर्राष्ट्रीय! और कोई नहीं जानता, क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं कि कम से कम पचास हजार ऐसे ग्रह-उपग्रह हैं जिन पर जीवन होगा, तो कोई नहीं कहता इंटरप्लेनेटरी, अंतर्ग्रहीय विवाह। और जिस दिन कभी किसी चांद-तारे से आई हुई लड़की से आपके लड़के का विवाह हो सकेगा, उस दिन जो बच्चा पैदा होगा वह मनुष्यता के जीवन में नया चरण होगा। क्योंकि उन दोनों की अनंत यात्रा की भेद उस एक बच्चे में समाहित और सम्मिलित हो जाएंगी। जब एक हिंदू और मुसलमान का विवाह होता है, तो दो संस्कृतियों की समस्त देन उस बच्चे को मिल जाती है।
मेरे एक मित्र ने अमेरिका में शादी की है। छह महीने हिंदुस्तान रहते हैं, छह महीने अमेरिका रहते हैं। उनकी जो बच्ची है वह हिंदी भी मातृ-भाषा की तरह बोलती है, मातृ-भाषा है उसकी। अंग्रेजी भी मातृ-भाषा की तरह बोलती है, वह मातृ-भाषा है उसकी। वह लड़की बाइलिंगुअल है। उस लड़की की दोनों क्षमताएं समान हैं। उस लड़की की क्षमता दुगनी है; बाप की भी क्षमता उसके पास है, मां की भी क्षमता उसके पास है।
अगर इस लड़की का विवाह एक चीनी से हो, तो उसके बच्चे तीन भाषा बोल सकेंगे मातृ-भाषा की तरह। अगर उनके बच्चों का विवाह रूसी से हो, तो उनके बच्चे चार भाषा बोल सकेंगे मातृ-भाषा की तरह। और अगर सारी दुनिया में इस तरह के अंतर्संबंध स्थापित हो जाएं तो बहुत देर नहीं है जब अंतर्राष्ट्रीय भाषा एक हो जाए। क्योंकि जब कोई आदमी चार भाषाएं एक साथ मातृ-भाषा की तरह बोलता है तो सीमाएं टूट जाती हैं और भाषाएं एक-दूसरे में प्रवेश कर जाती हैं।
दुनिया में एस्पेरेंटो, कोई अंतर्राष्ट्रीय भाषा ऊपर से नहीं थोपी जा सकती। जब जीवन में नीचे से आनी शुरू होगी तो बहुत दूर नहीं है वह दिन अगर हमारे अंतर्जातीय, अंतर्राष्ट्रीय विवाह हो सकें, तो दो सौ वर्ष के भीतर दुनिया में एक भाषा रह जाए। जिस दिन एक भाषा होगी उस दिन एक परिवार के बनने में बड़ी सहायता मिल जाएगी।
अभी तो जर्मन और रूस और चीनी से दोस्ती बढ़ानी बहुत मुश्किल है। गुजराती मराठी से नहीं बढ़ा पाता। हिंदी बोलने वाला तमिल बोलने वाले से दुश्मनी बना लेता है। असल में जो हमारी भाषा नहीं बोलता उसे हम कभी नहीं समझ पाते। एक मिसअंडरस्टैंडिंग हमेशा बीच में खड़ी रहती है। जो हमारी भाषा नहीं समझता वह अजनबी मालूम पड़ता है, जो हमारी भाषा नहीं समझता उससे हम बहुत निकट के संबंध नहीं बना पाते।

मेरे एक मित्र, जो सारी दुनिया में घूमे हैं, उन्होंने मुझसे कहा कि सारी दुनिया में घूम लो, सब तरह की भाषाएं बोल लो, लेकिन अगर किसी से प्रेम करना हो तो ऐसा लगता है कि अपनी ही भाषा में बोलो, या किसी से झगड़ा करना हो तो भी ऐसा लगता है कि अपनी भाषा में बोलो।
असल में झगड़े में आदमी फौरन अपनी भाषा बोलने लगता है। अगर आपको किसी
को गाली देना है तो दूसरे की भाषा में मजा नहीं आएगा। दूसरे की भाषा बिल्कुल होकस-पोकस, इंपोटेंट मालूम पड़ेगी कि यह भी कोई गाली हुई! अगर आपको किसी से प्रेम करना है तो भी दूसरे की भाषा थोड़ी मुश्किल में डालती हुई मालूम पड़ेगी। क्योंकि जब भी कोई तीव्र क्षण भीतर पैदा होता है, तो वह जो हमारे लिए सहज है वही निकल जाता है।
हमें अपने बच्चों को चार-छह भाषाएं सहज बनानी चाहिए। वे तभी बन सकेंगी जब यह हमारे परिवार का पुराना ढांचा बिखर जाए और इसकी जगह एक अंतर्राष्ट्रीय परिवार की रूप-रेखा पैदा होनी शुरू हो जाए।
राष्ट्र विदा होने चाहिए, धर्म विदा होने चाहिए, जातियां विदा होनी चाहिए, और इन सबका आधार हमारे परिवार में है। इसलिए मैं कहता हूं, पुराने परिवार को विदा दो, ताकि नया परिवार जन्म ले सके।
इस संबंध में कुछ और प्रश्न हैं, वह संध्या आपसे मैं बात करूंगा।
मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।